प्रकाशक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय
लखनऊ

अन्य प्राप्ति-स्थान—

१. दिल्ली-ग्रंथागार, चर्खेवालाँ, दिल्ली
२. प्रयाग-ग्रंथागार, १, जॉंसटनगंज, प्रयाग
३. काशी-ग्रंथागार, मच्छोदरी-पार्क, काशी
४. लखनऊ-ग्रंथागार, लखनऊ
५. राष्ट्रीय प्रकाशन-मंडल, मछुआ-टोली, पटना
६. साहित्य-रत्न-भंडार, सिविल लाइंस, आगरा
७. हिंदी-भवन, अस्पताल-रोड, लाहौर
८. एन्० एम्० भटनागर ऐंड ब्रादर्स, उदयपुर
९. दक्षिण-भारत-हिंदी-प्रचार-सभा, त्यागरायनगर, मदरास

नोट—हमारी सब पुस्तकें इनके अलावा हिंदुस्थान-भर के सब प्रधान बुकसेलरों के यहाँ मिलती हैं। जिन बुकसेलरों के यहाँ न मिलें, उनका नाम-पता हमें लिखें। हम उनके वहाँ भी मिलने का प्रबंध करेंगे। हिंदी-सेवा में हमारा हाथ बँटाइए।

मुद्रक
श्रीदुलारेलाल
अध्यक्ष गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस
लखनऊ

भूमिका

जब जीवन के मुक्त आकाश में अविराम अलक्ष्य बहते हुए देह के किसी मेघ-खंड से सूर्य की एक उज्ज्वल किरण बँध जाती, वह भी अपने आलोक-पथ को किसी अलक्ष्य शक्ति के प्रभाव से छोड़कर मेघ के स्नेह-सजल हृदय में शांति लेती—विश्राम करती है, उसी समय कल्पना का इंद्रजाल इंद्र-धनुष के रंगों में प्रत्यक्ष होता है। रंगों की एक दूसरी ही सृष्टि संसार के रंग-मंच के लोग मनोहर यवनिका के रूप में खुली हुई देखते हैं। हमारे मित्र, 'माधुरी' के भूतपूर्व तथा 'सुधा' के वर्तमान प्रधान संपादक और 'गंगा-पुस्तकमाला' के संपादक और अध्यक्ष पंडित दुलारेलालजी के जीवन में ऐसा ही शुभ संयोग हुआ था। आज उनके यश के प्रभात-काल का पद्म मध्याह्न की मरीचियों से प्रखर, पूर्ण-विकसित, हिंदी की दसो दिशाओं को अपनी अमंद सुगंध से परिप्लावित कर रहा है।

मित्रवर पं० दुलारेलालजी के जीवन की धारा को, उनके परिवार में प्रचलित प्रथा के प्रतिकूल, उर्दू से हिंदी की तरफ़ बहाने का श्रेय एकमात्र उनकी धर्मपत्नी स्वर्गीया श्रीमती गंगादेवी को है। इन विदुषी साध्वी महिला को ईश्वर-प्रदत्त जैसा अपार सौंदर्य मिला था, वैसे ही अनेक गुण भी इनकी प्रकृति के मृदुल सूत्र में पिरो दिए गए थे। तिरो-धान के पश्चात् अपने पति की आत्मा में मिलित होकर यह हिंदी का इतना बड़ा उपकार करेंगी, यह किसी को पहले स्वप्न में भी मालूम न था। 'गंगा-पुस्तकमाला' इन्हीं के नाम से संस्थापित की गई है। अतः इनकी जीवनी का संक्षिप्त अंश दे देना हम यहाँ आवश्यक समझते हैं।

इनका जन्म श्रीमान् फूलचंद्रजी भार्गव ई० ए० सी० के यहाँ हुआ था। हिंदी बहुत अच्छी जानती थीं, और संस्कृत तथा अँगरेज़ी का भी इन्हें ज्ञान था। शिक्षा के साथ-ही-साथ गृह-कार्यों में भी यह अत्यंत कुशल थीं। सीना-पिरोना आदि नारियों के लिये आवश्यक ललित कलाएँ भी वह जानती थीं। इन्हें संगीत का भी ज्ञान था, और सबसे बढ़कर ईश्वरीय उपहार जो इन्हें मिला था, वह इनकी निरस्त्र सुकुमार प्रकृति थी। छोटी अवस्था में ही श्रीयुत दुलारेलालजी के साथ इनका शुभ

विवाह विपुल आयोजन तथा उत्साह के साथ हुआ। लखनऊ में भार्गव-कुल के सुप्रसिद्ध स्वर्गीय पंडित प्यारेलालजी के ज्येष्ठ पुत्र होने के कारण श्रीयुत दुलारेलालजी के विवाह में ख़ास तौर से कुल-योजनाएँ की गई थीं। स्वर्गीया सौभाग्यवती श्रीगंगादेवी ने यहाँ, इस उर्दू के अजेय दुर्ग में आकर, देखा, लखनऊ हिंदी के प्रेम से रहित है, और विशेष रूप से उनका परिवार तो उर्दू की प्रतिष्ठा के पीछे और भी बुरी तरह से पड़ा हुआ है—नवलकिशोर-प्रेस उर्दू की पुस्तकों तथा अख़बारों के प्रकाशन का भारतवर्ष में प्रधान केंद्र हो रहा है। श्रीमती गंगादेवी की आँखें यह सब देखकर हिंदी की दुर्दशा पर चुपचाप कुछ अमूल्य मोती गिराकर रह जाती थीं। पर वह हताश नहीं हुईं। अपने पति के हृदय में हिंदी की आशा की लता अपने सुकुमार प्रयत्नों से उन्होंने रोपित कर दी। श्रीयुत दुलारेलालजी ने उस १६ वर्ष की छोटी ही-सी अवस्था में अपनी जातीय महासभा की मुख-पत्रिका भार्गव-पत्रिका * का संपादन-भार उठा लिया, और इस तरह हिंदी की सेवा के लिये दत्त-चित्त हो गए। पर सती गंगादेवी को अपने उपदेशों के सुफल देखने का अवकाश न मिला। वह स्वर्गीय ज्योति जिस कार्य के लिये पृथ्वी पर उतरी, उसका इस प्रकार श्रीगणेश कर, २-३ मास ही पति के साथ रहकर, इस नश्वर संसार को त्यागकर अपने पति की आत्मा में लीन हो गई।

'गंगा-पुस्तकमाला' में आज हिंदी की सेवा के जो सुफल प्रत्यक्ष हो रहे हैं, इसकी लता उन्हीं गंगादेवी के स्नेह के जल से सींची हुई लहलहा रही है। उनकी कल्पना से निकली हुई, श्रीयुत दुलारेलालजी के सतत परिश्रम से बढ़ती हुई इस 'गंगा-पुस्तकमाला' में आज १०८वाँ पुष्प पिरोया जा चुका है, जिसके आनंद का उत्सव मनाने के लिये हिंदी के प्रमुख साहित्यिक आज यहाँ—गंगा-फ़ाइनआर्ट-प्रेस में—एकत्र हैं। इस माला का पहला पुष्प था माला के अध्यक्ष मालाकार दुलारेलालजी की

* इसके पहले भार्गव-पत्रिका उर्दू में ही निकलती थी, अब हिंदी में भी निकलने लगी।

लिखी हुई 'हृदय-तरंग'-पुस्तक, जिसका समर्पण उन्होंने अपनी प्राणाधिक स्वर्गीया सहधर्मिणी को, उनकी उस प्रेरणा की उन्हें याद दिलाते हुए, किया है, और यह 'गढ़-कुंडार' इसका १०८वाँ पुष्प है। इस माला में हिंदी के लब्ध-प्रतिष्ठ बड़े-बड़े प्रायः सभी महापुरुष लेखक आ गए हैं। आचार्य पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी की लिखी हुई सुकवि-संकीर्तन, अद्भुत आलाप, साहित्य-संदर्भ, कवि-सम्राट् पं० श्रीधर पाठक का भारत-गीत, समालोचक-प्रवर मिश्रबंधु-लिखित हिंदी-नवरत्न, पूर्व भारत, मिश्र-बंधु-विनोद आदि, कविवर श्रीयुत जगन्नाथदास 'रत्नाकर' बी० ए० का लिखा हुआ बिहारी-रत्नाकर, उपन्यास-सम्राट् श्रीयुत प्रेमचंदजी की लिखी हुई रंगभूमि, कर्बला, प्रेम-द्वादशी, प्रेम-पंचमी, प्रेम-प्रसून आदि, समा-लोचक-प्रवर पं० कृष्णविहारीजी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० की लिखी हुई देव और बिहारी, आयुर्वेदाचार्य प्रसिद्ध औपन्यासिक श्रीयुत चतुर-सेनजी शास्त्री की लिखी हुई हृदय को परख, हृदय की प्यास, लोकप्रिय औपन्यासिक पं० विश्वंभरनाथजी शर्मा कौशिक की लिखी हुई मा और चित्रशाला, कविवर पंडित रूपनारायणजी पांडेय की कविताओं का संग्रह पराग, नवीन सुंदर साहित्यिक पं० विनोदशंकरजी व्यास की लिखी हुई तूलिका, पुरस्कृत कवि श्रीयुत गुलाबरत्नजी वाजपेयी 'गुलाब' की लतिका आदि, डॉक्टर प्राणनाथ विद्यालंकार का इँगलैंड का इतिहास, भट्टजी की दुर्गावती, हिंदी, पं० गोविंदवल्लभजी पंत की वरमाला, श्रीयुत भग-वानदास केला का भारतीय अर्थ-शास्त्र, प्रो० दयाशंकर दुबे का विदेशी विनिमय तथा और-और सुप्रसिद्ध साहित्यिकों की लिखी हुई उत्तमोत्तम रचनाएँ इस माला में पिरोई गई हैं। इतना बड़ा हिंदी का प्रकाशन, इतने थोड़े समय में, आज तक किसी भी कार्यालय से नहीं हुआ। इन अमूल्य पुस्तकों के द्वारा श्रीमान् दुलारेलालजी ने हिंदी की जो सेवा की है, उसका मूल्य निर्द्धारित करना मेरी शक्ति से बिलकुल बाहर है। पहले 'माधुरी' का आपने योग्यता-पूर्वक संपादन किया, अब उसी के जोड़ की अपनी पत्रिका 'सुधा' का प्रकाशन कर रहे हैं। 'माधुरी' और 'सुधा' में

बराबर आप नवीन लेखक को प्रोत्साहित करते रहे हैं, कितनी ही महिला-लेखिकाएँ तैयार कीं। बराबर नवीन लेखकों के चित्र छाप-छापकर उनका उत्साह बढ़ाते गए। यह क्रम हिंदी की किसी भी पत्रिका में नहीं रहा। 'सुधा' में जिन-जिन लेखकों के चित्र निकले हैं, दूसरी प्रतिष्ठित पत्रिकाएँ अब भी उनके चित्र निकालना अपनी मर्यादा की प्रतिकूलता समझती हैं। दूसरे प्रांतों के उनसे भी गए-बढ़े लोगों का बड़ी श्रद्धा से वहाँ परिचय दिया जाता है। पर अपने प्रांत के प्रतिष्ठित लोगों का सम्मान करते हुए उनका दम ही रुक जाता है। इस प्रोत्साहन-कार्य में दुलारेलालजी का स्थान सबसे पहले है। अन्यत्र सभाओं में निमंत्रित होकर प्रतिवर्ष हिंदी के नवीन कवियों को पदक-पुरस्कार आदि दे-देकर आप बढ़ावा देते रहते हैं। यह सब आपके हिंदी-प्रेम का ही पवित्र परिणाम है। लखनऊ-जैसे उर्दू के क़िले में इस तरह हिंदी का विशाल प्रासाद खड़ा कर देना कोई साधारण-सी बात नहीं थी। इसके लिये कितना परिश्रम तथा कितना अध्यवसाय चाहिए, यह मर्मज्ञ मनुष्य अच्छी ही तरह समझ लेंगे।

श्रीदुलारेलालजी का जन्म हुआ था वसंत-पंचमी को, उनके विवाह की वह अमूल्य स्मृति भी उन्हें मिली वसंत-पंचमी की रात, गंगा-पुस्तकमाला का प्रकाशन प्रारंभ हुआ वसंत-पंचमी के दिन, और आज इस माला के १०८वें जप-पुष्प की पूर्णता भी होती है वसंत-पंचमी को। ईश्वर से प्रार्थना है, वह माला को १००८ पुष्पों से सजाकर हिंदी के ऐसे उदार सक्षम कार्यकर्ता की कीर्ति को अन्य देशों में भी सादर समभ्यर्चित करे—श्रम तथा साधना अपना पुरस्कार प्राप्त करें।

इति शांतिः, शांतिः, शांतिः।

लखनऊ
वसंत-पंचमी, १९८६ } सूर्यकांत त्रिपाठी

अपने पूज्य देवता

के

चरण-कमलों

में

परिचय

इस उपन्यास की घटनाओं के परिचय के लिये और कुछ लिखने की आवश्यकता न होती, परंतु उसमें यत्र-तत्र तत्कालीन इतिहास की चर्चा है, इसलिये यहाँ थोड़ा-सा विशेष परिचय देने की आवश्यकता जान पड़ी। बुंदेलखंड के इतिहास का संक्षेप में भी यहाँ वर्णन करना अभीष्ट नहीं है। इतिहास का जितना संबंध इस कहानी से है, बहुत संक्षेप में केवल उसी का उल्लेख कर देना काफ़ी होगा।

पहले यहाँ गोंडों का राज्य था, परंतु उनके मंडलेश्वर या सम्राट् पाटलिपुत्र और पश्चात् प्रयाग के मौर्य हुए। जब मौर्य क्षीण हो गए, तब पड़िहारों का राज्य हुआ, परंतु उनकी राजधानी मऊ सहानिया हुई, जो नौगाँव छावनी से पूर्व में लगभग ३ मील दूर है। आठवीं शताब्दी के लगभग चंदेलों का उदय खजराहो और मनियागढ़ के क़रीब हुआ, और उनके राज्य-काल में जुझौति (आधुनिक बुंदेलखंड) आश्चर्य-पूर्ण श्री और गौरव को प्राप्त हुआ। सन् ११८२ में पृथ्वीराज चौहान ने अंतिम चंदेलराजा परमर्दिदेव (परमाल) को पहूज-नदी के किनारे सिरसागढ़ पर हराकर चंदेल-गौरव को सदा के लिये अस्त-व्यस्त कर दिया।

इसके बाद सन् ११९२ के लगभग पृथ्वीराज चौहान स्वयं सहाबुद्दीन ग़ोरी से पराजित हुए। उस समय कुंडार का गढ़ और राज्य पृथ्वीराज चौहान के सूबेदार और सामंत खेतसिंह खंगार के हाथ में था। वह ११९२ के बाद स्वतंत्र हो गया, और खंगारों के हाथ में जुझौति का अधिकांश भाग ८० वर्ष के लगभग रहा।

इस बीच में, मुसलमानों के कई हमले जुझौति पर हुए, परंतु किसी भी दीर्घ समय तक के लिये कभी यह प्रदेश मुसलमानों की अधीनता में नहीं रहा। कुंडार के खंगार राजाओं की मातहती में अनेक क्षत्रिय सरदार और सामंत थे, परंतु राजा के साथ उनका संबंध बहुत ही निर्बल था, और मातहती नाम-मात्र को ही थी। कुंडार का अंतिम खंगार राजा हुरमतसिंह था। उसकी अधीनता में कुछ बुंदेले सरदार भी थे। सोहनपाल के भाई, माहौनी के अधिकारी, भी ऐसे ही सरदारों में थे। सोहनपाल के साथ उनके भाई ने न्यायोचित बर्ताव नहीं किया था, इसलिये उनको कुंडार-राजा की सहायता की याचना करनी पड़ी। उनका विश्वस्त साथी धीर-प्रधान नाम का एक कायस्थ था। धीरप्रधान का एक मित्र विष्णुदत्त पांडे उस समय कुंडार में था। पांडे बहुत बड़ा साहूकार था। उसका लाखों रुपया ऋण हुरमतसिंह पर था—शायद पहले से पांडे-घराने का ऋण खंगार राजाओं पर चला आता हो। धीरप्रधान अपने मित्र विष्णुदत्त पांडे के पास अपने स्वामी सोहनपाल का अभीष्ट सिद्ध करने के लिये गया। हुरमतसिंह अपने लड़के नागदेव के साथ सोहनपाल की कन्या का विवाह-संबंध चाहता था। यह बुंदेलों को स्वीकार न हुआ। उसी ज़माने में सोहनपाल स्वयं सकुटुंब कुंडार गए। हुरमतसिंह ने उनकी लड़की को ज़बरदस्ती पकड़ना चाहा। परंतु यह प्रयत्न विफल हुआ। इसके पश्चात् जब बुंदेलों ने देखा कि उनकी अवस्था और किसी तरह नहीं सुधर सकती, तब उन्होंने खंगार राजा के पास संवाद भेजा कि लड़की देने को तैयार हैं, परंतु विवाह की रीति-रस्म खंगारों की विधि के अनुसार बर्ती जाय। खंगार इसको चाहते ही थे। मद्य-पान का उनमें अधिकता के साथ प्रचार था।

विवाह के पहले एक जलसा हुआ। खंगारों ने उसमें खूब शराब

डाली। मद-मत्त होकर नशे में चूर हो गए। तब बुंदेलों ने उनका नाश कर दिया। इस घटना का सन् १२८८ (संवत् १३४५) बतलाया जाता है। बुंदेलों के पहले राजा सोहनपाल हुए। उनका देहांत सन् १२६६ में हो गया। उनके बाद राजा सहजेंद्र हुए और उन्होंने सन् १३२६ तक राज्य किया। इस प्रकार बुंदेले कुंडार में अपनी राजधानी सन् १५०७ तक बनाए रहे। सन् १५०७ में बुंदेला राजा रुद्रप्रताप ने ओरछे को बसाकर अपनी राजधानी ओरछे में क़ायम कर ली।

सहजेंद्र की राज्य-प्राप्ति में करेरा के पँवार सरदार पुण्यपाल ने सहायता की थी। इसके उपलक्ष में सहजेंद्र की कुमारी, जिसका नाम उपन्यास में हेमवती बतलाया गया है और राज्य के भाट के कथनानुसार रूपकुमारी था, पँवार सरदार को ब्याह दी गई।

इस उपन्यास में से जितने वर्णित चरित्र इतिहास-प्रसिद्ध हैं, उनका नाम ऊपर आ गया है। मूल घटना भी एक ऐतिहासिक सत्य है, परंतु खंगारों के विनाश के कुछ कारणों में थोड़ा-सा मतभेद है।

बुंदेलों का यह कहना है कि कुंडार का खंगार राजा हुरमतसिंह ज़बरदस्ती और पैशाचिक उपाय से बुंदेला-कुमारी का अपहरण युवराज नागदेव के लिये करना चाहता था; खंगार लोग अपने अंतिम दिवस में शराबी, शिथिल, क्रूर और राज्य के अयोग्य हो गए थे, इसलिये जान-बूझकर वे विवाह-प्रस्ताव की आग में शराब पीकर कूदे, और खुली लड़ाई में उनका अंत किया गया। एक कारण यह भी बतलाया जाता है कि खंगार राजा दिल्ली के मुसलमान राजाओं के मेली थे, इसलिये उनका पूर्ण संहार ज़रूरी हो गया था।

खंगार लोग और बात कहते हैं—ज़रा दबी ज़बान से उनका कहना है कि बुंदेलों ने पहले तो लड़की देने का प्रस्ताव किया, फिर कपट करके, शराब पिलाकर और इस तरह अचेत करके खंगारों को जन-बच्चों-

सहित मार मिटाया। वे लोग यह भी कहते हैं कि बुंदेले मुसलमानों को जुझौति में ले आए थे।

खंगारों का पिछला कथन इतिहास के बिलकुल विरुद्ध है, और युक्ति से असंभव जान पड़ता है, इसलिये कहानी-लेखकों तक को ग्राह्य नहीं हो सकता।

बुंदेलों ने अपना राज्य क़ायम करने के बाद जुझौति की शान को बनाए रखने की काफ़ी चेष्टा की। इस प्रदेश की स्वाधीनता के लिये उन्होंने घोर प्रयत्न किए, और बड़े-बड़े बलिदान भी। बुंदेलखंड की वर्तमान हिंदू जनता में जो प्राचीन हिंदुत्व (classical culture) अभी थोड़ा-बहुत शेष है, उसकी रक्षा का अधिकांश श्रेय बुंदेलों को ही है।

बेचारे खंगारों का नाम सन् १२८८ के पश्चात् जुझौति के संबंध में बिलकुल नहीं आता। उनका पतन उसके बाद ऐसा घोर और इतना विकट हुआ कि आजकल उनकी गिनती बहुत निम्न श्रेणी में की जाती है। परंतु इसमें ज़रा भी संदेह नहीं कि एक समय उनके गौरव का था, और उनके नाम की पताका जुझौति के अनेक गढ़ों पर वीरों और सामंतों के ऊँचे सिरों पर फहराया करती थी। उनके पतन की ज़िम्मेदारी उनके निज के दोषों पर कम है। उसका दायित्व उस समय के समाज पर अधिक है। लेखक को इसी कारण अग्निदत्त पांडे की शरण लेनी पड़ी।

जिस तरह गढ़-कुंडार पर्वतों और वनों से परिवेष्टित बाहर की दृष्टि से छिपा हुआ पड़ा है, उसी तरह उसका तत्कालीन इतिहास भी दबा हुआ-सा है।

परंतु वे स्थल, वह समय और समाज अब भी अनेकों के लिये आकर्षण रखते हैं।

उपन्यास में वर्णित चरित्रों के वर्तमान सादृश्य प्रकट करने का इस समय लेखक को अधिकार नहीं, केवल अपने एक मित्र का नाम कृतज्ञता-ज्ञापन की विवशता के कारण बतलाना पड़ेगा।

गढ़-कुंडार

कुंडार की चौकियाँ

तेरहवीं शताब्दि का अंत निकट था, महोबे में चंदेलों की कीर्ति-पताका नीची हो चुकी थी। जिसको आज बुंदेलखंड कहते हैं, उस समय उसे जुझौति कहते थे। जुझौति के बेतवा सिंध और केन द्वारा सिंचित और विदीर्ण एक बृहत् भाग पर कुंडार के खंगार राजा हुरमतसिंह का राज्य था।

कुंडार जो वर्तमान झाँसी से उत्तर-पश्चिम कोने की तरफ़ ३० मील दूर पर है, इस राज्य की समृद्धि-संपन्न राजधानी थी। कुंडार का गढ़ अब भी अपनी प्राचीन शालीनता का परिचय दे रहा है। बीहड़ जंगल, घाटियों और पहाड़ों से आवृत यह गढ़ बहुत दिनों तक जुझौति को मुसलमानों की आग और तलवारों से बचाए रहा था।

महोबा के राजा परमर्दिदेव चंदेल के पृथ्वीराज चौहान द्वारा हराए जाने के बाद से चंदेले छिन्न भिन्न हो गए। पृथ्वीराज ने अपने सामंत खेतसिंह खंगार को कुंडार का शासक नियुक्त किया। उसी खेतसिंह का वंशज हुरमतसिंह था। हुरमतसिंह लड़ाकू, हठी और उदार था। परंतु वृद्धावस्था में उसकी उदारता अपने एकमात्र पुत्र नागदेव के निस्सीम स्नेह में परिवर्तित हो गई थी।

नागदेव प्रायः बेतवा के पूर्वीय तट पर स्थित देवरा, सेंधरी, माधुरी और शक्तिभैरव के जंगलों में शिकार खेला करता था, सेंधरी और माधुरी अभी बाक़ी हैं, शक्तिभैरव जो पूर्व-काल में एक बड़ा नगर था, आजकल लगभग भग्नावस्था में है। वर्तमान चिरगाँव से पूर्व की ओर छ मील

पर एक घाट देवराघाट के नाम से प्रसिद्ध है। देवरा का और कुछ अब शेष नहीं है। तेरहवीं शताब्दि में देवरा एक बड़ा गाँव था। अब तो खोज लगाने पर विशाल बेतवा-तल की ऊँची करार पर कहीं-कहीं पुरानी ईंटें और कटे हुए पत्थर गड़े हुए मिलते हैं। कुंडार से आठ मील उत्तर की ओर देवरा की चौकी चमूसी पड़िहार के हाथ में थी, जो हुरमतसिंह का एक सामंत था। बेतवा के पश्चिमी तट पर देवल, देवधर (देदर), भरतपुरा, बजटा, सिकरी, रामनगर इत्यादि की चौकियाँ भरतपुरा के हरी चंदेल के हाथ में थीं। इसकी गढ़ी भरतपुरा में थी। यह बेतवा के पश्चिमी किनारे पर ठीक तट के ऊपर थी। यहाँ से कुंडार का गढ़ पूर्व और दक्षिण के कोने की पहाड़ियों में होकर झाँकता-सा दिखलाई पड़ता था। अब उस गढ़ी के कुछ थोड़े-से चिह्न हैं। किसी समय इस गढ़ी में पाँच सौ सैनिकों के आश्रय के लिये स्थान था। वर्तमान भरतपुरा अब यहाँ से दो मील उत्तर-पश्चिम के कोने में जा बसा है। प्राचीन गढ़ी के पृथ्वी से मिले हुए खँडहर में अब वन्य पशु विलास किया करते हैं, और नीचे से बेतवा पत्थरों को तोड़ती-फोड़ती कलकल निनाद करती हुई बहती रहती है। यही हालत बजटा की है। केवल कुछ थोड़े-से चिह्न-मात्र रह गए हैं। तेरहवीं शताब्दि में बजटा अहीरों की बस्ती थी, जो खेती कम करते थे और पशु-पालन अधिक।

देवल में, तेरहवीं शताब्दि में, देवी का एक नामी मंदिर था। पुराना देवल मिट गया है, और उसका पुराना देवालय भी। केवल कुछ टूटी-फूटी मूर्तियाँ वर्तमान देवल के पीछे इधर-उधर बिखरी पड़ी हुई हैं। पुराने देवल के ध्वंस बेतवा के बैजापारा-नामक घाट के पश्चिमी कूल पर फैले हुए हैं, जो खोज लगाने पर भी नहीं मिलते। कभी-कभी कोई गड़रिया बरसात में यहाँ पर भेड़-बकरी चराता-चराता कहीं कोई स्थान खोदता है, तो अपने परिश्रम के पुरस्कार में एक आध चंदेली सिक्का या, चंदेल ईंट पा जाता है। देवधर का नाम देदर हो गया है। रामनगर

सिकरी इत्यादि मौजूद हैं, परंतु अपने प्राचीन स्थानों से बहुत इधर-उधर भटक गए हैं। कुछ तो इसका कारण बेतवा की प्रखर धार है, जिसने लाखों बीघे भूमि काट-कूटकर भरकों में लौट-पलट कर दी है, और कुछ इसका कारण आक्रमणकारियों की आग और तलवार है।

आजकल देवराघाट के पूर्वी किनारे पर, जिसके मील-भर पीछे दिग्गज पलोथर पहाड़ी है, करधई के जंगल के सिवा और कुछ नहीं है। परंतु जिस समय का वर्णन हम करना चाहते हैं, उस समय वहाँ कुछ भूमि पर खेती होती थी। शेष आजकल की तरह वन था।

पीछे पहाड़, बीच में हरी-भरी खेती और इधर-उधर जंगल उसके बाद नील तरंगमय दो भागों में विभक्त बेतवा। एक धारा देवल के पास से निकलकर देवधर (वर्तमान देदर) के नीचे पश्चिम की ओर देवरा से आध मील आगे चलकर पूर्व की ओर दूसरी धार से मिल गई है। दोनो भागों के बीच लगभग एक मील लंबा और आध मील चौड़ा एक टापू बन गया है, जिसको आजकल बरौल का सूँड़ा कहते हैं। इसके दक्षिणी सिरे पर शायद खंगारों के समय से पहले की एक छोटी-सी गढ़ी और चहारदीवारी बनी चली आती थी, जो अब बिलकुल खंडहल हो गई है। आजकल इसमें तेंदुए और जंगली सुअर विहार करते हैं।

देवल, देवरा और देवधर में बड़े-बड़े मंदिरों की काफ़ी संख्या थी। दुर्गा और शिव की पूजा विशेष रूप से होती थी। इन मंदिरों की रक्षा के लिये और कुंडार में मुसलमानों और अन्य शत्रुओं का प्रवेश रोकने के लिये इन सब चौकियों में खंगारों के क़रीब दो सहस्र सैनिक रहा करते थे। टापू की चौकी किशुन खंगार के आधिपत्य में थी। कुंडार-राज की सेना में पड़िहार, कछवाहे, पँवार, धंधेरे चौहान, सेंगर, चंदेले इत्यादि राजपूत और लोधी, अहीर, खंगार इत्यादि जातियों के लोग थे। ख़ास कुंडार में क़रीब बाईस सहस्र पैदल और घुड़सवार थे।

शक्तिभैरव नगर इस नाम के मंदिर के कारण दूर-दूर तक प्रसिद्ध था।

दो सौ वर्ष के लगभग हुए तब मंदिर बिलकुल खंडहल हो गया था। कहते हैं, ओरछा के किसी संपन्न अवजरिया ब्राह्मण को शिव की मूर्ति ने स्वप्न में दर्शन देकर अपना पता बतलाया था और उसी ने इस मंदिर का जीर्णोद्धार करा दिया था यह मंदिर शक्ति, भैरव और महादेव का था। मंदिर के अहाते के एक कोने में भैरवी-चक्र की एक शिला अब भी पड़ी हुई है। उस नगर के वर्तमान भग्नावशेष को लोग आजकल सकत भैरों कहते हैं। चालीस-पचास वर्ष पहले तक इस नगर की कुछ श्री शेष रही। परंतु उसके पश्चात् एकदम उसका अंत हो गया। वहाँ के अनेक वैश्य और सुनार झाँसी, चिरगाँव और अन्य-अन्य कस्बों में चले गए और वहाँ ही जा बसे।

यद्यपि जुझौति का सब कुछ चला गया, मान-मर्यादा गई, स्वाधीनता गई, समृद्धि गई, बल-विक्रम भी चला गया—तो भी चंदेलों के बनाए अत्यंत मनोहर और करुणोत्पादक मंदिर और गढ़ अब भी बचे हुए हैं और बची हुई हैं चंदेलों की झीलें, जिनके कारण यहाँ के किसान अब भी चंदेलों का नाम याद कर लिया करते हैं। यहाँ के प्राकृतिक दृश्य, जिनका सौंदर्य और भयावनापन अपनी-अपनी प्रभुता के लिये परस्पर होड़ लगाया करता है, अब भी शेष हैं। पलोथर की पहाड़ी पर खड़े होकर चारो ओर देखनेवाले को कभी अपना मन सौंदर्य के हाथ और कभी भय के हाथ में दे देना पड़ता है। ऐसा ही उस समय भी होता था, जब संध्या समय पलोथर के नीचे बेतवा के दोनो किनारों पर शंख और घंटे तथा कुंडार के गढ़ से खंगारों की तुरही बजा करती थी। और अब भी है जब पलोथर की चोटी पर खड़ा होकर नाहर अपने नाद से देवरा, देवल, भरतपुरा इत्यादि के खँडहलों को गुँजारता और बेतवा के कलकल-शब्द को भयानक बनाता है। अब कुंडार में तुरही नहीं बजती। हाँ, टीकमगढ़ के महाराज के कुछ सैनिक इसकी रक्षा में अपने दिन बिताया करते हैं।

अर्जुन पहरेदार

पूस का महीना था। सूर्यास्त होने में बहुत देर थी। देवरा से पाव मील पूर्व पलोथर की पहाड़ी की जड़ में बहनेवाले नाले के दोनो किनारों के पेड़ों की झुरमुटों की नीलिमा पर रवि-रश्मियाँ नाच-सी रही थीं। बेतवा के पश्चिमी किनारे पर से ऐसा भास होता था, मानो वनदेवी के पद-चारण के लिये पलोथर ने लंबा, सुनहला पाँवड़ा बिछा दिया हो।

दो सवार नाले में से निकले और चमूमी की देवरा की चौकी की ओर आए एक की आयु सत्रह या अठारह वर्ष से अधिक न होगी। प्रशस्त ललाट कुछ लंबाई लिए, गोल चेहरा, आँखें कुछ बड़ी और बादाम के आकार की हलकी काली, नाक सीधी और होंठ लाल, ठोड़ी आधार में एक हलके-से गढ़ेवाली और ज़रा-सी आगे को झुकी हुई और गर्दन सुराहीदार। केश पीछे गर्दन तक लंबे और बिलकुल काले और उन पर कहीं-कहीं रेत के कण। भौहें पतली, लंबी और खिंची हुई और पलक दीर्घ। सीना चौड़ा और कमर बहुत पतली, बाहु लंबे और हाथ की उँगली पतली। मूँगिया रंग के कपड़े पहने हुए, छोटी-सी ढाल और तरकस पीठ पर, कमर में तलवार और कंधे पर कमान। भाल पर लगा रोरी का तिलक किसी समय हाथ पड़ जाने से पुछ गया था और माथे पर तिरछी लकीर के आकार में बन गया था। इस आरक्त वक्र रेखा ने मुख के हलके गेहुँए रंग को और भी तेजोमय बना दिया था। गले में सोने की माला थी। दूसरा सवार २३ या २४ वर्ष का युवक था। पहले सवार की बाल्यावस्था ने अभी बिलकुल साथ नहीं छोड़ा था और दूसरा युवावस्था में प्रवेश कर चुका था। रंग साँवला, लंबे काले बाल चेहरे की श्यामलता को और भी

गहरा बना रहे थे। मस्तक छोटा, आँखें बड़ी, नाक सीधी परंतु छोटी, भौहें मोटी और गुच्छेदार, ठोड़ी चौड़ी और आगे को अधिक झुकी हुई, बाएँ कान में मणि-जटित बाली, सीना बहुत चौड़ा, हाथ छोटे परंतु बहुत पुष्ट, सारी देह जैसे साँचे में ढाली गई हो। आँख बहुत काली, सजग और जल्दी-जल्दी चलनेवाली, गले में पड़ी मोतियों की माला चेहरे के साँवलेपन को दीप्ति दे रही थी। चेहरा गोल। होंठ कुछ मोटे। इसके माथे पर भी रोरी का तिलक था, परंतु वह पुछा नहीं था। यदि इस सवार के तिलक की लकीर लंबी-तिरछी बन गई होती, तो आकृति कुछ अधिक भयानक हो जाती।

दोनो सवार चमूसी की चौकी पर पहुँचे। पाँच सौ सैनिकों में से केवल दस-पाँच चौकी पर थे। बाक़ी अपने किसी निजू काम से इधर-उधर गए हुए थे। दो सैनिकों ने झटपट आगे आकर दोनो सवारों को प्रणाम किया, और उनके घोड़े थाम लिए। साँवले सवार ने कुछ प्रखर कंठ से कहा—"और सब लोग क्या सो रहे हैं?"

एक सैनिक ने उत्तर दिया—"नहीं अन्नदाता, खेतों से लौटकर आए और नदी में नहाने चले गए।" जिसको "अन्नदाता" कहकर संबोधन किया गया था, वह फिर घोड़े पर सवार होकर बोला—"सामंत चमूसी से कह देना कि मैं कल लौटकर आऊँगा, तब तक आशा है कि उनके सैनिक नहा-धोकर लौट आवेंगे। यदि देवरा चौकी के पहरे का यही हाल रहा, तो कुंडार की कुशल नहीं।" चौकी के पास ही मार्ग में एक छोटी-सी फुलवाड़ी थी। फलों में कुछ पेड़ अनार और अमरूद के थे, और फूलों में गेंदा लगा हुआ तथा दो बड़े पेड़ लाल कनेर के। फूल बहुत बड़े-बड़े थे और रंग उनका बहुत आकर्षक था।

कुमार ने घोड़े पर से उतरकर दो फूल कनैर में से तोड़कर एक अपने साफ़े में खोंस लिया और एक अपने साथी को दे दिया।

उसने कहा—"फूल बहुत सुंदर है, परंतु निर्गंध है।"

साँवले सवार ने मुस्किराकर उत्तर दिया—"इस पर भी देवताओं पर चढता है। मनुष्य इसको बहुत कम लगाते हैं।"

"और लगाएँ तो?" उसने पूछा।

"युद्ध का चिह्न है, लगाने से किसी-न-किसी युद्ध के लिये विवश होना पड़ेगा।" वह बोला।

साथी ने कहा—"जैसा कि हम लोग इस समय अपने और अपने घोड़ों के बीच थोड़ी देर में नदी की चट्टानों पर चलते समय देखेंगे।"

घोड़ों को एड़ लगाकर दोनो सवार नदी की ओर चल दिए, और सैनिक अवाक् खड़ा रह गया।

दोनो सवार घाट पर पहुँचकर उतर पड़े, और उन्होंने अपने-अपने घोड़ों की रासें हाथ में ले लीं। दूसरा सवार जो अभी तक चुपचाप चला आया था, मुस्किराकर बोला—"कुँअर, अब सीधे चंदेले के पास चलोगे या बरौल की सूँड़ा में भाग्य की परीक्षा करोगे?"

"कुँअर" संबोधित युवक ने कुछ अधीर होकर कहा—"बरौल की सूँड़ के किशुन काका को अब शिकार का शौक नहीं रहा। वह बूढ़ा बाघ उसी जंगल में हम लोगों को दबोच डालेगा, चंदेले के पास तक न जाने देगा। वह शत्रुओं पर पहरा नहीं लगाता है, हमारे ऊपर पहरा लगाता है। सीधे बैजापारे की तलहटी में चलो और तलहटी-तलहटी भरतपुरा के जंगल में हिरन का शिकार करके चंदेले के पास। महाराज ने दो ही दिन की तो छुट्टी दी है।"

दोनो सवार अपने-अपने घोड़ों को थामे हुए नदी के दूसरे किनारे पहुँचे और वहाँ से दक्षिण की ओर तलहटी-तलहटी थोड़ी दूर जाकर किनारे पर चढ़ गए। वहाँ से भरतपुरा की गढ़ी मील-डेढ़ मील की दूरी पर होगी। बीच में जंगल का एक टुकड़ा पड़ता था। पश्चिम की ओर गेहूँ-चने के हरे-भरे मैदान थे। सूर्य के अस्त होने में थोड़ा विलंब था। किरणें हरे-हरे खेतों पर लहरा रही थीं।

दोनो सवारों ने एक काला हिरन देखा। कुछ दूर था। घोड़े बढ़ाए। हिरन ने चौकड़ी भरी। घोड़े बहुत दौड़े। एक जगह हिरन ठहरा। तीर छूटे। परंतु निशाना ख़ाली गया। हिरन एक भरके में ऐसा लोप हुआ कि फिर पता न लगा। उधर सूर्यास्त हो गया।

प्रकाश थोड़ा-सा था। दोनो को भरतपुरा गढ़ी की याद आई।

श्यामकाय सवार ने कहा—"गढ़ी यहाँ से कोस-भर होगी। चंदेला देवरा के पड़िहार के समान काहिल नहीं है। संध्या होते ही गढ़ी का फाटक बंद कर लेता है। तिस पर सोहनपाल वहाँ सकुटुंब आया हुआ है, इसलिये वह और भी अपनी अमेयता का परिचय देगा। भाई पांडे, इधर का मार्ग तुम बतलाओ, तुमको इस ओर अपने पिता के साथ आने का प्रायः अवसर मिलता है।"

पांडे ने कहा—"हाँ, हमारे पिता लेन-देन के संबंध में इस तरफ़ के गाँवों में कभी-कभी आते हैं, परंतु शिकार खेलने के लिये नहीं।"

दूसरा सवार—"जी हाँ, जब तक उनका लेन-देन देहातियों के साथ होता है, तब तक आप लेन-देन करते रहते हैं जंगल के जानवरों के साथ।"

पांडे-नामक युवक की ठोड़ी कुछ कठोर हुई और होंठ कोई कड़ी बात कहने के लिये कुछ हिले, परंतु उसने अपने भाव को शासित कर पूर्व दिशा की ओर देखकर कहा—"रात अँधेरी है, परंतु कुंडार का क़िला यहाँ से दिखता है और उसी की सीध में भरतपुरा की गढ़ी भी दिखती है। घोड़ा बढ़ाइए, मैं मार्ग दिखलाता हूँ।" एड़ मारकर पांडे आगे हुआ। दूसरा सवार अपनी दिल्लगी का वार चूका हुआ देखकर कुढ़ा। यदि पांडे ने कुढ़कर कोई उत्तर दिया होता, तो बात और बढ़ती; और कड़वी बात कहनेवाले "कुँअर" संबोधित युवक को कम-से-कम यह संतोष हो जाता कि लोहे पर लोहा बजाने से कुछ शब्द तो हुआ।

अँधेरा होते-होते दोनो सवार भरतपुरा गढ़ी के सामने जा पहुँचे।

फाटक बंद थे, परंतु गढ़ी के भीतर से चहल-पहल की आवाज़ सुनाई पड़ रही थी। थोड़ी ही दूर पर बसे हुए गाँव से धुआँ की गुंज उठ-उठकर धीरे-धीरे आकाश में पतली पड़ती जाती थी। सूर्य का प्रकाश न था और न थी तारों की रोशनी। किरणों की चकाचौंध और तारों की झिलमिलाहट के बीच का समय निविड़ अंधकार का होता है। आँखों को टटोलने पर भी कठिनता से कुछ सूझता है। इस समय बतवा की धार भरतपुरा के सूँडा की घनी वृक्षावलि की अस्पष्ट रेखा और सामने गढ़ी का बंद द्वार, बस यही कुछ-कुछ दिखता था।

किसी ने फाटक के बुर्ज की खिड़की में से कर्कश स्वर में कहा—"को आय रे, बोल, नईं तो तीर छूटो।"

श्यामकाय सवार ने दुगुने कर्कश स्वर में कहा—"फाटक खोल जल्दी, दिन-भर के थके हुए हैं।"

खिड़की में से फिर उसी ने कहा—"मैं हों अर्जुन, जानत कै नईं। कै महाभारत में अर्जुन हते, कै अब मैं हों। 'फाटक खोल जल्दी!' जैसे इनके बापई को दओ खात होउँ।"

पांडे को बड़े ज़ोर की हँसी आई। यदि इस समय प्रकाश होता, तो देख लिया जाता कि पांडे के बहुत सुंदर दाँत मोतियों को लजाते थे और होठों के कानों पर ऐसे वक्र अर्द्धवृत्त बनते थे कि जैसे और कहीं देखने में नहीं आते। श्यामकाय सवार ने उनको और किसी समय देखा था। पांडे की पंचम स्वर की हँसी में कुछ छूत-सी थी। श्यामकाय सवार को भी हँसी आ गई। उसको दबाकर उसने फिर अपने कंठ को कर्कश करने की चेष्टा की। कंठ कुछ कर्कश हुआ। पांडे अब भी थोड़ा-थोड़ा हँस रहा था, परंतु उसकी हँसी का स्वर उतना ही सुनाई पड़ता था, जितना वीणा की झंकार का अंतिम विस्तार। इसे पांडे के साथी ने सुन लिया। इस-लिये कंठ की कर्कशता बीच में टूट गई। कंठ की गति को हास की अंतिम कल्लोल ने चेष्टा करने पर भी अर्द्ध कर्कश बनने दिया था, उधर

पांडे की अमुक्त हँसी ने कुमुक को पहुँचा दी, तो इस सवार का गला बेतहाशा फैल गया।

बोला—"अबे लुच्चे खोल दे, बहुत देर हो गई है।"

बुर्ज से किसी ने उसी स्वर में कहा—"लो बेटा, अब सँभर के बोलियो। नई तो जो मोंमें कुवच कै रहे, ऊमैं दो ठौरैं तीर हम ठूँस देयँ। भला ब्यार खों साजे रैहैं।"

पांडे ने कहा—"कुँअर, यह चंदेले का चेला है। ऐसे नहीं खोलेगा। इसको नाम बतलाइए।"

बुर्जवाले ने यह बात सुन ली। बोला—"ओहो, एकजे पिन्न-पिन्न बोले। नाँव बताओ, नाँव! नाँन बड़े दर्सन छोटे। डिल्ली में राय पिथौरा आए हैं जू खोलत हों मैं फाटक, सो आकें लड़ुआ खा लियो। लो, अब टरजाओ। गाँव मेंढ़ लो डेरा काऊके इते। भोर आइयो, तब मिल हैं साँवत। भैरों को कौल जो अब तुमने लप्प-लुप्प करी, तो फोरइ देउँ। अर्जुन को बान खाकें कोऊ राम को नाँव लों नई लै पाउत।"

पांडे ने कहा—"यह हैं महाराज हुरमतसिंह के कुमार नागदेव और हम हैं पांडेजी के लड़के अग्निदत्त। अबे बेईमान, अब तो खोलेगा फाटक। ठंडी हवा के मारे दम निकला जाता है।"

बुर्ज पर से ढीठ अर्जुन बोला—"सावंत से पूँछ कें अबै हाल आओ मैं।"

नागदेव ने कहा—"यह चंदेला भी पक्का सुअर है। कैसे-कैसे चांडालों को पहरे पर रख छोड़ा है कि नाम बता देने पर भी फाटक नहीं खोलता है। जी चाहता है कि साले की इस झोपड़ी में आग लगा दूँ।" पिछली बात नागदेव ने कुछ धीरे से कही। पांडे ने और भी धीरे से उत्तर दिया—"न तो यह झोपड़ा है, और न इसमें आप इच्छा होते हुए भी आग लगा सकते हैं। यदि बात सच्ची है, तो सोहनपाल इसी

गढ़ी में किसी के साथ ठहरा हुआ है। इसके सिवा और शिष्टाचार में अपना कुछ बिगड़ेगा नहीं।"

इस उपदेश की किसी और अवसर पर शायद दिल्लगी उड़ाई जाती, परंतु इस मौके पर नाग को यह सलाह समझ में आ गई।

थोड़ी देर में फाटक खुल गया। आठ-दस आदमी मशाल लिए हुए निकल आए। आगे-आगे हथियारों से सजा हुआ ३०-३५ वर्ष का एक रोबीला सैनिक था। मशालों के लहराते हुए तीव्र प्रकाश में इस व्यक्ति की लंबी बाँकी नाक, भरा हुआ साफ़ चेहरा, पतले और दृढ़ होंठ, तनी हुई मूछें, बहुत बड़ी और दृढ़ आँखें, नाटा क़द, मोटी गर्दन और बलिष्ठ देह स्पष्ट और तुरंत दिखलाई पड़ गईं। ठीक पीछे कभी मशालों के प्रकाश में और कभी अपने सरदार की छाया में छिपता-सा चला आता हुआ बुर्जवाला वह व्यक्ति था, जिसने अपना नाम बड़े दंभ के साथ अर्जुन बतलाया था। इसका रंग पक्का श्याम, शरीर वट-वृक्ष की तरह लंबा-चौड़ा, आँखें काफ़ी बड़ी और माथा खुला हुआ, नाक लंबी और सिर पर कुछ चिपटी, दाहने गाल में बहुत परिश्रम और बहुत हँसने के अभ्यास की एक लकीर। आयु इसकी चालीस-बयालीस वर्ष के लगभग होगी। मूछ में एक-आध सफ़ेद बाल था, परंतु देह-भर से बल टपका पड़ता था। इसकी आँखें इस समय नीचे को थीं, विनम्र और विनीत भाव को अपनी प्रकृति के प्रतिकूल धारण करने की चेष्टा कर रहा था। मोटे-मोटे होंठों पर भयभीत होने की मुद्रा लगा रक्खी थी, परंतु उनकी तली में हँसी का तूफ़ान उठ-उठकर रह जाता था। मालूम होता था कि वह अपनी प्रश्नोत्तरी का दीर्घ प्रायश्चित्त करने की तैयारी कर रहा है। परंतु उसका चालीस-बयालीस वर्ष का अभ्यास उसे विवश किए हुए था।

इस दल के सरदार ने फाटक से निकलते ही कहा—"अन्नदाता को हरी चंदेले का जुहार स्वीकार हो।"

नागदेव ने मुस्किराकर उत्तर दिया—"रावजी प्रणाम करता हूँ—पहरा तो आपका बड़ा कड़ा है।"

हरी—"अन्नदाता, आजकल का समय कुछ कठिन है। सूचना मिली है कि कालपी में तुर्क और पठान इकट्ठे होकर जुझौति पर धावा करने का मन कर रहे हैं।"

नागदेव—"यह तो कोई नई सूचना नहीं है। हम लोगों को कुंडार में यह भी मालूम हुआ कि दिल्लीशाह बलबन की दो सेनाओं को लखनौती के मुसलमान सूबेदार तुग़रिल ने विध्वंस कर डाला है; और वह बाग़ी अपना राज्य बंगाल में अलग स्थापित करने की चेष्टा में है।"

हरी चंदेले ने पूर्ववत् दृढ़ता के साथ कहना आरंभ किया—"नया समाचार यह है कि कालपी का सूबेदार इस समय इस दुविधा में है कि दिल्लीशाह कि फ़ौज का साथ दूँ या स्वयं कालपी का मालिक बन बैठूँ, क्योंकि सुना गया है कि बलबन स्वयं सेना लेकर लखनौती की ओर जा रहा है। कालपी दो घोड़ों पर सवार होने जा रही है। वह चाहती है कि उधर बलबन को यह विश्वास रहे कि विश्वासघात नहीं किया जा रहा है और इधर यह महत्त्वाकांक्षा है कि यदि बलबन भी तुग़रिल से लड़ाई में हार गया, तो दिल्ली चाहे जिसके पास जाय, कालपी तो अपने हाथ में बनी रहे। इसलिये कालपी का जमाव मुझे खुटके में डाले हुए है। परंतु अन्नदाता को यहाँ टंड लग रही होगी। भीतर चलें। भीतर और भी मिहमान हैं, जिनका समाचार मैंने यथासमय पहुँचा दिया था।"

पीछे अग्निदत्त खड़ा हुआ था। उसको देखकर चंदेले ने हाथ जोड़कर कहा—"पांडेजी, प्रणाम।"

अग्निदत्त ने सम्राटों-जैसी मुस्किराहट के साथ आशीर्वाद कहा और नागदेव को कटुता के जाल में गिरने से बचाने और चंदेले के अतिथि-सत्कार को अक्षुण्ण बनाए रखने की इच्छा से प्रेरित होकर बोला—

"आपका जैसा पहरेदार है रावजी, उससे भरतपुरा को किसी आक्रमण की चिंता न रहनी चाहिए।"

फाटक बंद करके समय या असमय पाकर अर्जुन नागदेव के सामने अपने हाथों के बल साष्टांग गिरने का उपाय करके बड़ी ज़ोर से, परंतु सयत्न धड़ाम से पृथ्वी पर जा रहा। नागदेव हँसकर बोला—"उठ-उठ, क्षमा कर दिया। तुम्हारा-जैसा वीर मुझे पसंद है। परंतु तुम्हारी-जैसी जीभ मुझे पसंद नहीं है। रुदन का रुद्ध गला बनाकर अर्जुन बोला—"मोसों चूक भई। छिमा करी जाय।" और मुँह पर दोनो हाथ रखकर मशालों की रोशनी से चेहरे को छिपाने की दृढ़ कामना करता हुआ अँधेरे की ओर खिसक गया। पांडे की तीक्ष्ण दृष्टि ने उसको मोड़ लेते समय देख लिया, रुद्धगले का स्वर तो सबने सुन लिया, परंतु हास-विस्तारित होंठ और हँसती हुई कनखियाँ पांडे ने देखीं। पांडे भी मुस्किरा उठा। उसने सोचा—यह बड़ा पाजी मालूम होता है।

भरतपुरा की गढ़ी

गढ़ी तीन कोसों पर बनी हुई थी और उसमें चार आँगन थे। फाटक के पासवाला आँगन सबसे बड़ा था और उसमें पाँच सौ सैनिक हाज़िरी दे सकते थे। यह आँगन नदी की ओर गोलाई में था और एक ऊँची दीवार और दो बुर्ज इसकी रक्षा किए हुए थे। बाक़ी पश्चिमीय, उत्तरीय और पश्चिम-दक्षिणीय दीवार कहीं गोल और कहीं तिरछी थी, और इससे सटे हुए सीधे-सादे और पुष्ट कोठे-अटारियाँ और उनके आँगन थे। तीनों खंडों के दक्षिण और पूर्व की ओर मुहाने थे। पहला खंड फाटक के निकट था। यह छोटा था। इसमें हरी चंदेल सकुटुंब रहता था। दूसरे खंड में रसद तथा हथियार रखने और सैनिकों के रहने का स्थान था। तीसरे खंड में केवल सैनिकों के रहने की जगह थी। इस खंड के अगले हिस्से में इस समय कुछ सैनिक थे। और शेष में हरी चंदेले के मिहमान ठहरे हुए थे। दीवार से लगा हुआ तालाब था, जिसमें प्रायः पानी भरा रहता था। इसी के पास धीवरों के घर थे और उनसे कुछ दूर उत्तर और पश्चिम दिशा की ओर भरतपुरा गाँव। हरी चंदेल ने अपने निवास-स्थान के पास एक कोठे में पांडे और कुमार का डेरा डलवा दिया।

हरी ने उपयुक्त अवसर पर नागदेव से कहा—'अन्नदाता भोजन के बाद विश्राम करेंगे या कुछ राज-वार्ता सुनने का कष्ट उठावेंगे।"

नाग बोला—"राज-वार्ता अवश्य सुनूँगा। शीघ्र बैठक हो।"

नाग स्वभाव का उद्धत था। बाप के लाड़-प्यार में उसके उद्धतपने को कर्कशता का रूप प्राप्त हो चला था। वह दिलेर था और तलवार चलाने के अवसर का स्वागत किया करता था। सहसाप्रवर्ती था, कष्टसहिष्णु

और हठी। कटु परिहास करना उसको बहुत पसंद था, परंतु वार के उत्तर में वार खाने से वह नहीं घबराता था। अभिमानी था और उदार। प्रयोजन-सिद्धि के लिये प्रत्येक प्रकार के उपाय काम में लाने के विरुद्ध न था, परंतु क्रूरता उसके स्वभाव में न थी। अपने को जाति में बहुत ऊँचा समझता था, परंतु दूसरों का जाति-गर्व कठिनता के साथ सह सकता था। कभी-कभी सुरा का सेवन करता था, क्योंकि उसकी कल्पना थी कि शक्ति या भैरव के पूजकों को सुरा प्रसाद-रूप में मिलती है और उनके लिये उसका सेवन करना पूजा के समान ही पवित्र कार्य है।

सुरा के प्रसाद पान के अनंतर उसका मन रसमय हो उठता था, परंतु वैसे वह रूखा था। अग्निदत्त और नाग ने साथ-साथ पढ़ना आरंभ किया और साथ-ही-साथ बंद किया।

अग्निदत्त तबियत का रूखा न था। रसिक था। परंतु स्वभाव में शिथिलता बिलकुल न थी। निश्चय धैर्य के साथ करता था, परंतु निश्चय कर लेने के बाद फिर ढुलमुल होना नहीं जानता था। शांति के समय में उसको अपने भाषण पर बड़ा अधिकार रहता था, परंतु क्रुद्ध होने पर छुरी का उत्तर तलवार से देता था। वीर था, धीर था। अपमान राई-रत्ती-भर सहन नहीं कर सकता था। दयावान् था और सुशील, उन्मादक प्रेम का उपासक था और बहुत उष्ण प्रकृति, जाति-पाँति के ऊँच-नीच को बिलकुल अवहेलना की दृष्टि से देखता था। शरीर का हलका था, और बहुत देर तक परिश्रम करने का बल रखता था, परंतु करता वही काम था, जिसमें उसका मन अपने आप लगे, पर-वश कोई काम न करता था। महत्त्वाकांक्षी था और अपना जौहर प्रकट करने को सदा उत्सुक। मनोभाव को छिपाने का इस थोड़ी-सी अवस्था में उसने आश्चर्यमय अभ्यास कर लिया था, परंतु अपने मन के सिवा और किसी की आज्ञा का पालन करने में उसको असह्य कष्ट होता था। जिस समय वह तलवार या तीर चलाता था, बड़े पुराने-पुराने

योधा दाँत-तले उँगली दबा लेते थे। जुझौति की पुरानी वीर-गाथाओं को वह अपनी वंश-विरुदावली समझता था। वह कुंडार के विष्णुदत्त पांडे का पुत्र था, जो कुंडार के राजा का साहूकार था। नाग का मित्र था, परंतु जहाँ उसके किसी अंतर्तम गूढ़तम भाव की मित्रता के साथ टक्कर हो जाती थी, वहाँ वह मित्रता को एक ओर रख देता था।

भोजन करने के पश्चात् चंदेल की वादा की हुई बैठक हुई।

चंदेल अभी कोठे में नहीं आया था कि नाग ने अग्निदत्त से कहा—पांडे, मेरा जी न-जाने क्यों उथल-पुथल-सा कर रहा है। जी में न-जाने क्यों कुछ ममोस-सी उठ रही है। मोहनपाल यदि युद्ध करने के लिये आए होते, तो कोई चिंता जी में न उठती। जी में कुछ एक नई-सी व्याधि का उत्पात जब से सुना तभी से है, परंतु आज विशेष रूप से हृदय अस्त-व्यस्त-सा हुआ जा रहा है। तुम्हें इस तरह की व्याकुलता का कभी भान हुआ है?"

पांडे चमत्कृत हो उठा। मानों फोड़े में किसी ने काँटा चुभो दिया हो। उसने अँगड़ाई लेकर छिपे-लुके कनखियों से कुंडार की ओर देखा और ज़रा हँसते हुए बोला—"यह व्याकुलता तो सभी को कभी-न-कभी सताती है; परंतु इस समय तो मुझको आपकी व्याकुलता की दवा की खोज करनी है। जब मेरे ऊपर इस व्याकुलता का आक्रमण होगा, तब आपकी सहायता की आशा और प्रतीक्षा करूँगा।"

"भैरव की सौगंध, मैं तुम्हारी प्राण-पण से सहायता करूँगा।" बड़े आवेश के साथ खंगार कुमार ने कहा।

"काम पड़ने पर अपनी प्रतिज्ञा को भूल न जाइएगा।" अग्निदत्त एक और अँगड़ाई लेकर बोला।

नाग ने मुट्ठी बाँधकर कहा—"भूल जाऊँ, तो खंगार ठाकुर न कहना, चमार कहना।"

अग्निदत्त आँखें मलकर कुछ आतुरता के साथ बोला—"बस, बस।

आगे कुछ और मत कहिए, मुझे आपकी बात का पूरा विश्वास है। अब वर्तमान विषय की एक कठिनाई पर विचार कर लीजिए। सोहनपाल की लड़की यदि वैसी सुंदर और कोमलांगी न हुई, जैसी कि उसके रूप की कीर्ति हम लोगों ने सुनी है, तो?"

नाग ने दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया—"यह असंभव है। इस विषय में कीर्ति कभी झूठ नहीं बोलती। वह सुंदर है और........."

नागदेव लज्जा से कुछ सिकुड़ गया और खिड़की की ओर देखने लगा। अग्निदत्त को मनुष्य-स्वभाव की बहुत कुछ परख थी। उसने ज़रा थमकर कहा—"एक कठिनाई और है, और वह कदाचित् विघ्न-बाधा उपस्थित करे।"

नाग कुछ भयभीत होकर बोला—"वह क्या है?"

अग्निदत्त ने फिर थोड़ा-सा थमकर कहा—"सोहनपाल जाति-पाँति का बखेड़ा उपस्थित करेगा।"

नाग ने चोट-सी खाई। वह कुछ तीव्रता के साथ बोला—"मैं खंगार ठाकुर हूँ। वह भी हमसे कुछ ऊँचा नहीं है। मैंने तुम्हारे पिता से पता लगाया है कि सोहनपाल की नसों में भी वही रक्त बहता है, जो मेरी नसों में। बतलाओ, हम लोग सोहनपाल से किस बात में कम हैं?"

"जाति-पाँति के विषय में आप मेरे विचार जानते हैं। मैं तो ब्राह्मणों को भी आपसे ऊँचा नहीं मानता। मैं तो कहता हूँ कि ब्राह्मणों में और आपमें भी संबंध होने लगे, तो मैं सबसे पहले ऐसे संबंध का स्वागत करने के लिये तैयार हूँ।" इतना कहकर अग्निदत्त कुछ सोचने लगा। एक विचार एकाएक नाग के जी में उठा। उसने सोचा—"अग्निदत्त की बहन अत्यंत रूपवती और भोली-भाली है। मैं उसको अपनी बहन से बढ़कर मानता हूँ। कहीं अग्निदत्त की इस बात के गर्भ में यह प्रस्ताव तो नहीं छिपा है कि मैं उसके साथ विवाह-संबंध स्थापित करूँ? यह असंभव है। यह बात उसके और मेरे दोनो के स्वाभिमान के प्रतिकूल है

और फिर जिसको सदा बहन करके माना है, उसके विषय में तो ऐसी कल्पना भी नहीं की जा सकती है। परंतु पांडे की बात की अंतर्दरी में कुछ रहस्य अवश्य है।" नाग ने अपना कंठ बहुत कोमल करके कहा—"तुम्हारी बात का रहस्य पांडे महाराज, कुछ समझ में नहीं आया।"

पांडे को नाग की इस साधारण-सी बात में किसी संकेत का, किसी अर्द्धस्फुट आकांक्षा का, किसी प्रचंड, दुःखांत प्रेम-लीला का बीभत्स आभास जान पड़ा। आँखें चढ़ गईं और होंठ काँपने लगा। उसने आँख गड़ाकर नागदेव की ओर देखा। वहाँ उसको कोई विशेष गूढ़ता नहीं दिखलाई पड़ी। अपनी उत्तेजना पर स्वयं लज्जित-सा हो गया। एक क्षण में शांति ग्रहण कर उसने नाग को उत्तर दिया—"मेरा तात्पर्य यह है कि यदि एक जातिवाला दूसरी जाति में विवाह-संबंध करना चाहे, तो मज़े में करे। जैसे यदि ब्राह्मण किसी खंगार ठकुराइन के साथ विवाह करना चाहे, तो मैं खंगार ठाकुरों के घर कच्ची रसोई खाने के लिये तैयार हो जाऊँगा, और यदि कोई व्यक्ति यह कहने का साहस करे कि मैं कुजाति हूँ, तो मैं अपनी इस तलवार की होड़ लगाकर ऐसे व्यक्ति के साथ वज्र-विवाद करके उसको यमलोक-यात्रा का रसास्वादन करा दूँ। जहाँ तक मेरे साथ इस विषय का संबंध है, वहाँ तक सोहनपाल की कुमारी का विवाह-संबंध, यदि वह रूपवती है, तो आपके साथ होने में मंगल-ही-मंगल है। और, जैसे मुझसे बनेगा, वैसे मैं इस शुभ कार्य को सिद्ध करके कर दूँगा। परंतु अभी सोहनपाल और उसके संगियों के विचारों का कूत लगाना है।"

अग्निदत्त की बात के पहले के भाग के उत्तर में एक कटूक्ति नाग के जी में उठी, परंतु उसकी बात के पिछले भाग ने उसके साहस को बुझा दिया। कुछ दूर से पैरों की आहट पाकर दोनो ने उसी ओर ध्यान दिया।

कुछ क्षण बाद हरी चंदेल और अर्जुन आए। अर्जुन चंदेल के पीछे-पीछे छाया की तरह आया।

नाग ने हँसकर कहा—"क्यों भाई अर्जुन, पहरा छोड़कर क्यों भाग आए हो?"

अर्जुन के मुँह पर अब हँसी न थी। परंतु मुख-मुद्रा से ऐसा प्रकट होता था कि वह परिहास के किसी विषय की खोज में है। यत्न के साथ मुँह बंद रखने की चेष्टा में वह कुछ भयानक-सा मालूम होता था। उत्तर देना ही चाहता था कि चंदेल बोला—"अन्नदाता, पहरा बदल दिया गया है। यह मेरे साथ यों ही चला आया है।"

नाग को अर्जुन की ढिठाई और चंदेले की पृष्ठ-पोषकता पर दया आई। उसने सोचा—"वाह, क्या संगति है!" बोला—"परंतु आप तो कहते थे कि राज वार्ता का प्रसंग होगा।" और उसने प्रभुत्वमय दृष्टि के साथ अर्जुन की ओर देखा।

हरी ने कहा—"यह विश्वस्त सेवक है। आप इसका हर समय भरोसा कर सकते हैं। परंतु इस समय यहाँ इसके रहने की ज़रूरत नहीं है।" अर्जुन को चंदेले ने कोठरी छोड़ देने का इशारा किया। अर्जुन तुरंत बाहर चला गया।

नाग ने पूछा—"यह कौन जाति का है? क्या यह भी चंदेल-वंश की शोभा है?"

अपनी हाल की बीती का खयाल करके राजकुमार के होठों के एक कोने पर मुस्किराहट की एक बहुत बारीक रेखा खिंच गई, परंतु हरी ने उसको देख लिया। दूसरी ओर मुँह करके ज़रा लंबी श्वास ली और बोला—"चंदेलों के वंश की शोभा अब कोई कहीं नहीं है। अन्नदाता, यह चंदेल नहीं, जाति का कुम्हार है।"

नाग ने आश्चर्य के साथ कहा—"कुम्हार! कुम्हार और सिपहगरी! यह जंतु आपने कहाँ से पकड़ा?"

चंदेल स्वभाव का शिष्ट और शांत था, परंतु सैनिक था और चंदेल। बोला—"जहाँ अन्नदाता और लोग बसते हैं, वहीं से इसका भी निकास

है । कुम्हार है और सिपाही है । आर्जव और दिलेरी किसी विशेष जाति का ही लक्षण नहीं है, सम्राट् शालिवाहन भी तो कुम्हार ही थे । आप इसका सदा भरोसा कर सकते हैं ।"

नाग की भौंह के बाल कुछ खड़े-से हो गए । परंतु बात युक्ति-युक्त थी। और, जिस राजवार्ता के सुनाने का चंदेल ने वचन दिया था, और जिसके लिये वह इस समय आया था, उसकी प्रतीक्षा ने नाग के सुलभ कोप को जाग्रत् नहीं होने दिया । नाग ने हरी को अपने पास कुछ अधिक सौजन्य के साथ बिठला लिया । खिड़की में होकर ठंडी हवा आ रही थी, परंतु गरम कपड़ों के कारण दीप्तिदायक मालूम होती थी । रात कुछ अधिक बीत गई थी । चंद्रमा का उदय हो रहा था । खिड़की में होकर नदी की धार, वृक्षों के लंबे समूह की अनवरत लंबी श्याम रेखा और उसके पीछे ऊँची-नीची पहाड़ियों की पाँतें और दो पहाड़ियों की टूट में होकर कुंडार-गढ़ की झाईं-सी दिखलाई पड़ी । अग्निदत्त इसी अस्पष्ट दृश्य में कुछ टटोलने की चेष्टा-सी कर रहा था कि नाग ने कहा—"रावजी जो महत्त्व-पूर्ण कथा कहनेवाले हैं, उसको पांडेजी, ज़रा ध्यान से सुनिए ।"

चंदेल ने कुछ संकोच के साथ अल्प-वयस्क पांडे को देखकर कहा—"आरंभ करूँ ?"

नाग—"हाँ, तुरंत । आप पूरी बात बेखटके कह सकते हैं ।" हँसकर बोला—"यह मेरे गुरु हैं ।"

हरी चंदेल ने कहना आरंभ किया—"दिल्ली का बादशाह बलबन इस समय बंगाल की ओर गया हुआ है । वह तुग़रिल को कुचलने के लिये कुछ उठा नहीं रक्खेगा । कालपी के तुर्क जुझौति को भक्षण करने के विचार में हैं, ऊपर से अवश्य कोई बात अभी ऐसी प्रकट नहीं कर रहे हैं, जिससे तुरंत युद्ध की संभावना की जा सके, परंतु यदि बुड्ढा पिशाच बलबन तुग़रिल के मुक़ाबले में हार गया, तो ये लोग हमारे ऊपर आक्र-

मण करने की चेष्टा करेंगे; और यदि जीत गया, तो कदाचित् उस समय तक शांत रहेंगे, जब तक वह जीता है।"

नाग ने कहा—"परंतु रावजी, हम लोग, दिल्ली के साथ वैर नहीं बिसाहना चाहते। आपको शायद यह नहीं मालूम है कि इस समय बलबन के साथ हमारा संबंध संधि के आधार पर है।"

हरी ने उत्तर दिया—"यह बात मुझको मालूम है अन्नदाता। इसीलिये मैं कहता हूँ कि बलबन के हार जाने या मर जाने पर कालपी के मुसलमान हम लोगों से उसी अधीनता की आशा करेंगे, जो इस समय बलबन हम लोगों को विवश करके हमसे प्राप्त कर रहा है। जुझौति में इस समय एक भाव लहर मार रहा है कि दिल्ली का अब चाहे जो कोई अधिकारी हो, हम लोग दिल्ली के मुसलमानों की या कहीं के भी मुसलमानों की सत्ता स्वीकार नहीं करेंगे।"

नाग किसी विचार में डूब गया। अग्निदत्त ने कहा—"सामंतजी, यह आप ठीक कह रहे हैं। बलबन के समाप्त होते ही कुंडार जुझौति की स्वाधीनता के लिये प्रचंड प्रयत्न करेगा।" और उस युवक के हलके काले नेत्र एक क्षण के लिये अधिक काले जान पड़े।

चंदेल ने बिना किसी उत्साह के परंतु दृढ़ता के साथ कहा—"कुंडार इस समय जुझौति में सबसे अधिक प्रबल शक्ति है, परंतु और भी बहुत-सी छोटी-छोटी शक्तियाँ इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं, जो कुंडार की बहुत ही साधारण अधीनता को मानती हैं। जो ठाकुर अपने को बुंदेला कहते हैं, उनका और कुंडार का संबंध और भी बहुत क्षीण है। मेरे पड़ोस का दलपति बुंदेला, जो दबरा में एक छोटी-सी गढ़ी-मात्र बनाए बैठा है, इतना घमंडी है कि जितना अन्नदाता में भी अभिमान न होगा।"

नाग ने जैसे किसी स्वप्न से जागकर उत्साह-पूर्ण स्वर में कहा—"कुंडार-बुंदेला संबंध को मैं बहुत दृढ़ बनाना चाहता हूँ।"

चंदेल को मानो ईप्सित अवसर मिल गया हो। बोला—"अन्नदाता, यही आज की वार्ता का प्रसंग भी है।"

अग्निदत्त ने कुछ आतुरता के साथ कहा—"क्षमा कीजिएगा सामंतजी, एक बात मैं पूछना चाहता हूँ। क्या आपका पड़ोसी दलपति अपनी तलवार का भी बहुत घमंड करता है?"

चंदेले ने उत्तर दिया—"कुछ न पूछिए, बहुत। परंतु आवश्यकता पड़ने पर मैं उसको ठीक कर दूँगा।"

अग्निदत्त ने मुस्किराकर कहा—"आप जब ठीक करेंगे, तब करेंगे। मैं आगामी अक्षय तृतीया के दिन दंगल में उसको पहले ललकारूँगा।" एकाएक मुस्किराहट को दबाकर अग्निदत्त ने सामंत हरी से अपनी कथा कहने की प्रार्थना की।

हरी ने फिर कहना आरंभ किया—"दिल्ली के साथ संबंध बलबन के निपटते ही छिन्न हो जायगा। कालपी के या कहीं-न-कहीं के मुसलमानों से हमको लड़ना पड़ेगा। जुझौति के इधर-उधर चारो ओर समर की आग सुलग रही है। दिल्ली के साथ संबंध रखना अब हमारे लिये हितकर भी न होगा। यदि हम दिल्ली की अधीनता निबाहेंगे, तो किसी-न-किसी के साथ टक्कर लेनी पड़ेगी और न निबाहेंगे, तो लेनी पड़ेगी......"

नाग ने रोककर और कुछ अधीर होकर कहा—"आप बुंदेलों की कुछ चर्चा छेड़ रहे थे?"

हरी—"हाँ अन्नदाता, वही कहता हूँ। ब्योना के बुंदेले कुंडार के जागीरदार हैं, परंतु इस तरह महाराज को जुहार करते हैं, जैसे उन पर कोई बोझ पड़ गया हो। उनके कुटुंबी माहौनी के वीरपाल अपने को बड़ा प्रभावशाली समझते हैं और प्रायः कुंडार आने का कष्ट भी नहीं उठाते। आते भी हैं, तो इतना गर्व दिखलाते हैं कि उनका सिर आकाश से बातें करने लगता है। वीरपाल का मातुल कुंडारगढ़ का जागीरदार मुकुटमणि चौहान कुंडार की चार सहस्र सेना का नायक है, परंतु दशहरे

के समय जुहार के लिये कभी पूरी सेना को लाते हुए नहीं देखा गया। कछवाहे, पड़िहार, पँवार, सब इसी तरह का शिथिल संबंध स्थापित किए हुए हैं। करी का पुण्यपाल तो कुंडार की परवा भी नहीं करता और यह कहते हुए सुना गया है कि कुंडार का राज्य तो कुंडारगढ़ के भीतर ही सीमाबद्ध है। सोहनपाल जो अर्जुनपाल के कुँवर और वीरपाल के भाई हैं, अवश्य कुंडार के भक्त हैं।"

नाग के चेहरे पर घटते हुए ध्यान के चिह्न दूर हो गए और उत्साह तथा उत्सुकता के लक्षण दिखलाई पड़ने लगे। नाग ने पूछा—"यदि बुंदेलों की भक्ति हमारे प्रति ऐसी ही है, जैसी आपने वर्णन की है, तो सोहनपाल के विशेष भक्त होने का क्या कारण होगा, रावजी?"

चंदेल ने उत्तर दिया—"मैं अभी बिनती करूँगा। अर्जुनपाल ने तीन विवाह किए थे। पहली पत्नी कुठारगढ़ के मुकुटमणि चौहान की लड़की थी। दूसरी पत्नी ग्वालियर के तोमर राजा हरीसिंह की पुत्री है और तीसरी बीरल के ईश्वरसिंह धंधेरे की पुत्री है। राजा हरीसिंह की लड़की के लड़के सोहनपाल हैं और ईश्वरसिंह धंधेरे की लड़की के लड़के वीरपाल और दयापाल हैं। अर्जुनपाल ने थोड़े-से गाँव तो सोहनपाल को दिए हैं और शेष माहौनी की भूमि वीरपाल और दयापाल को दे दी है। जैसा बर्ताव इनके परदादे जगदास पंचम के साथ उनके बाप वीरभद्र ने किया था, वैसा ही बर्ताव अर्जुनपाल ने सोहनपाल के साथ किया है और सोहनपाल जगदास की भाँति ही दुःखी हैं। वह आपसे सहायता की भिक्षा के लिये आए हैं।"

"हम लोगों को न्याय का साथ देना चाहिए।" नाग ने पांडे की स्वीकृति के लिये कहा।

अग्निदत्त ने उत्तर दिया—"परंतु वीरपाल आपका जागीरदार है।"

नाग ने कुछ उष्णता के साथ कहा—"इसीलिये तो कुंडार को हस्तक्षेप करने का अधिकार है।"

अग्निदत्त ने चंदेल से पूछा—"सोहनपाल स्वयं कितनी सेना मैदान में ला सकते हैं ?"

चंदेल ने उत्तर दिया—"पाँच सौ सैनिक, परंतु इस समय उनके पास पंद्रह आदमी हैं।"

नाग ने कुछ हिचकते हुए पूछा—"क्या सब सिपाही हैं ?"

चंदेल ने उत्तर में कहा—"सब सिपाही है। सोहनपाल इस समय मारे-मारे-से भटक रहे हैं। उनका कुटुंब भी इस समय गढ़ी में ही है।"

अग्निदत्त ने साहस के साथ प्रश्न किया—"खेद की बात है, परंतु रावजी, कुटुंब में कौन-कौन है ?"

चंदेल ने उत्तर दिया—"उनका लड़का सहजेंद्र है, लड़की हेमवती और उनकी पत्नी है।"

नाग को इस कुटुंब का और विशेष परिचय पाने के लिये मन में बड़ा कौतूहल था, क्योंकि इतना तो उसको भी मालूम हो गया था, परंतु विशेष परिचय प्राप्त होने की आशा में वह धैर्य के साथ इस नीरस कथा को सुनता चला गया था। वह किसी तरह और कुछ जानने के लिये व्यग्र हो रहा था, परंतु कथेरे को इस व्यग्रता का खयाल ही क्या हो सकता था ? अग्निदत्त जानता था। उसने सहज में ही कहा—"भगवान् विपद् किसी को न दे। पत्नी और पुत्री, दोनो सुकुमारी होंगी, और यात्रा का कष्ट और परिस्थिति की चिंता उनको बहुत क्लेश देती होगी। ब्याह तो लड़की का हुआ न होगा ?" और खिड़की की ओर मुँह फेर लिया।

हरी ने सरलता के साथ उत्तर दिया—"कन्या कुमारी है, लड़का भी अविवाहित है, कन्या की आयु भी कुछ अधिक हो गई है।"

अग्निदत्त ने और भी दृढ़ता के साथ पूछा—"क्या रूप-गुण में कुछ हीन है, जो योग्य वर उसको अभी तक नहीं मिला ?"

इतने में खिड़की से हवा का एक तेज़ झोंका आया, और ताक में रक्खा हुआ मीठे तेल और मोटी बत्ती का दीपक बुझ गया। हरी ने अर्जुन को

पुकारा। उसने तुरंत बाहर से कहा—"आओ जू" और एक क्षण में आ गया।

चंदेल ने कहा—"दीपक शीघ्र जलाओ।"

नाग ने कुछ चकित होकर पूछा—"क्या यह द्वार के पास ही चिपका बैठा था?"

चंदेल ने उत्तर दिया—"कुछ हानि नहीं है, उस मूढ़ की समझ में एक शब्द भी न आया होगा।"

अर्जुन बुझे हुए दीपक को उठाकर चलने को ही था कि बोला—"नईजू, इत्ती तो मैं कै सकत कि बेटी कैं रूप छार-छार बरसत। गंगा सौं, रानी-सी लगत......"

चंदेल ने डपटकर कहा—"चुप बदमाश। दीपक जलाकर शीघ्र ले आ।" अर्जुन चुपचाप दीपक जलाने के लिये बाहर चला गया। चंदेल निस्तब्ध होकर रह गया। नाग ने हँसी को दबाया और अग्निदत्त खिल-खिलाकर हँस पड़ा। बोला—"रुष्ट मत होइए, मुँह-लगा सेवक है। उसकी जीभ और पहरा, दोनो मज़े के हैं।"

चंदेल को बड़ी लज्जा आई, परंतु उसने कहा कुछ नहीं। थोड़ी देर में अर्जुन दीपक ले आया।

चंदेल ने रुष्ट कंठ से कहा—"ख़बरदार! द्वार के पास मत बैठना, नहीं तो इतने कोड़े लगाऊँगा कि खाल टपक पड़ेगी।"

नाग ने बड़ी कृपालुता के साथ कहा—"जाने दीजिए, उसने कोई बड़ा अपराध नहीं किया है।"

अर्जुन वहाँ से खिसक गया। थोड़ी देर तक सब चुप रहे।

चंदेल ने कुछ रूखे गले से कहा—"मैंने ये सब बातें महाराज की सेवा में चिट्ठी द्वारा लिख भेजी थीं, और आपको मालूम ही होंगी। अब आप स्वयं यहाँ पधारे हैं। सोहनपाल से आपका साक्षात्कार होगा। जो कुछ आप उचित समझें, सोहनपाल को उत्तर दे दें। परंतु

मेरी बिनती है कि महाराज की सम्मति बिना आप कोई वचन न दें।"

नाग ने सुजनता के साथ उत्तर दिया—"नहीं रावजी, मैं अभी कोई वचन न दूँगा। परंतु मैं एकाध दिन आपकी गढ़ी में और ठहरना चाहता हूँ। आप कृपा कर कल महाराज की सेवा में संदेसा पहुँचा दें।"

हरी चंदेल ने हर्ष-पूर्वक कहा—"गढ़ी अन्नदाता की है। जी चाहे तब तक ठहरें। मैं संदेसा कल भेज दूँगा।"

आक्रमण

चंद्रमा आकाश में ज़्यादा चढ़ आया था। जंगल में पेड़ों के समूहों की स्वप्नमय अस्पष्टता लगभग ज्यों-की-त्यों थी। सामने भरतपुरा की सूंड़ा के पेड़ों की पाँति और पीछे पहाड़ों की ऊँची-नीची लकीर के बीच में केवल कुछ डरावना धुआँ-सा दिखलाई पड़ता था। गढ़ी के नीचे से बहनेवाली बेतवा पत्थरों से टकरा-टकराकर रात के सन्नाटे को हिलोर रही थी।

नागदेव सोहनपाल और उसके कुटुंब के विषय में और अधिक परिचय प्राप्त करने की उत्कंठा से व्याकुल हो रहा था, परंतु शिष्टाचार की सीमा का उत्क्रमण नहीं कर सका। चंदेल उठ बैठा। उसने जाते समय कहा—"राजकुमार के पास सबेरे पहर दिन चढ़े सोहनपाल जुहार करने आएँगे।"

नागदेव बोला—"मैं उनकी प्रतीक्षा करूँगा।"

चंदेल के चले जाने पर नाग ने अग्निदत्त से कहा—"पांडे, यदि भरतपुरा की इस छोटी-सी गढ़ी में देख-भाल न की, तो फिर शायद ही कभी अवसर मिले।"

अग्निदत्त को निद्रा आने लगी थी और उसको सोहनपाल के या उसके कुटुंब के विषय में इस समय कुछ और जानने का कोई प्रबल अनुराग न था। किसी तरह सोहनपाल की चर्चा से छुटकारा पाने की दृढ़ कामना से अग्निदत्त ने अनुरोध किया—"इस समय इस विषय पर अपने को अधिक व्यस्त मत कीजिए, कल कुछ यत्न सोचा जायगा।"

इसके पश्चात् अग्निदत्त सो गया, परंतु नाग को नींद नहीं आई। नाग ने निद्रा के आगमन को सहज करने के लिये दीपक बुझा दिया और इधर-उधर करवट बदलने लगा।

थोड़ी देर बाद कोठरी के पीछे उसको कुछ आहट मालूम पड़ी जैसे कोई सावधानी के साथ कुछ ठोंक रहा हो। थोड़ी देर तक नागदेव ने कुछ ध्यान नहीं दिया, परंतु ठोकर का शब्द अब कुछ अधिक तीव्र हो उठा और नाग ने खिड़की के पास जाकर कान लगाया। खिड़की दीवार के बिलकुल ऊपरी सिरे के ऊपर थी और दीवार के आसार के बहुत मोटे होने के कारण कोई उसमें से मुँह निकालकर नहीं देख सकता था। नाग को मालूम हुआ, जैसे कोई दीवार के नीचे धीरे-धीरे इधर-उधर पैर रख रहा हो, और कोई दीवार को तोड़ रहा हो या उसमें खूँटी गाड़ रहा हो। नाग को तुरंत प्रतीत हो गया कि इस तरह चुपचाप चलने-फिरनेवाला व्यक्ति गढ़ी का मित्र नहीं हो सकता। उसने तुरंत अपनी तीर-कमान सँभाली और तलवार ली। धीरे से जाकर अग्निदत्त को जगाया। अग्नि-दत्त ने बिस्तर में पड़े-पड़े धीरे से कहा—"आप विश्वास रखिए, सोहन-पाल की कुमारी सुंदर है। कल देख लेना।" और ज़ोर से ख़र्राटा भरने लगा। परंतु नाग ने हाथ पकड़कर उसे उठा दिया। कोठरी में अंधकार देखकर बहुत धीरे से उसने पूछा—"राजकुमार?" नाग ने कान में कहा—"हाँ, मैं ही हूँ। हथियार उठा लो। गढ़ी पर कोई आने की चेष्टा कर रहा है। सुनो।"

अग्निदत्त की सारी सुस्ती चल दी। झटपट उसने अपने हरबे ले लिए। बोला—"कोठरी की बग़ल में दीवार पर होकर बुर्ज़ में जाने के लिये सीढ़ी बनी है। यदि कोई आवेगा, तो वहीं होकर। मैं वहाँ जाकर खड़ा होता हूँ। तब तक आप चुपचाप चंदेल को सचेत कर दें। अभी बड़ा तमाशा होगा।"

नाग ने दृढ़ता के साथ कहा—"तुमको मैं वहाँ खड़ा न होने दूँगा। मैं वहाँ खड़ा होता हूँ, तुम चंदेल या चाहे जिसको सचेत कर दो।" और फिर कुढ़कर बोला—"चंदेले का पहरा सिर्फ़ हम लोगों को परेशान करने के लिये था। इस समय उसका पहरेदार मुर्दों से बाज़ी लगा रहा है। जाओ, देर न करो।"

अग्निदत्त परछाहीं की तरह चुपचाप वहाँ से फाटकवाले बुर्ज के पास पहुँचा। बुर्ज की अटारी पर चढ़कर खिड़की के पास, जहाँ से अर्जुन ने संध्या के समय दोनो को ललकारा था, पहरेदार पड़ा सो रहा था। पहरेदार को जगाया। उसने स्थिति को न समझ पाया, घबरा-सा गया। अग्निदत्त ने धीरे से कहा—"शोर मत करो। बाहर से कोई गढ़ी पर हमला करनेवाला है। सावधानी के साथ यहीं खड़े रहना। मैं तब तक सामंत को जगाता हूँ।"

पहरेदार ने पूछा—"आप कौन हैं?"

अग्निदत्त ने उत्तर दिया—"कोई सही, वैरी नहीं हूँ। क्या तुम अर्जुन नहीं हो?"

पहरेदार बोला—"जी नहीं, वह कुम्हार है, मैं अहीर हूँ।"

अग्निदत्त ने पहरेदार की डींग का कोई जवाब न देकर तेज़ी के साथ चंदेले के मकान की ओर डग बढ़ाया। दरवाज़े पर पहुँचा था कि ड्योढ़ी के अँधेरे में पड़ा हुआ एक आदमी तुरंत बैठ गया और उसने कमान पर तीर चलाने के लिये चढ़ाया। अग्निदत्त ने देख लिया। तुरंत बोला—"मैं हूँ कुंडार का पांडे, राजकुमार का साथी। सामंत को जल्दी जगाओ। गढ़ी पर हमला हो रहा है।"

वह आदमी बोला—"राय महाराज, बड़ी चूक हो गई होती। काय गढ़ी पै को आ रओ है?"

अग्निदत्त ने कुपित होकर, परंतु फुसफुसाहट में, कहा—"अबे गधे, सामंत को जगाकर सेना को सचेत कर, कहानियाँ मत पूछ। ख़बरदार! हल्ला मत करना, नहीं तो खेल बिगड़ जायगा।" यह व्यक्ति अर्जुन था। सामंत को जगाने के लिये भीतर जाते-जाते कहता गया—"मैं नईं आँऊँ गदा। और जो मोसैं गदा कहत ऊखों फिर कभऊँ ऊतर देऊँ।" अग्निदत्त ने बरबराहट को अपने हृदय पर अंकित नहीं होने दिया। उधर नाग नंगी तलवार लिए, परंतु विना कवच के, गढ़ी की दीवार पर

पहुँच गया। सैनिकों के चलने-फिरने के लिये दीवार की मुटाई पर रास्ता था और चौड़ाई के अंतिम सिरे पर एक दीवार कंगूरे और तिरछी खिड़कियोंदार थी। जिस ओर से शब्द आ रहा था, ठीक उसी ओर थोड़ी दूर चलकर नाग खड़ा हो गया। वह शब्द दीवार के सिरे तक आ चुका था। ऐसा जान पड़ता था, जैसे कोई कीलें ठोककर ऊपर चढ़ता चला आ रहा हो। इतने में पास ही कंगूरे के ऊपर एक सिर निकला जिस पर चाँदनी में झिलम का लोहा चमक गया। नाग को विश्वास हो गया कि कोई सैनिक है और शत्रु है। उसने फुर्ती से तलवार की मूठ को दाहने हाथ की दो उँगलियों में लटकाकर एक तीर माथे पर तानकर चलाया। तीर झिलम के लोहे से जाकर टकरा गया। उसने झिलम का छेदन नहीं किया, परंतु चोट ऐसी ज़ोरदार की कि उस सैनिक के पैरों ने अपना आसन छोड़ दिया और वह नीचे भरभराकर गिर पड़ा। एक आध सैनिक उसके नीचे की तरफ़ था। वह भी गिर पड़ा। नीचे कुछ लोगों में धीरे-धीरे बातचीत हुई, परंतु उसकी भाषा नाग की समझ में न आई। नाग को निश्चय हो गया कि नीचे मुसलमान-सेना है। थोड़ी देर में नीचे शब्द कुछ और ज़्यादा होने लगा। गाँव की ओर से चिल्लाहट की पुकार आई और कुछ घरों में आग लगने के लक्षण दिखलाई पड़े। इतने में एक सैनिक का सिर और दिखलाई पड़ा। अब की बार नाग ने इस सिर को कुछ और ऊँचा हो जाने दिया और फिर सिर पर तीर नहीं मारा, किंतु गर्दन और छाती के बीच में निशाना लगाया। अब की बार तीर ने टकराने या फिसलने की आवाज़ नहीं की। ऐसी आवाज़ की, जैसे किसी चीज़ को तोड़कर घुस गया हो। यह सैनिक भी भरभराकर और चीत्कार के साथ नीचे जा पड़ा। अब गढ़ी के नीचे के लोगों को मालूम हो गया कि भीतर से गढ़ी की रक्षा हो रही है, परंतु उनके निश्चय में कुछ ही क्षण का अंतर पड़ा होगा, क्योंकि उसी स्थान पर एक और सिर दिखलाई दिया। इसको भी नाग ने कुछ ऊँचा

और होने दिया और फिर पूरे ज़ोर के साथ गर्दन और छाती के बीच का लक्ष्य लेकर तीर चलाया। तीर चला। झन्नाटे का शब्द हुआ। वह सैनिक कुछ हिल भी गया, परंतु इससे अधिक उस तीर का और कुछ प्रभाव नहीं दिखलाई पड़ा। नाग ने तुरंत दूसरा तीर पूरे ज़ोर के साथ छाती पर मारा। इससे भी वह नीचे नहीं गिरा, परंतु नीचे की ओर उतर गया और गढ़ी के नीचे जो भीड़ एकत्र थी, उससे तुर्की भाषा में उसने कुछ कहा।

गाँव में आग का प्रकोप कुछ बढ़ा हुआ दिखलाई पड़ा और चिल्लाहट बहुत सुनाई पड़ी। गढ़ी के भीतर भी हलचल-सी मची मालूम हुई।

चंद्रमा आकाश के बीचो-बीच था। बेतवा की धार चीत्कार का साथ-सा दे रही थी, और जंगल से साबर और चीतल की पुकार रह-रहकर हो जाती थी।

नाग को अपने तीर पर कुछ क्रोध आया। उसने तलवार से सिर पर वार करने का निश्चय किया, परंतु ढाल साथ नहीं थी।

फिर सिर तो नहीं दिखलाई पड़ा, किंतु उसकी जगह हाथ में कमान और तीर आगे को झुका हुआ था। नाग तीर की दिशा से ज़रा अलग हो गया। तीर चला और कोठे की छत से टकरा गया। नाग ने वेग और स्फूर्ति के साथ उछलकर कँगूरे के ऊपर दिखलाई पड़नेवाले कमान के सिरे पर तलवार का ऐसा बारीक वार किया कि कमान कट गई, परंतु मुसलमान सैनिक गिरा नहीं। वह तलवार लिए हुए कँगूरे के पीछे छाती के नीचे तक दिखलाई पड़ा। तूणीर से तीर निकालकर चलाने के लिये समय न था। बाएँ हाथ में ढाल का काम लेने के लिये कमान थामकर तलवार का भरपूर वार नाग ने मुसलमान सैनिक की कमर पर किया, परंतु वह पीछे को थोड़ा-सा हिल गया, और वार उसकी तलवार की मूठ पर पड़ा। मुसलमान सैनिक की तलवार कटकर गिर गई, और बीच से नाग की तलवार भी तड़ से टूट गई। मुसलमान सैनिक गढ़ी के

प्राचीर पर से नीचे कूदा, पर भारी कवच और तवे के बोझ के कारण थम न सका, कंधे के बल जा गिरा। इतने में कँगूरे के पीछे एक सिर और दिखलाई पड़ा। नाग को एक क्षण में भान हो गया कि अब जीवन अधिक समय का नहीं है, ज़रा तिर्छी आँखों अपने पीछे की ओर देखा, उस ओर किसी सहायक के आने का लक्षण न दिखाई दिया। ज़ोर से एक पैर अपने पास पड़े हुए सैनिक की छाती पर जमाकर उसे तिर्छे से सीधा किया और टूटी हुई तलवार आगंतुक सैनिक के सिर पर फेककर मारी, जो चूककर बाहर जा पड़ी। बाहर खड़े हुए सैनिक, जो बारी-बारी से ऊपर चढ़ने का यत्न कर रहे थे, इस घटना को न समझ सके और ठिठक गए। नाग ने फिर कमान सँभालकर तुरंत एक तीर कँगूरे के पीछे निकले हुए सिर के बीचों बीच मारा। आगंतुक ने इसी समय सिर ज़रा तिर्छा किया कि तीर की भाल आँख के ऊपर के लोहे को चीरती हुई आँख में धँस गई और वह सैनिक चिल्लाकर नीचे गिर पड़ा। साथ ही अपने पीछे के सब साथियों को ढकेलता हुआ धराशायी हो गया।

प्राचीर पर पड़े हुए जिस सैनिक की छाती पर नाग पैर रोपे हुए था, उसके हाथ स्वतंत्र थे। उसने फुर्ती से छुरी निकालकर नाग के नंगे पैर में मारी, जिससे वह हटकर अलग जा खड़ा हुआ। मुसलमान सैनिक ने छुरी लेकर नाग पर फिर वार किया, नाग कमान फेककर उस सैनिक से लपककर लिपट गया। मुसलमान सैनिक ऊपर से नीचे तक लोहे के कवच और तवों से लदा हुआ था, और नाग के शरीर पर रक्षा का कोई सामान नहीं था। इस लिपट के कारण उसके शरीर में कई जगह चोट आई; परंतु लड़ाई की गर्मी में उस समय आँसी नहीं।

इस लपेट के धक्के को कवचावृत्त मुसलमान सैनिक न सँभाल सका, और न नाग ही अपने धक्के से स्वयं सँभल सका। दोनो लतपत गिर पड़े और दीवार पर लुढ़कने-पुढ़कने लगे।

इतने में सीढ़ियों पर कई मनुष्यों के चढ़ने का शब्द सुनाई दिया।

सबसे पहले अग्निदत्त प्राचीर पर पहुँचा। एक हाथ में भाला और दूसरे में ढाल लिए था, कमर में तलवार और कंधे पर तीर-कमान, परंतु शरीर पर कवच इसके भी न था। पीछे सामंत हरी था। वह कवच और झिलम-युक्त था। उन लोगों ने नाग की नाज़ुक हालत को तुरंत समझ लिया।

मुसलमान सैनिक नाग की बग़ल में पूरे वेग के साथ छुरी भोंकना ही चाहता था कि अग्निदत्त ने ढाल पर छुरी का वार झुककर ले लिया।

हरी चंदेल कई लड़ाइयाँ लड़ चुका था। गुर्ज चलाने में चतुर था। इस समय वह अपनी भारी गुर्ज ख़ास तौर पर ले आया था। उसने कड़ककर कहा—"छोड़, नहीं तो अभी तेरा सिर झिलम-टोप-समेत चकनाचूर होता है।"

नाग ने अपने मित्रों को पहचान लिया और मुसलमान सैनिक ने अपने शत्रुओं को समझ लिया। एक दूसरे से अलहदा हो गए। नाग ने खड़े होने का प्रयत्न किया, परंतु अब उसे मालूम हुआ कि पैर में कुछ चोट आई है, इसलिये बैठ गया।

चंदेल सामंत ने कड़ककर कहा—"ख़बरदार! छुरी अलग कर, झिलम-टोप और सब हथियार हमारे हवाले कर।"

नीचे से ज़ोर का शब्द हुआ—"अल्लाहो अकबर!"

गढ़ी की दूसरी ओर शब्द हुआ—"अल्लाहो अकबर!"

गढ़ी की तीसरी ओर शब्द हुआ—"अल्लाहो अकबर!"

गाँव में, जहाँ क्षण-क्षण पर आग की लपटें बढ़ती चली जाती थीं, शब्द हुआ—"अल्लाहो अकबर!"

प्राचीर पर पड़े हुए अग्निदत्त और हरी चंदेल से घिरे हुए मुसलमान सैनिक ने भी ज़ोर से शब्द किया—'अल्लाहो अकबर!"

अर्जुन ने सीढ़ी से ऊपर आकर कहा—"जय भवानी मैया की!" शब्द अकेला था, परंतु उसका साथ लपटों ने दिया और बेतवा नदी की अनंत भरभराहट ने।

अर्जुन ने चंदेल से कहा—"लगौ दाउजू सारे के मूड़ पै, देखत का आय हौ? नई तो मैं देत।"

चंदेल ने कहा—"क़ैदी नहीं मारा जायगा। अर्जुन, इसको निश्शस्त्र करो।"

अर्जुन तपाक से उस सैनिक के ऊपर चढ़ बैठा। सैनिक ने अपनी टूटी-फूटी हिंदी में उसको वर्जित किया और अपने-आप अपने हथियार दे दिए और कवच तथा झिलम भी उतार दिया। इतने में सामंत के आठ सैनिक और आ गए।

सामंत हरी ने अर्जुन से कहा—"दो सैनिकों के साथ इसको यहाँ से ले जाकर द्वार-बुर्ज में बंद करो। पहरा कड़ा रहे।" अर्जुन ने ऐसा ही किया।

सामंत ने विना शिष्टाचार के, परंतु कुछ कोमलता के साथ, नाग से कहा—"आपको मालूम होता है, चोट आ गई है। आप यहाँ से पांडेजी के साथ सोहनपालजी के जनवासे की ओर जायँ। वहाँ और भी सैनिक हैं। आप तुरंत घाव पर पट्टी चढ़वाएँ। इधर का प्रबंध करके मैं अभी दूसरी ओर जाता हूँ।"

नाग ने कुछ उत्तर नहीं दिया, परंतु वह जाने के लिये उद्यत दिखलाई पड़ा। अग्निदत्त ने कहा—"मैं इसी जगह आपके साथ रहकर कुछ करतब दिखलाना चाहता हूँ।"

सामंत ने विना संकोच के कहा—"स्त्रियों की रक्षा करने में आज आपके पुरुषार्थ की ज़्यादा अच्छी परीक्षा होगी, मेरी आज्ञा का पालन कीजिए। यहाँ से कुँवर को ले जाइए।"

नाग ने अग्निदत्त से अनुरोध-पूर्वक कहा—"पांडे, यहाँ से चलो। जान पड़ता है कि मुसलमान कई ओर से इस छोटी-सी गढ़ी पर आक्रमण कर रहे हैं। हम लोग थोड़े-से आदमी हैं। स्त्रियों की रक्षा अधिक आवश्यक धर्म है। और फिर गढ़ी के नायक की आज्ञा हम सबको इस समय चुपचाप माननी पड़ेगी।"

दोनो वहाँ से चले गए। नाग अपनी चोट का कष्ट भूलकर और अग्निदत्त बिना चोट का घाव खाकर।

सामंत हरी सैनिक को वहीं नियुक्त करके तुरंत वहाँ से चल दिया। जहाँ जो सैनिक मिले, उनको जल्दी-जल्दी आवश्यक स्थानों पर नियुक्त करके दौड़ता हुआ स्त्रियों के निवास की ओर गया।

उसका कुटुंब सोहनपाल के निवास-स्थान पर पहुँच चुका था।

एक सैनिक ने चंदेल से कहा—"उत्तर की ओर नाले के पासवाली दीवार पर होकर कुछ मुसलमान सीढ़ी लगाकर चढ़ आए हैं।"

चंदेल ने आवेश में आकर कहा—"और तुम जीते-जागते यहाँ चले आए हो?"

सैनिक ने निर्भय होकर उत्तर दिया—"दाऊजू, चार सिपाही उनसे लोहो लै रहे हैं, कछू सिपाही भट्टई और पौंचाओ।"

अग्निदत्त ने आगे बढ़कर कहा—"मैं जाऊँगा।"

सामंत ने तेज़ होकर कहा—"तुम नहीं जाओगे। यहीं बने रहो। मैं जाऊँगा और बीस सैनिक और।"

रनिवास के सामने सैनिकों की अधिक भीड़ जमा हो गई थी। गुर्ज चलानेवाले बीस सैनिक लेकर चंदेल चलने को हुआ। नाग से बोला—"यदि मैं मारा जाऊँ, तो मेरे परिवार के साथ चंदेलों-जैसा बर्ताव हो।"

भीड़ में से एक वृद्ध सैनिक ने आगे आकर चंदेल से कहा—"आपकी गढ़ी में क्या कोई गुप्त मार्ग आने-जाने का है?"

चंदेल ने उत्तर दिया—"जी हाँ, है। क्यों?"

उस व्यक्ति ने कहा—"मैं कुछ अपने बुंदेले और कुछ आपके सैनिक लेकर मुसलमानों पर बाहर जाकर आक्रमण करना चाहता हूँ। रात में आप बेखटके गढ़ी में बंद होकर लड़ लें, परंतु सूर्योदय होते ही बड़ी कठिनाई का सामना करना पड़ेगा। हम लोग बाहर से हल्ला करके जब मुसलमानों पर टूटेंगे, तब उनको यह भान होगा कि गढ़ी की सहायता

के लिये कोई और सेना आ गई है, कम-से-कम कुछ लोग बरौल की गढ़ी में और कुंडार इस घेरे का समाचार भेज देंगे, वहाँ से और सहायता तुरंत यहाँ आ जायगी।"

चंदेल ने कहा—"और आपका कुटुंब? आप मेरे अतिथि हैं।"

वृद्ध ने उत्तर दिया—"क्षत्रिय होकर क्या आप नहीं जानते कि हमारे पीछे हमारे कुटुंबों की रक्षा अग्नि-देवता करते हैं!"

चंदेल जुहार करके बीस सैनिकों के साथ गढ़ी के उत्तर-पश्चिम कोने की ओर चल दिया। थोड़ी देर में उस ओर से हथियारों के चलने की खड़ाखड़ और घायलों का चीत्कार सुनाई पड़ने लगा।

उक्त वृद्ध व्यक्ति ने कहा—"प्रधानजी, रनिवास की रक्षा का प्रयत्न कीजिए, हम लोग गुप्त मार्ग से जाकर बाहर से मुसलमानों पर हल्ला बोलते हैं।"

भीड़ में से एक दूसरे वृद्ध मनुष्य ने, जो क़द में मँझोला, शरीर का छरेरा और फुर्तीला था, निकलकर उत्तर दिया—"महाराज, बुंदेले और कुछ भरतपुरा के सैनिक लेकर जायँ। ठहरिए, मैं भी साथ चलूँगा। भरतपुरा के सैनिक मार्ग बतलावेंगे।"

जिस पुरुष को इस वृद्ध ने "महाराज" कहकर संबोधित किया था, उसने कहा—"ठीक है, धीरे चलो। परंतु यहाँ का ठीक प्रबंध शीघ्र कर दो।"

कुमार नागदेव ने कहा—"मैं यहाँ पर अपने २५ सैनिक लेकर खड़ा हूँ। जब तक एक बिंदु भी रक्त का शरीर में रहेगा, मुसलमान जनवासे में प्रवेश नहीं कर सकेंगे। क्या मैं आप लोगों का परिचय पा सकता हूँ? मैं कुंडार के महाराज हुरमतसिंह का पुत्र नागदेव हूँ।"

"महाराज" संबोधित पुरुष ने आह भरकर उत्तर दिया—"इस समय कुमार, मैं अधिक परिचय नहीं दे सकता। मैं सोहनपाल बुंदेला हूँ। यह धीर प्रधान कायस्थ मेरे जन्म-संगी और मेरे दाहने हाथ हैं,

वह इनका पुत्र दिवाकर है, यह मेरा कुँवर सहजेंद्र है। और लोगों का विशेष परिचय आपको फिर मिल जायगा। ये लोग बुंदेले हैं और मेरे साथ एक पत्तल में बैठकर खानेवाले भाई-बंद हैं।"

इतने में फाटक पर "अल्लाहो अकबर!" की प्रचंड ध्वनि हुई।

नाग ने चमककर आदेश किया—"अग्निदत्त, तुम दस सैनिकों को लेकर जाओ। फाटक की रक्षा करो; पर नहीं, तुम यहीं जनवासे पर मेरे साथ रहो।......"

अग्निदत्त ने झुँझलाकर कहा—"मैं ऐसा कोमल नहीं हूँ, जैसा आप समझते हैं। जुझौति का नाम नहीं डुबोऊँगा, फाटक पर जाने दीजिए।" और वह जाने के लिये उद्यत हुआ।

नाग ने कहा—"अच्छा जाओ, परंतु कवच और झिलम पहनकर जाना।"

अग्निदत्त—"अब समय नहीं है, और न मेरे पास कवच-अवच है।"—इतना कहकर, दस सैनिकों को साथ लेकर अग्निदत्त फाटक की ओर चल दिया।

सोहनपाल ने अपने लड़के से कहा—"सहजेंद्र, तुम मेरे साथ चलो, दिवाकर यहाँ रहेगा।"

सहजेंद्र ने "जो आज्ञा" कहकर क़दम बढ़ाया ही था कि धीर प्रधान बोला—"नहीं महाराज, कुँवर यहीं रहेंगे, दिवाकर बाहर जायगा। यहाँ पर भी क्षत्रियों के धर्म का निर्वाह हो सकता है, परंतु इस समय आपको बाहर जाने का निषेध है।"

सोहनपाल बोला—"ऐसा ही सही। बेटा दिवाकर, इधर आओ मेरे साथ। पाँच बुंदेले और बाईस भरतपुरावाले इधर चलें।"

नाग ने भरतपुरावाले छाँट दिए और धीर ने पाँच बुंदेले चुन लिए, और वह छोटी-सी टुकड़ी वहाँ से चल दी। अब वहाँ पर दस बुंदेले और बीस-बाईस भरतपुरावाले, नाग तथा दिवाकर और रह गए।

फाटक पर "जय कुंडार की", "जय हुरमतसिंह" की ध्वनि सुनाई दी।

इधर नाग ने उसी समय एक छोटा-सा समर-सभा का अधिवेशन कर डाला।

नाग ने कुछ चिंता के साथ कहा—"मुसलमान पूर्व की ओर से गढ़ी के भीतर आ गए हैं, परंतु उनकी संख्या अधिक नहीं जान पड़ती, नहीं तो सामंत का छोटा-सा दल अब तक कभी का विध्वंस हो जाता। अब हम लोगों को रहना तो पास-पास चाहिए, परंतु इतने पास नहीं रहना चाहिए कि प्रहार करने का सुबीता न पा सकें। इसलिये ज़रा-सा फैल जाओ। एक-एक बुंदेला के नीचे चार-चार भरतपुरिए रहकर ज़रा अंतर से खड़े हो जाओ और शेष दो सैनिक हम लोगों के साथ जनवासे की ड्योढ़ी पर डटे रहें।"

सहजेंद्र-नामक युवक, जो कवच और झिलम पहने था, छिटकी हुई चाँदनी में मोटा-तगड़ा मालूम होता था, कुछ खरखराए हुए गले से बोला—"हम लोग, कुमार, उसको जनवासा नहीं कहते हैं, रनिवास कहते हैं।"

नाग की जीभ पर एक तीखी बात आई, परंतु उसने अपने भाव को दबा लिया। बात बदलकर बोला—"आप किस हथियार के अधिक पक्ष-पाती हैं?"

सहजेंद्र—"मैं इस समय अपने खाँड़े का भरोसा करता हूँ। आप?"

नाग ने देखा कि उसके पास सिवा तरकस के और कोई हथियार ही नहीं। अकचकाकर बोला—"मेरा तो हथियार प्राचीर की रक्षा में ही टूट गया है। क्या मुझे आप इस समय छोटी-बड़ी किसी तरह की भी तलवार दे सकते हैं?"

सहजेंद्र ने उत्तर दिया—"दूँगा, ज़रा ठहरिए।"

सहजेंद्र भीतर जाने को तैयार हुआ ही था कि सामने धूल का ग़ुबार

उड़ाती हुई एक भीड़ आती दिखलाई पड़ी। शब्द हुआ—"अल्लाहो अकबर!" बाहर भी कई स्थानों से यही शब्द सुनाई दिया।

सहजेंद्र भीतर जाने से रुक गया। बोला—"कुमार, अब समय नहीं है। बुंदेलो, आगे बढ़कर रण लो।"

बुंदेलों की पाँचों टुकड़ियाँ उस भीड़ की ओर शोर मचाती हुई बिजली की तरह टूट पड़ीं। इतने में गाँव की ओर भीषण अग्नि-ज्वालाएँ दिखलाई पड़ीं। वहाँ से भी—"अल्लाहो अकबर!" का और युद्ध का शब्द सुनाई पड़ा।

एक भरतपुरिए ने नाग से कहा—"महाराज, अपुन मोरी तरवार लै लैबी।"

नाग को ऐसा हर्ष हुआ, जैसे किसी ने कोई राज्य देने की आशा दी हो। बोला—"और तुम क्या करोगे?"

सैनिक ने उत्तर दिया—"मैं महाराज, सारन खों धरती पै पटक-पटक के चपेटों। जा देह आजईं नौन-पानी से उरिन हूहै।"

नाग की आँख में एक आँसू आ गया। पोंछकर बोला—"ला भाई।"

उस बहादुर के हाथ से तलवार लेने के लिये नाग ने हाथ बढ़ाया ही था कि सहजेंद्र ने पैने स्वर में कहा—"उसकी तलवार मत लीजिए। यह वीर सैनिक चाहे जिस जाति का हो, कुत्ते की मौत नहीं मरने दिया जायगा। ड्योढ़ी के भीतर हम चारो चलें।"

नाग ने अभिमान के साथ कहा—एक तलवार देते आइए और सब लोग स्त्रियों की रक्षा के लिये भीतर चले जाइए।"

इतने में उसके घायल पैर में कहीं से एक तीर आकर लगा। वह बैठ गया। एक तीर और आया, परंतु वह सिर के ऊपर से निकल गया।

सहजेंद्र ने दोनो सैनिकों की सहायता से नाग को उठाकर ड्योढ़ी के भीतर किया, और किवाड़ बंद कर लिए।

नाग ने अपने हाथ से तीर निकालकर फेक दिया। ख़ून की धार बह

निकली, जो चंद्रमा के प्रकाश में भी दिख गई। पहला घाव भीतर था, परंतु उसके आस-पास खून जम गया था। तीर निकालकर उसने ज्यों ही खड़े होने की चेष्टा की कि पैर निर्बल मालूम पड़ा, एक पैर के बल झुक गया।

सहजेंद्र ने विचलित होकर कहा—"कपड़ा, थोड़ा-सा कपड़ा घाव बाँधने के लिये ?"

आँगन में दो स्त्रियाँ खड़ी हुई थीं। एक युवती थी, दूसरी कुछ ढले हुए वयस की। दोनो के पास तलवारें थीं, परंतु युवती के पास तीर-कमान भी थे। युवती ने आगे बढ़कर अपनी साड़ी के एक भाग में से वस्त्र फाड़कर सहजेंद्र को दे दिया।

नाग ने उसको देखा। संपूर्ण आकृति चंद्रमा के प्रकाश में स्पष्ट नहीं दिखलाई पड़ी; परंतु उसने जो कुछ देखा, उसके सारे शरीर में सनसनी फैल गई। उसे जान पड़ा, मानो दुर्गा अवतरित हुई है। परंतु उसके हृदय में केवल श्रद्धा का ही भाव जाग्रत् नहीं हुआ। जो भाव जाग्रत् हुए, वे युवक के थे और आशा के थे।

सहजेंद्र ने अपने हाथ से घाव पर पट्टी बाँध दी। नाग को अपने भीतर दुगुना बल प्रतीत हुआ। बोला—"मैं खड़े होकर लड़ सकता हूँ। मुझे हथियार दीजिए।"

सहजेंद्र ने कहा—"हेमवती, यह कुंडार के महाराज के कुमार नाग हैं। हम लोगों की सहायता के लिये यहाँ उपस्थित हैं। जाओ, कमान और दो खूब भरे हुए तरकस ले आओ और एक ढाल और भारी खाँड़ा। मैं तब तक द्वार के पास की झिंझरी के पास खड़ा होता हूँ। मा, तुम भी मेरे पास यहाँ आओ।"

वह दूसरी स्त्री सहजेंद्र के पास बहुत धीरता की चाल से झिंझरी के पास जाकर खड़ी हो गई। नाग ने दोनो भरतपुरिए सैनिकों को इशारे से झिंझरी के पास भेज दिया। किवाड़ों के पास कई झिंझरियाँ थीं।

सब तिरछी। किवाड़ों से लगा हुआ खुला कोठा था और उसके आगे आँगन।

आँगन में अकेला, लोहू-लुहान नाग खड़ा था। पैर की पट्टी में होकर खून बह रहा था, परंतु आँखों से आशा, आह्लाद और मर मिटने की आभा।

हेमवती हथियार लेकर आ गई। क्षीण, मदुल और कोमल स्वर में हेमवती ने पूछा—"भाई और मा कहाँ हैं ?"

नाग ने संकेत में उत्तर दिया। गले से कुछ कहना चाहता था, पर वह रुँध गया।

हेमवती ने डयोढ़ी में अपने भाई इत्यादि को एक क्षण में देख लिया। उसने ढाल, तलवार और एक तरकस नाग को दे दिया। कुछ दृढ़ कंठ से बोली—"ठहरिए, दूसरा तरकस पीठ पर मैं बाँधे देती हूँ, तब तक आप अपना पहला तरकस खोल लीजिए। उसके तीर छोटे हैं, ये बड़े हैं और। कमान के अनुकूल।"

नाग ने अपना तरकस खोल दिया। कुमारी ने दूसरा तरकस बाँध दिया।

हेमवती के कर-स्पर्श के कारण नाग की देह में रोमांच हो आया। देह शिथिल-सी हो गई और उसको किसी ऐसे भाव का अनुभव हुआ, जैसा उसने अपने जीवन में पहले कभी नहीं किया था। जैसे किसी देवता ने अपनी रक्षा का हाथ बढ़ाया हो, जैसे शांति की वर्षा हुई हो। बाहर से आनेवाला युद्ध-चीत्कार बालकों की अनर्गल वार्ता-सी जान पड़ी। नाग ने प्रयत्न करके धीरे से कहा—"दया बनी रहे।" कहते ही उस ठंड में नाग के माथे पर पसीने के कण आ गए। हेमवती विना कुछ उत्तर दिए अपने भाई के पास पहुँच गई।

नाग की इच्छा हुई कि उसी झिंझरी के पास मैं भी पहुँच जाऊँ, परंतु हिम्मत ने साथ न दिया। एक दूसरी झिंझरी के पास जाकर खड़ा हो गया।

जनवासे की ड्योढ़ी के सामने मैदान में धूल उड़ रही थी और योद्धा लड़ते हुए दिखलाई पड़ रहे थे। परंतु यह पहचानना कठिन था कि कौन किस पक्ष में है।

नाग का सिर घूम रहा था और आँखें कभी झिंझरी में होकर मैदान में लड़ते हुए सिपाहियों को देख रही थीं और कभी किसी अगम्य, दुर्बोध चिंता के साथ सहजेंद्र के समूह को। नाग ने सोचा—"कोमल अंग हैं, उछलती हुई बड़ी आँखें हैं, सोने का रंग है, गरबीली ठोढ़ी है, सीधी नाक है। मैंने मुसकिराते हुए भी देख लिया है। सौंदर्य ? अपूर्व सौंदर्य है। और बाल और हाथ में तलवार और तीर-कमान ?" सिलसिले से नाग कुछ न सोच सका। कल्पना का ताँता टूट-टूट कर उठने-बैठने लगा।

इतने में गढ़ी के बाहर तुमुल शब्द उठा—"हर-हर, महादेव !" जय विंध्यवासिनी देवी की !" इसी के साथ एक बार गर्जन हुआ—"अल्लाहो अकबर !" परंतु शब्द क्षीण था, और मालूम पड़ता था, जैसे कुछ घबराए हुए आदमियों ने किया हो।

सहजेंद्र ने नाग के पास आकर कहा—"जान पड़ता है कि पिताजी ने बाहर से मुसलमानों पर आक्रमण किया है। थोड़ी देर में लगातार "हर-हर महादेव" की पुकार सुनाई पड़ने लगी और वह फाटक की ओर बढ़ने लगी।

गाँव की ओर से लपटों में होकर भी 'हर-हर महादेव' और विंध्य-वासिनी देवी का जय-जयकार सुनाई पड़ने लगा।

जनवासे के सामने का युद्ध ड्योढ़ी के फाटक की ओर बहुत निकट बढ़ आया।

परंतु आदमी तीन ही दिखलाई पड़े। एक इनमें से हरी चंदेल था और दो मुसलमान सैनिक मालूम होते थे। नाग ने, सहजेंद्र ने और हेमवती ने झिंझरी में होकर तीर छोड़े, परंतु उनका कोई प्रभाव होता हुआ नहीं दिखलाई पड़ा।

परंतु हरी सामंत की गुर्ज ने एक सैनिक के झिलिम-टोप और सुरक्षित सिर को चकनाचूर करके बिछा दिया। दूसरे ने उछलकर भरपूर ज़ोर के साथ चंदेल की कलाई पर अपने दुहत्थे खाँड़े का वार किया। चंदेल के ज़रा पीछे उचट जाने के कारण खाँड़ा गुर्ज पर पड़ा। खाँड़ा झम से टूट गया, परंतु चंदेल की गुर्ज भी दूर जा पड़ी। चंदेल अपनी गुर्ज उठाने के लिये बढ़ा ही था कि मुसलमान योद्धा ने फुर्ती से चंदेल को धर दबाया।

दोनो आपस में गुथ गए।

सहजेंद्र के पास नाग पहुँच गया। सहजेंद्र ने कहा—"ऐसे अवसर पर तीर भी नहीं चलाया जा सकता।"

एक भरतपुरिए सिपाही ने कहा—"किवारे खोल दो, पहलैं हम मरैं, फिर हमारा मालिक कौ रोम टूटै।"

नाग ने कहा—"किवाड़ नहीं खोला जा सकता। रनिवास की रक्षा के लिये किवाड़ों का बंद रखना अत्यंत आवश्यक है। यदि किवाड़ खुलते ही यहाँ कोई घुस बैठा, तो अनर्थ हो जायगा।"

हेमवती ने एक ही साथ उत्कंठा, अनुरोध, विनय और आदेश के साथ कहा—"परंतु चंदेल का प्राण अवश्य किसी तरह बचना चाहिए।"

नाग की नसों में बिजली-सी दौड़ गई, और उसको अपने भीतर किसी भी संकट का सामना करने का बल प्रतीत हुआ।

दृढ़ता के साथ धीरे से बोला—"जो आज्ञा देवी।" और तुरंत वहाँ से आँगन में होकर ज़ीने से ड्योढ़ी की छत पर चढ़ गया। वहाँ से धम से नीचे कूद पड़ा। वह सँभलकर खड़ा हो ही पाया था कि मुसलमान सैनिक चंदेल की छाती पर सवार हो गया। नाग ने समस्या समझ ली। झपटकर दुहत्था वार अपने खाँड़े का मुसलमान सिपाही के सिर पर किया। खाँड़ा उसके टोप पर से फिसलकर चंदेल की छाती पर जाकर

पड़ा। परंतु वह भी छाती पर कवच के ऊपर तवा बाँधे हुए था। खाँड़े ने उन दोनो में से किसी को आहत नहीं किया।

मुसलमान सैनिक चंदेल को छोड़कर अलग जा खड़ा हुआ। चारो ओर देखा, अकेला था। चंदेल ने और नाग ने भी देखा कि अकेला है।

फाटक के पास ज़ोर का शब्द हुआ—"हर-हर, महादेव!"

नाग ने और चंदेल ने भी पूरे बल के साथ पुकारा—"हर-हर, महादेव!"

ड्योढ़ी के भीतर से स्वर हुआ—"हर-हर महादेव!" इस शब्द में बारीक और कोमल स्वर भी मिले हुए थे।

नाग की देह में फिर सनसनी का संचार हुआ।

मुसलमान सैनिक ने कहा—"हमारा अब क्या करोगे? ग़ुलाम बनाओगे, मार डालोगे या छोड़ दोगे?"

नाग ने कहा—"तुमको छोड़ेंगे नहीं, परंतु मारेंगे भी नहीं, और हम हिंदू किसी को ग़ुलाम नहीं बनाते।"

चंदेल ने कुछ अशिष्टता के साथ, जो उसके स्वभाव के विपरीत मालूम होती थी, कहा—"मैं इस गढ़ का नायक हूँ। तुम्हारा जीना-मरना मेरे हाथ में है।"

चंदेल ने गुर्ज उठा ली और बोला—"जो कुछ हम पूछते हैं, उसका ठीक-ठीक उत्तर दो, तो कुछ समय के लिये जीने दूँगा। यदि उत्तर न दिया या झूठा उत्तर दिया, तो इसी समय इस गुर्ज से तुमको तुम्हारी छुटपन से चाही हुई बहिश्त में भेज दूँगा।"

उसने ढिठाई के साथ कहा—"तुम्हारी गुर्ज मेरी शमशीर से कटी नहीं? सख़्त लोहे की मालूम होती है! मैं अभी मरना तो नहीं चाहता। क्या आप घायल और निहत्थे सिपाही को मार डालेंगे? अगर आप इस गढ़ी के फ़ौजदार हैं, तो आप चंदेल हैं न?"

चंदेल मुसलमान सिपाही की निर्भयता से कुछ अचंभे में आ गया।

चंदेल ने उत्तर दिया—"हाँ, मैं चंदेल हूँ। राजपूत हूँ। मेरी बातों का उत्तर दो, नहीं तो तुमको मारकर बेतवा में बहा दूँगा।"

मुसलमान सिपाही ने उसी धीरता के साथ कहा—"घायल को, निहत्थे को, मारोगे? राय पिथौरा के घायल सिपाहियों को महोबे में मारकर चंदेले ने आख़ीर में क्या पाया?"

चंदेल के मर्म-स्थल में यह बात चुभ गई, उसने जनवासे की ओर देखकर कहा—"एक रस्सा या मजबूत कपड़ा शीघ्र भेजिए।"

नाग ने मुसलमान सिपाही से कहा—"तुम्हारे साथ लड़ने की चाह मेरे जी में ही रह गई।"

सिपाही बोला—"तो एक तलवार मुझे दीजिए, आपकी साध पूरी करूँ।"

नाग ने चिल्लाकर कहा—"और एक बड़ी और चोखी तलवार भी लिए आना।"

चंदेल ने तमककर कहा—"यह आप क्या करते हैं राजकुमार? कवच और झिलम कुछ भी पास नहीं। इस राक्षस के साथ यदि किसी की लड़ाई होगी, तो मेरी होगी। शत्रु के हाथ में तलवार देने की बुद्धिमानी आप-जैसों का ही काम हो सकता है।"

मुसलमान सिपाही—"राजकुमार? यह कहाँ के राजकुमार हैं?"

नाग ने अभिमान के साथ कहा—"मैं कुंडार का राजकुमार हूँ। परंतु मरने-मारनेवालों को एक दूसरे से पद नहीं पूछना पड़ता।"

सिपाही बोला—"आप ज़िरह-बख़्तर कुछ नहीं पहने हैं, मैं आपके साथ नहीं लड़ूँगा।"

नाग ने उत्सुकता से कहा—"मैं ज़िरह-बख़्तर मँगाकर पहने लेता हूँ। फिर तो लड़ोगे?"

इतने में ड्योढ़ी में से एक सैनिक तलवार और कपड़ा लेकर आ गया। बाहर बड़े ज़ोर के साथ शब्द हुआ—"हर-हर, महादेव!"

मुसलमान सिपाही बोला—"लड़ाई से पेट भर गया, अब नहीं लड़ूँगा।"

चंदेल ने कपड़े से उस सिपाही के हाथ-पैर बँधवा दिए।

भरतपुरिया सैनिक बोला—"दाऊजू, ई राच्छिस के सामने हिंदू-जोधा घायल बंदो होतो, तो कौन छोड़ें देत्तो। देत काए नइँया एक गुर्ज, सो मूड़ बगर जाय।"

चंदेल ने इस यथावसर प्रार्थना पर कोई ध्यान नहीं दिया।

उस सिपाही को पास ही एक कोठरी में ले जाकर बंद कर दिया गया।

नाग ने ड्योढ़ी के द्वार पर खड़े होकर सहजेंद्र को बुलाया और बोला—"युद्ध अब उतना तीव्र नहीं दिखलाई पड़ता। आपके पिताजी ने बाहर से सफलता-पूर्वक आक्रमण किया है। फाटक पर जो जयजयकार हो रहा है, उसमें अग्निदत्त का भी स्वर सुनाई पड़ता है। गाँव में भी वही शब्द गूँज रहा है। मालूम पड़ता है कि मुसलमान-सेना परास्त होकर भाग रही है, परंतु अभी रात २-३ घंटे बाक़ी है, इसलिये रनिवास का पहरा ढीला नहीं करना चाहिए। परंतु मेरा शरीर न-मालूम कैसा हो रहा है, मुझे प्यास लग रही है।"

सहजेंद्र ने नाग को ड्योढ़ी के भीतर करना चाहा, परंतु वह वहीं झूम कर रह गया। पैर का घाव असाधारण-सा दिखता था, और छत के ऊपर से कूदने में जो धमक बैठी, उसकी आँस इस समय अधिक करारी अनुभव हुई।

सहजेंद्र और चंदेल ने नाग को उठाकर भीतर किया। चंदेल भी घायल था, परंतु वह दोनो भरतपुरियों को लेकर ड्योढ़ी के बाहर हो गया और उसने सहजेंद्र से किवाड़ बंद करवा दिए।

आँगन में पहुँचने पर, नाग धरती पर ही लेट गया और तलवार की मूठ का सिराना बना लिया। हेमवती एक कटोरा पानी लाई, और उसने

कटोरा उसकी ओर बढ़ाया। नाग ने कटोरा लेने के लिये एक हाथ भूमि पर टेककर दूसरा हेमवती की ओर बढ़ाया। चंद्रमा उसके सिर के पीछे था, इसलिये उसका प्रकाश बगल में खड़े सहजेंद्र और सामने खड़ी हेमवती पर स्पष्ट पड़ रहा था। उसने एक क्षण अच्छी तरह हेमवती को देखने की इच्छा से आँखें उसकी ओर कीं, परंतु मानो परवश दृष्टि दूसरी ओर हो गई। दूसरी बार यही चेष्टा उसने पानी पीते में की। अब की बार वह अपने प्रयत्न में सफल हुआ। धीरे-धीरे देर तक पानी पिया और देर तक दृढ़ता-पूर्वक उसका अवलोकन करता रहा। बड़ी-बड़ी आँखें, लंबे-लंबे पलक, मृदुल तिरछी चितवन उसकी आँखों में समा गई। हेमवती ने भी उसे अच्छी तरह देख लिया, और शर्म से आँखें नीची कर लीं। उसने कटोरा लेने के लिये ज़रा व्यग्रता के साथ हाथ बढ़ाया। नाग की कलाई से हेमवती की कोमल उँगलियाँ छू गईं।

नाग के मुँह से कुछ शब्द निकलने ही वाला था, परंतु न-मालूम किसने मुहर लगा दी। कटोरा देकर फिर उसी तरह लेट गया. घाव में पीड़ा मालूम हुई, परंतु हृदय में उल्लास बहुत अधिक था। बोला—"रनिवास की रक्षा हो गई। अब मैं यदि मर जाऊँ, तो कोई चिंता नहीं।"

सहजेंद्र की मा ने कहा—"ठंड बहुत पड़ रही है। कुमार को रुई के कपड़े से ढक दो।"

हेमवती कपड़ा ले आई, परंतु उसने अपने हाथ से नाग को नहीं उढ़ाया, कपड़ा अपनी मा को दे दिया। मा ने उढ़ा दिया। थकावट और रक्त के बह जाने के कारण नाग को निद्रा आ गई या अचेतता?

लड़ाई का अंत

मुसलमानों ने गढ़ी पर एक ओर से हल्ले के साथ और दूसरी ओर से कई टुकड़ियों में चुपचाप आक्रमण करने का क्रम रचा था, परंतु नाग के जागरण ने और चंदेल के शीघ्र आगमन ने गढ़ी को बचा लिया। सोहनपाल यदि बाहर न जाता, तो इसमें संदेह था कि गढ़ी बचती या नहीं। जिस समय चंदेल गढ़ी की बेतवावर्ती पूर्वी दीवार के पास पहुँचा, थोड़े-से मुसलमान दीवार लाँघकर नीचे उतर आने का उपाय कर रहे थे। घोर युद्ध करके देर तक वह मुसलमानों की संख्या उक्त दीवार के पास कम करता रहा। जब वे लोग ज़्यादा तादाद में आ गए, तब उसको कुछ पीछे दबना पड़ा। परंतु उस समय बुंदेलों और भरतपुरियों की सम्मिलित कुमक चंदेल के पास आ गई। मुसलमान भी बढ़ गए। गहरी मार-काट हुई। सब मुसलमान और गढ़ी के सब सैनिक उस स्थान पर मारे गए। बचा एक चंदेल और दूसरा मुसलमान क़ैदी।

सोहनपाल ने बाहर जाकर, भरतपुरियों की सहायता से शीघ्र पता लगा लिया कि पूर्वी दीवार के पीछे, फाटक के सामने होकर मुसलमान सिपाही आ रहे हैं और ऊपर चढ़ते चले जाते हैं। सोहनपाल का तात्पर्य शोर मचाकर मुसलमानों के घेरे को भयभीत और निर्बल करने का था। तीर और गुर्ज़ें भी चलाई गईं। मुसलमानों ने उस स्थान पर भागते हुए लड़ाई लड़ी। फिर फाटक के पास अग्निदत्त और उसके सैनिकों ने बाण-वर्षा की और शिलाएँ फेकीं, जो वहाँ जमा की हुई रक्खी थीं। सोहनपाल की चपेट ने फाटक के घेरे को मुक़ाबिले के लिये सहज बना दिया।

गढ़ी के लगभग चार सौ सिपाही गाँव में रहते थे। ये लोग कठि-

नाई के साथ और देर में अपने पैरों के बल खड़े हो पाए। इनको आस-पास की ऊँची-नीची परिचित भूमि के कारण प्राकृतिक सहायता मिल गई, पहले तो हटे, फिर गढ़ी की ओर से जयजयकार का शब्द सुनकर इकट्ठे हो गए और डटकर सामना पकड़ा। सोहनपाल के पीछे से आक्रमण कर देने पर मुसलमानों को विश्वास हो गया कि हिंदुओं की एक सेना और आ गई और उनके पैर उखड़ गए। वे अपने मृत और अधिकांश आहत साथियों को वहीं छोड़कर भाग खड़े हुए। उस समय सबेरा होने में दो-ढाई घंटे की देर थी।

सोहनपाल ने फाटक पर के आक्रमणकारियों को खदेड़ने के बाद कहा—"बुर्ज पर कौन है?"

उत्तर मिला—"अग्निदत्त पांडे।"

सोहनपाल ने पूछा—"निवास?"

उत्तर—"कुंडार।"

फिर प्रश्न किया—"आप क्या विष्णुदत्त पांडे के सुपुत्र हैं?"

फिर उत्तर मिला—"हाँ, वही मेरे पिता हैं। आप?"

सोहनपाल ने कहा—"वीर बुंदेले का पौत्र, और अर्जुनपाल का पुत्र सोहनपाल बुंदेला हूँ। आपने मुझको अभी-अभी गढ़ी में ड्योढ़ी के पास देखा था।"

अग्निदत्त ने इस उत्तर में गर्व की गंध पाई। बोला—"जी हाँ, आपसे भेंट गढ़ी में हो चुकी है।" एक क्षण ठहरकर पूछा—"आपका निवास?"

सोहनपाल ने उत्तर दिया—"यह बतलाना मेरे लिये सहज नहीं है।"

अग्निदत्त को स्मरण हो आया कि इस समय सोहनपाल डाँवाडोल स्थिति में भरतपुरा आया है, इसलिये फिर कोई प्रश्न नहीं किया।

सोहनपाल ने कहा—"मैंने दो सैनिक बरौल की पूँछा को और

दो धीवर कुंडार को रवाना कर दिए हैं। भीतर तो अब कुछ गड़बड़ नहीं है?"

अग्निदत्त ने कहा—"पता लगाकर बतलाता हूँ।"

थोड़ी देर बाद अग्निदत्त ने सोहनपाल को सूचना दी कि "गढ़ी मुसलमानों से खाली हो गई है, केवल दो मुसलमान हैं, परंतु वे क़ैद हैं।"

सोहनपाल ने अनुरोध किया—"अभी गढ़ी के किंवाड़ मत खोलना, और सतर्क रहना। सब दीवारों के पास पहरा रहे। तब तक हम लोग जगह-जगह आग जलाकर अपने को गरम करते हैं।"

मुसलमान सेना गाँव भी छोड़कर चली गई थी। हिंदू-सेना गढ़ी के सामने आग जलती हुई देखकर "हर-हर महादेव!" कहती हुई सोहनपाल के दल में शामिल हो गई।

इन लोगों के आ जाने पर सोहनपाल ने पूछा—"कुछ सैनिकों की आवश्यकता हो, तो भेजूँ? हम लोग अब बहुत हो गए हैं।"

अग्निदत्त ने कहा—"हम लोग भी बहुत हैं, कोई आवश्यकता नहीं।"

तंडुल-वषा

सबेरा हुआ। अब तक सब हिंदू-सैनिक सतर्क थे, अग्निदत्त बुर्ज के ऊपर उपस्थित था। इतने ही में ऊषा की अरुण आभा पूर्व-दिशा में दिखलाई पड़ी। सुनहरी किरणों के पीछे डोरों की बुनी हुई चादर में होकर पलोथर की पहाड़ी के दक्षिण भाग के पीछे से वह झाँक-सी रही थी। पूर्व-दक्षिण के कोने में उसी ओर, कुंडार का क़िला धुँधला-धुँधला दिखलाई पड़ता था। कुंडार के आस-पास की पहाड़ियों का जमघट तेज़ लहरों में उतराती हुई नौकाओं-सा भास होता था। बेतवा और पलोथर के बीच का जंगल नीरव स्थिर समुद्र-सा सम-स्थल मालूम पड़ता था। बेतवा के कलकल शब्द के ऊपर केवल कभी-कभी टिटिहिरी बोल जाती थी।

थोड़ी देर में सूर्य की मृदुल कोमल किरणों के दर्शन हुए। पलोथर का पहाड़ दक्षिण से उत्तर तक एक बड़े मगर की तरह पड़ा हुआ मालूम हुआ। उसका उत्तरी सिरा एकाएक ख़तम हुआ है। पर निकट जाकर देखनेवाले को जो भयानक सौंदर्य देखने को मिलता है, वह उसे भूल नहीं सकता। दक्षिण-पूर्व से उत्तर-पश्चिम की ओर बड़ी ऊँची करारोंवाला बकनवारा-नामक नाला इसी सिरे के ठीक नीचे होकर बेतवा की ओर आया है और सिरे से चार-पाँच सौ डग की दूरी पर देवरा-घाट के पास ही बेतवा के विशाल जल में मिल गया है। बेतवा की सहायता से पलोथर के उत्तरीय सिरे को बकनवारे ने बड़ी क्रूरता के साथ तोड़ा है। जहाँ होकर इसने अपना निकास किया है, वहाँ दोनो ओर दो ऊँची-ऊँची, सीधी, तराशी हुई-सी टोरें खड़ी हैं, जो किसी ध्वस्त गढ़ की बुर्जें-सी मालूम पड़ती हैं।

इन टोरों से ऊपर पलोथर की सबसे ऊँची चोटी पर अग्निदत्त को धुआँ दिखलाई पड़ा।

धुआँ है, तो आग और आग है, तो उसका जलानेवाला उस विकट चोटी पर अवश्य होगा, न्याय के इस सिद्धांत से प्रेरित होकर अग्निदत्त ने अपने होठ कसकर उस ओर आँखें गड़ाईं। पर खास बात कुछ न दिखलाई पड़ी।

एक कंधे पर ढाल दूसरे पर कमान और तरकस, कमर में तलवार, हाथ में बर्छा। उषापति की कोमल-कोमल किरणों में होकर अग्निदत्त की नेत्र-ज्योति उसके मुख मंडल पर पसर गई।

परंतु रात्रि-भर के जागरण के बाद सुंदर-से-सुंदर आकृति ढल जाती है। तिस पर उसके बालों और गालों पर धूल का छिड़काव-सा हो गया था।

इस बाल-योद्धा ने ज़रा उत्तर की ओर गर्दन मोड़ी। इस दिशा में गढ़ी के नीचे से एक नाला पश्चिम की ओर से आकर नदी में मिल गया था। नदी से हटकर पश्चिम की ओर एक स्थान पर इसकी चौड़ाई कुछ अधिक हो गई थी। इसी दिशा में एक बड़ी भीड़ ब्राह्मण-योद्धा को दिखलाई पड़ी। उसकी आँख में एक विचित्र दमक आ गई। गर्दन ज़रा आगे झुकाकर आँखें सिकोड़कर देखने लगा। जैसे बाज़ किसी चिड़िया को ताकता है।

ध्वनि हुई—"हर-हर, महादेव!"

अग्निदत्त ने मुड़कर सोहनपाल की टुकड़ी से कहा—"मालूम होता है, हमारी सहायता के लिये, कोई सेना आ रही है।"

सोहनपाल बोला—"मुसलमान छल तो नहीं कर रहे हैं? मुँह पर हर-हर, महादेव, और दिल में हो अल्लाहो अकबर?"

अग्निदत्त ने अच्छी तरह परखकर उत्तर दिया—"नहीं, हिंदू-सेना है। मैंने मुसलमानों को देखा है।"

यह सेना बरौल की सूँड़ा से आई थी ।

थोड़ी देर में यह दल गढ़ी के सामने आ गया । इसके साथ-साथ भरतपुरा-गढ़ी की वह बची-खुची सेना भी आ गई, जो मुसलमानों की आग और तलवार से बच गई थी । गाँव में भयानक रोदन मच गया । बेतवा नदी के भरकों में वह स्वर व्याप्त हो गया । जंगल में शायद पलोथर की तली तक वह चीत्कार समा गया । स्त्रियों का करुण-क्रंदन आकाश को फाड़ रहा था ।

अग्निदत्त ने किंवाड़ खोल दिए । नए पहरेदारों ने पुरानों की जगहें ले लीं । स्थान-स्थान पर उत्सुक सैनिक नियुक्त हो गए । अपनी और पराई लाशों का प्रबंध कर दिया गया ।

सोहनपाल, अग्निदत्त और बरौल की सूँड़ा का सामंत किशुन खंगार ड्योढ़ी की ओर चले । इनके पीछे-पीछे धीर प्रधान और उसका लड़का दिवाकर तथा चंदेल दर्शनों के उत्सुक अर्जुन थे । और भीड़ इनके पीछे थी ।

सोहनपाल लंबा और छरेरा था । मूछ सफ़ेद हो चली थी । ऊपर को उठी हुई थी । आँखें बड़ी-बड़ी और लाल । माथा चौड़ा, पर बलें पड़ी हुई थीं । नाक सीधी और नथने कुछ फूले हुए, परंतु कुडौल न थे । घायल था, परंतु मुस्तैदी के साथ चल रहा था । इसकी कुल आकृति से जान पड़ता था कि संकट उसके लिये और वह संकटों से टक्करें लेने के लिये बनाया गया है । आँख की लालिमा इस बात को बतलाती थी कि उसने सोहनपाल की तलवार के अनेक कृत्य देखे हैं ।

धीर प्रधान नाटे क़द का दुबला-सा, परंतु बहुत छरेरा वृद्ध मालूम होता था । आँखें छोटी, परंतु बड़ी चमकदार और गूढ़ और तिर्छी होने पर बड़ी भयानक । छोटी-सी सफ़ेद दाढ़ी न तो आँखों की गूढ़ता पर प्रकाश डालती थी और न उनकी भयंकरता को नरम करती थी ।

दिनाकर चौड़े वक्षःस्थल का बहुत पुष्ट और अपने पिता की अपेक्षा अधिक लंबा युवक था। भौंहें बड़ी-बड़ी और नाक के ऊपर-ऊपर जुड़ी-सी थीं। आँखें कुछ बड़ी और सोती-सी। सिर बड़ा और पीछे की ओर कुछ निकला हुआ। माथा चौड़ा, परंतु आगे की ओर झुका। नाक सीधी, सिरे पर कुछ भगी-सी, ठोढ़ी कुछ आगे निकली हुई और दृढ़। चेहरा कुछ दुर्बल और कानों की ओर थोड़ा-सा उठा हुआ। इसका मुख दूर से बहुत सुंदर नहीं मालूम होता था, परंतु पास से आकर्षक जान पड़ता था। यह भी घायल था। सूर्य की किरणों में इसके घाव और शरीर पर छिटका हुआ अपना और दूसरों का लोहू चमक रहा था।

हरी चंदेल ने "हर-हर, महादेव" की पुकार से सबका स्वागत किया। उत्तर में "हर-हर, महादेव" की जयकार से वह छोटी-सी गढ़ी भर गई।

चंदेल ने कृतज्ञ कंठ से सोहनपाल से कहा—"आपने आज हम लोगों की लाज रख ली।"

सोहनपाल ने उत्साह के साथ उत्तर दिया—"मैंने नहीं, मैंने कदापि नहीं। इसके लिये हम सबको कुमार नागदेव और पांडे अग्निदत्त का कृतज्ञ होना चाहिए।"

अग्निदत्त का नाम लेते समय सोहनपाल ने उसकी ओर बड़े स्नेह की दृष्टि से देखा। अग्निदत्त ने दूसरी ओर आँखें फेर लीं।

दिवाकर की सुषुप्त-सी आँखें जाग्रत् हो गईं। धूल-धूसरित बड़ी-बड़ी भौंहों के नीचे से प्रकाश की लौ-सी निकल गई। अग्निदत्त के अल्पवयस्क और सुकुमार गात्रों को देखकर उसे आश्चर्य हुआ—"ऐसी छोटी अवस्था और मुट्ठी-भर देह में इतना बल-विक्रम!"

दिवाकर के इस तरह चिहुँककर देखने को अग्निदत्त ने पकड़ लिया। उसको दिवाकर की आँखें अच्छी नहीं मालूम हुईं। उसने मन में

कहा—"यह शायद अपने को संसार का सबसे बड़ा योद्धा समझता है। देखूँगा।"

इतने में किशुन खंगार ने चंदेल से जुहार करके पूछा—"कुमार कहाँ हैं ?"

चंदेल ने कुछ उदास होकर उत्तर दिया—"रावर में घायल पड़े हैं। नींद में हैं। परंतु चिंता करने की कोई बात नहीं है।"

किशुन खंगार दुबले चेहरे, चिपटी नाक, बड़ी आँखों का दुबला-पतला फ़ुर्तीला आदमी था। घनी दाढ़ी के कारण उसके चेहरे पर कुछ रोब दिखलाई पड़ता था। परंतु वह इस बात से कुढ़ रहा था कि उसकी अधिक आवभगत नहीं की गई।

सोहनपाल ने कुछ चिंता के साथ कहा—"मैंने जिस समय गढ़ी छोड़ी, उस समय तो उनके कोई घाव नहीं लगा था।"

चंदेल बोला—"उस समय भी वह काफ़ी घायल थे, परंतु जोश में उन्होंने अपनी अवस्था को प्रकट नहीं होने दिया। आपके चले जाने के बाद इस स्थान पर भीषण युद्ध हुआ, जिसके चिह्न आप अब तक यहाँ देख सकते हैं। इसी जगह कुमार के पैर में बाण लगा था। फिर उसी अवस्था में वह ड्योढ़ी की छत पर से मेरी रक्षा के लिये कूद पड़े। किवाड़ खोलने में रनवास के लिये संकट प्रतीत हुआ, इसीलिये उन्होंने ऐसा किया। वह यदि न आते, तो मुसलमान ने मेरे प्राण ले लिए होते।"

सोहनपाल ने घबराकर कहा—"और मेरे बुंदेले ?"

चंदेले ने आह भरकर कहा—"वे सब वीर-गति को प्राप्त हुए।"

वे लाल आँखें तरल हो गईं और उन्होंने परलोक-गत योद्धाओं को अश्रुओं की एक अंजलि दी।

सहजेंद्र ड्योढ़ी के किवाड़ खोलकर बाहर निकल आया। सोहनपाल ने क्षीण स्वर में पूछा—"कुमार की अवस्था कैसी है ?"

"अच्छी है, लोहू का बहना बंद हो गया है। सो रहे हैं। दिवाकर, तुम तो क्षत-विक्षत हो गए हो?" सहजेंद्र ने कहा।

दिवाकर मुस्किराकर बोला—"कवच पर इतना मेरा लोहू नहीं है, जितना शत्रुओं का।"

यह बात उसने झूठ कही। सहजेंद्र को धोखा नहीं हुआ, क्योंकि वह बहुत घायल था।

इतने में ड्योढ़ी की छत पर हेमवती आई। चेहरा कुछ कुम्हलाया हुआ था, परंतु रूप की दिव्यता में कोई अंतर न था; एक लट छिटककर कान के ऊपर बिखरकर गले में आ लिपटी थी। बड़ी-बड़ी आँखें गोरे मुँह पर छलक रही थीं। वह हँस नहीं रही थी; परंतु होठों पर सहज मुस्किराहट-सी थी। अंजलि में चावल भरकर उसने आगंतुकों पर बरसाए, मानो बुंदेलों की देवी ने सेना का स्वागत किया हो। तंडुल-वर्षा करके वह चली गई।

सोहनपाल ने उदासी के साथ कहा—"हम बुंदेलों के पास इस समय मुट्ठी-भर चावलों से अधिक और कुछ नहीं है।"

किशुन खंगार ने हाँ में हाँ भरने की इच्छा से सकारा—"जू, क्षत्रियों का स्वागत क्षत्री इसी प्रकार करते हैं।"

दिवाकर ने अग्निदत्त से बहुत धीरे से पूछा—"क्यों महाशय, यह कौन हैं?"

अग्निदत्त—"क्षत्रिय।"

दिवाकर—"कौन क्षत्रिय?"

अग्निदत्त—"क्षत्रिय।"

दिवाकर—"कहाँ के?"

अग्निदत्त—"क्षत्रिय-भूमि के।"

दिवाकर—"कौन-सी क्षत्रिय-भूमि?"

अग्निदत्त—"अपने पैरों-तले की।"

दिवाकर पहले एक-दो प्रश्नों के बाद फिर शायद और कुछ अग्निदत्त से न पूछता, परंतु उसके उत्तरों ने दिवाकर को ज़रा भड़का दिया। अंतिम उत्तर पर वह कुढ गया और चुप हो गया।

सोहनपाल किशुन, अग्निदत्त और अपने साथियों को लेकर भीतर गया, शेष सेना बाहर खड़ी रही।

अग्निदत्त अपने शस्त्र एक तरफ़ रखकर नागदेव के पास पहुँचा। चिंतित होकर घाव देखे। मुँह पर का कपड़ा खोल डाला। नाग ने आँखे खोलीं। सामने हेमवती न थी। वहाँ कहीं न थी।

किशुन ने कहा—"जू, जुहार पहुँचे।"

नाग हाथ टेककर बैठ गया। बोला—"काकाजू, प्रणाम। आप अभी आ रहे हैं? आपको कैसे समाचार मिला?"

किशुन बोला—"जू, हम लोगों के पास आधी रात के बहुत पीछे गढ़ी का एक सैनिक गया था। इससे वृत्तांत मालूम होते ही, मैं तीन सौ योद्धा लिए चला आया हूँ। जी कैसा है?"

नाग—"अच्छा है। पैर में साधारण चोट है।"

किशुन ने चारो ओर आँखें फिराकर कुछ गर्व के साथ कहा—"क्षत्रियों को बड़ी करारी चोटें भी फुनफड़ी-सी मालूम होती हैं। क्यों न हो।"

दिवाकर ने सहजेंद्र की ओर देखा, परंतु उसने आँख मिलते ही मुँह दूसरी ओर कर लिया।

सोहनपाल बोला—"कुमार को किसी अच्छे स्थान में लिटा दीजिए। यहाँ इनका इस तरह पड़ा रहना स्वास्थ्य के लिये हितकर नहीं होगा।"

लोग उठाने को बढ़े। नाग ने खड़े होने की चेष्टा की। न खड़ा हो सका। अग्निदत्त इत्यादि ने उसे उठा लिया। उसकी आँखों ने चारो ओर मानो किसी को ढूँढ़ा। एक किवाड़ के किनारे केवल एक आँख से उसकी भेंट हुई। नाग ने और देखना चाहा, परंतु ओट हो गई।

चिट्ठी

सामंत हरी चंदेल के पास खाने-पीने की काफ़ी सामग्री थी। भोजनों के उपरांत भरतपुरा गाँव में समुचित संख्यक सेना का प्रबंध करके शेष को गढ़ी में जगह-जगह लगा दिया। भय था कि कहीं मुसलमान रात को आक्रमण न कर दें।

सामंत ने अपने हरकारे देवरा चौकी और कुंडार भी भेज दिए। उसने कुंडार को कुल वर्णन लिखकर भेज दिया। सोहनपाल, नागदेव और अग्निदत्त की विशेष प्रशंसा की और प्रार्थना की कि भरतपुरा में और सेना भेजने की आवश्यकता नहीं है, परंतु नदी के पूर्वी किनारे पर बड़ी संख्या में सेना प्रस्तुत रहनी चाहिए।

दोनो मुसलमान क़ैदियों को वहीं दो कोठों में अलग-अलग बंद कर दिया और उनके विषय में नागदेव का मंतव्य जानने के लिये संध्या का समय स्थिर किया।

नागदेव की मरहम-पट्टी अग्निदत्त और अर्जुन ने की। नागदेव पलँग पर लेटा था, अग्निदत्त एक चौकी पर और अर्जुन नीचे बैठे थे। नागदेव पहले से अधिक स्वस्थ था।

अर्जुन से बोला—"तुम्हारे बाद किसने पहरा दिया था? बड़ा बढ़िया पहरा था। बाल-बाल बचे।"

अग्निदत्त ने कहा—"मैं जब पहुँचा, तब मुर्दे से बाज़ी लगा रहा था। परंतु यह बात सामंत को नहीं मालूम होनी चाहिए।"

अर्जुन ने उत्तर दिया—"जू, मैंने दाऊजू से भुंसरईं कै दई हती। लुधिया पांच सेर मांस खाकें ऐसो जा गिरो जैसे मुँगरा होय। फिर उनने पौंदन में बा मार टिकाई कि कौन भूलनैं।"

अग्निदत्त ने गंभीर होकर कहा—"तुझे चंदेल से शिकायत नहीं करनी चाहिए थी। अपराध अवश्य था, परंतु उससे बिगड़ा कुछ नहीं।"

नागदेव ने अर्जुन का पृष्ठ-पोषण करते हुए कहा—"नहीं पांडेजी। उस पहरेदार की अवज्ञा शूली के दंड के योग्य थी। चंदेल ने बहुत दया की।"

अर्जुन अपने पक्ष में कुमार को देखकर बोला—"अन्नदाता, दाऊ के बर्ताउ से सबरी सेना रामधुआई अपने प्रान हातन पै लए फिरत रहत। मार लेत और फिर पुचकार लेत, मोरे तो रोम-रोम में उनकौ नौन भिदो, बे अबै कएँ कि कुआ में गिर पर अर्जुना, तो मैं अबै हाल ढर जाउँ..."

नाग ने अर्जुन की प्रभु-प्रशंसा और आत्मश्लाघा को वहीं रोककर कहा—"अर्जुन, मेरे लिये तुम क्या कर सकते हो?" उसके गले में विचित्र अनुरोध और आँखों में विचित्र उत्कंठा थी।

अर्जुन ने बड़े उत्साह के साथ उत्तर दिया—"महाराज, अपुन के लानैं मैं का करबे जोग हौं। पै समै परे पै दिखाहौं।"

अग्निदत्त ने संकेत में कुमार से कुछ कहा। कुमार नाग ने उसी भाव में अर्जुन से कहा—"यह तो तुम्हारी टाला-टूली है। ठीक-ठीक बतलाओ, तुम मेरे लिये क्या करने को तैयार होओगे?"

अर्जुन ने भोलेपन से, परंतु आवेश के साथ उत्तर दिया—"महाराज, और तौ मैं कछू नइं कत, पै आप जा साँची जानियो कै मोरे तन की अपुन के लानैं बोटी-बोटी कट कैं गिरि जाय, तो गिरा दैहों। और छोटे मौं का बड़ी बात कओं।"

नागदेव ने बड़ी आत्म-निर्भरता के साथ पूछा—"शिकार खेलना जानता है?"

अर्जुन—"अरे राजा, और मैं दिन-भर करतई का हौं। अन्नदाता कों बे-बे नाहर दिखाओं कै अपुन रीझ जैहौ। रीछ, तिंदुआ जक्खी सुगरा और अन्नदाता चाएँ, तो बड़े-बड़े सिंगारिया साबर चीतरा दिखा

अर्जुन का दिमाग़ चक्कर खाने लगा। अंत में एक उपाय सोचकर धीरे से बोला—'ओर पांडेजू, तुमई काए नईं पौंचा देत। मैं दीन हौं, कऊँ बिरता में न पर जाउँ!"

नाग ने आँखें खोलकर उत्तेजित स्वर में कहा—"घबराओ मत। तुम्हारा कुछ नहीं बिगड़ सकेगा।"

अर्जुन ने विश्वास करने का ढंग दिखलाते हुए समर्थन किया—"हौ राजा, जा तो मैं जानत हौं।" फिर हाथ जोड़ भय-कंपित स्वर में बोला—"दीन-बंद, मैं बुंदेलन खों भौत डरात। गरी पौंज डारबी उन हत्यारन के लानें कछू बातई नईंदाँ। मोरे हाथ में तलवार होय, तो एक नईं दस बुंदेलन खों कुतका बता देऊँ, पै बे अबेर-सबेर कछू नईं देखत।..."

नाग ने बुंदेलों के डरावने चित्र को पूरा न होने दिया। अग्निदत्त से बोला—"यह तो बड़ा कायर मालूम होता है। इन फटियल बुंदेलों से इतना भय खाता है। हरी चंदेल यों ही इसकी गुण-गाथा गाते थे। शायद उनके पैर दाब-दाबकर इसने इतनी कीर्ति कमाई है!"

अर्जुन का चेहरा तमक उठा। धीरे से बोला—"अपुन राजा हौ, मोरे अन्नदाता हौ, ईसें मैं कछू कै नईं सकत। ऐसिई मर्जी होत, तो मोय चिट्ठी दई जाय। मरबे कौ औसर आहै तो कौन माता खों सात बेरैं जनम देनें।"

अग्निदत्त ने नाग को लिखने की सामग्री दी। उसने देर तक कुछ लिखा। लिखने के समय उसके माथे की नसें फूल उठी थीं।

दो बार लिख-लिखकर फाड़ डाला। तीसरी बार एक चिट्ठी लिखकर नागदेव ने अग्निदत्त को दी, और अग्निदत्त ने अर्जुन को। अर्जुन ने चिट्ठी को अपनी धोती के छोर में बाँध लिया।

इतने में हरी चंदेल आया। जुहार करके बोला—"सोहनपालजी आना चाहते हैं। जी अच्छा हो, तो लिवा लाऊँ।"

नाग ने आह्लाद के साथ कहा—"अवश्य लिवा लाइए।"

हरी चंदेल के साथ अर्जुन जाने के लिये उठा, परंतु उसने मना कर दिया। बोला—"यहीं बैठो। शायद कोई अटक पड़े।"

चंदेल के चले जाने पर नाग ने कहा—"ज़रा बतलाओ तो, चिट्ठी किस तरह पहुँचाओगे ?"

अर्जुन—"जैसे बनै, तैसैं पौंचा दैहौं—अपुन खौं का करने अबई।"

सब चुप रहे।

क़ैदी

थोड़ी देर में सोहनपाल, सहजेंद्र, धीर प्रधान, दिवाकर और बुंदेले सरदारों को लिए हुए हरी आ गया। पीछे-पीछे किशुन खंगार भी आया। अर्जुन को वहाँ से किसी ने नहीं हटाया।

आगत-स्वागत के पश्चात् वार्तालाप आरंभ हुआ। धीर प्रधान ने कहा—"श्रीमान् को मालूम हुआ होगा कि हमारे बड़े रावजी राजा अर्जुनपाल ने बटवारे में महापक्षपात के साथ काम लिया था। माहौनी का राज्य वीरपालजी को दिया और राव सोहनपाल को केवल थोड़े-से गाँव। हम लोग परस्पर युद्ध का संकट बहुत दिनों तक टालते रहे और अपने भाई-बंदों से न्याय की प्रार्थना करते रहे, परंतु कई वर्षों के अथक परिश्रम के पश्चात् भी हम लोग इस निश्शस्त्र प्रयत्न में सफल नहीं हुए। अब हमको अपने स्वत्व की रक्षा के लिये हथियार उठाने के सिवा और कोई उपाय नहीं सूझता, परंतु हमारे पास हमारे अटूट हृदयों को छोड़कर इस समय और कुछ नहीं है।"

नाग ने पलँग से थोड़ा उठकर मँजे हुए स्वर में कहा—"रावजी, आपका यह कहना सही नहीं है। आपने कल रात को भरतपुरा की सूखी हड्डियों में जो प्राण-संचार किया और मुसलमानों के हाथों से हमारे मान की रक्षा की, उसको कुंडार कभी नहीं भूलेगा।"

सहजेंद्र की आँखों में खंगार कुमार के लिये स्नेह का मानो प्रवाह उमड़ आया।

दिवाकर के नेत्रों में सुषुप्ति-सी विराजमान थी। सोहनपाल नीची गर्दन किए, मूछ पर हाथ फेर रहा था।

विशुन खंगार बोला—"क्षत्रियों को क्षत्रियों की सहायता करनी ही चाहिए।"

किसी ने इस मंतव्य पर कोई विचार प्रकट नहीं किया।

धीर प्रधान ने कहा—"हम लोगों ने धर्म की रक्षा के लिये, न्याय पाने के लिये, अब कुंडार की शरण ली है। चंदेलराय से हमारा पूर्व-परिचय है, और कुंडार के बहुत निकट भरतपुरा की गढ़ी है। सीधे कुंडार पहुँचकर अपनी प्रार्थना के शीघ्र स्वीकृत होने की हम लोगों को पूर्ण आशा न थी, इसलिये अपने हितू मित्रों का द्वार हमने खटखटाया। सौभाग्य से हमको कुंडार के राजकुमार का दर्शन ऐसे स्थान पर और ऐसे अवसर पर हो गया कि अब हमें अपनी कठिनाइयों का अंत कुछ अधिक निकट दिखने लगा है।" उत्तर की प्रतीक्षा से धीर नागदेव के मुख की ओर देखने लगा।

अग्निदेव बीच में बोला—"रावजी को और आपको कुंडार में और भी कई लोग जानते हैं।"

सोहनपाल ने कहा—"आपके पिता पं० विष्णुदत्त पांडे मुझको बहुत अच्छी तरह जानते हैं। उन्होंने मेरे पिता को भी देखा है। हम लोगों का कई जगह साथ हुआ है। परंतु हम कई ठिकानों से ऐसे निराश हो-होकर लौटे हैं कि कुंडार सीधे जाने का साहस न कर सके।

धीर प्रधान ने अपने लेखे-जोखे में अंतर आता हुआ देखकर तुरंत वार्ता-प्रवाह को दूसरी ओर जाने से रोककर कहा—"मुझे भी आपके पिता बहुत अच्छी तरह जानते हैं। मैंने और उन्होंने कुछ दिनों विदेशी भाषा एक ही जगह कालपी में पढ़ी थी। पर इसको बहुत दिन हो गए हैं। हमको उनके द्वारा भी अपनी प्रार्थना भेजने का अभिमान था, परंतु कुंडार पहुँचकर फिर प्रार्थना अनसुनी रहती, तो अधिक कष्ट होता, इसलिये हम लोगों ने कुछ दूर से प्रयत्न करना श्रेयस्कर समझा। अब कुमार स्वयं यहाँ हैं। उनके उत्तर पर अब हम लोगों का इस गढ़ी में और

अधिक ठहरना या न ठहरना निर्भर है। यदि हमको निराश होकर लौटना पड़ा, तो भी हमको बहुत खेद न होगा, क्योंकि यह हमारा पहला ही अनुभव न होगा। यद्यपि अब रात के आक्रमण के कारण हमारे संगी संख्या में बहुत क्षीण हो गए हैं, परंतु हमारे सामने महाराज पंचम की मूर्ति का आदर्श सदा प्रबल रूप में खड़ा रहता है। इसलिये हमारा हृदय हिम्मत नहीं छोड़ेगा, और हम कभी-न-कभी थोड़े या बहुत साथियों की सहायता से अपनी मनोकामना सिद्ध करेंगे। इसके सिवा हम यहाँ से एक बड़ा मनोहर भाव लेकर लौटेंगे कि यथाशक्ति हम मुसलमानों की शमशीर को कुछ तो मोड़ सके।"

धीर प्रधान कठिनता से अपनी बात पूरी कर पाए थे कि नाग ने आवेश में आकर, परंतु धैर्य के साथ, उत्तर दिया—"आपने जो उपकार हमारे साथ किया है, उसको हम किसी प्रकार भी नहीं भूल सकते। हम चाहते हैं कि हमारा-आपका अखंड संबंध हो। मैं वचन देता हूँ, उसकी साक्षी यह संपूर्ण क्षत्रिय-सभा है।"

चंदेल ने बड़ी चिंता की दृष्टि से राजकुमार की ओर देखा। कुमार ने उस दृष्टि को परख लिया।

मैं जो वचन देता हूँ, वह यह है कि मैं स्वस्थ होते ही कुंडार जाऊँगा और महाराज से आपके लिये सहायता देने के प्रयत्न में किसी प्रकार की कोई कसर न होने दूँगा। आप क्षत्रिय के इस वचन का विश्वास करें।

किशुन सामंत ने भी दृढ़ता के साथ कहा—"क्षत्रिय क्षत्रिय का विश्वास सदा से करता आया है, यह आपके वचन का विश्वास न करें, तो जैसी इनकी इच्छा।"

सहजेंद्र ने मन में कहा—"क्या यह क्षत्रिय है?"

दिवाकर ने भी यही सोचा और सोहनपाल ने भी। धीर प्रधान ने इस वाक्य पर कोई ध्यान नहीं दिया। बोला—"हम पूरा विश्वास करते और आशा करते हैं कि आपकी चेष्टा सफल होगी।"

"परंतु एक शर्त है," नाग ने मुस्किराकर कहा—"आपको कुंडार चलकर हमारे नगर को सुशोभित करना पड़ेगा।"

अपने को क्षत्रिय कहने के अभिमान को मन-ही-मन क्षमा करके सोहनपाल ने कहा—"आप बड़ी शालीनता के साथ आश्रय देते हैं, हम इसलिये और भी बहुत कृतज्ञ हैं। हमारे लिये नगर में ही कहीं सुबीते का स्थान कुछ दिवस के निवास के लिये यदि मिल जायगा, तो हमारे लिये परम संतोष की बात होगी। हम कुंडार के गढ़ में न ठहरकर कहीं बस्ती में ठहर जाएँगे। कारण यह है कि स्वभावतः गढ़ में आने-जाने की स्वाधीनता कम रहेगी और हम बुंदेलों को स्वच्छंद विचरण अधिक आनंददायक प्रतीत होता है।"

नाग ने अपनी निराशा को कठिनाई के साथ संयत किया। बलात् मुस्किराकर कहा—"आप ठीक कहते हैं।"

अग्निदत्त ने तुरंत कहा—"आपको हमारी कुटिया में रहने में आक्षेप न हो, तो वह आपके लिये प्रस्तुत है।"

धीर प्रधान बोला—"वह स्थान गढ़ से बहुत दूर भी नहीं है और बड़ी सुविधा का है। मैंने उसे देखा है। कई खंड का भवन है और हम लोगों की छोटी-सी मंडली कुशल के साथ उसमें कालक्षेप कर सकेगी। जब राजकुमार का घाव पुर जाय और वह यहाँ से चले जायँ, तब आप हमारे पास भरतपुरा गढ़ी में संदेशा भेज देना। हम लोग वहाँ आ जायँगे।"

नाग को इस प्रबंध से असंतोष नहीं हुआ। अग्निदत्त को नाग की सहायता करने का अवसर हाथ लगने के चित्र की कल्पना करके हर्ष हुआ। इधर-उधर की कुछ बातें करने के पश्चात् बुंदेला-मंडली वहाँ से गमनोद्यत हुई। धीर प्रधान ने चलते समय नाग और अग्निदत्त के प्रति कहा—"कुँवर सहजेंद्र और दिवाकर की संगति आपके लिये, आशा है, निंदा का कारण न होगी। दोनो ने अवस्थानुकूल यथेष्ट अध्ययन किया है, और थोड़ा बहुत शस्त्र-विद्या भी जानते हैं।"

नाग ने विकसित होकर कहा—"बुंदेले और बुंदेलों के सहचर आधुनिक समय में शस्त्र-विद्या से अपरिचित रह जायँ, यह एक अनहोनी-सी बात मालूम होती है, और फिर उनका पराक्रम कल रात्रि की लड़ाई में सदा के लिये प्रमाणित हो गया है। मैं तो ऐसे वीर पुरुषों का पूजक हूँ, क्या ये सज्जन आखेट-प्रिय नहीं हैं ?"

धीर ने उत्तर दिया—"उचित से अधिक।"

सहजेंद्र और दिवाकर दोनो ने उस समय रात्रि के जागरण के कारण उन्निद्र होने की बात कहकर और फिर किसी अवसर पर शीघ्र उपस्थित होने का वचन देकर बिदा ले ली। वे लोग कुछ ही दूर गए होंगे कि किशुन ने अपनी सारी बुद्धि को मथकर कहा—"बुंदेलों को कुंडार में नहीं धँसने देना चाहिए। माहौनीवाले दशहरे पर महाराज की सेवा में जुहार करने तक नहीं आते। सोहनपाल अपने भाई को पराजित करके क्या कुंडार के अधीन रहेगा ?"

नाग ने अधीर होकर कहा—"आप काकाजू सामंत हैं और इसी शब्द से आपका वर्णन समाप्त हो जाता है। आप राजकीय विषयों पर कभी कुछ सोचते नहीं हैं, इसलिये आपकी राजनीतिक वार्ता अनुभव के आधार पर नहीं होती।"

किशुन सामंत को आज अपने विषय में यह नई बात मालूम हुई। मन में विरोध और प्रतिकूलता की मात्रा बढ़ी, परंतु वह कुछ कहना ही चाहता था कि हरी चंदेल बोला—"उन दो मुसलमान क़ैदियों के लिये क्या होना चाहिए।"

नाग ने उत्तर दिया—"उनकी बर्बर भाषा मेरे समझ में नहीं आती। कुंडार भेज दीजिए, पांडे काका ही उनसे निबटेंगे। महाराज को यह भी लिख दीजिएगा कि मेरा घाव साधारण है, कोई चिंता न करें। तीन-चार दिन में घाव अच्छा होते ही अग्निदत्त के साथ कुंडार पहुँचूँगा।"

अग्निदत्त ने कहा—"आपकी अवस्था संकट से परे देखते ही मैं

कुंडार जाना चाहता हूँ। सोहनपाल और उनके कुटुंब के डेरे की मैं स्वयं व्यवस्था करूँगा।"

नाग ने कहा—"मैं तुम्हें न रोकूँगा, जब इच्छा हो, तब चले जाना, पर आज मत जाओ।"

पांडे ने स्वीकार कर लिया।

किशुन सामंत, जो चुप हो गया था, बोला—सोहनपाल का संगी धीर अभी तो बढ़-बढ़कर कह रहा था कि मैं देसी-विदेसी न-जानें कौन-कौन-सी भाषाएँ जानता हूँ। उसको बुला न लीजिए। इन लोगों को कुंडारगढ़ भेजने की क्या आवश्यकता है?"

नाग—"काकाजू ठीक कहते हैं। उन लोगों को लौटा लीजिए। विजय के बाद जैसे समर-सभा एकत्रित होती है, वैसे हम लोग बैठें।"

यह बात मान ली गई। अर्जुन उन लोगों को लौटा लाने के लिये भेजा गया।

किशुन बोला—"मैं तो सचमुच निरा सैनिक हूँ। राजकीय बातों को क्या जानूँ। आज्ञा हो, तो जाऊँ।" किशुन की आँखें भेंड़-सी हो गईं।

नाग और अग्निदत्त खिलखिलाकर हँस पड़े। नाग ने कहा—"काका-जी आप तो बुरा मान गए। मैं तो आपके सामने का बालक हूँ, यदि कोई बात बुरी-भली अनजाने निकल गई हो, तो क्षमा करना।"

किशुन पिघल गया। बहुत विनीत भाव से बोला—"राम-राम राजा, आपके मुख से यह वचन किसी के लिये कभी नहीं निकलना चाहिए। इन भुक्खड़ बुंदेलों से कहीं कभी क्षमा न माँग बैठना, नहीं तो कुंडार का बड़ा अपमान होगा। इन लोगों की अकड़ तो देखो, कैसे हाथी की तरह झूम-झूमकर चलते हैं, जैसे संपूर्ण भारतवर्ष के स्वामी ये ही हों। मैं

शपथ-पूर्वक कहता हूँ राजा, इनकी थैली में उतने भी पैसे नहीं हैं, जितने उनकी तलवार के म्यान में भी समा सकें।" किशुन के मन में जो बात लग रही थी, वह उसने कह डाली।

अग्निदत्त ने अवहेला के साथ सुना, नाग ने क्रोध के साथ। बुंदेलों को सामने से लौटकर आता हुआ देखकर नाग ने कुछ तीव्रता के साथ कहा—"अब ज़रा चुप रहिए।"

जब वे लोग आकर बैठ गए, नाग ने उनको लौटा लिए जाने का कारण समझाया।

सोहनपाल बोला—"ये मुसलमान कालपी या एरच की ओर से आए होंगे। चाहे जहाँ घुसकर लूट-मार करना तो इन लोगों का साधारण काम है। मुझे आशा है, दोनो थोड़ी-बहुत हिंदी जानते होंगे। बुला लीजिए। प्रधानजी, दिवाकर और सहजेंद्र तीनो उनकी असली भाषा भी समझ लेंगे। परंतु एक-एक करके बुलाइए।"

नाग के मन में क़ैदियों से वार्तालाप करने और देखने का कौतूहल उपद्रव कर रहा था। उसने सोचा—"हिंदी भी जानते सही, इससे क्या? देखने की इच्छा उनके हिंदी-भाषा-ज्ञान की सूचना पाकर तो शांत होती नहीं।" इसलिये पहले वह क़ैदी बुलाया गया, जो नाग से लड़ते हुए पकड़ा गया था।

क़ैदी लाया गया। उसकी नाक हाथ की मुट्ठी-सी मोटी, चेहरा ढाल के सदृश चौड़ा, हाथ-पैर पुष्ट, सिर पर बहुत छोटे बाल, रँग गोरा और दाढ़ी लंबी थी। जैसे प्राचीनकाल के चित्रों और मूर्तियों में हूणों की कल्पना की गई थी, ठीक वैसी ही जीती-जागती छवि थी।

नाग इससे लड़ाई में कहीं नहीं हिचका था। उतना लंबा-चौड़ा न होने पर भी शरीर में ऐसी सामर्थ्य रखता था कि उसने क़ैदी को देखकर रात के अपने द्वंद्व-युद्ध का अंदाज़ लगाया। वह अपने प्रयत्न का जी में सम्मान करने लगा और किसी आगामी अवसर की आकांक्षा।

नाग ने पूछा—"हिंदी जानते हो ?"

क़ैदी की आँखें चौड़ी-चकली थीं, परंतु स्थिर न थीं। नीची करके बोला—"बहुत कम।"

धीर प्रधान ने दुभाषिए का काम किया।

नाग ने कहा—"क्या नाम है ?"

क़ैदी—"अलीबेग।"

नाग—"कौन हो ? पठान ?"

क़ैदी—"जी नहीं, तुर्क मंगोल।"

नाग—"कहाँ से आए थे ?"

क़ैदी—"कालपी से।"

नाग एक विचार में क्षण-भर के लिये डूब गया।

नाग—"कितने आदमी आए थे ?"

क़ैदी चुप रहा।

नाग ने कहा—"तुम्हें यदि नहीं बतलाना है, तो न बतलाओ। क़ैदी के लिये तुम्हारे यहाँ क्या सज़ा है ?"

क़ैदी काँप उठा।

नाग ने ज़रा तीव्र स्वर में कहा—"यदि तुम लोग किसी हिंदू को क़ैद करते, तो उसके साथ क्या बर्ताव करते ?"

क़ैदी ने अधिक चुप रहना संकट-पूर्ण समझकर कहा—"हमारे यहाँ बहुत-से दंडों का विधान है।"

नाग ने धीर प्रधान से कहा कि "इससे स्पष्ट प्रश्न करिए कि कौन-कौन-से दंड नियुक्त हैं ?"

क़ैदी ने उत्तर दिया—"क़ैद-बैद दे देते हैं, और कोई स्वीकार करे, तो मुसलमान बना लेते हैं।"

इस उत्तर पर सोहनपाल, सहजेंद्र और दिवाकर की आँखों से मानो चिनगारियाँ झरने लगीं।

सोहनपाल ने संयत होकर कहा—"ये लोग कभी-कभी इससे भी अधिक उदारता दिखलाते हैं—अर्थात् शीघ्र संसार से बिदा कर देते हैं।"

नाग ने पूर्ववत् प्रश्न करना आरंभ किया।

नाग—"वध का दंड किस हालत में देते हैं ?"

क़ैदी का सिर झुक गया। कुछ न बोला।

नाग—"कालपी में तुम्हारा सेनापति इस समय कौन है ?"

क़ैदी—"अमीनुद्दीनख़ाँ।"

नाग—"वह कहाँ है ?"

क़ैदी—"कालपी में।"

नाग—"वह रात में यहाँ था या नहीं ?"

क़ैदी—"जी नहीं। मैं झूठ नहीं बोलता।"

नाग—"बादशाह बलबन बंगाल से तुग़रिल को दंड देकर अभी लौटा या नहीं ?"

क़ैदी बलबन का नाम सुनकर भयभीत-सा हुआ। बोला—"अभी बादशाह नहीं लौटा है।"

नाग—"तुम यहाँ किसके भेजे हुए आए ?"

क़ैदी—"हमको यहाँ हमारा सरदार लिवा लाया।"

नाग ने कड़ककर कहा—"झूठ मत बोलना, नहीं तो हम तुमको इसी समय वध का दंड देंगे। क़ैद में रखकर अपनी भोजन-सामग्री का नाश करना हम पसंद नहीं करेंगे। हिंदू तो हम तुमको बनाने से रहे।"

क़ैदी ने पृथ्वी पर अपना सिर टेक दिया और प्राणों की भिक्षा माँगी।

नाग ने और भी ज़ोर देकर पूछा—"बतलाओ, बतलाओ। पूरी बात बतलाओ।"

क़ैदी—"हम लोग स्वयं अपनी जिम्मेदारी पर कुंडार लूटने के इरादे से यहाँ आए थे। भरतपुरा लूटने का हमारा विचार न था। यदि भरतपुरा हमारे हाथ में आ जाता, तो हम यहाँ से कुंडार जाने के मंसूबे पर अमल करते। परंतु हमको अमीनुद्दीनख़ाँ ने इजाज़त दे दी थी और अपने नायब को हमारे साथ कर दिया था। वह ख़ुद इसलिये नहीं आए कि बादशाह बलबन न-मालूम कब बंगाल की तरफ़ बुला भेजे। अब मैं विनती करता हूँ कि जान से न मारा जाऊँ। क़ैद भले ही कर दिया जाऊँ।"

नाग—"यह बतलाओ कि तुम कितने आदमी आए थे?"

क़ैदी—"हम लोग आठ सौ आदमी थे।"

नाग—"घुड़सवार या पैदल या दोनो?"

क़ैदी—"दोनो।"

नाग—"किस आशा पर आए थे? क्या तुम समझते थे कि आठ सौ आदमियों की सहायता से कुंडार जीत लिया जायगा?"

क़ैदी—"हम लोगों को केवल लूट करनी थी, देश को अधीन थोड़े ही करना था। हम लोगों ने इस मतलब के लिये इतने आदमी काफ़ी समझे थे।"

नाग—"तुम लोगों को यह बात याद नहीं रही कि बलबन के साथ इस समय हमारा विग्रह नहीं है, किंतु संधि है?"

क़ैदी—"परंतु हम लोगों का यह ख़याल था कि बादशाह या तो बंगाल में मर जावेगा या यदि वहाँ से तुग़रिल को पराजित करके लौट भी आया, तो ऐसे छोटे-से मामले के लिये किसी को कुछ कष्ट न देगा। इसके सिवा हम लोगों से कहा गया था कि कुंडार के महाराजा ने बादशाह को ख़िराज नहीं दिया है।"

नाग ने अपने दाँत पीसकर क्रोध को रोक लिया। सोहनपाल बैठे-बैठे थोड़ा-थोड़ा हिलने लगा।

दिवाकर ने बहुत धीरे से सहजेंद्र से कहा—"जुझौति-देश की पराधीनता की बेड़ी टूटने का समय अभी दूर है।"

सहजेंद्र आह भरकर बोला—"अवस्था बड़ी विपरीत है। देखो कब बदलती है।"

नाग ने कहा—"अब और कुछ नहीं पूछना है। तुम क्या चाहते हो ?"

क़ैदी ने गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की—'मुझे क़ैद में बना रहने दीजिए, परंतु मार मत डालिए।"

नाग ने उत्तर दिया—"तुमको कुंडार के बंदीगृह में भेजा जायगा। महाराज तुम्हारा न्याय करेंगे।" फिर पहरेदारों को आदेश किया—"इसको इसी समय कड़े पहरे में कुंडार ले जाओ। पांडेजी महाराज को मेरी ओर से मेरा विनय-पत्र भेज दो, उसमें प्रार्थना कर दो कि मेरे आने तक इसके विषय में कोई अंतिम आज्ञा न प्रकाशित की जाय।"

पांडे ने चिट्ठी लेकर पहरेदारों को दे दी। वे लोग उसको लेकर चले गए। फिर दूसरा क़ैदी लाया गया। यह क़ैदी कुछ अधिक सुंदर आकृति का था। युवावस्था के आगे निकल चुका था। रँग साँवला था। क़द लंबा, दाढ़ी बीच में से दोनो ओर मुड़ी हुई और मूछें केवल होठों के किनारों पर। सिर बड़ा और माथा सकरा, नाक सीधी परंतु छोटी। आँखें निर्भय मानो मौत का आवाहन कर रही थीं। चाल धीमी और पैर दृढ़। जिस समय वह आया, अदब के साथ खड़ा हो गया। आँखें नीची कर लीं, परंतु भयभीत होने का उसने और कोई चिह्न प्रकट नहीं किया।

नाग ने पूछा—"तुम हिंदी जानते हो ?"

क़ैदी—"जी हाँ, काम-चलाऊ।"

नाग—"कौन हो ?"

क़ैदी—"अरब।"

नाग—"यहाँ क्यों आए ?"

क़ैदी—"शैतान और अभाग हमको यहाँ ले लाया।"

नाग—"जानते हो, इसका क्या दंड है?"

क़ैदी—"सो तो मैं कल रात को ही आपसे सुन चुका हूँ। हुक्म दीजिए, भुगतूँ और खुटका दूर हो।"

नाग—"तुम मौत से नहीं डरते?"

क़ैदी—"डरता हूँ। परंतु जब तक वह सामने नहीं होती। लेकिन जब सामने ही आ पहुँची, तब डरने से क्या होता है?"

नाग—"तुम यहाँ क्यों आए थे?"

क़ैदी—"मैं यदि सच्चा जवाब दूँगा, तो आप प्रसन्न न होंगे। जिस प्रयोजन से हम लोग आए थे, वह छिपा नहीं है। अब तो आप दंड की आज्ञा देकर जी का खुटका दूर कर दीजिए।"

नाग—"ऐसी अवस्था में हिंदू क़ैदी के साथ कैसा बर्ताव करते हैं।"

क़ैदी—"मुसलमान बनाएँगे, ग़ुलाम कर लेंगे। नहीं तो मार डालेंगे। क़ैद की ज़ल्लत कम होती है।"

नाग—"तुम कहाँ के रहनेवाले हो? घर अरब में है?"

क़ैदी—"जी नहीं, मुल्तान में। अर्से से हमारा ख़ानदान वहीं रहता है।"

नाग—"तुमको छोड़ दें, तो क्या करोगे?"

वह छोटी-सी सभा इस प्रश्न पर सन्न रह गई।

क़ैदी—"सीधा मुल्तान जाऊँगा। कालपी में अब नौकरी न करूँगा।"

नाग—"तुम्हारा नाम?"

क़ैदी—"इब्न करीम।"

नाग—"तुम क्या-क्या हुनर जानते हो?"

क़ैदी—"वे अब सब बेकार जाँयगे, पर गिना देने में कुछ हानि नहीं

है। सब तरह के हथियार चलाना जानता हूँ। सब तरह के हथियार बनाना जानता हूँ। मैंने अभी तक अपने खाँड़े से कई गुर्जें काटी हैं, परंतु जिस सिपाही की गुर्ज पर वार करने के बाद खाँड़े से हाथ धो बैठा, उसकी गुर्ज अजीब थी। यही एक नहीं काट पाई। खाँड़ा भी गया। और मैं भी रास्ते में ही हूँ।"

नाग—"तुमको हम प्राण-वध का दंड देना चाहते हैं। मरने के पहले क्या कुछ कहोगे?"

किशुन सामंत प्रसन्न हुआ। बुंदेला-मंडली ने लापरवाही दिखलाई। चंदेल चिंतित हुआ। क़ैदी ने भय का कोई विशेष लक्षण प्रकट नहीं होने दिया।

क़ैदी—"मुझे कुछ नहीं कहना है। मेरे सिवा एक बुढ़िया के और कोई नहीं है। सो वह मुझको उसी दिन मरा हुआ समझ गई, जिस दिन मैंने पैसा कमाने की नीयत से परदेस में भटकने की ठानी। शाम से पहले वध होगा या बाद? शाम की नमाज़ पढ़ लेने के बाद यदि वध किया जाऊँ, तो बड़ी दया होगी।"

क़ैदी ने यह प्रार्थना बड़े ही विनम्र भाव के साथ की।

दिवाकर अपने को न रोक सका। बोला—"क्यों जनाब, गाँव में आग लगाने के पहले, स्त्रियों और बालकों को खाक कर डालने के पहले भी क्या आपने नमाज़ पढ़ने के लिये कुछ समय निकाल लिया था या नहीं?" और ज़रा मुस्किराया। परंतु वह मुस्किराहट बड़ी रूखी थी।

दिवाकर की आँखें एक क्षण के लिये जैसे आग का गोला हो गई हों। प्रश्न करने के पश्चात् उसने दूसरी ओर अपना मुँह कर लिया। सहजेंद्र को उसकी प्रतिमा भली मालूम हुई। अग्निदत्त मुस्किरा उठा। क़ैदी ने उदास भाव के साथ कहा—"युद्ध यदि कोई अच्छा काम है, तो ये सब कर्म उसके अंग हैं; परंतु अब ज़्यादा बहस की क्या ज़रूरत

है ? मुझे थोड़ी देर के लिये अपनी कोठरी में अकेला छोड़ दीजिए, फिर मरने के पहले उसी जगह नमाज़ पढ़ लूँगा, जहाँ मारा जाऊँगा। एक अर्ज़ और है। मरने के बाद मेरी क़ब्र इस नदी की धार में बना दीजिएगा।" यह कहने पर उसके होंठों पर बहुत क्षीण मुस्किराहट भी आई।

नाग ने सहजेंद्र से पूछा—"आपकी क्या सम्मति है ?"

सहजेंद्र इस अचानक प्रश्न पर अकचका गया। उसको उत्तर देते न देखकर नाग ने सोहनपाल से वही प्रश्न किया।

सोहनपाल ने मूछ पर हाथ फेरकर कहा—"मेरा विश्वास है कि इसी दल ने मेरे बुंदेलों का नाश किया है। परंतु इसमें भी कोई सदेह नहीं कि उन बुंदेलों ने अपने से दुगुनी संख्या में इसके साथियों का हनन किया। प्रधानजी, आपकी क्या सम्मति है ?"

धीर प्रधान ने उत्तर दिया—"यदि वध का दंड पाने योग्य कोई आकृति थी, तो पहले क़ैदी की। वध का दंड यदि देते, तो कल रात को ही दे देते। यह बात हिंदुओं के रण-शास्त्र के विरुद्ध है। वध का दंड मत दीजिए।"

सोहनपाल ने कहा—"मेरी भी यही सम्मति है।"

सोहनपाल के साथ के जो बचे हुए बुंदेले वहाँ थे, उन्होंने भी यही कहा।

किसी स्मृति से प्रेरित होकर आदर के साथ नाग ने सहजेंद्र के प्रति कहा—"बड़ों की सम्मति तो मालूम हो गई, अब अपने समकक्ष सैनिकों का भी विचार जानना चाहता हूँ। आपका क्या मंतव्य है ?"

क़ैदी नीची गर्दन किए सब सुन रहा था।

सहजेंद्र ने चंदेल की ओर संकेत करके उत्तर दिया—"इस क़ैदी पर वास्तव में आपका और चंदेल सामंत का अधिकार है। यदि आप इसे वध न करना चाहते हों, तो मैं भी आपके साथ सहमत हूँ।"

नाग क़ैदी से बोला—"इन बुंदेले सामंतों की भी राय है, इसलिये तुमको वध का दंड नहीं दिया जाता।"

क़ैदी की आँखों से दृढ़ता और निर्भयता मानो टपक पड़ी। बोला—"मैं क़ैद पसंद नहीं करता। मुझको तो वध का दंड दीजिए। जन्म-भर बंदीगृह की ईंट-पत्थर गिनते रहने की शक्ति मुझमें नहीं है।"

नाग ने अब तक दिवाकर से कुछ नहीं पूछा था। इसलिये अबकी बार उससे पूछा—"क्यों महाशय, क्या करना चाहिए? आप भी हमारी रण-सभा के सदस्य हैं।"

दिवाकर ने बिना हिचकिचाहट के कहा—"मेरी तुच्छ सम्मति में इसको कुंडार ले चलिए। इसकी देख-रेख और राज्य के निरीक्षण में इससे हथियार बनवाइए। परंतु यहाँ से पहरे में ले जाइए। इन लोगों की शपथ का यद्यपि मुझको कोई विश्वास नहीं, तथापि इससे शपथ ले लीजिए।"

इब्न करीम ने नम्रता और कृतज्ञता के साथ कहा—पर उसके कहने में अभिमान की भी पुट थी—"मैं तुर्क, मुग़ल या पठान कुछ भी नहीं हूँ। मैं अरब हूँ। मैं ईमान से कह सकता हूँ कि जंग के मौक़े के सिवा मैंने कभी किसी को नहीं सताया। हिंदुओं के बीच में रहते हुए मेरे कुटुंब को दो सौ वर्ष के क़रीब हो गए हैं। यद्यपि मैं अपने धर्म का पक्का और पाबंद हूँ, परंतु दूसरों के धर्म पर मैंने कभी आघात नहीं किया। मैंने लड़ाई के लिये लड़ाई लड़ी है। लूट में मैं ज़रूर कई बार शरीक हुआ हूँ, परंतु जब मैं आपका निमक खाऊँगा, तब मज़हब को छोड़कर, बाक़ी सब क़ायदे आपके ही बरतूँगा, इसके लिये मैं कलाम पाक की क़सम खाता हूँ। और यदि आप मुझे आज़ाद करके छोड़ दें, तो मैं शाही फ़ौज में इस तरफ़ हरगिज़ नौकरी करने न आऊँगा। कहीं और चला जाकर पेट भरूँगा।"

दिवाकर को उसके पिछले वाग्दान पर विश्वास नहीं हुआ। नाग भी किसी विचार में पड़ गया।

नाग ने कहा—"हम तुमको कुंडार ले चलना चाहते हैं।"

इतने में कुछ पहरेदार दौड़ते हुए आए। बोले—"अन्नदाता, छिमा होवे।"

नाग ने चौंककर कहा—"क्या हुआ ?"

चंदेल ने भी चौंककर यही प्रश्न किया। अर्जुन ने कहा—"का भओ ? कहत काए नइँयाँ ?"

वे बोले—"बंदी छूट गओ ?"

चंदेल ने कड़ककर कहा—"शठो, तुम्हारे जीते जी बंदी कहाँ चला गया ?"

उनमें से एक बोला—"महाराज, नदी की धार में कूद परो। हाथन में से सरक गओ।"

नाग ने किशुन से कहा—"आप अपने कुछ सैनिक लेकर शीघ्र मुहरा-घाट की ओर जाइए। यदि वह जीता रहेगा, तो उस घाट पर ही लगेगा, उससे नीचे नहीं जायगा। चंदेल ने उन पहरेदारों को कुछ दंड देने का निश्चय सुनाकर वहाँ से रवाना कर दिया। किशुन वहाँ से चल दिया।"

इब्न करीम ने विनीत भाव के साथ कहा—"क्या मैं इस कमबख़्त क़ैदी का नाम जान सकता हूँ ?"

नाग ने रुखाई के साथ उत्तर दिया—"लत्तीबेग या ऐसा ही कुछ।"

करीम—"अत्तीबेग तुर्क या मुग़ल था। लड़ाई में उसको कभी पीछे हटते नहीं देखा। वह एक दस्ते का सरदार था। ऐसा कायर निकला !" इसके पश्चात् वह चुप हो गया।

नाग ने करीम से पूछा—'तुम पहरे में रहना पसंद करोगे या तुमको तुम्हारे वचन पर गढ़ी में छोड़ दिया जाय ?"

करीम ने सोचकर उत्तर दिया—"हुज़ूर, मैं तब तक पहरे में ही रहना पसंद करूँगा, जब तक आप मेरा भरोसा नहीं कर सकते।"

धीर प्रधान ने कहा— तब, जैसा यह कहता है, वैसा ही करिए। कुछ दिन देखने के बाद मुक्त कर दीजिएगा।"

नाग ने स्वीकृत किया और बंदी को वहाँ से भेज दिया।

संध्या होने में थोड़ा ही विलंब था। इसीलिये बुंदेला-मंडली अपने डेरे की ओर चली गई।

उद्घाटन

हरी चंदेल फाटक की बुर्ज का और अर्द्धदग्ध गाँव का पहरा ठीक करने के लिये फाटक पर गया। अर्जुन पीछे था।

अर्जुन असाधारण विचार-मग्न जान पड़ता था। कभी भौंहें सिकोड़ लेता था। कभी अपनी स्वाभाविक प्रकृति के अनुसार मुस्किरा लेता था और कभी इस तरह से इधर-उधर देखता था, जैसे किसी बड़े महत्त्व-पूर्ण रहस्य के उद्घाटन के लिये व्यग्र हो। कार्य से अवकाश पाकर चंदेल बुर्ज पर चला गया।

सूर्य का प्रकाश अभी था, परंतु बहुत ठंडी हवा चलने लगी थी। नाग के साथ परामर्श-भवन में देर तक बैठे रहने, तिस पर रात-भर के परिश्रम और जागरण के कारण उसका शरीर जकड़-सा गया था। शीत पवन के स्पर्श से शरीर की जकड़ खुल गई, और हृदय को बल प्राप्त हुआ।

सूर्य की कोमल किरणें वृक्ष-शिखाओं की झुरमुटों की अनवरत समस्थली पर बिछौना-सा बिछाए हुए थीं। पलोथर, कुंडार और दक्षिणवर्ती सारौल की पहाड़ियाँ इन झुरमुटों के ऊपर उकड़ूँ-सी बैठी या लेटी मालूम पड़ती थीं। कुंडारगढ़ के बुर्ज प्रकाश में चमक-से रहे थे। गिरि-श्रेणियाँ ऐसी मालूम पड़ती थीं, मानो भीमकाय अटल सैनिक जुझौति के इस खंड की रक्षा के लिये डटे हों।

बेतवा नदी अपनी दोनो धारों से कलकल करती बहती जा रही थी। कुछ दूर ऊपर से पत्थरों के टकराने का शब्द पवन के साथ मिलकर कभी धीमा और कभी प्रबल हो जाता था। दोनो धारों के बीच में कई टापू बन गए थे। एक जो सबसे बड़ा था, और अब भी है, लगभग आध मील लंबा और पाव मील चौड़ा था।

उसके किनारों पर जामुन और ऊमर के सघन और सदा हरे रहनेवाले वृक्ष नीचे को झुक आए थे। अस्ताचलगामी सूर्य की किरणें हरी पत्तियों के साथ कलोल-सी कर रही थीं। इनके नीचे कहीं पतली-सी धार बहती थी, और प्रायः बड़े-बड़े गहरे नीले जल से भरे हुए दह थे। पक्षी इन पर अपनी परछाहीं डालते हुए रात के बसेरे के लिये इधर-उधर चले जा रहे थे। कभी बाज़ को और कभी किसी जंगली पशु को पानी के लिये किसी दह की ओर उतरते हुए देखकर टिटहरी बोल उठती थी।

चंदेल ने कुछ उदास-भाव से इस दृश्य को और विशेषतः कुंडारगढ़ को देखा। रात के युद्ध और दिन की रण-सभा के बाद उसके मन में कोई पूर्व-स्मृति जाग उठी। मन में कहा—"कभी यहाँ हम लोगों का राज्य था। किसान सुखी थे। युद्ध होते थे, परंतु उनसे कोई नहीं बोलता था। बड़े-बड़े भवन बनवाए गए, झीलें बाँधी गईं, गढ़ बने। अब कुछ नहीं बचा। केवल कहीं-कहीं थोड़े गाँव हाथ में हैं। रात को मुसलमान ने परमर्दिदेव की याद दिलाई थी। अब फिर कभी हमारा समय न आवेगा। हाय कालिंजर!" एक लंबी आह चंदेल की छाती से निकली, और एक छोटा-सा आँसू आँख में आया, जिसको उसने अपनी कड़ी उँगली से शीघ्र पोंछ डाला।

अर्जुन पीछे न-मालूम कब आ गया था। चंदेल को लंबी आह खींचते सुनकर बोला—"दाउजू, ठंडी पौन चल रई, अपुन रात-भर के जगे हो। रखवारी कौ सब सरंजाम अपुन ने करइ दओ है, अब पधारो और तनिक विश्राम कर लेओ।"

चंदेल ज़रा-सा चौंक पड़ा, परंतु वह अर्जुन के स्नेहमय हृदय को पहचानता था। एकांत में उदासी के आक्रमण के समय एक सहानुभूतिमय हृदय का सामीप्य लक्ष्य करके, जैसे गहरे पानी में अकेले तैरनेवाले को एक परिचित का संग मिल जाने से संतोष होता है, उसी प्रकार उसे भी संतोष हुआ।

चंदेल ने कहा—"अभी चलते हैं। अर्जुन, तेरी आँखें कुछ संवाद कह रही हैं। जैसे तू कोई रहस्य खोलना चाहता है। यह क्या निकाला ?"

अर्जुन ने अपने कपड़े में से नाग का पत्र निकाला। बड़े आत्मगौरव के साथ बोला—"दाउजू, मोय इत्ते दिना चरनन में रहत हो गए, पै अब तक गुप्त राख कें मैंने कछू, नईं करो। मैंने दाउजू जब लुगाई करी ती, तो मैंने अपुन खों जता दई ती; जब बछिया की पाँत दई तो, तब अपुन सें पूँछ-पूँछ कें न्योतौ दओ हतो। बा मरइ गई दारी सो अब ईखों का करों......"

चंदेल ने हँसकर कहा—"यह तो मुझे मालूम है। पर खेद है कि तुम्हारी जाति-पाँति का नहीं हूँ, नहीं तो कहीं से एकाध कुम्हारिन ढूँढ़कर फिर तेरी बछिया करा देता। ब्याह करेगा ?"

कुम्हार सैनिक ने दूसरी ओर मुँह करके उत्तर दिया—"अरे दाउजू, अब मरती काले का ब्याउ करत।"

चंदेल—"तब यह चिट्ठी क्या किसी और जाति की स्त्री ने तेरे ऊपर प्राण न्योछावर करने को भेजी है ?"

अर्जुन लगभग ४५ वर्ष का अधेड़ मनुष्य था। बाल कुछ-कुछ सफ़ेद हो चले थे। घर में स्त्री बहुत दिनों से नहीं थी। लड़के थे, वे खेती-पाती और कुंभकारी का काम करते थे।

अर्जुन ने चिट्ठी चंदेल के हाथ में देकर धीरे से रहस्य-पूर्ण स्वर में कहा—"दाउजू, जा पाती मोखों छोटे राजा ने दई है और अज्ञा दई है कि सोहनपाल बुंदेला की बेटी खों गुप-चुप दै आओ। दाउजू, मैं बिना अपुन के हुकम के तिनूका नईं टार सकत, बोटी-बोटी भलाईं कट जाय, पै जब नों जियत हौं, चंदेल के सिवाय और काऊ की नईं मानों।"

अर्जुन चुप हो गया। चंदेल के चेहरे पर चिंता के बादल उमड़

आए। चिट्ठी खोली नहीं। सोचने लगा—"कुमार से और सोहनपाल बुंदेले की कन्या से क्या संबंध? सोहनपाल क्षत्रिय, नागदेव खंगार। ये लोग अपने को राजपूत कहते हैं, परंतु इसको मानता कौन है? तिस पर सोहनपाल अतिथि हैं। और, फिर अनाचार की चेष्टा मेरी ही गढ़ी में! मैं अपनी ही नाक के नीचे इस अनाचार को कदापि न होने दूँगा। परंतु मैंने स्वामिधर्म की शपथ ली है। मैं नाग का या कुंडार-राज्य को अपने किसी काम से कोई हानि नहीं पहुँचा सकता। फिर भी अनाचार कैसे होने दूँ? क्या करूँ? हे भगवन्!" एक क्षण के लिये अस्तप्राय सूर्य की ओर स्वामिधर्मी चंदेल सैनिक ने देखा।

कुछ विलंब के बाद हरी ने अर्जुन से कहा—"यह पत्र सोहनपाल की बेटी के पास मत ले जाओ।"

"मैं काए खौं लएँ जात? मैंने अपुनईं खौं गहा दओ। पै जब छोटे राजा पूँछैं, तब उनसैं का कैओं? जा नाकै दओ कै मैं सपरन गओ तो, सो नदिया में बै गई।"

"नहीं, यह मत कहो। कह देना कि दे आया।"

"और जब बे पूँछहैं कै पलटे में का कई, तब का कैहौं?"

"कह देना कुछ नहीं—केवल यह कि उन्होंने डाट-डपटकर भगा दिया। जाओ, अभी कह दो।"

"बे पूँछहैं कै पौंचो कैसें हतो, तबका कैहौं?"

"अबे मूर्ख, यहाँ से टल। ऐसा भोला बनता है कि जैसे पहले कभी झूठ बोला ही न हो। तू सैकड़ों प्रकार से गढ़ सकता है।"

"हओ, सो तौ मैं सैकरन का हज्जारन बना लैहौं। मैं अबई जात।"

अर्जुन वहाँ से चला गया।

चंदेल धीरे-धीरे उस बुर्ज पर टहलने लगा। उसके हृदय में भावों की उथल-पुथल हो रही थी। उसने अभी तक चिट्ठी पढ़ी नहीं थी। सोचा कि "इसको पढ़ूँ या न पढ़ूँ। पराई चिट्ठी पढ़ने का मुझे क्या अधिकार?

फिर क्या इसको फाड़कर फेंक दूँ? गढ़ी के नायक के अधिकार से मुझ को इस पत्र के रोकने या न रोकने का स्वत्व प्राप्त है। परंतु सामंत होकर दूसरे की गुप्त पत्री पढ़ने का, दूसरे के निजी रहस्य और भेद ढूँढ़ निकालने का मुझे क्या अधिकार है? मैं चिट्ठी न पढ़ूँगा। फिर क्या फेंक दूँ? नहीं अभी नहीं। या तो इसको सीधे महाराज के पास कुंडार भेज दूँगा और स्वामिधर्म निबाहूँगा, या फाड़कर फेंक दूँगा। फाड़कर फेंक देने से यह ज्ञात न होगा कि इसमें क्या लिखा है। महाराज के पास भेज देने से पीछे मुझे भी मालूम हो जायगा कि कुमार ने चंदेल की गढ़ी में बैठकर क्या षड्-यंत्र रचा था। मालूम नहीं, इस विषय में पांडे का भी हाथ है या नहीं। कदाचित् कुमार ने उसको अपने भेद में बँटिया न बनाया हो—और कदा-चित् बनाया हो। वह उस पर स्नेह करते हैं। रात को उसे फाटक के संकट-मय मोर्चे पर नहीं भेजना चाहते थे। परंतु महाराज के पास पत्र भेज देने में कदाचित् कुमार पर कोई संकट आवे। यद्यपि महाराज नाग को बहुत चाहते हैं, परंतु कदाचित् उनका सहज-कोपी स्वभाव सुलग उठे। तो इसको फाड़ ही क्यों न डालूँ?" चंदेल ने फाड़ने के लिये चिट्ठी को दोनो हाथों में ले लिया, परंतु न फाड़ सका। सोचा—"अभी नहीं। कल सबेरे तक इसको अपने पास रक्खूँगा। इसके संबंध में शायद कोई और बात सबेरे तक विदित हो। कल सबेरे फाड़ूँगा, परंतु अर्जुन को अभी कुमार के पास उत्तर लेकर न भेजना चाहिए था, उसको लौटा लूँ। फिर रात में विचार करने के बाद जैसे निश्चय पर पहुँचूँगा, वैसी काररवाई करूँगा।"

चंदेल ने बुर्ज के भीतर पहरा लगानेवाले एक सैनिक को पुकारा। सैनिक आ गया।

चंदेल ने पूछा—"अर्जुन नीचे है?"

"दाउजू, बौ तो कऊँ चलो गओ है।"

"राजकुमार के डेरे की ओर गया होगा। जहाँ मिले, शीघ्र बुला लाओ। दौड़कर जाना।"

सैनिक वहाँ से दौड़ता हुआ चला गया।

चंदेल अर्जुन की प्रतीक्षा उत्कंठा के साथ करने लगा।

थोड़ी देर में सैनिक हाँफता हुआ लौटकर आया। बोला—"दाउजू, अर्जुन छोटे राजा के डेरा में बैठो मिलो मोय। बौ तो आउत्तो, पै छोटे राजा ने नईं आउन दश्रो। उनने कई है के छिन-भर के बिलम से आउत।"

चंदेल दाँत पीसकर रह गया। सैनिक से कहा कि अपना पहरा लगाओ, और स्वयं पलोथर के उत्तरी सिरे की ओर देखने लगा।

वहाँ उसने पलोथर की सबसे ऊँची चोटी के निकट धुआँ उठते हुए देखा। इस धुएँ में उसकी मिट्टी की चिता समा गई।

"पलोथर पर इस समय कौन आग जला रहा है? क्या मुसलमान पलोथर पर पहुँच गए हैं? बरौल और देवरा की चौकियाँ क्या सूनी हैं? परंतु इस स्थान पर मुसलमान बिना किसी जानकार देश-द्रोही की सहायता के नहीं पहुँच सकते। पर वहाँ जाकर मुसलमान करेंगे क्या, और कितने पहुँचे होंगे? वहाँ से चारो ओर की दशा से परिचित होकर फिर कुंडार या शक्तिभैरव पर आक्रमण कर सकते हैं।" ये विचार चंदेल के मन में उठने लगे।

थोड़े समय के अनंतर सूर्यास्त हो गया।

ग्रीष्म-ऋतु में सूर्यास्त के पश्चात् भी थोड़े समय तक प्रकाश बना रहता है, परंतु जाड़ों में सूर्यास्त होते ही अंधकार एकत्र होने लगता है। अँधेरा हो चला।

इसी समय पलोथर की उक्त चोटी पर से एक छोटी-सी लौ छूटी और फिर कुछ क्षण के पीछे जहाँ बुंदेलों का डेरा था, वहाँ से उसी तरह की लौ उठी। गढ़ी की लौ पलोथरवाली लौ से कुछ बड़ी थी।

दोनो प्रकाशों को चंदेल ने देखा। चंदेल सामंत था और निडर

था, परंतु पलोथर की ऊँची चोटी-जैसे स्थान पर लौ का उठना और लगभग उसी समय गढ़ी में से लौ का छूटना देखकर अकचकाया।

उस समय भूत-प्रेत के अस्तित्व में लोगों का आम विश्वास था। इसलिये पहले तो चंदेल को भूत-बाधा की शंका हुई, परंतु यह शंका अधिक समय तक नहीं खटकी। जन-साधारण के इस विश्वास का चंदेल भी सहभागी था कि प्रेत धुआँ नहीं करते, किंतु बिना धुएँ की लपटें उठाते हैं।

इतने में अर्जुन सीढ़ियों पर से आता दिखलाई पड़ा।

सामंत को पत्रवाली बात याद आ गई। परंतु उसका मन पलोथर की चोटी और गढ़ी की ड्योढ़ी से उठी हुई लौ में इतना उलझा हुआ था कि उसे कुमार के पास अर्जुन को भेजने पर अब अधिक पछतावा न था।

अर्जुन ने आते ही पूछा—"दाउजू ने काएकें लानें बुलाओ तो?"

चंदेल को पहले ही यह क्लेशजनक विश्वास हो गया था कि अर्जुन अपना सँदेसा भुगता आया। इसलिये अब पश्चात्ताप करना व्यर्थ था। इस समय लौ के उठने का विषय अधिक हृदयग्राही हो उठा था।

चंदेल ने पूछा—"पलोथर पर अंधकार में भी जो धुआँ दिख रहा है, वह क्या हो सकता है?"

अर्जुन ने तुरंत उत्तर दिया—"दाउजू, कौनउँ बाबा बैरागी ने धूनी रमाई है। चार-पाँच बरसें भईं, तब एक महत्तमा उतै आए ते। जात्रा जुरी ती, और मैं सोउ दर्शन करबे खों गओ हतो। अपुन चाए भूल गए होउ।"

चंदेल को स्मरण हो आया। बोला—"मुझे स्मरण है। परंतु एक बात बड़ी विचित्र मालूम होती है। चोटी पर एक लौ उठी थी।"

"औ दाउजू, मैंने बुंदेलन के डेरा में अबै-अबै चले आउतन में ऊसि यई लौ देखी, जैसी अपुन कहत हो। पलोथरवारी लौ मैंने नईं देखी, झूँठ काए खों कओं।"

चंदेल ने कहा—"मैं इसका जाकर पता लगाता हूँ।"

अर्जुन ने उत्सुकता के साथ कहा—"मोसें और छोटे राजा सें जो बातें भईं हैं, वे मोए सुनानें हतीं।"

चंदेल ने जाते-जाते उत्तर दिया—"अभी तुम्हारी लंबी कहानी के सुनने के लिये मेरे पास अवकाश नहीं है। अपना पहरा समाप्त करके मेरे पास आना। वहीं पर रात को तुम्हारी सब बातें सुनूँगा।"

ज़रा ठहरकर फिर प्रश्न किया—"कुमार का घाव तो अच्छा है?"

अर्जुन ने दुष्टता-पूर्ण मुस्किराहट के साथ उत्तर दिया—"हओजू, पाँव को घाव तो अच्छौ है।"

चंदेल अर्जुन पर एक तीव्र दृष्टि डालता हुआ वहाँ से गया।

अनुसंधान

चंदेल बुंदेलों के डेरे की ओर गया। ड्योढ़ी पर दिवाकर पहरा लगा रहा था। और कोई बाहर नहीं था।

दिवाकर ने शिष्टता के साथ चंदेल को जुहार किया। चंदेल ने स्नेह-पूर्वक जुहार स्वीकार करके दिवाकर से पूछा—"सोहनपालजी कहाँ हैं ?"

दिवाकर ने उत्तर दिया—"भीतर।"

"क्या कर रहे हैं ?"

"दुर्गाजी की पूजा।"

सामंत चंदेल लौ उठने का कारण कुछ-कुछ समझा। शायद दुर्गा-पूजन के साथ लौ के उठने का कोई विशेष संबंध हो। उसको अधिक विवरण जानने की लालसा थी, परंतु दूसरों की पूजा के सब रहस्य जानने के लिये उत्कंठा होते हुए भी प्रश्न करने में जीभ कुंठित हो रही थी। वह एक क्षण चुप रहा। पर मन में बेचैनी बढ़ गई। न रुक सका। बोला—"आपने सामने की पहाड़ी की चोटी पर कोई लौ उठते देखा ?"

दिवाकर ने कहा—"फिर ?"

प्रश्न के उत्तर में प्रश्न और वह भी उत्तराच्छन्न और गूढ़। चंदेल ने पीछा नहीं छोड़ा, और सरल सीधे मार्ग का अवलंबन किया।

कहने लगा—"मैंने थोड़ी ही देर पहले पलोथर की ऊँची चोटी पर एक ख़ासी लौ उठती देखी है।"

दिवाकर—"अच्छा !"

चंदेल ने सोचा—"या तो यह युवक सैनिक कुछ छिपा रहा है या जानता नहीं है। अपने डेरे की लौ का वृत्त तो इसको बतलाना ही पड़ेगा।" पूछा—"आपकी ड्योढ़ी पर से भी एक ऊँची लौ उठती हुई दिखलाई पड़ी थी। उसी के विषय में पूछने के लिये मैं यहाँ तक आया हूँ। कुशल तो है?"

दिवाकर ने वैसे ही पहरे पर चौकस खड़े हुए कहा—"बिलकुल अमंगल नहीं।"

चंदेल ने कुछ अधीर होकर कहा—"मैं यह जानना चाहता हूँ कि आपके डेरे के ऊपर यह लौ किस बात की उठी? क्यों उठी?"

दिवाकर—"क्यों उठी, सो तो बतलाना विज्ञान का काम है और किस बात की उठी, इसको शास्त्र बतला सकते हैं?"

चंदेल ने कुछ उष्ण होकर कहा—"आप कदाचित् यह नहीं जानते कि मैं चंदेल हूँ।"

दिवाकर ने विनीत भाव से कहा—"मैं अच्छी तरह जानता हूँ। मेरे पूर्वज कालिंजर में रहते थे।"

चंदेल ने कुछ नरम होकर कहा—"आप अभी युवक हैं। आप शायद यह नहीं जानते कि गढ़ी के नायक को सब घटनाओं पर अपनी आँख रखनी चाहिए। इसमें गढ़ी के सब रहनेवालों का हित है।"

दिवाकर ने अभेद्य भाव से कहा—"सार्वजनिक हित की दृष्टि से आपका अभिप्राय निस्संदेह बहुत कमनीय है।"

चंदेल ने आत्मविस्मृति का भाव प्रदर्शित करते हुए मानो स्वगत कहा—"शायद यह लौ आप लोगों की दुर्गा-पूजा का कोई विशेष अंग रही हो। आप यहाँ पर क्या बहुत समय से पहरे पर खड़े हैं?"

दिवाकर ने विनय-पूर्ण उत्तर दिया—"सामंतजी, समय को जाते की विलंब लगता है।"

चंदेल कुढ़ गया। बोला—"आपने निश्चय कर लिया है

कि आप मेरी किसी बात का ठीक उत्तर न देंगे ? सोहनपालजी कहाँ हैं ?"

दिवाकर ने उसी ढंग से कहा—"मैंने ठीक-ठीक उत्तर दिया था कि वह भीतर हैं।"

चंदेल ने कुछ प्रखरता के साथ पूछा—"क्या वह मुझे इस समय मिल सकते हैं ?"

दिवाकर ने शिष्टता के साथ कहा—"मैं उनको अभी बुलाए देता हूँ। आप तब तक विराजें। खड़े-खड़े कष्ट होता होगा। तिस पर आपको रात-भर लड़ते-लड़ते बीता है।"

चंदेल ने आसन ग्रहण कर लिया। शांत होकर कहा—"कृपा कर शीघ्र बुला दीजिए, मैं यहीं बैठा हूँ।"

"बहुत अच्छा" कहकर दिवाकर भीतर चला गया। परंतु उसने ड्योढ़ी का किवाड़ बंद नहीं किया।

चंदेल सोचने लगा—"इस युवक ने मेरा आदर भी किया और निरादर भी। इसको जानना चाहिए था कि गढ़ी के नायक को इस प्रकार का टाल-मटोल उत्तर नहीं दिया जाता। विचित्र युवक है। बिलकुल जैसे काठ-पत्थर। परंतु मालूम स्वामिधर्मी पड़ता है। लौ के उठने में रहस्य अवश्य है। परंतु शायद सोहनपाल ने बतलाने का निषेध कर दिया होगा। युद्ध की रात्रि के पश्चात् आज रहस्यों का दिन मालूम पड़ता है। यदि ड्योढ़ी के भीतर भी कोई रहस्य रचा जा रहा है, तो दिवाकर ने किवाड़ क्यों बंद नहीं किए ? परंतु वह कदाचित् यह जानता है कि मैं सामंत हूँ और वह स्वयं सैनिक है।"

इस छोटी-सी बात से हृदय को सांत्वना देकर चंदेल सोहनपाल की प्रतीक्षा करने लगा।

सोहनपाल मुस्किराता हुआ आया। बोला—"आपने ज़रा सी-घटना के लिये बड़ी चिंता की। आपकी शंका का समाधान तो हमारा यह छोटा

सामंत ही कर देता, परंतु यह कभी-कभी विक्षिप्तों-जैसे काम करने लगता है। आप कुछ सोच मत कीजिएगा। मैं आपको अपने यहाँ लौ उठने के कारण बतलाता हूँ।"

चंदेल ध्यान-पूर्वक सुनने लगा।

"आज से पूरे दो सौ वर्ष हुए, हमारे पूर्वज जगदास पंचम को उनके पिता ने काशी की ओर का अपना आधा राज्य दे दिया और आधा उनके शेष चार भाइयों में बाँट दिया। चारो भाई असंतुष्ट हुए और उन्होंने लड़-भिड़कर अपने पंचम भाई जगदास को राज्य-हीन कर दिया। जगदास ने विंध्य-वासिनी देवी की घोर उपासना और तपस्या की। उनको स्वप्न हुआ कि सफलता प्राप्त होगी। तपस्वी, कठोर अध्यवसायी जगदास स्वप्न-मात्र से संतुष्ट नहीं हुए। उन्होंने देवी से प्रत्यक्ष दर्शन की प्रार्थना की। जब साधारण तपश्चर्या द्वारा मनोकामना सिद्ध होती हुई न देखी, तब उन्होंने खड्ग उठाकर अपना सिर देवी के चरणों में चढ़ाने की ठानी। अपने गले पर अपने ही हाथ से वार किया, परंतु उस वार का स्पर्श गले से रक्त की एक ही बूँद निकाल पाया था कि देवी ने प्रकट होकर पंचम का हाथ पकड़ लिया और उनको वरदान दिया। जो बूँद देवी के चरणों पर गिरकर पवित्र हुई थी, वही हम लोगों की देह में विद्यमान है, और वही देवी हमारी इष्ट देवता हैं। उन्होंने अपने वरदान से पंचम को अभिषिक्त किया था। आज उन्हीं देवी के पूजन में राल का प्रयोग किया गया था, और लौ आकाश की ओर उठाई गई थी।"

चंदेल ने प्रकट में इस उत्तर पर संतोष ज़ाहिर किया, परंतु पलोथर की चोटी से उठी हुए लौ के देखने-न-देखने के विषय में प्रश्न किया।

सोहनपाल ने कुछ विचारकर उत्तर दिया—"यह आकस्मिक संपात मालूम होता है। अवश्य ही कोई साधु-महात्मा उस पर्वत पर हैं। आपने तो पहले कभी किसी साधु को रहते देखा होगा? मैंने सुना है कि इन पहाड़ों में प्रायः साधु विचरण किया करते हैं।"

चंदेल ने कहा—"मैंने स्वयं तो उनके दर्शन नहीं किए हैं, परंतु उनके विचरण के विषय में सुना है।"

चंदेल को भी इस समय दोनो प्रकाश आकस्मिक संपात प्रतीत हुए। उसने पूछा—"कुंडार कब तक जाने का विचार है?"

सोहनपाल ने कहा—"यही हम लोग सोच रहे हैं। सबेरे तक निश्चय कर लेंगे। कुछ शीघ्रता तो है नहीं।"

चंदेल तुरंत यथार्थ भाव के साथ बोला—"गढ़ी आपकी है, जब तक चाहें, तब तक रहें। मुझे तो रात्रि के अनुभव के पश्चात् इस छोटी घटना के कारण कुछ कौतूहल हुआ था, इसलिये इस समय आपको कष्ट दिया था।"

चंदेल चला गया। जाते हुए उसको दिवाकर ने बारीकी के साथ देखा।

सोहनपाल ने दिवाकर से मुस्किराकर पूछा—"सब कुशल है?"

"सब कुशल है।" दिवाकर ने उत्तर दिया।

चंदेल अपने निवास की ओर गया। वह मन में कहता जाता था—"ये बुंदेले कुछ रहस्यमय लोग मालूम पड़ते हैं।" मन भर लेने पर भी लगभग एक ही साथ दो स्थानों से एक ही तरह का प्रकाश उठने का जो कारण उसको समझाया गया था, उससे उसको बिलकुल संतोष नहीं हुआ। एक पहर बाद, जब पहरे की घड़ी पूरी हो गई, अर्जुन चंदेल के पास आया। चंदेल ने उससे आते ही बातचीत की।

"क्योंजी, तुमने कुमार से क्या कहा था?"

"मैंने जा कै दई ती कै बेटी खों पाती दे आओ हों।"

"उन्होंने उस पर क्या कहा?"

"कछू नई कई। जई कत्ते कै कैसे पौंच गओ हतो भीतर? मैंने कै दई कि दिवाकर हते पहरा पै। दिवाकर सें कई कि ऊपर घाट पै होकें मुंगरन को दार निकर रओ, सो एकाध खों समेट लेओ। वे झट मोरें

संगै हो गए। मैंने उनैं फाटक सें ठौर बता दओ और कै दई कै करके भरका में टर गए। वे चले गए उनके पाछैं, और मैं चलो गओ ड्योढ़ी में। उतै कोऊ हतो नईं, बेटी बाई संझा की आरती को सामान लगा रईं तीं, उनखों चिट्ठी दै राखी। पढ़ कैं उनने कई कै भग जा।"

चंदेल ने उदास होकर कहा—"तुम्हारी इस रचना का कुमार ने विश्वास कर लिया? अग्निदत्त भी वहाँ बैठे थे?"

अर्जुन ने प्रसन्न होकर कहा—"हओ।"

चंदेल एक क्षण कुछ विचार करके बोला—"कभी आवश्यकता पड़ने पर क्या तुम सचमुच दिवाकर को पहरे पर से हटा लोगे?"

अर्जुन ने आत्मनिर्भरता के साथ कहा—"हौ दाऊजू। सिकार की हौंस फूल और लालच में को अपने ठौर पै ठाड़ो रहत? अपुन खों कछू चाव नइँयाँ, सो अपुन अपुनो-जैसों सबखों न लेखियो।"

चंदेल बोला—"अर्जुन, तुम अपना काम करो। मैं सबेरे इस विषय पर और कुछ कहूँगा, यदि आवश्यक हुआ तो। परंतु इतना याद रखना कि दिवाकर की टक्कर में मत आना। उसे तुम पहरे पर से नहीं टाल सकते। अभी लड़का ही है, परंतु हठी है।"

अर्जुन ने गर्व के साथ कहा—"चंदेलन के नौन-पानी खाए। बुंदेलन खों नईं डरात। दाऊजू, बौ मौड़ा मोसैं ऐंठा-ऊँठी करहै, तो मैं सवाद चखा दैऔं। मैं नईं डरात बुंदेलन सुंदेलन खों।"

चंदेल कुछ कड़ाई के साथ बोला—"अच्छा, जीभ पर लगाम लगा ले। एक बार जो बर्र-बर्र लगाता है, तो अंत करने का नाम ही नहीं लेता। जा, अपना काम देख।"

अर्जुन चला गया।

पांडे की आत्मकथा

रात पहर-डेढ़ पहर के लगभग जा चुकी थी। आकाश में नक्षत्र पूरे गौरव के साथ जगमगा रहे थे। पृथ्वी का घोर अंधकार रह-रहकर तारों के तीरों की मार से सिमट जाता था और फिर फैल जाता था। बेतवा की धार एक पतली-सी रेखा मालूम होती थी और भरतपुरा के डूँड़ा के अग्रवर्ती पेड़ों की लंबी पाँति किसी भीषण दुर्ग की दीवार।

नाग के कमरे में दीपक जल रहा था। अग्निदत्त एक बड़ी तकिया के सहारे लेटा हुआ था। अग्निदत्त अपने पलँग पर किसी विचार में निमग्न था।

नाग ने कहा—"समझ में मेरी भी नहीं आता कि मैं हेमवती को सहज ही पा जाऊँगा। युद्ध और प्रेम में शायद ही किसी को सहज ही विजय मिली हो। बिना घमसान के दोनो फीके हैं। यदि हेमवती की इच्छा ही वरण करने की न हो, तो दूसरी बात है। सबेरे मालूम हो जायगा। क्योंकि यदि हेमवती ने मेरे पत्र का अनादर किया, तो वह सोहनपाल पर अवश्य मेरी धृष्टता को प्रकट करेगी। सोहनपालजी अपने सारे क्षत्रिय-गर्व का बोझ सिर पर लादकर प्रातःकाल मेरे पास आएँगे और इठलाएँगे और कह देंगे कि 'न मुझे कुंडार की सहायता चाहिए और न मैं कुंडार जाऊँगा।' मेरा क्षात्र-अभिमान मुझे यह कहने को विवश करेगा कि यदि आपकी ऐसी इच्छा है, तो मैं अशक्त हूँ, परंतु उस प्रतिमा को अपने हृदय में स्थापित किए रहने के कारण मेरा कोई क्या कर सकेगा? हेमवती मुझे न भी चाहती हो, तो मुझे हेमवती को चाहने में क्या बाधा हो सकती है? और यदि सोहनपाल ने मेरे संबंध को पसंद

किया, तो वह भी प्रातःकाल विदित हो जायगा। मुझे आशा है कि सोहनपाल का इनकार न होगा, क्योंकि बुंदेले हमसे कुछ ऊँचे नहीं हैं। महाराज ने उनकी जो उत्पत्ति बतलाई है, वह उनमें और हममें सादृश्य प्रकट करती है।"

अग्निदत्त ने कहा—"संभव है, जो आप कहते हैं, ठीक हो। परंतु यदि हेमवती ने उस चिट्ठी को अपने किसी स्वजन पर प्रकट न किया, तो ?"

नाग ने उत्साह के साथ कहा—"तब यह कहने में मुझे संकोच नहीं होता कि मेरा भविष्य उज्ज्वल है। स्त्रियाँ संकोच के मारे ऐसे अवसरों पर बड़ी लाज से काम लेती हैं। देखने में उनका ढंग निराशाजनक प्रतीत होता है, परंतु वास्तव में उनकी स्वीकृति लाज-रूपी निषेध में छिपी रहती है। यही मेरे प्रोत्साहन का आधार होगा। सबेरे तक या कल दिन में किसी समय तक मुझे कोई उत्तर नहीं मिला, तो मैं भविष्य में और प्रयत्नों का आश्रय लूँगा। परंतु अग्निदत्त, तुम मुझको इस समय एक बड़ा मूर्ख या पागल समझ रहे होगे ?"

अग्निदत्त ने कुछ विस्मय के साथ कहा—"ऐसा आप क्यों भान करते हैं।"

नाग ने हँसकर उत्तर दिया—"इसलिये कि इस व्याकुलता की उलझन में आप कभी नहीं पड़े हैं। मैंने भी तभी से इसको अनुभव किया, जब से कुंडार में उनकी कीर्ति सुनी। पहले तो केवल देखने की प्रबल इच्छा हुई। यह इच्छा जिस विकट घटना-मंडल के भीतर सिद्ध हुई, वह नितांत आश्चर्य-पूर्ण है। मानो यह सब युद्ध देवी की दया से मेरी दर्शनों की साध को पूरा करने के लिये हुआ। और अब, न-जाने अब कैसी उथल-पुथल जी में मच रही है। पांडे, तुमने क्या कभी इस भाव का, इस कोमल कष्ट का अनुभव किया है ?"

पांडे ने सिर नीचा किया। अँगड़ाई ली। जमुहाई ली। कहा—"सो जाइए। रात बहुत हो गई।" और साधारण हँसा।

नाग की उत्सुकता सहसा बहुत उत्तेजित हुई। बड़े आग्रह के साथ अनुरोध किया—"पांडे, तुम्हें मेरी सौगंध है। सच बतलाओ, वह कौन-सी सौभाग्यवती है, जो तुम्हारे-सदृश तेजस्वी युवा के अंक की प्रतीक्षा कर रही है? तुम्हारी जाति ही की होगी? तुम्हें तो कठिनाई नहीं होगी?"

अग्निदत्त एकाएक गंभीर हो गया। होंठ काँपने-से लगे। उसकी एक आँख अधमुँदी-सी और दूसरी खुली हुई-सी थी। गर्दन ज़रा टेढ़ी हो गई और जिस हाथ के सहारे पलँग पर बैठा था, वह कुछ कड़ा हो गया। उसने स्पष्ट परंतु कंपित स्वर में कहा—"यदि आप मेरे ऊपर कुछ भी स्नेह रखते हों, तो जितना मैं बतलाना चाहूँ, उससे अधिक मत पूछिएगा, क्योंकि मैंने उस समय तक पूरा ब्योरा न बतलाने का निश्चय कर लिया है, जब तक कि सफलता की पूरी आशा न हो जाय......।"

नाग ने टोककर कहा—"तो आप कुछ भी न बतलाएँगे?" और उसका मुँह उतर गया।

अग्निदत्त ने अपने भाव को कुछ नरम करके कहा—"अवश्य बतलाऊँगा, परंतु जहाँ जिस स्थान पर मैं निषेध कर दूँ, उससे आगे आप कुछ न पूछिएगा।"

नाग के आँख से आँख मिलाने पर अग्निदत्त मुस्किरा दिया।

नाग ने कहा—"मैं प्रण करता हूँ बाबा, बतलाओ भी।"

अग्निदत्त ने काँपते हुए हृदय को बल देने के लिये एक लंबी साँस खींची और कहा—"पूछिए।"

नाग ने एकाग्र-मन और प्रोत्साहनमय ढंग से पूछा—"क्या आयु है? कौन जाति की है?"

अग्निदत्त ने ज़रा नीचे देखकर और मुस्किराकर उत्तर दिया—"पंद्रह-सोलह वर्ष से अधिक नहीं है।"

"कौन जाति की है ?"

अग्निदत्त ने दृढ़ता के साथ कहा—"जाति नहीं बतलाऊँगा। परंतु यह कह सकता हूँ कि वह मेरी जाति की नहीं है।"

"रंग कैसा है ?"

अग्निदत्त ने बहुत लजाकर, बिना आँख से आँख मिलाए, उत्तर दिया—"बहुत खरा गोरा—जैसे तपा हुआ सोना। सारे शरीर से आभा झलकती है।"

"वह तुम्हें चाहती है ?"

अग्निदत्त ने गला साफ़ करके और मुस्किराकर कहा—"हाँ।"

"तुम्हें कैसे मालूम है ?"

अग्निदत्त बहुत खिलखिलाया। नाग ने फिर अपने प्रश्न को दुहराया। पांडे और भी अधिक हँसा। फिर दबी ज़बान से कहा—"उसने एक बार कहा था कि तुम्हें नहीं देखती हूँ, तो बेचैन हो जाती हूँ।"

नाग का मुख किसी गुप्त हर्ष के कारण खिल उठा। बोला—"क्रूर सौंदर्य, दुष्ट हृदय। किस बेचारी को इतना सताया करता है ? उसका नाम क्या है ?"

"नाम नहीं बतलाऊँगा।" अग्निदत्त ने उत्तर दिया, और एक हाथ से बिस्तर की चादर उलटने-पलटने लगा।

इस उत्तर पर नाग ने बुरा नहीं माना। पूछा—"अच्छा, यह तो बतलाओ शास्त्रीजी कि उस बेचारी को रखेली करके घर में डालोगे या किसी तरह का ब्याह-संबंध स्थापित करोगे ?"

अग्निदत्त की आँख चमक उठी। बोला—"चाहे संसार इधर का उधर हो जाय, परंतु यदि कर्म में विवाह करना बदा है, तो उसी के साथ होगा।"

"और यदि विवाह-संबंध ब्रह्मा ने माथे पर अंकित न किया होगा,

पिता के ही लिये किसी विशेष कटक का नित्य-निरंतर सामना करने का कारण रह जायगा। परंतु दोनो को जन्म-भर रोते बीतेगा।"

अग्निदत्त ने आह भरकर कहा—"रुदन तो किसी-न-किसी को करना ही पड़ेगा। या मैं रोऊँगा या वे। परंतु मेरे पिता जिस घर-जमाई की खोज में हैं, वह मेरे स्थान पर घर में आ जायगा, इसलिये उनको कोई बड़ी कमी बहुत दिनों तक गृहस्थी में नहीं खटकेगी; और रह गए उसके माता-पिता, सो उनको तो यों भी उससे हाथ धोना ही पड़ेगा। वह सदा तो उनके घर में रहेगी नहीं।"

नाग ने अपना हाथ पवन में उठाकर कहा—"धन्योसि शास्त्रीजी। तो क्या मुझे भी बिलखता हुआ छोड़ जाओगे? परंतु नहीं, मुझे तो तुम्हारा पता रहेगा और यदा-कदा मैं तुमसे मिल लिया करूँगा।"

अग्निदत्त ने एक आँख का कोना दबाकर कहा—"जब हेमवती से आपको अवकाश मिलेगा तब तो?"

नाग का हास्य-पूर्ण मुख अचानक सिमट गया। उसने एक आह लेकर कहा—"तुम्हारा खेल तो लगभग बन चुका है। तुम्हें कम-से-कम यह तो संतोष है कि तुम्हारे हृदय के प्रेम के पुरस्कार में दूसरा हृदय प्रेम-पुष्पांजलि लिए हुए खड़ा है। मुझे तो अभी यह भी विश्वास नहीं कि मेरे ऊपर किसी की किंचित् भी कृपा-कोर पसरी है या नहीं। देखें, शक्तिभैरव क्या करते हैं?"

फिर कुछ चाव के साथ नाग ने पूछा—"तुम्हें यह रोग कब से है?"

"एक-आध वर्ष से।"

नाग ने अपनी नवीन अनुरक्ति के प्रतिघात के वश होकर प्रश्न किया—"तुम्हारा प्रेम किस तरह आरंभ हुआ था?"

अग्निदत्त ने जमुहाई ली और तुरंत हँस पड़ा। बोला—"यह मैं क्या जानूँ?"

नाग ने आग्रह किया।

अग्निदत्त ने कहा—"इसे ठीक-ठीक बतलाना मेरे लिये असंभव है। परंतु एक दिन मुझको ऐसा मालूम पड़ा कि उससे अधिक मैं संसार में और किसी को नहीं चाहता और ऐसा ही एक दिन सहसा उसको जान पड़ा होगा।"

नाग ने वक्रभाव से कहा—"अबे नष्ट, अरे शठ, तूने अभी तक खूब इस विषय को छिपाया! क्यों ऐसा किया?"

अग्निदत्त ने विनय-पूर्वक उत्तर दिया—"कोई ऐसा अवसर भी तो नहीं आया था।"

नाग ने सहसा प्रश्न किया—"वह सुंदरी है कहाँ?"

अग्निदत्त ने उत्तर दिया—"कुंडार में।"

"मैंने कभी उसको देखा है?"

"यह मैं नहीं कह सकता।"

इसके बाद दोनो सोने के लिये लेट गए। नहीं मालूम, कौन कब सोया या सोया भी नहीं।

दलपति बुंदेला

प्रातः काल हरी चंदेल गढ़ी से बाहर बेतवा के किनारे-किनारे दक्षिण की ओर टहलने को गया। गढ़ी से कुछ दूर चलकर ही चौरस भूमि का एक छोटा-सा मैदान था और उसके आगे चौड़ा, ऊँचा टीला, फिर एक पथरीला नाला जिसमें अब पानी नहीं रहा था। इसके बाद गहरे भरके, परंतु नदी का किनारा वाम-पार्श्व पर ऊँचा, लगभग सम-स्थल जिस पर इधर कधई और रेंवजे के पेड़ लगे हुए थे। इससे आगे एक घाट मिला, जो आजकल चंदू के घाट के नाम से विख्यात है। घाट इसको केवल शिष्टाचार के कारण कह सकते हैं। सेंधरी, माधुरी, कुंडार इत्यादि स्थानों के जाने के लिये यहाँ होकर पैदल रास्ता था, इसीलिये इसे घाट कहते थे। घाट के उस ओर किनारा अधिक चौड़ा था, परंतु उसके दाहने ओर भरके और नाले लगातार बजटा तक चले गए थे, जो नदी के किनारे बसा हुआ था। उसके आगे जिसको आजकल अंडाघाट कहते हैं, था। उस पर एक छोटा-सा गाँव दबरा था। दबरा में एक छोटी-सी गढ़ी थी, जिस पर दलपति बुंदेले का आधिपत्य था। राज्य कुंडार का था, पर उस राज्य का बहुत कुछ आतंक दलपति के ऊपर नहीं था यद्यपि उसके पास ५०-६० सैनिक से ऊपर न थे। गढ़ी भी छोटी-सी थी,

हरी चंदेल चंदूघाट के उस ओर थोड़ी ही दूर गया था कि दलपति बुंदेले से भेंट हो गई।

दलपति लंबा-चौड़ा, मुक्त-मुख, अधेड़ वय का बुंदेला था। शिष्टता के साथ बुंदेले ने चंदेल को जुहार किया। बोला—"आज बड़े भोर से घूम रहा हूँ, अभी तक कोई शिकार हाथ नहीं आया। आप भी शायद इसी प्रयोजन से इस ओर निकले हैं।"

चंदेल ने रुखाई के साथ उत्तर दिया—"मैं तो चोर-डाकुओं की खोज में निकला हूँ।"

बुंदेले ने आँखें तरेरकर कहा—"मैंने सुना था कि चंदेलों में कुछ शिष्टाचार होता है।"

चंदेल ने अवहेला के साथ कहा—"मुझे कुछ और सीखने की आवश्यकता नहीं है। परंतु मेरा संकेत आपकी ओर नहीं था।"

बुंदेले का रक्त भड़क गया था। बोला—"और मेरे ही लिये कहा हो, तो मेरी बला से। यहाँ आपके पड़ोस में चोर हूँ, तो मैं हूँ और डाकू हूँ, तो मैं हूँ। परंतु मैं भूलता हूँ, खंगारों में रहकर महोबा और कालिंजर और भरतपुरा बन जाते हैं।"

चंदेल की आँखें लाल हो गईं। बोला—"आप ही सरीखे पहरेदारों की असावधानता से मुसलमान लोग जहाँ-तहाँ घुसकर लूट-मार करके मन-मानी किया करते हैं।"

बुंदेले ने बड़ी कुटिलता के साथ कहा—"हाँ, जब भरतपुरा के सेवक अपने प्राणों के बचाने के लिये बुंदेले के पास संवाद ही न भेजें, तो मुसलमान तो अपना मार्ग सहज पावेंगे ही। कोई अंडाघाट होकर तो आवे, हड्डी चकनाचूर कर दूँ।"

चंदेल अपनी तलवार पर हाथ डालकर बोला—"कहो तो यहीं समझ लूँ और इच्छा हो, तो महाराज हुरमतसिंह को आपके स्वामिधर्मी सद्विचारों से परिचित करा दूँ?"

बुंदेले ने भी बड़ी हेकड़ी के साथ कहा—"यहीं समझ लो, या जो मन में आवे सो कर लो, कसर मत लगाना। महाराज हुरमतसिंह के कुंडारगढ़ पर अंडाघाट होकर धावा न हो; बस, इतना ही मैं अपना धर्म समझता हूँ। परंतु मैंने अपनी जाति थोड़े ही बेच दी है। यदि महाराज हुरमतसिंह अपनी दबरावाली गढ़ी किसी

चंदेले को देना चाहें, तो मैं आज ही कहीं दूसरी जगह जाकर गढ़ी बना लूँगा। नाहर को अपने लिये खोह ढूँढ़ने में कितना समय लगता है?" और बुंदेले ने इस प्रकार दृष्टि-निक्षेप किया, जैसे वह त्रिभुवन का स्वामी हो।

इतने में एक भरके में से सशस्त्र सोहनपाल निकल आया। दोनो ने उसको जुहार किया।

सोहनपाल की आँख से ऐसी क्षमता चमक रही थी, मानो किसी को राज्य देने की शक्ति रखता हो।

सोहनपाल ने दलपति से कहा—"आप व्यर्थ हरी सामंत से झगड़ा कर रहे हैं। जिस रात से मुसलमानों का आक्रमण गढ़ी पर हुआ, यह बहुत सतर्क रहते हैं और इसी कारण इस ओर देख-भाल के लिये निकले होंगे। आपका अपमान करना इनको कभी अभीष्ट नहीं हो सकता था। मैं इनके सौजन्य और वीरत्व से भली भाँति परिचित हूँ।"

दलपति ने बिना किसी पश्चात्ताप के कहा—"परंतु इन्होंने छूटते ही मुझसे डाकू कहा और आँखें दिखलाईं।"

चंदेल कुछ धीमेपन के साथ बोला—"मैंने इनको डाकू नहीं कहा, मेरा संकेत मुसलमान लुटेरों से था।"

नरम पड़कर बुंदेला बोला—"तब यह और बात है, परंतु अच्छी तरह तो बोलते।"

सोहनपाल कुछ दृढ़ता के साथ बोला—"कुँवर दलपतिसिंह, आपने व्यर्थ बखेड़ा मोल लिया। आपको धैर्य के साथ काम लेना चाहिए था।"

बुंदेले ने निष्कपट भाव से कहा—"मैं सामंत से क्षमा चाहता हूँ। एक क्षत्रिय दूसरे का अपमान नहीं करता और बुंदेला चंदेल का!" बुंदेले के चेहरे पर विश्वास करने योग्य युक्तता थी।

चंदेल ने हँसकर कहा—"सोहनपालजी न आते, तो यहाँ यों ही परस्पर संघर्ष हो जाता।"

इस पर जुहार करके बुंदेला अपनी गढ़ी की ओर चल दिया और सोहनपाल तथा हरी चंदेल भरतपुरा गढ़ी की ओर।

चंदेल के मुख पर गत उत्तेजना के चिह्न शेष थे। सोहनपाल ने गढ़ी के फाटक पर पहुँचते-पहुँचते बहुत-सी इधर-उधर की बातें कीं, और शिष्टता के नाते चंदेल उत्तर भी देता गया, परंतु वे बातें उसको बहुत रुचिकर न हुईं।

एक दूसरे से बिदा होते समय सोहनपाल ने कहा—"थोड़ी देर में मैं कुमार के पास आता हूँ। कुंडार की ओर जाने का निर्णय आज ही हो जाना चाहिए।"

चंदेल ने हर्ष-पूर्वक निवेदन किया कि कुमार के डेरे पर जाते समय मुझे भी साथ ले लेना। सोहनपाल ने स्वीकार किया।

अपने डेरे पर पहुँचकर चंदेल ने सोचा—"सोहनपाल का चंदू के घाट पर आ जाना एक अकस्मात् घटना थी या वह दलपति के साथ पहले से था? एक से दूसरे का परिचय अवश्य है। कबसे? कैसे? क्यों? कहाँ तक? महाराज के पास सोहनपाल के विषय में ज्ञात और अर्द्ध ज्ञात सब बातें आज ही लिखना चाहिए। और वह पत्र? अब उसको फाड़ना नहीं चाहिए। महाराज के पास भेज देना चाहिए। यह मामला आगे बढ़ता दिखता है। चिट्ठी फाड़ डालने से न-जाने आगे क्या हो। यदि राजकुमार रुष्ट हो जायँगे, तो हो जायँ। यदि उनको स्वामिधर्म की पहचान नहीं है, तो इसमें मेरा कोई दोष नहीं है। यदि मेरे पास हाथ, हथियार और मेरा धर्म है, तो अपने लिये मार्ग सहज कर लूँगा। चिट्ठी अवश्य कुंडार भेजूँगा। परंतु इसको पढ़ लूँगा, तब भेजूँगा।" इतना सोचकर चिट्ठी कपड़े में से निकाली। फिर सोचा—"जब मैंने इस चिट्ठी को महाराज के पास भेजने का ही निश्चय कर लिया है, तब उसे पढ़ने का मुझे कोई अधिकार नहीं है। मुझको इस पत्र के विषय से कोई संबंध नहीं।" इतना सोचकर उसने चिट्ठी ज्यों-की-त्यों कपड़े में रख ली। इतने में वहाँ अर्जुन आ गया।

चंदेल ने कहा—"तुमको आज ही कुंडार जाना होगा। कुछ चिट्ठियाँ हैं, उनको महाराज के पास भेजना है। ये पत्र और किसी के हाथों न भेजूँगा। सावधान! किसी और के हाथ में न पड़ पावें, और महाराज को ही वे मिलें।"

"मोरे हाथ से चिट्ठी कोउ नईं पावत दाउजू। दम लै जैहों जब कोऊ चिट्ठी खों लैन आहै। पै कुम्हार महाराज के सामने कैसे पौंच पैहै? मोखों तो उतै धसन न दैहैं। उतै एकाध बेरै गओ, सो पहरेदार कहन लगे कि तुमाए देखें से महाराज खों छोत लग जैहै, ईसें मैं कुंडारै कभउँ जातई नइँयाँ। मोए ऐसी बातन पै अगन बर जात, पै मैं कछु कहत नइँयाँ।" अर्जुन ने कहा।

चंदेल ने सोचकर कहा—"अच्छा, तो प्रधानजी के पास पहुँचा देना और कहला भेजना कि ये चिट्ठियाँ महाराज के पास तुरंत भेज दी जायँ, और उसको महाराज ही पढ़ें।"

अर्जुन बोला—"और दाउजू उनने बीच में पढ़ लईं, तो?"

चंदेल ने बिना खिसियाए हुए कहा—"अरे मूढ़, भले लोग किसी की चिट्ठी को नहीं पढ़ते। वैसे प्रधान का काम सब पत्र पढ़ने का है, परंतु जिस किसी पत्र के लिये विशेष रीति से कह दिया जाय कि उसको केवल महाराज ही पढ़ें, उसको प्रधान कभी नहीं पढ़ेगा। जब महाराज स्वयं आज्ञा देंगे, तभी वह पढ़ेगा। जा ले जा।"

हरी ने नागदेव वाली चिट्ठी और अपनी कुछ चिट्ठियाँ अर्जुन को दे दीं। अर्जुन प्रणाम करके चला गया।

सोहनपाल का निर्णय

थोड़े समय पश्चात् सोहनपाल प्रधान और चंदेल को अपने साथ लेते हुए नाग के पास पहुँचे। नाग का घाव दो ही दिन में बहुत कुछ भर गया था। स्वस्थ युवकों के घाव पुरने में अधिक विलंब नहीं होता।

स्वागत-शिष्टाचार के पश्चात् नाग का चेहरा ऐसा जान पड़ता था, मानो वह शूली की आज्ञा सुनने के लिये तैयार हो रहा हो।

सोहनपाल ने कहा—"हम लोग आपके कुंडार पहुँचने के एक दिन पीछे कुंडार आना चाहते हैं। हमें आशा है, पांडेजी हमारे लिये तब तक एक कुटी का प्रबंध कुंडार-नगर में कर देंगे। हम चाहते हैं कि हमारे कुटुंब के निवास के लिये पांडेजी कहीं अपनी ही हवेली के पास ठिकाना कर दें।"

पांडे ने बड़े उत्साह के साथ कहा—"हमारा निज का घर आपके लिये तैयार है।"

सोहनपाल बोले—"आपको हम अधिक कष्ट नहीं देना चाहते। आपकी इतनी ही कृपा बहुत होगी कि आप कहीं अपने ही पास, और यदि आपकी हवेली से दूर भी हो तो कुछ हानि नहीं, एक अलग स्थान का प्रबंध कर दें। हम लोगों का आपके साथ रहना आपको बहुत कम पुसाएगा।"

पांडे कुछ कहना चाहता था। नागदेव ने बड़े आह्लाद के साथ उसको टोककर कहा—"यह भी अच्छा है। पांडे तुम भले ही शाक्त हो, परंतु पांडे काका ठाकुरों का सहवास कठिनाई के साथ सहन करेंगे। रावजी का प्रस्ताव युक्तियुक्त है।"

चंदेल ने मन में कहा—"गढ़ी को इस टंटे से अब शीघ्र निस्तार मिलेगा।"

सोहनपाल बोला—"परंतु मैं, धीर प्रधान और मेरे दोनो बुंदेले भाई अन्यत्र ठहरेंगे। कुंडार में मेरी कन्या, उसकी मा, सहजेंद्र और दिवाकर तथा दूसरे बुंदेले साथी रहेंगे।"

नाग को इस प्रस्ताव के भीतर अपने लिये अत्यंत हितकर कोई रहस्य जान पड़ा। वाद-विवाद करके वह सोहनपाल को इस प्रस्ताव के लौटा लेने के लिये तत्पर नहीं देखना चाहता था। एकाएक प्रस्ताव का समर्थन करना भी उसको बहुत संकट-रहित नीति न जान पड़ी। इसलिये उसने बहुत संकोच के साथ प्रश्न किया—"यदि कोई बाधा न हो, तो क्या आप बतलाएँगे कि आप लोग कहाँ निवास करना उचित समझते हैं?"

सोहनपाल ने नाग के संकोच का यह अर्थ लगाया कि वह मेरी बात का आदर करता है और कुंडार से दूर रहने में उसको आक्षेप नहीं है। बोला—"हम लोग माहौनी में रहना चाहते हैं। कुंडार से कोस-भर है। वहाँ बैठकर हम अपने सहायकों और भाई-बंदों से पत्र-व्यवहार करते रहेंगे। वहाँ से चाहे जहाँ बाहर आ-जा सकेंगे और उक्त स्थान पर चाहे जिससे मिलते रहेंगे। यद्यपि कुंडार-राज्य की सहायता ही हमको अपना स्वत्व प्राप्त करने के लिये बहुत अधिक है, परंतु माहौनीवाले इस बीच में कुछ प्रबल हो गए हैं, बहुत सेना और हथियार उन्होंने एकत्रित कर लिया है। ऐसी अवस्था में जितना भी और बाह्य-बल हमारी सहायता के लिये जुट सकता हो, उसके लिये उद्योग में कोई कसर नहीं उठा रखनी चाहिए।"

पांडे ने कहा—"परंतु माहौनीवाले कुंडार से ब्योना जागीर में पाए हुए हैं। कुंडार-राज्य की आज्ञा का पालन उनको करना होगा।"

सोहनपाल ने एक ओर मुख फेरकर कहा—"यह सच है कि ब्योना कुंडार की जागीर का गाँव है, परंतु माहौनी को लोग कुंडार की जागीर नहीं मानते।"

नाग ने विवाद को आगे नहीं बढ़ने दिया। बोला—"रावजी, कुंडार के अधीन जितने ठिकाने हैं, उनको तो केवल संदेशा भेजने की आवश्यकता है। वे तुरंत आपकी सहायता के लिये कटिबद्ध हो जायँगे।"

धीर प्रधान अब तक चुप था। उसने संयत उदासीनता के साथ कहा—"वे कुंडार के अधीन अवश्य हैं, परंतु शीघ्र काम करने की तत्परता नहीं प्रकट करते। इस देश का आजकल कुछ ऐसा अभाग्य है कि अपनी-अपनी प्रभुता की धुन समाई है। आए दिन मुसलमानों के आक्रमण के भय के मारे मंडलेश्वरों को ठिकानेदारों की गर्मी शांत करने का अवकाश या अवसर नहीं मिल पाता, और न उनके मन में उनको शासित रखने की बलवती इच्छा ही उत्पन्न होती है। ये सब ठिकानेदार कुंडार की अधीनता मानते हैं, क्योंकि कुंडार सबसे अधिक प्रबल है, परंतु कुंडार उनका पूरा-पूरा शासन इसलिये नहीं कर पाता कि वह उनको रुष्ट करके अपने राज्य को निर्बल नहीं बनाना चाहता। ठिकानेदार कुंडार के इस अभिप्राय को यथावत् नहीं समझते, यथेष्ट शासन की कमी के कारण जहाँ-तहाँ ये लोग अपना सिर उठाए हुए हैं। हम लोग इनमें से कुछ के पास सहायता के लिये गए थे। उनमें से शायद ही कोई ऐसा हो, जो अकेला हमारी सहायता करने में सक्षम हो, परंतु प्रत्येक को अभिमान इतना अधिक है कि जितना आपको भी न होगा। उसके साथ यह भी प्रकट कर देना उचित होगा कि उन सबों ने यही कहा कि कुंडार यदि सहायता करने को तैयार हो जाय, तो वे भी तत्पर हो जायँगे। चाहे उन्होंने यह बात हम लोगों को, जो उनके अतिथि थे, टालने के लिये कही हो, चाहे वास्तविक भाव से कही हो। यदि हमको कुंडार से सहायता की आशा मिली, तो ये लोग भी सहायता देने के लिये अग्रसर हो जायँगे। और हम लोग भी उनको उनके पुराने वचन का स्मरण करावेंगे। इसीलिये हम लोग सारौल में अपना

डेरा डालना चाहते हैं। कुंडार में हमको सुबीता कम रहेगा। आशा है, आपको इसमें आक्षेप न होगा। और हमारा कुटुंब तो कुंडार में ही रहेगा।"

नाग इस वार्ता के तत्त्व पर मन-ही-मन विकसित हो रहा था। अंतिम बात के भीतर उसको किसी संकेत की थोड़ी-सी मात्रा का आभास हुआ। सौजन्य के साथ बोला—"आपका कुटुंब हमारे कुटुंब से बढ़कर सम्मान का पात्र होगा। यदि आप इस कारण कुटुंब को कुंडार में छोड़ रहे हों कि हम लोगों को आपकी गति-मति पर कुछ संदेह है, तो आप हमारे ऊपर अन्याय करते हैं।"

सोहनपाल ने तुरंत कहा—"नहीं कुमार, हम लोगों का यह अभिप्राय नहीं है। हमारा कुटुंब कुंडार में अधिक सुरक्षित रहेगा। बस, यही उद्देश्य है; और कुछ नहीं।"

थोड़ी देर में सोचकर फिर बोला—"अभी तक हमको केवल यह आश्वासन दिया गया है कि आप हमारे लिये कुंडार-राज्य-सभा में भरपूर चेष्टा करेंगे। हम इस वचन का संपूर्ण विश्वास करते हैं। परंतु एक बात आप ही हमें बतलाइए कि यदि महाराज ने हमारी प्रार्थना को स्वीकार न किया, तब हमारा कुंडार जाना निरर्थक से भी बुरा होगा।"

नागदेव की आँखों में समस्या की कठिनाइयों का चित्र झलक गया। परंतु उसका उत्साह अदम्य था। बोला—"आप कुंडार न जाइए, कुटुंब को भी चाहे भेजिए चाहे न भेजिए। मैं महाराज का आशा-जनक पत्र यदि आपके पास भिजवा सका, तब तो आपको हम लोगों की राजधानी सुशोभित करने में आपत्ति न होगी? प्रश्न यह है कि तब तक आप सब सज्जन कहाँ विश्राम करेंगे? यदि इच्छा हो, तो यहीं बने रहिए। मैं अपने घाव के अच्छे होने तक यहीं पर बना हूँ। इच्छा हो, बरौल टापू की गढ़ी में चले जाइए। इच्छा हो, देवरा में निवास कीजिए।"

सोहनपाल ने उत्तर दिया—"हम लोगों ने इन सब स्थानों को पहले से नहीं देखा है। सारौल हमारा देखा हुआ है। वह कुंडार के पास है। हम लोग इस समय वहीं जाना चाहते हैं। भरतपुरा का आतिथ्य-सत्कार हमको बहुत कृतकृत्य कर चुका है। अनुमति हो, तो हम लोग सारौल चले जायँ ?"

"अवश्य। इसमें बाधा ही क्या है।" नाग ने कहा—"मैं बहुत शीघ्र कुंडार से आपकी सेवा में संवाद भेजूँगा। कदाचित् मैं स्वयं आपका संवाददाता बनूँ।"

इस पर कोई हँसा और किसी ने बहुत कृतज्ञता-ज्ञापन किया।

बुंदेलों की मंत्रणा

इसके पश्चात्, परंतु उसी दिन लगभग तीसरे पहर, धीर प्रधान, सोहनपाल, सहजेंद्र और सोहनपाल के दो बुंदेले साथी अपने डेरे के एक भीतरी स्थान में बैठे। ड्योढ़ी पर दिवाकर का पहरा था।

सोहनपाल के दो बुंदेले साथी सोहनपाल का साधारण काम-काज भी करते थे और मंत्रणाओं में भी भाग लेते थे, क्योंकि एक ही ख़ून के थे। परंतु उनके विषय में किसी विशेष वर्णन की आवश्यकता नहीं है।

धीर प्रधान ने वार्तालाप आरंभ किया। बोला—"देवरा मेरा देखा हुआ है। पलोथर के नीचे ही है, और स्वामीजी से मिलते रहने का वहाँ सुअवसर भी है। परंतु एक तो वह घूमते रहते हैं, सदा मिलेंगे नहीं; दूसरे हम लोग वहाँ से कुंडार से दूर पड़ते हैं, तीसरे दक्षिण और पश्चिम के सरदारों के साथ संपर्क रखने में वहाँ वह सुविधा नहीं हो सकती, जो सारौल में हो सकती है। वहाँ से दलपतिसिंहजी से भी मिलते रहना अधिक सहज होगा। भरतपुरा में अब ठहरना नहीं चाहिए।"

सोहनपाल—"यह चंदेल गिद्ध-सरीखी आँख रखता है। कल संध्या-समय जब स्वामीजी ने राल की लौ पलोथर पर उठाकर अपने आने की सूचना हम लोगों को दी, तब उसने आवश्यकता से अधिक अवलोकन कर लिया। उसके हृदय में बुंदेलों के प्रति कुछ दुराग्रह है। इसके सिवा न-जाने कब किसको यहाँ आना पड़े और कब किसको यहाँ से जाना पड़े—कौन चंदेल को प्रति समय उसके प्रश्नों का उत्तर देता फिरेगा? फिर हमको कभी-कभी दलपति से भी मिलने की आवश्यकता पड़ेगी। उसमें और चंदेल में घोर वैमनस्य खड़ा हो गया है। ऊपर

दिखलाई नहीं पड़ता ; परंतु है । किसी दिन खटपट बढ़ गई, तो सँभालना कष्टसाध्य हो जायगा ।"

धीर प्रधान ने कहा—"इसीलिये सबसे अच्छा स्थान मारौन प्रतीत होता है ।"

सोहनपाल कुछ शंकित चित्त से बोला—"परंतु यदि कुंडार के राजा ने सहायता देना अस्वीकार किया, तो कार्य-क्रम फिर ढेर हो जायगा । बड़ा हठी है । वह हम लोगों को अपना जागीरदार समझता है, परंतु माहौनी अपने को स्वाधीन मानती है । कुंडारवाला अवश्य कोई ऐसी शर्त लगाएगा कि जिसका हम लोग पालन नहीं कर सकेंगे ।"

धीर प्रधान ने अपनी निज की उपज के भरोसे कहा—"स्वाभिमान-सम्मत किसी भी शर्त को हम इस गाढ़े समय में मानने को प्रस्तुत रहेंगे । फिर भविष्य का आजकल के समय में क्या ठिकाना है ? जुझौति-देश पर वही राज्य कर सकेगा, जो यहाँ के भिन्न-भिन्न ठिकानेदारों को संयुक्त करके मुसलमानों का सफलता-पूर्वक सामना करे । खंगार-राजा दिल्ली के बादशाहत से संधिबद्ध है, इसलिये जुझौति एक होकर इधर-उधर के मुसलमान लुटेरों से नहीं लड़ पाता । वह प्रत्येक मुसलमानी दल को दिल्ली की सेना समझ बैठता है, और लुटता रहता है । फिर दिल्ली की बादशाहत का भी कुछ ठीक नहीं है, कभी प्रबल प्रचंड, कभी दुर्बल निस्तेज । इस गड़बड़ में यदि कुंडार को किसी मुसलमान सूबेदार ने अपनी नवाबी का आसन बनाया, तो जुझौति की स्वाधीनता सदा के लिये गई । इसलिये माहौनी का जीवित रहना आवश्यक है । ऐसा समय पड़ने पर जुझौति की स्वाधीनता के लिये माहौनी अपने को होम देगी । कुंडार की सम्मान-सम्मत बात मान लेने में हमको कोई आक्षेप न होगा, क्योंकि मुझे आशा नहीं कि कुंडार इन्हीं हाथों में बहुत दिनों तक रहेगा । जिस दिन कोई दूसरा कुंडार पर हाथ डालने के लिये कटिबद्ध दिखलाई पड़ेगा, उस दिन हम इन शर्तों को अपने हथियार और कुंडार के बीच

में आड़े नहीं आने देंगे। और वह ऐसे हाथों में जायगा, जो जुझौति की प्रतिष्ठा की रक्षा कर सकेंगे।"

सहजेंद्र ने सरल भाव से कहा—"काकाजू, हम लोग तब तक चैन नहीं लेंगे, जब तक जुझौति के पहाड़ ऊँचे खड़े हैं।"

सोहनपाल ने इस बात पर कोई ध्यान नहीं दिया। बोला—"और यदि कुंडार के राजा खंगार ही बने रहे, तो हमारा कोई अमंगल नहीं; क्योंकि उनसे हमें अपनी व्यक्तिगत स्वाधीनता में कोई विशेष हस्तक्षेप की आशंका नहीं है।"

इतने में वहाँ हेमवती आई। मानो काँटों में फूल खिला। उसके विशाल नेत्र निस्संकोच भाव से खुले हुए थे। उसने सोहनपाल से पूछा—"दाऊजू, हम सबों को यहाँ से कब तक चलना होगा? इस गढ़ी में बंद पड़े-पड़े तो अच्छा नहीं मालूम होता। दिवाकर भैया कहते थे कि उद्धार की घड़ी शीघ्र निकट आ रही है।"

धीर प्रधान हँसकर बोला—"बेटी, जंगलों में फिरते-फिरते अब तुझको गढ़ी में रहना अच्छा नहीं लगता। जब उद्धार की घड़ी आयगी, तब बतलाएँगे।"

हेमवती छत की ओर देखती हुई फिर चली गई। उसने समझ लिया कि उद्धार की घड़ी अभी दूर है।

सोहनपाल ने कहा—"सहजेंद्र और दिवाकर ने तो यह तै कर रक्खा है कि माहौनी तो क्या, भारतवर्ष-भर पर कल ही या परसों तक अधिकार कर लेंगे। इनकी उमंग देश-काल और अपने बल की परिमित सीमा पर कभी दृष्टि थोड़े ही रखती है। और इसी तरह के विचार इस दीन लड़की के चित्त पर चढ़ा दिए हैं।"

फिर कुछ विलंब के पश्चात् कहा—"प्रधानजी, बेटी का विवाह भी हम लोगों की चिंता को बढ़ाता है। यों तो अनेक क्षत्रिय उसका पाणि-

ग्रहण करने को तैयार हो जायँगे, परंतु हम चाहते हैं कि पुण्यपाल के साथ विवाह हो, तो अच्छा है।"

सहजेंद्र बोला—"पुण्यपाल के पास करेरा से बड़ा और कोई ठिकाना नहीं है। उसके अधिकार में दो-ढ़ाई सहस्र सैनिक क्या हैं, मानो वह अपने को इंद्रासन का स्वामी समझता है। हेमवती उस घमंडी के साथ विवाह नहीं करेगी।"

धीर प्रधान ने कहा—"इसका निर्णय अभी नहीं किया जा सकता। जो हमारे लिये सबसे अधिक बलिदान करेगा, वही हमारे संबंध का पात्र होगा। पुण्यपाल पँवार हैं, और अपनी बराबरी के हैं। यदि उनके मुँह से आपके या दिवाकर के समक्ष कोई अहंकार की बात निकल जाय, तो आप लोग कृपा कर उसको सहन कर लें। हमको मित्र खोजने पर भी नहीं मिलते और शत्रु तो बिना ढूँढ़े ही सामने खड़े रहते हैं।"

सोहनपाल कुछ और सोचने लगा। धीर प्रधान से बोला—"यदि खंगार राजा केवल आशा ही दिला दे, तो हम लोग सारौल में कुछ समय तक टिके रह सकते हैं। भटकते फिरने की अपेक्षा एक स्थान पर टिककर उद्देश्य-सिद्धि का प्रयत्न करना अधिक हितकर जान पड़ता है।"

ऐसी दशा में रानी और बेटी को किसी सुरक्षित स्थान में रख देना श्रेयस्कर होगा, क्योंकि हम लोग दिन-रात सारौल में न रहेंगे।" धीर ने कहा।

"मैं सोचता हूँ कि इन लोगों को कुंडार में छोड़ दिया जाय। इनके साथ दिवाकर या सहजेंद्र या दोनो को छोड़ दीजिए। वहाँ विष्णुदत्त अपना परिचित और हितू है। उसका लड़का अग्निदत्त भला जान पड़ता है, और नाग साधारण कुल का होने पर भी निष्कपट और वीर-हृदय मालूम होता है।" सोहनपाल बोला।

सहजेंद्र ने कुछ संकोच के साथ कहा—"यदि मुझे आप कुंडार में रक्खें, तो दिवाकर को भी वहीं रहने की आज्ञा दीजिएगा।"

धीर प्रधान ने हँसकर कहा—"और यदि दिवाकर को वहाँ छोड़ा जाय, तो आपको अवश्य वहाँ रहने दिया जाय।"

कुंडार में अर्जुन

चंदूघाट से बेतवा पार करने में दो-तीन छोटे-बड़े टापू मिलते हैं। वहाँ से कुंडार के लिये शक्ति-भैरव में होकर गाड़ी का और सेंधरी में होकर पैदल-मार्ग गया है। पहाड़ों के कारण चक्कर दोनो मार्गों से पड़ता है। गाड़ी का मार्ग पश्चिम-दक्षिण गया है और पैदल का उत्तर-पूर्व।

कुंडार बहुत दूर से पहाड़ियों की चोटी पर दिखलाई पड़ता है, पर ज्यों-ज्यों उसके निकट जाइए कि छिपता जाता है और बिल्कुल पास पहुँच जाने पर दिखलाई ही नहीं पड़ता। इसमें किसी कारीगर का शिल्प नहीं मालूम होता। जुझौति के आदिम अधिकारी गोंड थे। कठिन आवश्यकता के कारण उनको ऐसे स्थान की शरण लेनी पड़ी, जो बीच में विस्तृत, ऊँचा और चारो ओर से पहाड़ियों की श्रेणियों से घिरा हुआ था। गोंडों के बाद उस पर जिन लोगों का अधिकार हुआ, उन्होंने अपनी रण-कुशलता के कारण स्थान की उन्नति की और उसको दुर्भेद्य बना दिया।

कुंडार पर कीर्तिमान् चंदेलों का बहुत दिन अधिकार रहा। पृथ्वीराज चौहान ने जब चंदलों को श्री-हत कर दिया, तब कुंडार को अपने खंगार सामंत खेतसिंह की सूबेदारी में कर दिया।

पृथ्वीराज की पराजय के बाद, जब दिल्ली शहाबुद्दीन गोरी के हाथ में चली गई, तब कुंडार के खंगार स्वाधीन हो गए। उनके राज्य की सीमा पूर्व में केन से लेकर पश्चिम में सिंध तक और दक्षिण में करेरा से लेकर उत्तर में पहूज नदी तक थी। राज्य की आय कई लाख रुपए थी। परंतु ये सीमाएँ चल-विचल बनी रहती थीं।

जिस समय की हम कहानी लिख रहे हैं, उस समय पूर्वोल्लिखित हुरमतसिंह ही वहाँ राज्य करता था।

कुंडार इस समय काफ़ी संपत्तिशाली नगर था। पहाड़ों से सुरक्षित था। उत्तर-पूर्व की ओर एक बड़ी पहाड़ी झील थी, जिसका ओरछे के प्रसिद्ध महाराजा वीरसिंहदेव ने बाद को जीर्णोद्धार किया।

अर्जुन चिट्ठियाँ लेकर कुंडार पहुँचा। मंत्री एक वयोवृद्ध खंगार था। शरीर का कुछ मोटा और बुद्धि का पैना था। परंतु वह मंत्रित्व की परा काष्ठा काइयाँपने में समझता था और दिल्ली के मुसलमान-नरेशों के साथ संधि बनाए रखना उसकी प्रधान राजनीति थी। गौण राजनीति थी एक को दूसरे से लड़ाते-भिड़ाते रहना। नाम था गोपीचंद।

अर्जुन की इस प्रार्थना पर उसको हँसी आई कि चिट्ठियाँ स्वयं महाराज के हाथ में देना चाहता हूँ। बड़े गर्व के साथ बोला—"तू कुम्हार है न?"

"हओजू, कुम्हार तो हौं।"

"तुझ-सरीखे नीच जाति के लोगों को देखने से महाराज को पाप लगेगा। तू महाराज के सामने नहीं जा सकता।"

अर्जुन मन-ही-मन जल गया, मन में कहा—"मोए कौन इन पातियन में आग लगाउने तौ। पै कठिन तौ जा बीती कै दाऊजू के मारें प्रान नईं बच पाउत, नईं तौ मैं तौ इतै न आउतो। और जे खंगरा ऐसे छत्री बने फिरत कि भोरएँ मौं देखकें इनैं पाप लग जैय। मुसलमान से भलें छाती पै उर्दा दरवाऊत!"

अर्जुन को भौचक्का-सा खड़ा देखकर मंत्री बोला—"मैं इन चिट्ठियों को स्वयं लिए जाता हूँ। कोई बात ज़बानी कहेगा?"

"नईं जू।"

"कुमार का घाव बिलकुल ठीक हो गया है?"

"हौ जू।"

"खूब लड़े, अकेले लुटेरों को मार भगाया। क्षत्रिय-संतान तो ठहरे।"

अपने सेवकों को अर्जुन के डेरे का प्रबंध करने के लिये नियुक्त करके मंत्री तामझाम में बैठकर राजा के पास गया।

जब वह जा रहा था, अर्जुन ने निर्भय होकर मंत्री से कहा—"जू, हमाए दाऊजू नै कई हती कै सिवाय महाराज के और कोऊ चिट्ठी न पढ़ै।"

मंत्री ने निष्ठुरता के साथ उत्तर दिया—"चुप-चुप! बहुत बकवास करेगा, तो जीभ नुचवा ली जायगी।"

अर्जुन सन्न रह गया। सोचा—"मैं कुम्हार हों ईसें, काए?"

हुरमतसिंह

मंत्री गढ़ में पहुँचा। फाटक अब भी उसी हिंदुवानी ढंग का बंदनवार-द्वार चौकोर है, मिहराबदार नहीं है।

पहरेवालों ने प्रणाम किया, और महाराज को तुरंत सूचना दी। शीघ्र भीतर बुला लिया गया। तामझाम उसने बाहर ही छोड़ दिया।

हुरमतसिंह गद्दी लगाए गढ़ के दक्षिणी भाग के बाहरी खंड की दालान में एक ऊँचे स्थान पर तकिया के सहारे बैठा हुआ था।

अभिवादन के पश्चात् मंत्री ने राजा से कहा—"महाराज, ये चिट्ठियाँ भरतपुरा से आई हैं।"

"इनमें क्या है?"

"भरतपुरा के चंदेल सामंत ने अपने हलकारे द्वारा कहला भेजा है कि सिवा श्रीमान् के इनको और कोई न पढ़े, इसलिये मैंने अभी तक इनको नहीं पढ़ा।"

हुरमतसिंह की अवस्था ढल गई थी, और चेहरे पर झुर्रियाँ आ गई थीं, परंतु शरीर की बनावट नहीं बिगड़ी थी और आँखों से सहज-कोप और हठी स्वभाव का लक्षण दिखलाई पड़ता था। एक बात या एक विषय पर स्थिर रहने का अभ्यास भी बहुत दिन से छूट गया था।

तिर्छी आँख करके बोला—"चंदेला ऐसा ढीठ हो गया है! नाग को आने दो, तब देखूँगा। सब चिट्ठियाँ पढ़कर सुनाइए। नाग को चोट तो साधारण थी?"

मंत्री ने अपनी चतुराई दिखलाते हुए उत्तर दिया—"हाँ महाराज, घाव अच्छा है, इसलिये अब तो यही कहूँगा कि चोट साधारण थी। परंतु कुमार ने युद्ध किया बड़ी वीरता के साथ।"

इसके पश्चात् मंत्री ने चिट्ठियाँ पढ़नी शुरू कीं। कहीं-कहीं बुंदेलों की वीरता, कहीं-कहीं उनका रहस्यमय जीवन, कहीं उनके प्रति चंदेल की अनुदारता और अग्निदत्त की प्रशंसा सुनकर हुरमतसिंह मुस्किरा गया।

मुसलमान क़ैदियों के विषय में कहा—"एक तो भाग ही गया, यदि मर गया हो, तो अच्छा है, नहीं तो वह कालपी से आँधी उठाकर फिर किसी समय आवेगा। दूसरे को मैं नौकर रख लूँगा। हमारे शस्त्रागार की वह उन्नति करेगा।"

अंत में चंदेल की वह चिट्ठी पढ़ी गई, जो कुमार के पत्र का उपोद्घात-मात्र थी। इस चिट्ठी को राजा ने बड़े चाव के साथ सुना। कुमार की चिट्ठी, जो उसने हेमवती को लिखी थी, मंत्री ने नहीं सुनाई। राजा के हाथ में दे दी और बोला—"इसे महाराज स्वयं पढ़ें।"

राजा कटाक्ष-पूर्ण हँसी हँसकर बोला—"अब बुढ़ापे में ऐसी चिट्ठी क्या पढ़ूँ। परंतु देखूँ, तो नाग के ही हाथ की लिखी है?"

चिट्ठी लेकर बोला—"है तो कुमार के ही हाथ की लिखी। क्या लिखता है, सुनो गोपीचंद—

'आप मेरे हृदय-कानन की वनदेवी हैं। आपने जब रात को मेरी पीठ पर तूणीर कसकर रण के लिये बल प्रदान किया, तभी मेरा जन्म सफल हो गया। अब सदा-सर्वदा ऐसी ही कृपा बनी रहे, क्योंकि आपके विना मैं कदापि जीवित नहीं रह सकता हूँ। कृतकृत्य दास—नागदेव।'

"गोपीचंद, मैंने ऐसी चिट्ठी कभी अपने जीवन में किसी को नहीं लिखी। तुमने कभी लिखी?"

वृद्ध गोपीचंद ने एक आँख को ज़रा दबाकर और दूसरी से आश्चर्य प्रकट कर उत्तर दिया—"महाराज, हम लोग इन बातों में काहे को पड़ें। विवाह माता-पिता ने कर दिया, और फिर सारा जीवन लड़ाई-

झगड़ों में ही गया। इस कोमल विषय की ओर ध्यान जाने के लिये हम लोगों के पास समय ही कहाँ था ?"

फिर हुरमतसिंह आश्चर्य प्रकट करते हुए बोला—"चंदेल ने यह चिट्ठी बीच में ही रोक ली ! बड़ा शठ और नीच है। उस लड़की को यदि यह चिट्ठी मिल जाती, तो वह सुखी होती। कुंडार के राजकुमार की चिट्ठी को रोक लेने का साहस ! चंदेल भीषण दैत्य है ! चिट्ठी को अपने अभीष्ट स्थान पर पहुँच जाने देता, तो कुछ अनर्थ न होता। परंतु वह शासन का पक्का है, इसलिये मेरे पास सीधी पहुँचा दी। मैं उसका यह अपराध नाग से कहकर क्षमा करवा दूँगा। गोपीचंद, तुम भी चंदेल की ढिठाई को भूल जाना। चंदेल नाग के इस प्रेम-रहस्य को मेरे कानों के अतिरिक्त और कहीं पहुँचने नहीं देना चाहता था।"

गोपीचंद ने सकारा—"मैं भी सोचता हूँ कि चंदेल ने कुछ बहुत अनुचित नहीं किया, परंतु कुमार बुरा मानेंगे।"

हुरमतसिंह ने बड़े आत्म-संतोष के साथ कहा—"हमारा नाग युवक है, सुंदर है, पूरा योद्धा है—सामंतों का पराग है। देखिए, अकेले भरतपुरा की गढ़ी को बचा लिया। सोहनपाल इत्यादि भी लड़े, परंतु पीछे ; और फिर ये लोग तो हमारी प्रजा हैं।"

कहते-कहते हुरमतसिंह को अपनी कीर्ति से संबंध रखनेवाली एक घटना याद आ गई।

बोला—"उस समय मैं नाग की आयु का था, जब कई आक्रमणों के पश्चात् अलतमश ने फिर एक आक्रमण कालिंजर के ऊपर किया। उस नर-पिशाच के न-जाने कितने योद्धाओं को तो मैंने स्वयं अपने हाथ से नरक को भेजा था। उसके हारकर चले जाने के पीछे उसने अपने सरदार नसरतुद्दीन को भेजा। वह भी देश को ख़ाक करके कालिंजर से अपना माथा टकराकर लौट गया। फिर इस राक्षस बलबन ने कालिं-जर को बेचैन किया। पर रख न सका उसको कोई भी मुसलमान

अनेक आक्रमण और अनंत रक्तपात करके भी। गोपीचंद, बलबन की उस चढ़ाई के बाद हमको उसके साथ संधि करनी पड़ी, नहीं तो वह कुंडार को ध्वंस कर देता। क्या करूँ, हमारे ये अनेक सरदार कभी-कभी सिर उठा बैठते हैं, नहीं तो दिल्ली की संधि को तो जूतों की ठोल से ठुकरा दूँ। परंतु ये दुष्ट दिल्ली के आतंक के कारण हमारा प्रभाव मानते हैं।"

गोपीचंद भी कई युद्धों में लड़ा था, परंतु इस समय उस चिट्ठी का विषय उसको अधिक मनोरंजन जान पड़ता था, इसलिये टोककर बोला—"महाराज, इस चिट्ठी के विषय में क्या कहते हैं?"

गोपीचंद, तुम निरे गोबर हो, बात सुनो। चिट्ठी पीछे। करेरा का पुण्यपाल पँवार कहता है अपने को छोटा ठिकानेदार और काम करता है संसार मंडलेश्वर-जैसा। माहौनीवाला वीरपाल अपने को व्योना का सम्राट् और माहौनी का नरेश समझता है। अभी खुल्लम-खुल्ला नहीं, परंतु समय मिलने पर पंख फैलावेगा। कुंडारगढ़ का मुकुटमणि चौहान निस्संदेह आज्ञाकारी जान पड़ता है, परंतु पुण्यपाल पँवार के विरुद्ध अपनी सेना नहीं ले जायगा। बामौरा का पड़िहार भस-नेह का बुंदेला सब बिलैयादंडौत करते हैं। हमारी रसोईखाना उनको स्वीकृत नहीं, जैसे ब्रह्मा के पेट से निकले हों। अवसर मिलने पर इन सबों की जागीरें छीनकर खंगार ठाकुरों को दूँगा। न रहेगा बाँस, न बजेगी बाँसुरी।"

गोपीचंद ने मौक़ा पाकर कहा—"यदि सोहनपाल की लड़की के साथ कुमार का संबंध हो जाय, तो ये सब ठाकुर अपने संबंधी हो जायँ।"

हुरमतसिंह ने उत्तेजित होकर कहा—"बिलकुल ठीक कहते हो। मैं संबंध को स्वीकार कर लूँगा। परंतु बुंदेलों को पड़िहार अपने से छोटा गिनते हैं।"

"और बुंदेले अपने से पड़िहारों को तुच्छ समझते हैं।" गोपीचंद ने जेब लगाई।

"सब एक-से ही हैं। जैसे नागनाथ, तैसे साँपनाथ। परंतु यदि बुंदेलों से संबंध का आरंभ हो जाय, तो हमारे मार्ग के अनेक कंटक दूर हो जायँ।" महाराज ने कहा।

मंत्री कुछ सोचकर बोला—"इस समय कुछ-न-कुछ उत्तर सोहनपाल के पास भेजना पड़ेगा। उत्तर ऐसा हो कि जिससे सोहनपाल आशान्वित हो जाय, परंतु हमको आगे चलकर बाँध न सके। विवाह के संबंध में पीछे बातचीत होनी चाहिए। जब कुमार यहाँ आ जायँगे, तब इस संबंध में फिर कभी सोहनपाल से चर्चा की जायगी।"

हुरमतसिंह ने इस बात को पसंद किया। परंतु इतना और कहा—"बहुत अधिक आशामय उत्तर मत देना। माहौनीवाले से लड़ाई करके हमको यदि सोहनपाल की कन्या मिल गई, तो बहुत पा गए; परंतु यदि सोहनपाल ने इनकार कर दिया, तो बुरा होगा। इधर बहुत-से स्वामि-धर्मी सामंत, सरदार और सैनिक मारे जायँगे, शिथिल राजभक्ति-वाले सरदारों में अराजकता व्याप्त हो जायगी और वे हमारे शासन का उल्लंघन करने लगेंगे। मैं ऐसा युद्ध कभी मोल न लूँगा, जो इतना घाटा पीठ पर लाद देवे। विष्णुदत्त पांडे के ऋण का रुपया अभी नहीं दे पाया है, और ऋण का बोझ सिर पर लेना उचित न होगा।"

गोपीचंद बोला—"मैंने उत्तर का विषय सोच लिया है। मैं लिखूँगा कि इस समय एरच के ऊपर मुसलमानों के आक्रमण की संभावना है। दिल्ली का बादशाह बलबन तुग़रिलबेग का दमन करने के लिये बंगाल गया हुआ है। उसके बुढ़ापे के कारण इधर-उधर के मुसलमान सूबेदार स्वतंत्र होने की आकांक्षा कर रहे हैं और उसके मरने की बाट जोह रहे हैं। मुसलमानों के गुट्ट-के-गुट्ट जो इस समय कालपी के सूत्र में बँधे हैं,

अपने लिये एक अलग या कई अलग-अलग राज्य स्थापित करने की चिंता में हैं। इसलिये माहौनी के साथ लड़ाई छेड़ना इस समय ठीक नहीं मालूम होता है। राजकीय स्थिति बलबन के बंगाल से लौटकर आते ही ठीक हो जायगी और ये शिथिल संयुक्त राज्य पुच्छलतारे की तरह चाहे जिस दिशा में टूटकर कोई हानि न पहुँचा पावेंगे। और, यदि वह बंगाल में पराजित हो गया या मर गया, तो उस समय जैसी अवस्था उत्पन्न हो, उसके अनुकूल काम किया जायगा।"

हुरमतसिंह ने मुस्किराकर कहा—"गोपीचंद, इस उत्तर को इस समय मत भेजो। इस समय तो केवल इतना लिख भेजो कि आप कुंडार में ठहरें। निजी सामंतों और सरदारों को इकट्ठा करके और उनकी सम्मति लेकर आपको सहायता दी जायगी। सामंतों और सरदारों को एकत्र करने में कुछ विलंब लगेगा। इस बीच में दिल्ली की अवस्था का पता लग जायगा। सोहनपाल की इच्छा विवाह-संबंध के विषय में मालूम पड़ जायगी, तब जैसा उत्तर उचित होगा, दे दिया जायगा।"

गोपीचंद बोला—"यह बात ठीक है। तब तक कुमार का सोहनपाल की कन्या के साथ विवाह होने की आशा कहाँ तक जड़दार है, ज्ञात हो जायगा।"

फिर कहने लगा—"बलबन चाहे जब मरे, पर किसी-न-किसी को दिल्ली भेजने की आवश्यकता है। वहाँ इस समय किसका अधिक ज़ोर है, बलबन का उत्तराधिकारी होने की किसकी अधिक संभावना है, इत्यादि बातों के जानने की हमको चिंता है, जिसमें हम सबसे अधिक प्रबल दल के साथ संधि-संबंध जोड़ लें। हमारे भाई-बंद बहुत अधिक संख्या में नहीं हैं, नहीं तो सारे सिरउठौवल ठाकुरों का नाश करके उनके सब ठिकाने अपने लोगों को दे दिए जाते और फिर दिल्ली के कृपा-कटाक्ष की ओर न निहारना पड़ता।"

"मेरा भी ऐसा ही विचार है" हुरमतसिंह ने कहा—"परंतु नाग

उचित-अनुचित और न्याय-अन्याय की बात को आगे-आगे ले दौड़ता है, और इसीलिये मैं कई अवसरों पर जहाँ खंगारों का हित-साधन किया जा सकता है, नहीं कर पाता।"

गोपीचंद को इस बीच में एक कौंइयाँपन सूझा। बोला—"महाराज, मैं एक चिट्ठी वीरपाल के पास माहौनी भी भेजना चाहता हूँ।"

"क्या लिखोगे?"

"यह लिखूँगा कि सोहनपालजी इस ओर आए हैं। आपकी परस्पर कलह देखकर राज्य को दुःख होता है। आप समझौता कर लें, तो बड़ा हर्ष होगा। उनके पास इस समय सेना इत्यादि कुछ भी नहीं है। कष्ट में हैं। राज्य ने आपके विरुद्ध अभी तक कोई वचन नहीं दिया है।"

"ख़ूब सूझी! यदि इस लेख का पता सोहनपाल को भी लग जाय, तो हमें कोई हानि नहीं पहुँच सकती। वीरपाल समझेगा कि अभी तक राजा ने कोई वचन नहीं दिया, तो ऐसे बाट के बटोही को आगे क्या वचन दिया जायगा, और उसके लिये यह भय का भी कारण होगा कि कहीं कुंडार सोहनपाल को आश्रय न दे दे। उधर यदि सोहनपाल को ख़बर लग गई, तो वह इन शब्दों का यह अर्थ निकालेगा कि अभी वचन नहीं दिया है तो क्या, परंतु यदि न्याय नहीं बनेंगे, तो लोहा ढील दिया जायगा। वाह रे गोपीचंद! पर यह बात विष्णुदत्त पांडे को भी सुना देना।"

गोपीचंद ने अपनी उमंग को आश्रय पाता देखकर कहा—"महाराज, उनसे तो मैं कहूँगा ही, क्योंकि वह राज्य के दाहने हाथ हैं, परंतु मैं यह जानना चाहता हूँ कि दिल्ली किसको भेजा जाय? पांडेजी से बढ़कर मुझको कोई नहीं दिखता। वह अरबी तुर्की इत्यादि सब जानते हैं और एक-दो बार दिल्ली हो भी आए हैं, दिल्ली जाने के लिये उनसे अच्छा राजनीति-विशारद और कोई नहीं है।"

हुरमतसिंह ने स्वीकार किया। बोला—"तुमने हरी चंदेल की चिट्ठियों में पढ़ा था कि सोहनपाल के साथ कोई कायस्थ अरबी-तुर्की का जाननेवाला है। यदि सोहनपाल से हमारी बन गई, तो इस व्यक्ति से भी चिट्ठी-पत्री का काम ले लिया जा सकेगा। नहीं तो अग्निदत्त तो थोड़ी-सी जानता ही है, और अभ्यास करके शीघ्र चतुर हो जायगा। हमारा काम रुकेगा नहीं। जिस मुसलमान क़ैदी का वर्णन हरी ने किया है, यदि उसको भी किसी नौकरी पर रख लिया जाय, तो अच्छा होगा। यदि आदमी अच्छा हुआ, तो बहुत उपयोगी सिद्ध होगा। तुम कुमार को लिख दो कि जितनी जल्दी हो सके, चले आवें। कुछ सैनिक भी भरतपुरा की कमी को पूरा करने के लिये भेज दो। तुम्हारा कहना ठीक है कि दिल्ली शीघ्र किसी को भेजना चाहिए, नहीं तो यहाँ मुसलमानों का असह्य उत्पात बढ़ जायगा।"

मंत्री गोपीचंद इन आज्ञाओं के अनुसार काम करने के लिये वहाँ से चला आया।

अर्जुन का दूतत्व

अर्जुन दूसरे दिन सबेरे कुंडार से भरतपुरा के लिये चला। एक चिट्ठी उसको देवरागढ़ी के नायक चमूसी पड़िहार के हाथ में देनी थी। चमूसी के लिये आदेश था कि दो सौ मनुष्य भरतपुरा गढ़ी में भेज दे, जिससे बरौल टापू के सैनिक भरतपुरा से वापस आ जायँ। इसलिये अर्जुन कुंडार से कभी नदी के किनारे, कभी दूर, कभी जंगल और भरकों में होकर और कभी खेतों के पास से देवरा की ओर गया।

अब यहाँ पर सिवा जंगल और जंगली पशुओं के कुछ नहीं है। मैदान के मैदान पड़े हैं और उन पर करधई के पेड़ खड़े हैं, मानो कोई उजाड़ भवन का आँगन हो। केवल पुराने समय का एक टूटा-फूटा चबूतरा और पत्थरों का ढेर नदी से पूर्व की ओर आध मील दूर लकड़ादेव के नाम से विख्यात है, वह उस समय भी था और जैसे आजकल लोग एक सूखी लकड़ी पूजा-भाव से इस चबूतरे के पास लकड़ादेव के नाम पर चढ़ा देते हैं, वैसा पहले भी करते थे।

अर्जुन जब इस चबूतरे के पास पहुँचा, उसने भी एक सूखी लकड़ी लकड़ादेव को भेंट कर दी। इतने ही में उधर सामने के एक टीले की दूसरी ओर से अघोरी-सा एक साधु निकला।

अर्जुन सैनिक था, परंतु अपने समय के मिथ्या, विश्वासों से ख़ाली न था। उसने समझा, लकड़ादेव अवतरित हुए हैं।

अर्जुन ने बहुत झुककर प्रणाम किया, और आँखें बंद कर लीं। बैरागी ने कुछ उत्तर नहीं दिया। गाने लगा। उसके गीत के बोल इससे अधिक नहीं थे—

"धन्न कुची तारौ, बिलैया ले गई पारो।"

अर्जुन की जान में जान आई। उसको भान हुआ कि देवता हो, चाहे न हो, बोलता तो मनुष्य की तरह है।

बैरागी ने अपना विचित्र गीत समाप्त करके अर्जुन से पूछा--"भरतपुरा यहाँ से कितनी दूर है?"

"आधौ कोस है महाराज, इतै सैं पच्छिम खौं सूदी गैल गई। सूँदा में होकैं उतर जइयो। सामने मौहराघाट मिलहै, उतैं से दक्खिन हो जइयो--गढ़ी दिखाई पर है, बोई भरतपुरा है। मैं सोई उतई जैहौं, परंतु देवरा में साउंत सों काम है, ईसैं संगै नईं जा सकत।" इतना कहकर अर्जुन पैर बढ़ाता हुआ समस्थल और भरकों में होता हुआ देवरा की चौकी पर पहुँच गया।

चमूसी मिला। चमूसी वृद्ध, दुर्बल देह और हतश्री सामंत था। किसी समय में उसने कुंडार की अच्छी सेवा की थी, इसलिये अब तक सामंत-पद पाए हुए था, परंतु उसको देखने से विदित होता था कि हाथ में तलवार थामने की शक्ति कम थी, माला जपने की अधिक।

अर्जुन ने उसको चिट्ठी दी। चिट्ठी पढ़कर झुर्रीदार चेहरा और भी झुकर गया।

बोला--"यहाँ के सैनिक वहाँ भेजो, वहाँ के सैनिक यहाँ भेजो। यह तितर-बितर नीति न-जाने क्यों चलाई जाती है। अच्छा जाओ, भेज देंगे।"

अर्जुन ने कहा--"दाउजू, मुसलमानन ने अबै परों-नरों गढ़ी पै हल्ला करो तो, ऊमें भरतपुरा के भौत जोधा मारे गए, ईसैं और आदिमियन के भेजबे की अटक परी।"

"मैंने क्या संसार-भर का ठेका लिया है? किया होगा हल्ला। देवरा पर ही कोई हल्ला बोल बैठे, तो तू या तेरा चंदेला यहाँ आ जायगा?"

"मोय का करनै दाउजू। मिंत्रीजू, ने पाती दई ती, सो अपुन खौं दै घाली। अब अपुन खौं जो दिखाए, सो करवी। मैं जात सो अपुन नैं जो कई सो कै देऊँ।"

"अरे शठ, मेरे मुँह लगता है ?"

"मैंने अबै का कई अपुन सों। मैं ज चलो।"

उसको गमनोद्यत देखकर चमूपी का क्रोध ठंडा हो गया। बोला—"अच्छा, दो सौ सैनिक कल भेज देंगे।"

अर्जुन जाते-जाते कह गया—"पौंचाउनें होयँ पौंचा दियो, ना पौंचाँउने होयँ ना पौंचाइयो। उतई कुमार परे डरे, सो उनैं चाउने हुँइएँ, तौ अप्पई बुला लैहैं।"

चमूपी कुमार का नाम सुनकर चमक उठा। बोला—"क्या नागदेव अब तक यहाँ हैं ? उस दिन कह गए थे कि कल लौटेंगे। मैंने उनके आगत-स्वागत का बढ़िया प्रबंध किया था......।"

अर्जुन अनसुनी करके घाट पर पहुँचा। यहाँ जल बहुत गहरा और पाट बहुत चौड़ा था। घाट की सीध में नदी की तीन धारें हो गई थीं। एक तो प्रधान और बड़ी यही। दूसरी एक छोटे और एक बड़े टापू के बीच में नाले के बराबर घाट के सामने पश्चिम-उत्तर की ओर से चौड़ी धार में आ मिली थी। बड़ा टापू बरौल द्वीप था। इस द्वीप के उत्तर की ओर नदी की तीसरी और अंतिम धार थी, जो दूसरी धार से कुछ बड़ी थी और जिसमें यत्र-तत्र सदा थोड़ा-बहुत पानी भरा रहता था। इन दोनो नाले-सदृश धारों के बीच में बरौल द्वीप था। इस द्वीप के समानांतर और उसके पूर्वीय किनारे से सटी हुई बेतवा की प्रधान धार थी। अब भी यह सब वर्तमान है।

नाव द्वारा धार पार करके अर्जुन बरौल द्वीप में पहुँचा। टापू के पूर्वीय सिरे को नालों ने जगह-जगह काटा था और नालों के आस-पास गहरे भरके थे और ये सब घने वृक्षों से ढके हुए थे। इस स्थान के पश्चिमीय भाग में थोड़ी-सी खेती और एक बगीचा था। अब कुछ नहीं है, सब जगह घोर जंगल फैल गया है।

टापू के सिरे पर और देवल गाँव से उत्तर ओर देवल के शिवालय

के ठीक सामने बरौल द्वीप की विस्तृत गढ़ी थी। केवल बीच में नदी की तीसरी धार थी। गढ़ी में देवी का एक छोटा-सा मंदिर था और सब सैनिकों के रहने के लिये जगह बनी हुई थी। अब इस गढ़ी के केवल कुछ चिह्न शेष हैं। गढ़ी-नायक किशुन खंगार को अर्जुन ने कुंडार के मंत्री की चिट्ठी दे दी।

किशुन ने कहा—"क्षत्रिय के घर से बिना भोजन किए न जा पावेगा।"

"जू, मोय भरतपुरा अबै हालंई पौंचनें, मैं रुक नई सकत। मोय बड़े महत्त की पाती छोटे राजा खों और अपने दाउजू खों दैने। अपुन खों कछू खबर-इबर देनें होय, तौ दे राखवी।"

किशुन ने कहा—"और कुछ नहीं, केवल यह कि उस क़ैदी का पता नहीं चला, जो नदी में खिसक गया था। मर गया होगा। अच्छा, खाना खायगा?"

अर्जुन ने कहा—"मैंना खैहौं जू।"

"अबे तू अंत में कुम्हारा ही तो ठहरा। क्षत्रियों के रीति-बर्ताव को क्या जाने।"

अर्जुन के जी में कुछ कहने की प्रेरणा हुई, पर रह गया। सोचने लगा—"जे खँगरा जित्ती ठकुराइस दिखाउत, उत्ती तौ बुंदेला नईं बघारत, जिनके मद्दे सुनत रहत कि बे और काऊखों छत्रियन मेंउँ नईं गिनत। मछरा-कैसो तौ ईको सरीर है। अबै चाहौं तौ भिथुल डारौं।"

अर्जुन ने किशुन के घर भोजन नहीं किया। संध्या से कुछ पहले भरतपुरा पहुँच गया।

स्वामीजी

अर्जुन जिस समय भरतपुरा पहुँचा, संध्या होने ही को थी। गढ़ी के फाटक पर वही साधु मिला। वह गा रहा था—

"धन्न कुची तारौ, बिलैया लै गई पारौ।"

अर्जुन पहर दिन चढ़े लकड़ादेव के पास जंगल में इससे मिल चुका था, परंतु उसके मनुष्य या देवता होने में उसको शंका थी। अब उसके मनुष्य होने में उसको संदेह न रहा।

अर्जुन ने पूछा—"महाराज, इतै कैसें आवौ भओ ?"

साधु ने उत्तर दिया—"रमता जोगी बहता पानी, अपना क्या पता और कौन अभिप्राय बतला सकता है ? मैं भूख हूँ।"

"मैं अबै चून, दार, नौन, घी लएँ आऊत।"

मैं सिवा क्षत्रिय और ब्राह्मण के और किसी का अन्न ग्रहण नहीं करता। तू इनमें से कोई है ?"

"अपुन तौ अघोरी बाबा हौ। सबकौ खात हुओ ?"

"चुप, चुप। मैं ऐसा अघोरी नहीं हूँ। मैं अघोरी हूँ ही नहीं। बहुत घूर-घूरकर मेरी सूरत मत देख, नहीं तो डंडा चला बैठूँगा।"

कोई सैनिक होता, तो अर्जुन उससे लड़ बैठता, परंतु बाबा बैरागी से डरता था। उसको वहीं छोड़कर अर्जुन गढ़ी में गया। सामने से दिवाकर आता हुआ दिखलाई पड़ा। अर्जुन बोला—"रायजू, एक बाबा ठाड़ो भीक माँग रओ। मोरे हातन को अन्न न लैहै। कहत कि भूखौं हौं। अपुन उखों कछू दै राखो।"

दिवाकर—"हूँ" कहकर फाटक पर गया।

उसको देखकर बाबा ने अपना वही गीत गाया और बोला— "भूख लगी है।"

दिवाकर ने बहुत आदर के साथ उसको प्रणाम किया और कहा— "भीतर आइए। अभी भोजन का प्रबंध होता है।"

बाबा को लेकर दिवाकर अपने डेरे पर गया। भीतर से किवाड़ बंद कर लिए गए। सोहनपाल इत्यादि सबने बाबा को भक्ति-पूर्वक प्रणाम किया।

बाबा ने कहा— "तुम्हारे साथी बहुत थोड़े रह गए हैं। मुझको मालूम हो गया है कि मुसलमानों ने आक्रमण किया था। जुझौति किस दिन क्षत्रियों के हाथ में आकर स्वाधीन होगा? भगवान् शंकर किस दिन वह समय लावेंगे, जब जुझौति स्वतंत्र होगा? सोहनपाल, धीर, तुम्हारा प्रण केवल माहौनी तक ही परिमित रहा, तो इस गृह-कलह में पड़कर मैं अपना लोक-परलोक नहीं बिगाड़ूँगा। तुम्हारी शक्ति का क्षय देखकर अब आशा नहीं होती।"

सोहनपाल ने आदर और दृढ़ता के साथ कहा— "महाराज, जब तक एक भी बुंदेला जीता रहेगा, जुझौति की स्वतंत्रता के लिये शीश चढ़ाने को उद्यत रहेगा। आप ही निराशा की बातें करेंगे, तो हम लोग कहाँ जायँगे?"

बाबा की आँखें पागलों-जैसी थीं, बोला— "बुंदेले तो जुझौति में अनेक हैं, परंतु तुम-सरीखा बुंदेला मुझको चाहिए। पंचम के रक्त को वीर के प्रण को न भूल जाना। अकेले वीर ने कालिंजर को जीता था। महोबे को पछाड़ा था। एरच से मुसलमानों को उखाड़ा था। जुझौति के स्वार्थी सरदारों को अपने आतंक से कँपा दिया था।"

धीर ने कहा— "स्वामीजी, आप विश्वास रक्खें कि हम लोग अपने प्रण को पूरा करेंगे।"

फिर और नम्रता-पूर्वक बोला— "हममें वह सामर्थ्य तो नहीं है, परंतु

भवानी की दया और आपके आशीर्वाद से हम लोग भी कुछ कर दिखलाएँगे।"

स्वामी ने वज्र की-सी कठोरता के साथ कहा--"मीठी-मीठी बातों से कोई काम नहीं होता। जिह्वा-चापल्य से राज्य नहीं जीते जाते, लोहे की झंकार से अधीन किए जाते हैं।"

धीर इससे बिलकुल सहमत नहीं हुआ, परंतु बोला कुछ नहीं। सोहनपाल ने देखा कि उसके प्रधान का जी छोटा हो गया है। बोला--"महाराज, जैसे बिना हाथ के हथियार निकम्मा है, वैसे ही बिना राजनीति के रण निस्सार है।"

स्वामी ने बिना अकचकाए कहा--"तुम लोग पंचम की निर्बल संतान हो। जुझौति इधर-उधर तितर-बितर पड़ा हुआ है। जो चाहे सो आकर यहाँ के नारीत्व और राजत्व का मान भंग कर जाता है। इस पर भी क्षत्रिय का, बुंदेले का, रक्त उष्ण नहीं होता। धिक्कार है, सौ बार धिक्कार है ऐसी राजनीति को, जो इन बातों को खुली आँखों देखती रहे और न फड़के। तुम लोग कायर हो गए हो, गए-बीते हो।"

सब लोग चुप रहे। सोहनपाल की आँखें इस भर्त्सना को सुनकर जलने लगीं। सहजेंद्र को स्वामी की बुद्धि पर शंका होने लगी, और दिवाकर की श्रद्धा को धक्का लगा।

स्वामी ने फिर कहा--"अकेले कुंडार पर टूट पड़ो। उस अयोग्य खंगार को कुंडार की पवित्र धरती से निकालकर बेतवा में डुबो दो। सेना इकट्ठी करके जुझौति को बलिष्ठ बनाओ और बर्बर मुसलमानों को हाथ-हाथ-भर लोहा खिला दो। ओ हो! ओ हो!"

"धन्न कुची तारी, बिलैया लै गई पारी।"

सोहनपाल ने कुछ कहने के लिये गला साफ़ किया। किंतु स्वामी बीच में ही बोल उठा--"कुछ खाने को दो।"

यह छोटी-सी सभा उस बड़े व्याख्यान को पचाने की काफ़ी शक्ति न

रखती थी, इसलिये एक नहीं, दो नहीं, सब-के-सब एक स्वामी के भोजनों के प्रबंध के लिये उठ खड़े हुए—केवल धीर प्रधान बैठा रहा।

धीर ने नम्रता-पूर्वक, परंतु दृढ़ता के साथ, कहा—"स्वामीजी, हम लोग अब ५-६ मनुष्य रह गए हैं। साथ में रानी और बेटी भी हैं। यदि हम सब-के-सब स्त्री और पुरुष कुंडार पर टूट पड़ें, तो सिवा आत्मघात के और कोई फल न होगा। इसके सिवा हम कुंडार के इस समय अतिथि हैं। क्या आपका शास्त्र अतिथि-सत्कार का यही पुरस्कार बतलाता है ?"

स्वामी ने नरम पड़कर कहा—"शास्त्र में ऐसा वचन नहीं है, परंतु जुझौति को स्वतंत्र देखने के लिये जी व्याकुल हो रहा है, और मेरी आत्मा मुझसे कहती है कि बुंदेले ही इसको स्वतंत्र कर सकेंगे। इसलिये कहता हूँ और बार-बार कहता हूँ कि शीघ्र चोट करो, अनवरत घोर चोट करो और पहले चोट करो।"

धीर—अर्थात् विना सैन्य संग्रह किए, विना संपत्ति के इसी समय बलिदान करो ? हम लोग आपकी आज्ञा से मुँह नहीं मोड़ते। परंतु हम लोग बहुत दिनों से इसी स्थान पर मिलने तथा बहुत-से ज्ञातव्य विषयों पर चर्चा करने के लिये आपकी प्रतीक्षा कर रहे थे। आपके संध्या-कालीन संकेत से हमको मालूम हो गया था कि सहायता का हाथ निकट है। पड़िहारों ने क्या उत्तर दिया ?"

"क्या उत्तर देंगे ? वे क्या अब मनुष्य हैं ? वे अपने पुराने वैभव को, मऊ-सहानिया के पूर्व-गौरव को बिलकुल बिसार चुके हैं। उनकी नसों पर खंगारों के शिकंजे की जकड़ है।" स्वामी ने उत्तेजित होकर कहा।

"कछवाहों से कदाचित् आपको अधिक आशा-जनक उत्तर मिला होगा ?" धीर ने शांति-पूर्वक पूछा।

"कछवाहों के रक्त में अब बिजली नहीं दौड़ती। उन्होंने अपनी

तलवारों को तोड़कर हल और हँसिए बनवा लिए हैं। वे बैलों की जोड़ी खरीदकर दो बीघे भूमि के लिये अपना तन-मन न्योछावर करने को तैयार हैं।"

"और पँवार ?"

स्वामी ने उत्तर दिया—"केवल पँवार देश-चिंता में तुमसे भी बढ़कर हैं, परंतु पुरुषार्थी नहीं हैं। तुम्हारा साथ देंगे।"

धीर ने कुछ कुढ़कर कहा—"यह समाचार बहुत उत्साह उत्पन्न नहीं करता। इस पर भी आपकी आज्ञा है कि हम मुट्ठी-भर आदमी कुंडार की छाती पर चढ़ दौड़ें। और अकारण ही।"

स्वामी ने मुट्ठी कसकर कहा—"हाँ, ठीक यही बात है। अभी मेरे जी में थोड़ी आशा है। जिस दिन नितांत निराश हो जाऊँगा, उस दिन मैं मरूँगा और तुम सबों को मर जाने के लिये कहूँगा। तुम्हारा माहौनी का वीरपाल बीता-भर भूमि पर ऐसा गर्व करता है, मानो विश्व-भर का अखंड अधिकारी हो। वह कुपूत है और बुंदेलों की कीर्ति-पताका कभी उसके हाथ से न उठेगी, न उड़ेगी। तुम लोग भी यदि संसार में अपने चिथड़ों से संतुष्ट रहकर मस्त रहना चाहो, तो मेरे मर जाने के पीछे भले ही ऐसा हो, जीते जी ऐसा न होने दूँगा। इस फटियल जीवन की अपेक्षा या तो कुंडार में खंगारों की नोक पर छिदकर समाप्त हो जाओ या कालपी में मुसलमानों की तलवार से कटकर स्वर्ग जाओ। हाय कालपी! हमारी कालपी! मुसलमानों के पैरों-तले रौंदी जा रही है, और क्षत्रिय कुछ नहीं कर पाते। बुंदेले एक दूसरे को नहीं देख सकते। सोहनपाल गली का भिखारी-सा मारा-मारा फिर रहा है और कुंडार का मगरमच्छ खंगार मुसलमानों से संधि करके जुझौति की छाती पर होला भुनवाता है। ओह! चंदेल गए! चौहान गए! मैं तो अब अनंत अथक तीर्थ यात्रा करूँगा।"

तुमको चित्रगुप्तजी भी न बचा सकेंगे। हाय कालिंजर! हाय मधुवन! सोहनपाल?"

सोहनपाल ने सोचा कि अब मेरी बारी आई। बोला—"महाराज, क्या आज्ञा होती है?"

स्वामी ने उत्तर दिया—"अब मैं जाता हूँ। मैंने पलोथर पर डेरा डाल लिया है। अभी थोड़े दिन के लिये दूसरे ठिकानों में भ्रमण करने जाऊँगा। मुर्दों में प्राण संचार करने की चेष्टा करूँगा। भगवती भवानी विंध्यवासिनी सहायता करेंगी। एक बार कुंडार के खंगार से भी कहूँगा, परंतु अभी नहीं। जब तुम लोग कुछ कर लोगे, तब कहूँगा। एक-दो महीने पीछे पलोथर पर मिलूँगा। पुण्यपाल से तुमको सूचना मिल जायगी। अब मैं जाता हूँ।"

सोहनपाल ने हाथ जोड़कर प्रार्थना की—"महाराज, रात हो गई है। आज यहीं विश्राम किया जाय।"

स्वामी ने बड़ी अवहेला के साथ कहा—"संन्यासी के लिये रात और दिन सब बराबर हैं। मैं थोड़ी देर में पलोथर पहुँचता हूँ। और बहुत थोड़े समय पीछे ही पलोथर से किसी दूसरे स्थान को चल दूँगा। पलोथर पहुँचकर अभी एक अनुष्ठान करना है। आज मैं यहाँ वैसे मिलने को न आता, परंतु मुसलमानों के आक्रमण की खबर पाकर तुम्हारे पास आना पड़ा। कोई विशेष महत्त्व-पूर्ण संवाद मेरे पास न था। जैसे अभी तक बहुत जगह निराशा हुई, वैसे ही मेरा आज का समाचार था। वे बेटी?"

हेमवती ने कुछ कुम्हलाकर कहा—"हाँ महाराज।"

"प्रण की याद रखना।" कहकर स्वामी वहाँ से चल दिया।

दिवाकर फाटक तक पहुँचाने के लिये पीछे-पीछे आया। फाटक बंद था। अर्जुन पहरे पर था।

"धन्न कुची तारौ, बिलैया लै गई पारौ।" स्वामी ने गाया।

अर्जन ने बड़ी श्रद्धा के साथ प्रणाम करके फाटक खोल दिया। स्वामी के चले जाने पर फाटक फिर बंद हो गया।

अर्जुन ने दिवाकर से प्रश्न किया—"किते के महत्तमा हते?"

दिवाकर ने कहा—"बाबा हैं। कहीं से आकर पहाड़ पर तपस्या के लिये टिके हैं। तुम कुंडार से कब आए?"

अर्जुन बोल—"जब बाबाजी आए, मैं तो फाटक पै अपुन खों मिलो तौ। अपुन खों सुर्त गई रई।"

"हाँ, ठीक है।" कहकर दिवाकर चलने लगा।

अर्जुन ने पूछा—"जो बाबा जू जौ का गाउत? कछू समझइ नई परत। जानैं का बिलैया लै गई?"

दिवाकर ने कुछ कड़ाई के साथ कहा—"साधु-संतों की बातों पर टीका-टिप्पणी मत किया करो। वह भूलों-भटकों को मार्ग बतलानेवाली बात गाया करते हैं।"

अर्जुन कुम्हार

कुंडार की एक चिट्ठी चंदेल के नाम थी, दूसरी कुमार के नाम। चंदेल ने अपने नाम की चिट्ठी खोली। सोहनपाल के लिये जो आशा-जनक संवाद इसमें था, उससे पहले ही परिचित किया जा चुका है। दूसरी चिट्ठी को न खोलने का संकल्प चंदेल ने कर ही लिया था। चंदेल ने सोचा कि कुमार की चिट्ठी के उत्तर मे जो उसने हेमवती के हाथ में न पहुँचने दी थी, राजा ने कुछ लिखा होगा। कुमार यह समझकर कि चंदेल ने चिट्ठी अर्जुन से ले ली, दोनो पर अत्यंत कुपित होगा। उस कोप का परिणाम जो कुछ होगा, उसने प्रेम-पत्र के रोक लेने और कुंडार पहुँचा देने के समय शायद नहीं सोचा था। जैसी उसकी प्रकृति थी, उससे यही भान होता है कि जो कुछ उसने किया था, होने-वाले परिणाम की बात सोचकर उसे वह भिन्न रीति से न करता। चंदेल ने अर्जुन को बुला भेजा। उसके आने पर मुस्किराया। अर्जुन ने चंदेल के मुख पर ऐसी ठंडी मुस्किराहट पहले कदाचित् ही कभी देखी हो।

चंदेल बोला—"आज हमारा-तुम्हारा दोनो का लेखा-जोखा होगा।" अर्जुन कुछ नहीं समझा। मुँह ताकने लगा। चंदेल ने कहा—"राजा ने एक चिट्ठी कुमार के नाम भी भेजी है।"

अब भी अर्जुन की समझ में यह न आया कि कुमार के नाम भेजी हुई राजा की चिट्ठी और चंदेल की उस कठोर निष्ठुर मुस्किराहट से क्या संबंध है।

चंदेल ने कहा—"राजकुमार ने जो पत्र सोहनपाल की बेटी को देने के लिये तुम्हारे हाथों भेजा था, उसको मैंने बीच में रोक लिया था।"

अर्जुन ने दबे गले से कहा—"हौ जू।"

"उस पत्र को मैंने तुम्हारे हाथों कुंडार पहुँचा दिया।"

"सो दाऊजू फिर ईसें का ?" अर्जुन ने सूखे गले से कहा।

सामंत चंदेल ने हँसकर कहा—"उसका उत्तर राजा ने दिया है। मेरे पास जो पत्र राजा का आया है, उसमें मोहनपाल को सहायता देने की कुछ आशा दिखाई गई है। हेमवती के लिये भेजी गई चिट्ठी को पढ़कर राजा बहुत प्रसन्न हुए होंगे।" और खूब हँसा।

अर्जुन भयभीत हुआ। क्या चंदेल के दिमाग़ में आज फेर आ गया है !

चंदेल हँसकर बोला—"राजा ने हेमवती की चिट्ठी का ज़िक्र अपनी चिट्ठी में, जो मेरे हाथ में है, किया होगा।" फिर हँसा।

अर्जुन की समझ में कुछ-कुछ आया। परंतु चंदेल की विचित्र हँसी का कारण वह बिलकुल न समझ सका।

बोला—"अपुन दाऊजू पढ़ ना लेओ, का लिखी पाती में।"

चंदेल का मुख भयानक हो गया।

"पढ़ लूँगा, क्यों रे शठ, नीच। सामंत दूसरे की चिट्ठी चोरी करके पढ़ लूँगा ? पिशाच।"

अर्जुन चुप रह गया।

सामंत को फिर हँसी आई—"अर्जुन, हम-तुम आज दोनो समाप्त हैं। जब कुमार को मालूम होगा कि मैंने उनके प्रेम-पत्र को बीच में रोक ही नहीं लिया, किंतु राजा के पास तक पहुँचा दिया, तब नागदेव मेरे ऊपर बहुत प्रसन्न होगा और तुमको भी कुछ पुरस्कार देगा।" फिर हँसा।

अर्जुन की समझ में अब आया। परंतु चंदेल हँसता क्यों था ? रोना चाहिए था।

अब की बार गंभीर होकर चंदेल ने कहा—"देखो जी, यदि कुमार तुमसे पूछें कि तुमने चंदेल को मेरी चिट्ठी क्यों दी, तो कह देना कि

छीन ली, जबरदस्ती छीन ली, मार-पीटकर छीन ली। समझा?"

अर्जुन ने सिर झुका लिया।

"और मैं भी यही कहूँगा। मैं गढ़ी का स्वामिधर्मी सामंत हूँ। सोहनपाल अतिथि है। हुरमतसिंह की गढ़ी में अतिथि का अपमान नहीं होने दिया। बस। राजा को सूचना दे दी। बस, और क्या? कुमार को क्रोध आयगा। मैं अपने राजा के लड़के पर हथियार नहीं उठाऊँगा। वध किया जाऊँगा या देश-निकाला होगा।"

अर्जुन का नीचा सिर ऊँचा हो गया। उन आँखों में जो "दाउजू" "दाऊजू" कहते-कहते लाज और आदर के बोझ के मारे झप-झप जाती थीं, उस जीभ को जो शील के मारे सकुच-सकुचकर दाँतों के पीछे दब-दब जाती थी, उस छाती को जो अपने स्वामी के सामने पीठ में मिल जाती थी और जैसे किसी न किए गए अपराध के लिये क्षमा माँगती हो, आज एकाएक क्या हो गया?

आँखें फैलाकर और नथने फुलाकर उस दरिद्र कुम्हार ने विना क्षमा-प्रार्थना के, विना नम्रता के कहा—"काए खों झूठी बोलत? सामंत मिथ्याँ बात कउँ कई जात? अपुन सौगंध खैहो कि अपुन नैं अर्जुना से पाती जबरईं छुड़ा लई ती, काय? अपुन नै देखियई है चिट्ठी कै ऊसउँ झूठीमूठी कैबे की विचार लई? मैं गंगाजू की कौल खैहों, भुमानी की किरिया करहों, अपने बेटन की सौगंध खैहों कै मैंने दाऊजू के हात में पाती दईई ना हती। मैं तो अपने आप राजा लों लाएँ चलो गओ। मोरो करनै होय, सो कर डारें। को बैठो? अब का करबेखों रै गओ। कित्ते दिना और जीनैं? ऊसई कुम्हार की जात हों। मर जैओं बलबूजा फूटो। कीनैं देखी कीनैं जानी।"

चंदेल की आँख में रोकने पर भी आँसू आ गया। बोला—"अर्जुन, तुम मनुष्य नहीं हो।"

"राच्छित तो हों। लै आउ का पाती खौं, इतै देउ।"

अर्जुन ने झपटकर चिट्ठी अपने हाथ में ले ली। चंदेल के जल्दी से पैर छूकर बोला—"आज लौं जो कछू अपराध करे होयँ, सो छिमा होवैं।" बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए हुए अर्जुन तीर की तरह छूटकर वहाँ से चला गया।

चंदेल चिल्लाया—"अर्जुन खड़ा रह, मेरे भाई, ठहर जा।"

अर्जुन ने नहीं सुना।

चंदेल झटपट अपना खाँड़ा और ढाल लेकर वहाँ से चला। मार्ग में याद आई कि मुड़ासा तो बाँध ही नहीं पाया। फिर लौटकर मुड़ासा बाँधा, मूँछ ठीक की। मन में कहा—"यदि अर्जुन का बाल बाँका गया, तो आज सचमुच चंदेल का गौरव जानेवाला है। परंतु मैं कुमार के सामने निश्शस्त्र जाऊँगा। कहीं गँवार अर्जुना मुझको झूठा बनाने की चेष्टा में सफल न हो जाय।" घर में शस्त्र रखकर चंदेल शीघ्र कुमार नागदेव के डेरे पर पहुँचा।

अर्जुन पहले ही पहुँच गया था। उसने नाग के हाथ में चिट्ठी दे दी थी। अर्जुन इस तरह खड़ा हुआ था, जैसे कोई भभकती हुई आग में कूद पड़ने के लिये प्रस्तुत हो। चिट्ठी मंत्री की लिखी हुई थी। शिष्टाचार के पश्चात् मंत्री ने लिखा था—

"सोहनपालजी की सहायता करने में महाराज को कोई विशेष बाधा नहीं है। परंतु सुना गया है कि सोहनपाल के एक कन्या है। यदि वह उस कन्या का संबंध कुंडार के राजकुमार के साथ करने पर राज़ी हों, तो कुंडार की पूरी शक्ति उनका साथ देगी। परंतु इस विषय में अभी सोहनपाल से कोई बातचीत न की जाय। महाराज यथासमय सोहनपालजी से स्वयं कहेंगे। तब तक उनको कुंडार आश्रय देने के लिये तैयार है।"

किसी ने प्रश्न नहीं किया, परंतु अर्जुन कहने को बेताब हो रहा था। बोला—"चिट्ठी मैंई लै गओ तो, काऊ और ने नईं पौंचाई। सामंत ने तो देखी ई न हती।"

कुमार ने प्रसन्न होकर कहा—"अर्जुन।"

"मैं भुगतबे खों तैयार हों।"

"क्या भुगतने को ? बड़ा मूर्ख मालूम होता है। तुमको एक मुहर पुरस्कार में दी जायगी।" कुमार ने कहा।

अर्जुन अकचका गया। परंतु इतना समझ गया कि दंड का विधान नहीं है, कुछ भेंट मिलेगी।

बोला—"महाराज, डंड दैने होय, तो मोय देउ, और भेंट दैने होय तो सावंत खों देउ।"

इतने में चंदेल आ गया। मुख पर दृढ़ता और निर्भयता का पूरा प्रसार था।

नाग ने मुस्किराकर कहा—"आज सामंत विना हथियार के कैसे ?"

चंदेल ने पुष्ट स्वर में कहा—"कुमार, इसका कोई दोष नहीं है।"

अब नागदेव के अचंभे में आने की बारी आई। बोला—"आज स्वामी और भृत्य दोनो में से एक की भी बात मेरी समझ में नहीं आती है। इसको पुरस्कार देने की बात कही जाती है, तो वह कृतघ्न कहता है कि मुझे दड दो। इनसे हथियारों के विषय में प्रश्न किया जाता है, तो यह कहते हैं, इसका दोष नहीं। मैं बड़ा हैरान हो रहा हूँ। आप लोगों ने कुछ नशा तो नहीं किया ?"

चंदेल के चेहरे पर बड़ी उदासी थी।

अर्जुन कुछ बोलने को हुआ।

नाग ने हँसकर कहा—"यह बोलने की कल है। विधाता ने खूब सँभालकर रचा है।" फिर चंदेल से बोला—"महाराज की चिट्ठी आप स्वयं मुझको देने के लिये नहीं आए, अर्जुन के हाथों भेजी, बस, यही इस सारे तूफ़ान की जड़ है। मैं इन सब वाहियात बातों को नहीं मानता हूँ। कम-से-कम जब तक मैंने राजतिलक नहीं पाया, तब तक तो अपने मन की स्वाधीनता को बनाए रक्खूँगा। अर्जुन, तुम जाओ।"

अर्जुन वहाँ से नहीं हटा।

नागदेव ने बिना रुष्ट हुए कहा—"सामंत, तुम्हारा यह सैनिक कभी-कभी लोहे का खंभा बन जाता है। कैसा अटल और अचल है! पुरस्कार लेगा नहीं, यहाँ से हटेगा भी नहीं। अरे बाबा कम-से-कम बैठ तो जा।"

चंदेल ने कहा—"क्यों बे यहाँ से जाता क्यों नहीं?"

वह कुछ न बोला।

नाग ने कहा—"वह कुछ कहना चाहता है। अकेले में कहेगा। बस, बस, अभी चुप रहना। हरीजी, यह राजदरबार में हो आया है, कुछ दिन बाद महाराज इसको सामंत-पद से विभूषित करेंगे। सौगंध गंगा की अर्जुन, यदि मैं भैरव की कृपा से किसी दिन राजा हुआ और तू तब तक टें न बोल गया, तो मैं तुझे सामंत अवश्य बनाऊँगा। जुझौति के सारे सरदार जल-जल मरेंगे कि कुम्हार को सामंत-पद दे दिया गया!"

अपनी इस कल्पना पर उसको बहुत हँसी आई। फिर चंदेल से बोला—"महाराज ने चिट्ठी में लिखा है कि सोहनपालजी को आश्रय देना चाहिए और अनुकूल समय पर उनकी सहायता करनी चाहिए। सोहनपालजी इस समय चाहते भी तो इतना ही थे?"

चंदेल ने बिना किसी हर्ष विषाद के उत्तर दिया—"तब तो वह शीघ्र सारौल जायँगे। आपने पांडेजी को कुंडार अभी तक नहीं भेजा है। उनके कुटुंब के लिये कुंडार में प्रबंध करने की अब शीघ्र आवश्यकता होगी।"

'वह कल जायँगे। इस समय शिकार खेलने चंदूघाट की ओर गए हैं। सोहनपालजी भी सपरिवार पहले सारौल जायँगे। वह जल्दी-से-जल्दी यहाँ से परसों जा सकेंगे। आप महाराज का संवाद उनको इसी समय सुना आइए, जिससे उनकी चिंता दूर हो जाय। कल आप स्वयं सारौल जाकर उनके स्थान और नौकर-चाकरों का प्रबंध कर दीजिए।

परसों तक मैं घोड़े की सवारी के योग्य हो जाऊँगा और झंडाघाट होता हुआ कुंडार चला जाऊँगा। महाराज चिंतित हो रहे होंगे। कुंडार में प्रबंध हो जाने के पश्चात् सोहनपालजी अपने कुटुंब को सारौल से भेज देंगे।"

चंदेल "जो आज्ञा" कहकर चलने लगा। अर्जुन भी चला।

नाग ने कहा—"विचित्र जंतु है। अभी टाले नहीं टलता था, अब पैर आँधी से होड़ लगाने को तैयार हो गए हैं।"

अर्जुन ठिठक गया, परंतु नाग ने उसको रोका नहीं। चंदेल के हृदय-क्षितिज में जो घन-घटा घिर आई थी, वह साफ हो गई, किंतु अर्जुन का चित्त अब भी विचलित था।

सारौल के मार्ग में

कुंडार के मंत्री की चिट्ठी ने सोहनपाल-मंडली को आकांक्षित आशा प्रदान नहीं की, परंतु सारौल और कुंडार में टिकने का निश्चय उनके जी में उसने उत्पन्न कर दिया।

सोहनपाल की इच्छा के विदित होने पर नागदेव ने अग्निदत्त को गृह-प्रबंध के लिये कुंडार भेज दिया। उसके पश्चात् दूसरे दिन प्रातःकाल के पहले ही सारौल की यात्रा हुई।

कुमार का घाव बिलकुल अच्छा नहीं हुआ था, परंतु वह घोड़े पर सवार होने योग्य हो गया था, इसलिये वही इस दल के साथ चल दिया। हरी चंदेल सारौल निवास-स्थान का प्रबंध करने के लिये पहले ही चला गया था, परंतु शीघ्र लौट आया और अब सारौल तक सोहनपाल के पहुँचा देने के लिये अपने कुछ सैनिकों के साथ हो लिया। अर्जुन को उसके हठ करने पर भी संग नहीं लगाया। इब्न करीम दूसरे मार्ग से कुंडार भेज दिया गया, परंतु ठीक क़ैदियों की तरह नहीं।

गढ़ी से सारौल ३ या ४ कोस था। दबरा के नीचे अंडाघाट पर होकर बेतवा को पार किया। यहाँ से दलपत बुंदेला का साथ हो गया।

अंडाघाट पर ऊषा-काल में सब लोग पहुँच गए थे। पार करने में कुछ समय लग गया। ऊँची-नीची विषमस्थल चट्टानों और रेत के टीलों, पानी की छोटी-बड़ी टूटती और सरसराती धारों को पार करने में कुछ समय लग गया। हेमवती और उसकी मा दो डोलों में थीं—गढ़ी में वे घोड़ों पर आई थीं, यहाँ डोलों का बंदोबस्त चंदेल ने कर दिया था, नहीं तो अंडाघाट पर उनको घोड़ों से उतरना पड़ता।

सामने कुंडार घुटारा, सेंधरी पलोथर इत्यादि की पहाड़ियाँ चाँद की धुँधली रोशनी में चमक रही थीं। इधर से ऊषा की पतली, पीली चादर ने प्रातःकालीन तारों को ढाँप-सा दिया था।

थोड़ी देर में सबेरा हुआ।

हरी चंदेल आगे-आगे था। साथ ही दलपति बुंदेला था, परंतु दोनो चुपचाप थे। इनके पीछे सैनिकों से घिरे हुए दोनो डोले थे। बुंदेला-मंडली सबसे पीछे थी। कुमार का घोड़ा कभी आगे हो जाता था और कभी पीछे। वह सबसे एक-न-एक मीठी बात करता जाता था।

डोले आधे खुले हुए थे, उस समय पर्दे की कोई कड़ाई नहीं थी। राजघराने की स्त्रियाँ ज़रूर पर्दा करती थीं, परंतु वह आजकल की आश्चर्य-जनक सीमा को न पहुँचा था।

सोहनपाल और धीर बातें करते-करते कुछ पीछे रह गए। सहजेंद्र और दिवाकर ने भी अपने घोड़ों को और धीमा कर दिया। कुमार स्थिर-भाव से कुछ समय के बाद डोलों के साथ आ गया।

उसने कई बार हेमवती के डोले को देखने के लिये आँख को विवश किया, परंतु वह उसके डोले पर जाकर पथरा गई और फिसलकर कभी सैनिकों के हथियारों और कभी बाल - रवि की ओर जाने लगीं।

एक बार कुछ क्षण के लिये हेमवती ने नागदेव को देखा। इच्छा के वश नहीं, उत्सुकता के वश। कुंडार के राजकुमार को कुछ क्षण युद्धवाली रात में देखा था। फिर अच्छी तरह देख लेने का कौतूहल हुआ—केवल जिस तरह कोई किसी विचित्र पदार्थ को देखना चाहता है। नाग ने उस दृष्टि में अनेक बातें पढ़ डालीं।

फिर उसने कई बार हेमवती के सुंदर नेत्रों का मनोहर दर्शन करने की चेष्टा की, परंतु असफल हुआ। हेमवती ने डोले के झरोखे का झालर-पट बंद कर दिया।

कुमार नाग आगे बढ़कर हरी चंदेल के साथ हो गया। वह बहुत विचार-मग्न था। अतृप्त था, किंतु असंतुष्ट नहीं था।

पत्र भेजने पर पत्रोत्तर न मिले, तो मन को कुछ बेचैनी ज़रूर होती है। परंतु जिसके ऊपर कोई अपना हृदय न्योछावर करने के लिये तैयार हो, उसके विषय में यदि यह धारणा हो कि पत्र तो मिल गया है, परंतु स्त्रीसहज लज्जा के वश उत्तर नहीं दिया, तब कुढ़ने के लिये जी में स्थान नहीं रहता।

कुमार ने मन में कहा—'एक-न-एक दिन चिट्ठी का भी उत्तर मिलेगा। निवास तो कुंडार में होगा। जैसे बनेगा, तैसे दर्शन तो एक बार अवश्य करूँगा, जी खोलकर करूँगा, चिट्ठी का उत्तर जब चाहे मिले।"

थोड़ी देर में वह राज्य-पथ मिला, जहाँ से सारौल के लिये मार्ग फूटा था। सोहनपाल ने कृतज्ञता-पूर्वक कुमार से कहा—"आपका मैं बहुत आभारी हूँ। आपने हम लोगों के लिये बड़ा कष्ट उठाया। अभी न-जाने हम लोग आपको और कितना दुःख देंगे।"

सोहनपाल को सारौल तक पहुँचा देने की नागदेव की प्रबल इच्छा थी, परंतु अपने पिता और लोक-लाज का ख़याल करके नाग को अपना कलेजा मसोस डालना पड़ा।

बहुत विनीत भाव से उसने सोहनपाल को उत्तर दिया—"आप मुझको काँटों में मत घसीटिए। आपने वास्तव में भरतपुरा-गढ़ी की लाज रख ली।"

चंदेल इस प्रशंसा को कई बार सुन चुका था। अब की बार वह उसको अच्छी नहीं लगी। दलपति बुंदेला भी पास खड़ा था।

बिदा लेते समय धीर प्रधान ने कुमार से कहा—"हमारा स्मरण बना रहे।"

कुमार ने सच्चाई के साथ कहा—"कभी नहीं भूल सकूँगा।" सहजेंद्र और दिवाकर से बोला—"आप महानुभावों से अभी तक संलाप भी न हो सका। आशा है, कुंडार में आपके शीघ्र दर्शन होंगे।"

कुमार के साथ कुंडार जाने के लिये कुछ सैनिक बढ़े, परंतु उसने किसी को साथ नहीं लिया।

जब सब लोग सारौल की ओर चले गए, उसने अपना घोड़ा थाम लिया, और उन लोगों के चलने के कारण उठी हुई धूल को न-मालूम क्या समझकर देखने लगा।

नरम-नरम दूब पर ओस के कण छाए हुए थे। सूर्य की किरणें मानो उनमें अपना मुँह देख रही थीं। पहाड़ियों की तलहटी में बसे हुए गाँवों के ऊपर धुआँ मडरा रहा था। चिड़ियाँ धूर ले-लेकर किसी की कीर्ति का गान कर रही थीं। नाग धीरे-धीरे कुंडार को चला।

उसकी आकृति पर एकाएक किसी उत्तेजना के चिह्न दिखलाई पड़े।

उसने अपने आप कहा—हेमवती मेरी होगी, और फिर होगी। कोई न रोक सकेगा। जैसे बनेगा, तैसे लूँगा। कुंडार का राज्य चाहे मिले, चाहे न मिले, हेमवती अवश्य मिलेगी।"

दूब की ओस के साथ किरणें खेलती रहीं। पक्षी कुहकते रहे। पहाड़ियों में पवन समाता रहा। नाग के प्रण को किसने सुना, किसने समझा?

विष्णुदत्त, अग्निदत्त और तारा

कुमार के आदेशानुसार अग्निदत्त ने अपने मकान के पास सोहनपाल के कुटुंब के ठहरने के लिये एक मकान ठीक करा दिया। नौकर-चाकर रख दिए।

कुंडार की बस्ती पहाड़ियों के बीच में बसी हुई थी। बड़े-बड़े पथ, विशाल मंदिर और भवन उसमें थे। पहाड़ियाँ चहारदीवारी का काम देती थीं। गढ़ का कोट पहाड़ियों पर घिरा हुआ था, जो अब दिखलाई पड़ता है। बस्ती से ताल थोड़ी ही दूर था। कुछ मंदिर बस्ती में थे और एक विशाल मंदिर बस्ती से कुछ बाहर था, जिसमें महादेव की मूर्ति चंदेलों के समय से पूजी जाती थी।

अग्निदत्त ने जो मकान सोहनपाल के कुटुंब के रहने के लिये ठीक किया था, उसके दो तरफ़ राज-पथ था और एक ओर एक खँडहल। चौथी ओर विष्णुदत्त पांडे का भवन एक नाई के मकान को छोड़कर था। मकान में छोटी-छोटी खिड़कियाँ सब तरफ़ थीं, परंतु खँडहल की ओर अटारी पर एक बड़ा द्वार था, जो मालूम होता था कि खँडहल के, मकान की अवस्था में होने के समय, एक मकान से दूसरे मकान की अटारी में आने-जाने के लिये था। दूसरा मकान अब खँडहल हो गया था, परंतु इस मकान का यह द्वार न तो बंद किया गया था और न छोटा किया गया था। इसके किवाड़ निकल गए थे, इसलिये अग्निदत्त ने एक मोटे रंगीन कपड़े का आवरण डाल दिया था।

भीतर से मकान को स्वच्छ करके यथा-स्थान सजा भी दिया था।

भवन को ठीक कर देने की सूचना अग्निदत्त ने अपने पिता विष्णुदत्त को दी।

विष्णुदत्त पचास वर्ष के ऊपर था। गोरे रंग का; क़रीब-क़रीब कान तक खिंची हुई बड़ी-बड़ी आँखों का आदमी था। चेहरे पर कहीं-कहीं चेचक के दाग़ थे। नाक सुए की चोंच-जैसी पतली और मुड़ी हुई थी। मुँह वैसे गोल रहा होगा, परंतु कानों के नीचे से गला नीचे को कुछ ढल आया था, जिससे ठोढ़ी गले से अलग नहीं मालूम होती थी। गला बारीक था, अब भी गाने का काम देता था, विष्णुदत्त बड़ा शिक्षित मनुष्य था। संस्कृत, अरबी, तुर्की और कुछ फ़ारसी भी जानता था। धीर प्रधान और विष्णुदत्त ने विदेशी भाषाएँ साथ ही सीखी थीं।

पांडेजी अब भी सुरमा लगाते थे और कुंडार के कुछ दुष्ट-प्रकृति आदमी यह कहते सुने गए थे कि पांडित्य और वृद्धावस्था ने उनकी रसिकता को नष्ट नहीं किया था। वह सदा स्वच्छ सजावट में देखे जाते थे। लेन-देन खूब फैला हुआ था। आय भी बहुत थी। कुंडार के राजा तक इनके लाखों के ऋणी थे।

अग्निदत्त को इन्होंने पढ़ाया-लिखाया भी बड़े श्रम और चित्त के साथ था। और, युद्ध-विद्या में निपुणता लाभ कराने में कोई कसर तो नहीं रक्खी थी।

सोहनपाल के कुटुंब के लिये स्थान ठीक हो जाने की बात सुनकर विष्णुदत्त ने अपने लड़के से कहा—"इन लोगों के आदर-सत्कार में किसी तरह की कमी न होने पावे। इनको यहाँ अधिक समय तक ठहरना पड़ेगा। तुम सोहनपाल के लड़के से तो मिले हो। तुम्हारी उससे पट तो जायगी? तुम लड़-भिड़ जल्दी पड़ते हो।"

अग्निदत्त लाड़-दुलार का पाला हुआ लड़का था। बोला—"वह यदि न पटना चाहेंगे, तो मेरा क्या जायगा? और मुझे इतना अवकाश कहाँ कि उनका पहरा लगाया करूँ?"

विष्णुदत्त ने लड़के की ठोढ़ी पकड़कर कहा—"ओहो, आप दिन-रात राजकीय विषयों पर विचार किया करते हैं क्या? क़िले में पड़े रहते हो और

वहीं गणपाष्टक का पाठ किया करते हो। मैं महाराज से कहकर तुम्हारी ड्योढ़ी बंद करा दूँ, तब तो सहजेंद्र इत्यादि के पास बैठने का समय मिल जायगा ?"

अग्निदत्त ने कोप का अभिनय करके कहा—"तो क्या मेरे घर में स्थान का टोटा है ? और क्या मैं बुंदेलों का आश्रित हूँ ?"

विष्णुदत्त हँसकर बोला—"धीर मेरा पुराना परिचित है। सोहनपाल भी बड़े घराने का पुरुष है। यदि हमारी ओर से उन लोगों के सत्कार में कोई त्रुटि रह जायगी, तो इसमें हमारी ही अपकीर्ति होगी, बेटा।"

"बेटा तारा।" विष्णुदत्त ने पुकारा। भीतर से वीणा-विनिंदित स्वर में किसी ने कहा—"काकाजी, आई।"

अग्निदत्त बोला—"क्या यह भी इन अतिथियों के सत्कार में जुटी रहेंगी ? तब तो ख़ूब रहेगी। आप दीजिए उनको लड़ने के लिये रुपए, राजा दें सैनिक, मैं करूँ पहरेदारी और मेरी बहन सहजेंद्र की बहन की हो सखी......"

"चुप दुष्ट, चुप। तारा आ रही है।" विष्णुदत्त ने कहा।

तारा विष्णुदत्त की लड़की थी। अग्निदत्त और तारा जुड़वें थे। सूरत-शकल बिलकुल एक दूसरे से मिलती थी। केवल अंतर यह था कि अग्निदत्त के गोरे रंग में, बाहर घूमने-फिरने के कारण, साँवलेपन की ज़रा-सी पुट आ गई थी। तारा का रंग निखरा हुआ था। एक-सी आँखें, एक-सी नाक, एक-सी चेहरे की बनावट। स्वर में भी अधिक अंतर न था, हाथों में ज़रूर अंतर था, भाई के हाथ की उँगलियाँ कुछ मोटी थीं और पंजा चौड़ा था। बहन की उँगलियाँ थीं पतली और पहुँचा मुँदे हुए कमल-सदृश।

ऊपर से देखने में उन दोनो के नेत्रों में कोई अंतर नहीं दिखलाई पड़ता था। परंतु बारीकी से देखने पर यह भान होता था कि अग्निदत्त की आँख में चंचलता और ढिठाई है, वह सहसा-प्रवर्तिनी है, अभीष्ट

सिद्ध करने में अनुरक्त है। उपदेश देने में कुशल और लेने में असहिष्णु है, ऊपर से मृदु और कोमल, परंतु भीतर एक गुप्त ज्वाला छिपाए हुए है, जो कारण के उपस्थित होते ही उसे भस्मीभूत करने को उद्यत हो सकती है— जो वैसे स्नेहार्द्र परंतु अपने स्वार्थ की सिद्धि के लिये तेज, बल और प्रचंडता को प्रदर्शित कर सकता है। तारा की आँखें शांत, स्थिर, बड़े-बड़े पलकोंवाली बड़ी निर्मल थीं। उन आँखों के किसी कोने में छल, कपट या अविश्वास की किंचित् छाया भी नहीं मिल सकती थी। शरीर बहुत छरेरा और कोमल था। आकृति से ऐसी लगती थी, जैसे देवी हो—दुर्गा नहीं, किंतु ब्रह्ममुहूर्त की अधिष्ठात्री ऊषा, ऋषियों के होम का आशीर्वाद, विष्णु के पुजारियों की पूजा।

तारा के पैर में पतली कोर के उज्ज्वल चाँदी के पैंजने। हाथों में सोने के कड़े पटेले और दो-दो काँच की चूड़ियाँ। धोती हलके गुलाबी रंग की पहने हुए जिसका वह लंबा कछोटा मारे हुए थी। सिर अधखुला था। माथे पर रोरी की छोटी-सी बुँदकी लगाए हुए थी, मानो भगवान् भास्कर ने अभिषेक किया हो।

उसके आते ही विष्णुदत्त ने बड़े स्नेह के साथ कहा—"बेटा, यहाँ एक राजकुमारी आनेवाली है।"

तारा अपने पिता का मुँह ताकने लगी।

विष्णुदत्त बोला—"उसका नाम हेमवती है। मोहानीवाले ठाकुर की कन्या है। उसकी मा भी साथ है। बड़े घराने की लड़की है, पढ़ी-लिखी अवश्य होगी। तुमको उससे मिलकर बड़ा सुख होगा।"

"कहाँ है दादा?" तारा ने अपने स्वाभाविक मधुर स्वर में कहा।

"आ रही है दो-एक दिन में उस मकान में, जो जगजीवन वैद्य के मकान से मिला हुआ है—आ जावेगी।"

"उसी में न, जिसे भैया ठीक करा रहे थे। कल से तो लगे हुए हैं। ठीक समय पर इन्होंने भोजन भी नहीं किया, दादा।"

"अच्छा, तो तारा, तुम इस राजकुमारी के पास कभी-कभी उठ-बैठ आया करो।"

'मैं तो जाऊँगी। देखूँ, वह क्या पढ़ी हैं, कैसी हैं।"

अग्निदत्त ने कहा—"बिन्नू, दादाजी तुमसे उसकी टहल करावेंगे। हेमवती की रसोई बनाओगी?"

तारा ने सीधे सरल भाव से कहा—"बना दूँगी, तो कौन हाथ जल जायगा?" फिर मुँह फुलाकर बोली—"देखो दादाजी, भैया मुँह चिढ़ाते हैं।"

विष्णुदत्त अपने बालकों की स्नेह-कलह देखकर प्रसन्न हुए। हँसते हुए बोले—"तारा, यह छोकरा बड़ा राक्षस है।"

अग्निदत्त ने मुँह फैलाकर कहा—"भाग, तारा भाग, तुझे खाता हूँ। भाग।"

मुँह खोलकर बोलने और हवा में हाथ फेकने के कारण अग्निदत्त का ललित स्वर भीषण हो गया। तारा खूब ज़ोर से हँसकर भीतर भाग गई, पैरों के पैंजनों से हलकी मृदुल झंकार हुई- ऐसे भागी, जैसे बौरे हुए आम के पेड़ पर से बोलकर कोकिला धीरे से कहीं उड़ जाय।

उसके भाग जाने पर विष्णुदत्त ने कहा—"बेटा, मुझे शीघ्र दिल्ली जाना होगा। भरतपुरा की लड़ाई की सूचना को न मालूम क्या रूप देकर दिल्ली भेजा जायगा। महाराज मुझको दिल्ली शिकायत करने भेज रहे हैं। यदि बलबन बंगाल के युद्ध में मर गया, तो जिस दल के नायक के बादशाह होने की अत्यंत अधिक संभावना होगी, उसको साधकर एक और नई संधि करनी पड़ेगी। तुमको भी मैं साथ ले चलता, परंतु सोहनपाल का कुटुंब यहाँ आ रहा है, इसलिये तुम्हारा घर पर बना रहना बहुत आवश्यक है। किसी का रुपया-पैसा आवे, तो बही में लिखते रहना। राजा से न-जाने कब तक रुपया मिलेगा। क्या करें, राज्य में बसते हैं। कोई उपाय शीघ्र उगाहने का नहीं है।"

अग्निदत्त के मन में दिल्ली देखने की इच्छा रही होगी, परंतु किसी दूसरे भाव ने उसको दबा दिया। वह बोला—"सोहनपाल का कुटुंब न भी आ रहा होता, तो भी मैं न जाता। कुमार न जाने देते। दादा, आप कब तक लौट आएँगे?"

"एक, दो या तीन-चार महीने लग जायँ।"

"इस बीच में यदि तारा के लिये कोई योग्य वर मिल जाय, तो उसको अटका लेना। मैं अपने लौट आने पर सब ठीक-ठाक कर लूँगा।"

"दादा, यह मेरे लिये कठिन है। बतलाइए, मैं कहाँ वर को ढूँढ़ता फिरूँगा? मैं संसार में किसी को जानता भी तो नहीं हूँ।"

"और तुम्हें नागदेव के संग में शिकार खेलने से, लड़ने-भिड़ने से और कुंडारगढ़ में बैठे रहने से कहाँ अवकाश मिल सकता है? अरे, मैंने तुझसे यह कब कहा कि तू राख लगाकर बहन के लिये वर खोजता जग-भर में भटकता फिरना? हाँ, यदि भाग्य से कोई मिल जाय, तो देखे रहना।"

"यह तो मैं कर लूँगा।"

विष्णुदत्त का चेहरा कुछ उदास हो गया। धीरे से अग्निदत्त से बोला—"मैंने एक तंत्र-शास्त्री से योग्य वर की प्राप्ति के विषय में प्रश्न किया था। उन्होंने कहा है कि लड़की को तीन महीने का एक कठोर व्रत रखना पड़ेगा। माघ की अमावस्या से वैशाख की अमावस्या तक शक्ति-भैरव के मंदिर में तारा को जल ढालने और लाल कनैर के फूल चढ़ाने के लिये नित्य जाना पड़ेगा। फूल बड़े-से-बड़ा हो, व्रत की समाप्ति पर योग्य वर अवश्य प्रकट होगा। ऐसा लाल कनैर तो कुंडार में मिल नहीं सकता। शक्ति-भैरव के मंदिर के पास जो कनैर लगे हैं, वे भी छोटे-छोटे हैं।"

अग्निदत्त उस समय के विश्वासों के अनुसार तंत्र-शास्त्र के निर्देशों

को मानता था। परंतु तारा के कोमल पदों का ध्यान करके उसको इस प्रस्ताव पर पीड़ा हुई। शास्त्र के निर्देश का निरादर भी नहीं कर सकता था। उसने दूसरा मार्ग निकालने की चेष्टा की।

बोला—"दादाजी, यह व्रत तारा की ओर से कोई और भी कर सकता है? यदि शास्त्र में ऐसा विधान हो, तो हम लोग ऐसे व्यक्ति को धन-धान्य से पूर देंगे।"

"विधान तो तंत्र-शास्त्री ने बतलाया है, परंतु धन-धान्य लेकर या लेने की इच्छा रखकर या व्रत करने के पश्चात् धन-धान्य ग्रहण कर यदि कोई इसे करेगा, तो फल नहीं होगा; और यदि फल हुआ भी, तो शीघ्र वैधव्य का अनंत दुःख होगा। विधान यह है कि व्रत का आरंभ कन्या स्वयं करे; और यदि किसी कारण वह किसी समय न कर सके, तो जो कोई उसका संसार में सबसे बड़ा हितू हो, वह इस व्रत को उस समय साधे।"

अग्निदत्त चिंता में पड़ गया। विष्णुदत्त भी चिंतित था। बोला—"तुमसे न तो वह क्रिया सधेगी और न तुमसे यह काम कराया जायगा। तुम्हारी मा इस काम को कर सकती है।"

"जो सदा खटिया पर बीमार धरी रहती हैं, दादाजी।" फिर निश्चय पर पहुँचकर कहा—"तारा ही को करना होगा। कोई काल निर्णय किया गया है?"

"दोपहर के पहले किसी समय भी।"

"शक्ति-भैरव यहाँ से कोस-भर है। उस बेचारी के पैर छिलकर काठ हो जायँगे, परंतु शास्त्राज्ञा है, क्या किया जाय। नौकरों-चाकरों के साथ जाने का निषेध तो नहीं है?"

"एक या दो से अधिक साथ नहीं जा सकते—दो स्त्रियाँ साथ लगा दी जायँगी। परंतु बड़े-बड़े कनैर के फूल? यह एक समस्या है।"

अग्निदत्त ने सोचकर कहा—"हैं, परंतु यहाँ से दो-ढाई कोस पर।

देवरा की चौकी के अहाते में लगे हैं। मैंने इतने बड़े और ऐसे सुंदर कनैर के फूल पहले कभी नहीं देखे।"

विष्णुदत्त प्रसन्न हुआ, परंतु देर तक वह प्रसन्नता बनी न रही। कुछ दुःखी स्वर में कहा—"वहाँ से लावेगा कौन ? दाम देकर फूल लिए नहीं कि व्रत गया। बड़ा कठिन और कठोर अनुष्ठान है।"

अग्निदत्त ने दृढ़ता के साथ कहा—"मैं लाया करूँगा दादाजी। मैं दाम नहीं लूँगा।"

बाप-बेटे दोनो को हँसी आई, निर्मल और स्वच्छ।

विष्णुदत्त बोला—"नित्य जाया करोगे बेटा ? थक नहीं जाओगे ? घोड़े पर चढ़े जाया करो।"

"घोड़े पर तो जाऊँगा ही। बीच में शिकार हो जाया करेगा। मेरा मन तो इसमें खूब लगेगा।"

विष्णुदत्त ने गंभीरता के साथ कहा—"कभी नहीं। पूजा के लिये फूलों के आने-जाने के समय तुम किसी जीव को संताप नहीं दे सकते।"

अग्निदत्त का मन गिर गया। थोड़ी देर चुप रहा। फिर क्षीण स्वर में बोला—"मैं वचन दे चुका हूँ। करूँगा। और यदि कभी किसी ऐसे व्यक्ति से भी यह काम ले लूँ, जिसको कुछ देना-लेना न पड़े और न जिसके जी में कुछ लेने की इच्छा हो ?"

"ऐसे पुरुष संसार में बिरले ही होंगे। यदि कभी कोई ऐसा मिल जाय, तो उससे यह काम ले सकते हो; परंतु उसके जी की तुम यह कैसे जानोगे कि वह कुछ दाम नहीं चाहता ? कुंडार में तो मुझे ऐसा कोई भी नहीं दिखता।"

अग्निदत्त कुछ सोचने लगा, मानो किसी नाम का स्मरण कर रहा हो।

विष्णुदत्त उसकी चिंता को समझ गया। बोला—"तुम्हारी या कुमार की आज्ञा के वशीभूत होकर कोई यदि इस कार्य का संपादन करेगा, तो

कोई भी फल न होगा, उल्टा अनिष्ट होगा। हाँ, तुम्हारा यदि कोई निष्काम मित्र हो, तो कोई आक्षेप नहीं।"

"मैं भरतपुरा-गढ़ी के एक सैनिक अर्जुन का स्मरण कर रहा था, परंतु वह आपके निषेध की परिभाषा में आता है। है तो वह जाति का कुम्हार, परंतु उद्यत, उद्यमी और निर्लोभ है।"

"कुम्हार ? छिः ! छिः ! देवता को अप्रसन्न करके कहीं हम सबका विध्वंस न कराना।"

"परंतु दादाजी, इस जाति के लोग भवानी के मंदिर में तो पूजन के लिये जा सकते हैं ?"

विष्णुदत्त ने कुछ क्षुब्ध होकर कहा—"जा सकते होंगे, बको मत। न तो शक्ति-भैरव ऐसा देवता है, और न कुम्हार का यह कोई निजी काम है। ब्राह्मण की पूजा के लिये कुम्हार के छुए फूल ! हरे-हरे !"

अग्निदत्त लज्जित होकर कुछ विचार करने लगा।

विष्णुदत्त ने शीघ्र फिर अपने मधुर स्वर को सँभालकर कहा—"अब क्या सोहनपाल के संगियों में से किसी व्यक्ति का नाम सोच रहे हो ? सहजेंद्र से तो तुम्हारा परिचय हो गया है। धीर के भी एक पुत्र है ?"

"मेरा उन लोगों से केवल दर्स-पर्स है।" अग्निदत्त ने कुछ गर्व के साथ उत्तर दिया—"और फिर मैं ऐसे लोगों से कहने क्यों चला, जो स्वयं हमारा आश्रय ताककर यहाँ आ रहे हैं। उनमें धीर का लड़का तो इतना अभिमानी मालूम पड़ता है कि साधारण परिचय से अधिक मेरा और कोई संबंध उसके साथ कभी न होगा।"

विष्णुदत्त ने कुछ चिंतित होकर पूछा—"क्या तुम्हारा उसने कोई अपमान किया ? धीर तो बड़ा शिष्ट और विद्वान् है।"

अग्निदत्त ने सिर ऊँचा करके कहा—"मेरा वह क्या अपमान कर सकता है ? मेरी तो उससे कोई बातचीत ही नहीं हुई। वह चलता बड़ी

हेकड़ी के साथ है, और यही मुझे खटकी थी। वैसे मुझे उससे कोई शिकायत नहीं है।"

"तब तो बेटा तुमको स्वयं यह साधना करनी होगी। यदि कोई विश्वसनीय मित्र कभी मिल जाय और तुम स्वयं फूल लाने न जा सको, तो ऐसे व्यक्ति से मँगा सकते हो।"

विष्णुदत्त ने तारा को पुकारा।

अग्निदत्त ने कुछ अचंभे के साथ कहा—"क्या तारा को आप इस व्रत का उद्देश्य स्वयं बतलावेंगे?"

"नहीं-नहीं। उसको तो मैं केवल अनुष्ठान अच्छी तरह से समझा दूँगा। उद्देश्य उसकी मा उसको बतलावेगी। अनुष्ठान की चर्चा भी उसकी मा से करवा देता, परंतु वह बीमार है, उसको अच्छी तरह समझा न पावेगी। मैंने इस संबंध में बहुत-सी बातें उसकी मा को समझा भी दी हैं, बड़ी कठिनाई से अनुष्ठान कराने पर राज़ी हुई।"

इतने में तारा आकर पौर के द्वार की ओर इस तरह छिपकर खड़ी हुई कि उसका थोड़ा-सा मुख-भर दिखलाई पड़ता था—मानो झरोखे में से संध्या-कालीन सूर्य की किरणें झाँक रही हों। हँस रही थी। उसको भय था कि अग्निदत्त फिर मुँह फैलाकर खाने को दौड़ेगा। परंतु भाई और बाप की गंभीर मुद्रा देखकर अकचका गई।

विष्णुदत्त ने स्नेह के साथ बुला लिया। बिठलाकर प्रस्तुत विषय तारा को समझाने लगा। अग्निदत्त इस बीच में अपनी उँगली से पृथ्वी पर कोई चित्र बनाता रहा।

तारा जब कभी नीचा सिर कर लेती, तो नितांत कृष्ण लंबे केश चमक-से जाते थे, और जब कभी कुछ उत्तर देने के लिये सिर उठाती, तो ग्रीवा की सुंदर गठन संपूर्ण रूप में प्रकट हो जाती। कभी-कभी वह विष्णुदत्त को पूर्व खुले हुए निर्भ्रांत नेत्रों से देखने लगती थी।

जब उसने पूरी क्रिया समझ ली, बोली—"इस अनुष्ठान में इतना समय

लग जाया करेगा कि मैं राजकुमारी के पास बहुत कम जा पाया करूँगी। अच्छा दादाजी, यह तो बतलाइए कि अनुष्ठान का अभिप्राय क्या है ?"

विष्णुदत्त ने उत्तर दिया—"देवता को प्रसन्न करना।"

तारा को संतोष न हुआ। पूछा—"किस उद्देश्य की सिद्धि के लिये ?"

विष्णुदत्त ने एक ओर ज़रा-सा मुँह फेरकर कहा—"इसको तुम्हारी मा बतलावेगी।"

तारा को समझने में विलंब नहीं हुआ। वह अपने खुले सिर पर धोती को सँभालती हुई वहाँ से चली गई।

विष्णुदत्त ने उससे जाते समय कहा—"मेरी आज्ञा को न भूलना। क्रिया का सम्यक् रीति से निर्वाह करना।"

इसके बाद ही अग्निदत्त से कहा—"फूल नित्य तोड़े जायँ। बासी न चढ़ाए जायँ।"

"यह मैं नहीं भूलूँगा।"

"तुम यहाँ से देवरा जाकर और फूल तोड़कर शक्ति-भैरव वहीं से सीधे चले जाया करो, कुंडार आकर चक्कर लगाने की आवश्यकता नहीं है।"

अग्निदत्त ने आह भरकर कहा—"बड़ा कठोर व्रत है, दादाजी।"

"शास्त्रों में इससे भी बढ़कर कठोर व्रत हैं।"

"पुरुषों के लिये ऐसा कोई व्रत नहीं रक्खा गया, आश्चर्य है।"

विष्णुदत्त हँसकर बोला—"तू क्या अपने लिये वधू के प्राप्त करने की इच्छा से कोई तपस्या करना चाहता है ? पुरुषों को विवाह के लिये स्त्रियाँ तो क्षण-भर में यों ही प्राप्त हो जाती हैं।"

"आप न-जाने क्या-क्या कहा करते हैं।" अग्निदत्त ने कहा, और वहाँ से चल दिया।

"सोहनपाल इत्यादि के आने की सूचना मुझको पहले से दे देना।"

अपने पिता के शब्दों की यह भनक वहाँ से जाते-जाते अग्निदत्त के कानों में पड़ी।

शस्त्राभ्यास

अग्निदत्त उसी दिन क़िले में पहुँचा। पहरे पर उसको किसी तरह की रोक-टोक कभी न थी। वह सीधा महाराज हुरमतसिंह के पास नाग की ख़बर लेने जा पहुँचा। वह सिर पर रंग-बिरंगा साफ़ा, कमर में नीचे तक दुघुटन्ना, सफ़ेद धोती, अंग में पीले रेशम का अँगरखा और ऊपर से आसमानी रंग का चमकदार रेशमी कमरबंद बाँधे था। पैर में जड़ाऊ झब्बू जूते थे। हुरमतसिंह ने प्यार से अपने पास बिठला लिया। बोला—"भरतपुरा की लड़ाई का पूरा-पूरा हाल सुनाओ।"

पांडे ने जहाँ तक बना, संक्षेप में सुना दिया। राजा ने कुमार की प्रशंसा सुनकर कहा—"मैं उससे इसी तरह के पराक्रम की आशा किया करता हूँ।" इसके पश्चात् पूछा—"सोहनपाल की एक लड़की है और एक लड़का है? ब्याह तो उनमें से किसी का नहीं हुआ?"

"नहीं महाराज।"

"तुमने सुना है, लड़की की अभी तक कहीं सगाई हुई या नहीं?"

"मैंने तो नहीं सुना।"

"क्या सोहनपाल को बहुत अधिक जाति-अभिमान है?"

"है तो, महाराज।"

"राजकुमार कब तक आ जायँगे?"

"मुझसे उन्होंने कल तक आ जाने के लिये कहा है।"

"तुमने सोहनपाल की लड़की को देखा है?"

"हाँ, महाराज।"

"बड़े घराने की-सी कन्या मालूम होती है?"

"हाँ, महाराज।"

कुछ सोचकर हुरमतसिंह बोला—"तुम रनवास में जाकर भरतपुरा की लड़ाई का समाचार सुना आओ। सब लोग पूरा हाल सुनने के लिये व्याकुल हैं। भीतर कुमार की चोट का विशद वर्णन मत करना।"

"जो आज्ञा" कहकर अग्निदत्त रनवास में चला गया। उसके लिये यहाँ भी कोई निषेध या रुकावट नहीं थी। छुटपन से वह भीतर आया-जाया करता था।

सबसे पहले हुरमतसिंह की पुत्री से भेंट हुई। अग्निदत्त ने नमस्कार किया। उसने ज़रा-सा सिर हिलाकर उत्तर दिया। इसका नाम मानवती था।

रंग इसका अग्निदत्त के सदृश ही था। आँखें बड़ी-बड़ी और बहुत ही काली थीं। आँखों में मद्य उतराया-सा पड़ता था। आयु में अग्निदत्त से एकाध वर्ष बड़ी होगी, परंतु देह उसकी भरी हुई न थी। मोतियों की माला गले में डाले हुए थी और रंग-बिरंगे पुष्पों की माला केशों में गूँथे हुए थी। शरीर पर कहीं-कहीं थोड़े-से सोने के आभूषण थे। पैरों में सोने के पतले पैजने थे। चमकते हुए माथे पर केशर की खौर निकाले थी।

पांडे को देखते ही वे काली-काली आँखें हर्ष के मारे कुछ तरल हो गईं और उनकी कृष्णता और भी आभामय हो गई। होठों पर एक अनूठी और मोहनेवाली मुस्किराहट नाच उठी। बोली—

"वन्य पशुओं के आखेट के बहाने मनुष्यों का आखेट कर आए? माता बड़ी चिंतित हैं, उनको पूरा-पूरा समाचार सुनाओ। भैया अच्छी तरह हैं?"

अग्निदत्त का मुख उद्दीप्त हो गया। आँखों से लौ-सी निकल पड़ी। बोला—"कुमार भली भाँति हैं। चोट बहुत बड़ी न थी। माताजी कहाँ हैं?"

राजकुमारी ने आँख के तिरछे संकेत से बतलाया कि पीछे से आ रही हैं, और बहुत धीरे से पूछा—"तुम्हें तो नहीं लगी कोई चोट?"

बहुत ही धीरे से पांडे ने उत्तर दिया—"नहीं मानवती। तुम्हारे नाम का कवच बनाए रहा।"

मानवती ने तिरछी आँखों एक क्षण अग्निदत्त की ओर देखकर अपनी सुडौल ग्रीवा दूसरी ओर मोड़ी, जैसे केवल किसी की प्रतीक्षा कर रही हो। बड़े-बड़े मोती ग्रीवा के मूल में दिखने लगे। बोली—"मा, पंडितजी पिताजी के पास से आ गए हैं। यहाँ खड़े हैं। शीघ्र आकर भैया नाग के पराक्रम का समाचार सुन जाओ।"

रानी ने आते ही अग्निदत्त के मुँह पर हाथ फेरा। उसको बिठलाकर अनेक प्रश्न किए। अग्निदत्त ने खूब विस्तार के साथ वर्णन सुनाया। अर्जुन की हास्यास्पद विचित्रताओं को कुछ नमक-मिर्च मिलाकर कहा। सारे वर्णन को दोनो महिलाओं ने ध्यान के साथ सुना। रानी ने शांति के साथ और मानवती ने भाव के साथ। अर्जुन का वर्णन सुनकर मानवती को बहुत हँसी आई।

रानी ने कहा—"जब से तुम गए, मानवती का पढ़ना-लिखना बंद है। तुम्हारी बहन तारा कभी-कभी आ जाती थी, तब इसका समय कुछ कट जाता था। यहाँ पर समाचार टूट-टूटकर अपूर्ण रूप में आया, इसलिये हम लोगों को बहुत चिंता हो गई थी। नाग कल तक आ जायगा?"

अग्निदत्त ने कहा—"हाँ, मा।"

फिर एकाएक किसी भाव से प्रेरित होकर बड़े आग्रह के साथ रानी ने पूछा—"एक बात सच्ची-सच्ची बतलाना। मैं तेरा मुँह मीठे से भर दूँगी।"

अग्निदत्त को इस प्रश्न पर कपकपी आ गई। अंधकार की गोद में छिपे हुए संकट की छाया आँखों के सामने होकर लोप हो गई। कुछ दब गले से बोला—"क्या है मा?"

मानवती आँखें दबा-दबाकर मुस्किरा रही थी।

रानी ने उसी व्यग्रता के साथ पूछा—"सोहनपाल की लड़की सुंदर है या नहीं?"

इस प्रश्न के किए जाते ही उत्तर सुनने के लिये मानवती ने अपनी आँखें अग्निदत्त की आँखों में गड़ा दीं।

अग्निदत्त का मुँह न-जाने क्यों लाल हो गया। रानी ने उसके इस संकोच को समझा हो या न समझा हो, मानवती से कहा—"स्त्रियों को लोग अनजान कहा करते हैं, परंतु हम लोगों से कोई भेद नहीं छिपा सकता।"

आधे क्षण के लिये अग्निदत्त और मानवती ने एक दूसरे की ओर देखा।

अग्निदत्त कुछ कहना चाहता था और कुछ नहीं कहना चाहता था, परंतु उसको कुछ कहना ही पड़ा। बोला—"सो मैं क्या जानूँ ?" और चेष्टा करने पर भी अपने काँपते हुए होंठ पर छिपी मुस्किराहट को न बचा सका।

मानवती ने सहायता का हाथ बढ़ाया। बोली—"इनसे क्या पूछती हो, मा। भैया जब आवें, तब उन्हीं से पूछना।"

अग्निदत्त आश्चर्य में डूब गया। रानी को हाल मालूम हो गया है, कैसे मालूम हुआ ? यह अत्यंत गुप्त भेद यहाँ तक कैसे आया ?

उधर रानी ने पीछा नहीं छोड़ा। बोली—"पांडे बेटा, यह तो बतलाओ कि कुमार इस लड़की के साथ ब्याह करना चाहते हैं ? मानवती को तो जानने की बड़ी उत्कंठा है।"

इस सीधे-पैने सवाल ने अग्निदत्त को ढेर कर दिया। बहुत सकुचकर इधर-उधर देखने लगा। यदि कहीं कोई सूक्ष्म मार्ग भी उसे मिल जाता, तो वह वहाँ से हवा हो जाता। परंतु अब तो वह बेतरह ग्रस्त हो गया था।

विचित्र असंबद्धता के साथ बोला—"सोहनपाल क्यों ब्याह के लिये स्वीकृति देने चला ? परंतु युद्ध में कुमार ने पराक्रम बहुत दिखलाया था। सोहनपाल ने बाहर से मुसलमानों पर छापा मारा था, और कुमार ने स्त्रियों की रक्षा के लिये प्राण दे दिए होते......"

रानी ने टोककर कहा —"अरे नटखट, इधर-उधर की बातों में टालना चाहता है ? तू नाग का भेदी है, बता, नहीं तो तारा से कहूँगी और उसको तेरे पीछे ऐसा लगाऊँगी कि वह तुझे दिन-रात चैन नहीं लेने देगी।"

इस संदिग्ध प्रणय-चर्चा में तारा का नाम सुनते ही उसका मन कुछ गंभीर हुआ। बोला—"माजी, अब मैं क्या कहूँ। कुमार से पूछ लेना।"

रानी का गला भर आया। कहने लगी—"यदि कुँवर का ब्याह इस बुंदेला सामंत की लड़की के साथ हो जाय, तो आँखें शीतल हो जायँगी। न-जाने कब मर जाऊँगी। यदि अपने सामने तुम सबों को सुखी देख लूँ, तो फिर मरने में बड़ा हर्ष होगा।"

मानवती ने खिड़की की ओर अपनी ग्रीवा मोड़ ली, और सरौल की पहाड़ियों की ओर देखने लगी। बोला—'इन्हीं पहाड़ियों में सोहनपाल-जी का डेरा पड़ेगा ?"

अग्निदत्त ने बच निकलने का पूरा सुबीता देखकर कहा—"वहाँ तो सोहनपाल कुछ साथियों के साथ रहेंगे। उनका कुटुंब तो मेरे पासवाले भवन में आकर ठहरेगा।"

रानी ने सहसा पूछा—"क्या सोहनपाल की कन्या भी इसी भवन में ठहरेगी ?"

अग्निदत्त ने उत्तर दिया—"हाँ, माजी।"

रानी—"महाराज ने मुझे यह नहीं बतलाया।"

अग्निदत्त—"मैंने अभी उनसे नहीं कह पाया है। पिताजी से कह दिया था, मैं सोचता था कि उन्होंने महाराज से कह दिया होगा।"

रानी का मुख कमल की तरह खिल गया। मानवती के हृदय से एक छोटी-सी आह निकली, परंतु उसे शायद अग्निदत्त के सिवा और किसी ने नहीं देखा। अग्निदत्त किसी विचार में डूब गया।

रानी ने प्रफुल्लित होकर कहा—"मानवती, सोहनपाल को अवश्य मालूम हो गया होगा, और वह अवश्य मन-ही-मन इस संबंध की कल्पना को पसंद करता होगा। इसीलिये उसने लड़की को यहाँ भेजा है। ब्याह-संबंध अवश्य होगा। यदि बातचीत शीघ्र हो जाय, तो मैं तो धूमधाम के साथ अक्षय तृतीया के पीछे नाग के पैर में इस कन्या की साँकल डाल दूँ। दूसरी चिंता भी इसी संबंध के सिलसिले में दूर कर डालूँ।"

मानवती इस वार्ता के पिछले भाग को सुनकर कुछ विचलित-सी हुई। आँखें नीची कर लीं। अग्निदत्त के माथे पर एक बूँद पसीने की आ गई।

रानी बोलीं—"अग्निदत्त, मानो के लिये भी शीघ्र योग्य वर ढूँढ़ना चाहिए। यदि तब तक प्रबध हो गया, तो दोनो का विवाह एक ही समय में हो जायगा।"

मानवती मुँह फुलाकर वहाँ से उठने लगी। अग्निदत्त के मुँह से कोई उत्तर न निकला। रानी ने उठकर कहा—"बैठो-बैठो, तुम लोग तब तक कुछ पढ़ो, या पांडे, तुम मानवती को कोई नई शस्त्रविद्या सिखलाओ। मैं तो थक गई हूँ, जाकर विश्राम करूँगी।" यह कहकर रानी वहाँ से चली गई।

अग्निदत्त का जी कुछ हलका हुआ। बोला—"पढ़ने-लिखने में तो इस समय जी लगता नहीं, तीर-कमान उठा लाओ।"

मानवती का मन उदास था। वह धीरे-धीरे तीर-कमान उठाने चली गई। अग्निदत्त को अकेले में कुछ सोचने का समय मिल गया। मन में बोला—"कुमार का विवाह अभी इतनी जल्दी नहीं होता। इसलिये मानवती का भी बहुत शीघ्र नहीं होगा। रानी को और राजा को भी इस समय सोहनपाल के घर में संबंध करने की उत्कट इच्छा हो रही है।"

इतने में मानवती तीर-कमान लेकर आ गई। दोनो महल के आँगन में, जो क़िले के दक्षिणी भाग में था, चले गए, और एक लक्ष्य स्थिर करके थोड़ी दूर से वेध-क्रिया के अभ्यास के लिये एक स्थान पर जा खड़े हुए।

मानवती के हाथ में अग्निदत्त ने कमान दी और तीर अपने हाथ में लिया। दोनो के हाथ काँप रहे थे। अग्निदत्त का कंधा मानवती के कंधे से सटा हुआ था। सहसा मानवती की आँखों से आँसुओं की धारा बह निकली। अग्निदत्त की आँखों में भी आँसू आ गए। मानवती ने पोंछ डाले, अग्निदत्त के छलकते रहे।

मानवती ने कहा—"क्या होगा? अंत में क्या होगा, अग्निदत्त?"

"मेरा बलिदान।"

"और मेरा क्या होगा?"

"तुम सुखी होओगी। कहीं की रानी..."

"धिक्कार है तुमको! तुमको तो ऐसा नहीं कहना चाहिए।"

"आज मुझे आँखों के सामने अंधकार दिख रहा है।"

"मा ने जो कहा, उसको सुनकर? तुम पागल हो। अच्छा, एक तीर चला लेने दो। कोई इस तरह खड़े देखकर कुछ कहने न लगे।"

मानवती ने तीर चलाया। तीर लक्ष्य से बीस हाथ अलग जा गिरा।

मानवती ने कुछ चिल्लाकर कहा—"अब की बार अवश्य लक्ष्य पर तीर लगेगा।"

फिर दोनो उसी तरह आकर खड़े हो गए।

मानवती ने तीर को लक्ष्य की ओर सीधा किया, और बोली—"मुझे तो एक ही देवता का इष्ट है। अनेक देवताओं के पूजन के लिये मैंने जन्म नहीं लिया है।" लक्ष्य पर तीर छोड़ा, न लगा। फिर चिल्लाकर बोली—"देखें कब तक नहीं लगता।" और फिर दोनो पूर्ववत् खड़े हो गए।

अग्निदत्त का चित्त अब पहले से बहुत अधिक स्थिर हो गया। मानवती की आँखों में कुछ भयानकतामय आकर्षण था। बोली—"आवश्यकता पड़ने पर स्त्रियाँ सहज ही प्राण विसर्जन कर सकती हैं।" और लक्ष्य की ओर बारीकी के साथ देखने लगी।

अग्निदत्त ने उसके कान के पास कहा—'संसार में रहेंगे, तो हम-तुम दोनो एक दूसरे के होकर रहेंगे, और नहीं तो पहले अग्निदत्त तुम्हारी बिदा लेकर......"

दलित सिंहिनी की तरह आँखें तरेरकर मानवती ने कहा—"क्या ?" फिर अग्निदत्त का उदास मुख देखकर बहुत करुण कंठ में दृढ़ता के साथ बोली—"आगे ऐसी बात कभी मत कहना। इस सुविस्तृत संसार में हमारे-तुम्हारे दोनो के लिये बहुत स्थान है।"

इस उत्तर से अग्निदत्त को बहुत परितोष हुआ।

थोड़े समय तक बाण-विद्या का अभ्यास कर चुकने के पश्चात् मानवती ने उत्सुकता के साथ चिर-विस्मृत-सी होकर पूछा "नाग का प्रणय क्या है ? वास्तव में इसमें कुछ सार है या हम लोगों ने कोरी कपोल-कल्पना सुनी है ?"

अग्निदत्त आद्योपांत संपूर्ण कथा कहने को तैयार हुआ कि सामने से एक दासी आ गई और मानवती को वहाँ से लिवा ले गई। अपने मन के भीतर की बात को न सुना पाने के कारण अग्निदत्त को कोई कष्ट नहीं हुआ। उसने सोचा—"कुमार का पूरा भेद इस समय बतलाने में किसी का कोई लाभ तो नहीं। कभी तो कुमार की इस संपूर्ण प्रेम-लीला पर निष्कंटक संदेह होने लगता है और कभी विश्वास कर लेने को मन पूर्ण रूप से सन्नद्ध हो जाता है। यथासमय इस भेद को बतलाऊँगा।"

अग्निदत्त के मुख पर उस दिन उल्लास का अनंत विलास दिखलाई पड़ता था। तृप्ति के अमिट चिह्न लक्ष्य होते थे।

व्यंग्य

दूसरे दिन सबेरे कुछ दिन चढ़े अग्निदत्त घोड़े पर सवार होकर कुमार से मार्ग में ही मिलने के लिये घर से निकला। थोड़ी दूर चलते ही इब्न करीम और उसके साथ भरतपुरा के सैनिक मिले। इब्न करीम ने अग्निदत्त को पहचानकर प्रणाम किया। अग्निदत्त का हृदय परितुष्ट था। दूसरों को सुख-संवाद सुनाने के लिये उसके हृदय में स्थान था।

करीम से बोला—"आपको इस राज्य में स्थान मिल जायगा। आपका पद इन सैनिकों से अधिक प्रतिष्ठित होगा, जो आपके साथ-साथ इस समय जा रहे हैं। महाराज की आज्ञा शायद आपको आज ही मिल जाय।"

"शुक्र है अल्लाह का!" करीम ने कहा। ये लोग कुंडार की तरफ़ चले गए, और अग्निदत्त कुमार से मिलने के लिये धीरे-धीरे आगे बढ़ा।

थोड़े समय में कुमार से भेंट हुई। कुमार ने अग्निदत्त को देखकर अपने उदास चेहरे पर मुस्किराहट बुलाने की चेष्टा की। अग्निदत्त प्रफुल्ल था।

बोला—"रनवास में आपके लिये सब लोग चिंतित हैं, और आप धीरे-धीरे चले आ रहे हैं।"

कुमार ने फीकी हँसी हँसकर कहा—"मैं रनवास की चिंता को दूर करने के लिये व्याकुल नहीं हूँ। तुमने चिंता नहीं मिटा पाई। वह मूर्ख लड़की बहुत उतावली हो रही होगी। मा क्या बहुत खिन्न थीं?"

"खिन्न थीं और प्रसन्न भी।"

"यह पहेली मेरी समझ में न आई।"

"न-मालूम किस तरह से भंडाफोड़ हो गया।"

कुमार ने आश्चर्य के साथ कहा—"किस बात का भंडाफोड़ ? क्या...?"

अग्निदत्त ने संकेत को समझकर कहा—"हाँ, वही। यहाँ बैठे-बैठे उन लोगों को न-जाने क्या-क्या मालूम हो गया है।"

"चिट्ठी का हाल ?"

"स्त्रियाँ कुछ स्पष्ट थोड़े ही बतलाती हैं, परंतु चिट्ठी का हाल उनको मालूम होना असंभव है। ठठोली करती थीं, चुटकियाँ लेती थीं।"

"तुम तो हो मूर्ख।" कुमार ने रोषजनक स्वर में कहा—"बतलाओगे भी कि उन लोगों ने क्या-क्या कहा ?"

अग्निदत्त की प्रफुल्लता में अंतर नहीं आया और उसने संक्षेप में रनवास की बातें बतलाईं।

कुमार बोला—"मैं अब समझा। उनको सोहनपाल के रनवास की रक्षा का पता लगा है, और सोहनपाल की कुमारी के सौंदर्य की कीर्ति सुन रक्खी होगी पहले ही से।" फिर एक क्षण ठहरकर, प्रणयी के प्रसिद्ध भ्रम-पूर्ण विश्वास से प्रेरित होकर कहने लगा—"शायद सोहनपाल ने या कुमारी ने अपना कोई मनोगत भाव हमारे किसी आदमी के सामने प्रकट किया हो, जिससे यह चर्चा रनवास में फैल गई। कुछ भी हो, इसमें मेरी कोई हानि नहीं है।"

फिर पूछा—"क्योंजी, तुमने यह न बतलाया कि इन लोगों की रुचि इस विषय की ओर कैसी है ?"

अग्निदत्त ने उत्तर दिया—"महाराज ने भी इस विषय को छूते हुए कुछ प्रश्न किए थे। स्पष्ट तो कुछ नहीं कहा, परंतु उनकी भी इच्छा जान पड़ती है, और रानी मा ने तो स्पष्ट अपनी आकांक्षा प्रकाशित की थी।"

कुमार ने चाव के साथ इस आकांक्षा को विस्तृत रूप में सुनना चाहा। पांडे ने भी खूब सुनाया।

कुमार ने आह खींचकर कहा—"आज आशा थी कि कुछ वार्तालाप करूँगा। परंतु एक बार दर्शन होने के सिवा और कुछ नहीं हुआ।"

"क्या कुमारी ने कोई अनिच्छा का भाव प्रकट किया था?"

"नहीं-नहीं, अनिच्छा का भाव प्रकट होने पर तो मेरे लिये संसार में जीवित बने रहने का कोई कारण ही न रहेगा। परंतु बातचीत तो कुछ हो। एक मृदुल मंजुल शब्द तो मुँह से सुन लूँ।"

"सोहनपालजी या कुमारी के निकट संबंधी समीप रहे होंगे?"

"यही तो कारण था, अग्निदत्त। एक बार हेमवती ने बड़े चाव, बड़ी आकांक्षा के साथ मेरी ओर देखा था।"

"अब मेरी समझ में आया कि आपकी पत्री का उत्तर क्यों नहीं मिला—बेचारी चारो ओर से घिरी हुई है। लिखा हुआ उत्तर देने का साहस न कर सकी। भीरु और लजवंती है। मुँह से न कह सकी, पर आँखों से तो कुछ-न-कुछ कहा।"

"बहुत कुछ—परंतु मैं कंठ का मनोहर शब्द भी सुनना चाहता था। फिर कभी देखा जायगा।"

"फिर कभी क्या। मेरे पड़ाव में उन लोगों के ठहरने के लिये स्थान ठीक हो गया है, वहाँ तो आपको अवसर मिलेगा।"

"ठीक कहते हो?" कुमार ने कहा और थोड़ी देर के लिये चुप हो गया। दोनो कुंडार के निकट आ गए थे। कुमार की उदासी दूर हो गई थी। व्यंग्य के साथ उसने पूछा—"पांडे, तुम्हारा भाग्य कैसा रहा? मिल पाए या नहीं?"

पांडे का चेहरा एक क्षण के लिये लाल हो गया। दूसरी ओर देखकर मुस्किराहट के साथ उत्तर दिया—"जी हाँ, बहुत थोड़े से समय के लिये।"

कुमार ने उसी व्यंग्य-पूर्ण स्वर में कहा—"आपने कहा होगा 'मेरी प्यारी, मेरी दुलारी, तुम्हारे देखने के लिये, कर-स्पर्श के लिये, तड़प

रहा था।' उसने मान के साथ उपालंभ दिया होगा, 'जाओ भी, बातें बनाने आए हो। इतने दिन तक वन में भटकते फिरते रहे, आज याद आई।' फिर दोनो एक-दूसरे के हृदय से मिल गए होंगे। अग्निदत्त, तुम बड़े सुखी हो। ऐसा भाग्य किसका होता है?"

अग्निदत्त ने कुछ ऐसा भाव किया, जैसे किसी वार से बचना चाहता हो। बोला—"माजी कुमारी का नाम आपसे अवश्य पूछेंगी। चलिए तो, कैसा आँधी-तूफ़ान उठता है।"

"उसके लिये मैं तैयार हूँ। इस तूफ़ान में मेरा साथ दोगे या माजी का?"

"माजी का।"

"तब तो और भी अच्छा होगा। मैं खूब चिल्ला-चिल्लाकर बचूँ, तुम्हारी सब कथा सुनाऊँगा। माजी से कहूँगा कि तुम्हारा यह छुटपन का खिलाया खिलौना बड़ा चांडाल हो गया है। न-मालूम किस जाति की लड़की के साथ इसका प्रेम हो गया है। उसके प्रेम में इतना पागल हो गया है कि यदि किसी प्रकार उसके साथ विवाह न हो सका, तो यह उसको लेकर भाग जायगा। मैं उनसे अनुरोध करूँगा कि महाराज द्वारा पांडे काकाजू से कहलवा दो कि ब्राह्मण-रीति और वेदों के मंत्रों के उच्चार के साथ अग्निदत्त का शीघ्र पाणिग्रहण उस अपर जाति की कन्या के साथ करा दो, नहीं तो लड़के से हाथ धोना पड़ेगा, और वह कहीं नौ-दो-ग्यारह हो जायगा। क्यों अग्निदत्त?"

अग्निदत्त के हृदय में ये बातें छिद रही थीं, परंतु ऊपर से बड़ी विनय के साथ मुस्किराता हुआ हाथ जोड़कर बोला—"नहीं दादा, ऐसा मत करना। अभी तुम्हारा तो कोई कार्य सिद्ध हुआ नहीं है, मेरा नाश करने पर क्यों उतारू हो गए हो?"

कुमार ने खिलखिलाकर कहा—"तुम दुष्टता में मुझसे पार नहीं पा सकते। अच्छा, तो मैं तुम्हारी छीछालेदर नहीं करूँगा। मेरे साथ चलो।"

दोनो गढ़ पहुँचे। हुरमतसिंह बड़ी देर तक नाग को गले लगाए रहा। फिर कुमार से भरतपुरा-युद्ध का विस्तार के साथ वर्णन पूछा। जहाँ तक बना, नाग ने स्वयं जो भाग युद्ध में लिया था, संक्षेप में कहा। और, हरी चंदेल, अर्जुन और अग्निदत्त की बड़ी प्रशंसा की। हुरमतसिंह ने पूछा—"सोहनपाल की रानी यहाँ कब तक आवेंगी?"

नाग ने ज़रा नीची आँख करके कहा—"कल या परसों।"

इसके पश्चात् दोनो रनवास में गए। रानी थोड़ी देर स्नेहाश्रु बहाती रही। मानवती ने भी चेष्टा की। कठिनाई से कुछ आँसू उसकी बड़ी-बड़ी आँखों में दिखलाई दिए। अग्निदत्त के हृदय में उथल-पुथल मच उठी।

परंतु आज वह कुछ बेचैन था। कुमार की उपस्थिति में मानवती को आँख-भर देखना उसके लिये कठिन हो रहा था।

देर तक वार्तालाप करने के बाद कुमार ने कहा—"आओ मानो, हम लोग उधर तुम्हारे पढ़ने-लिखने की बातचीत करें।"

मानवती तुरंत तैयार हो गई। अग्निदत्त को कुछ परिश्रम करना पड़ा।

अत्यंत मर्मवेधी, किंतु गुप्त व्यंग्य के साथ कुमार ने अग्निदत्त से कहा—"पांडेजी, क्या कहीं मिलने जाना है? क्यों ठिठक गए?"

मानवती किसी दूसरी ओर देख रही थी। यदि वह इस समय पांडे को देख लेती, तो उसकी दुर्दशा पर दया करती—या कुछ और भाव मन में उदय होता?

पांडे ने आँखों से ही गिड़गिड़ाकर प्रार्थना की कि "बस करो, और अधिक कुछ मत कहो।" नाग ने इस निषेध को स्वीकार कर लिया।

मानवती ने सरल भाव से कहा—'भैया, अब हमको पढ़ना होगा, तो तारा के साथ पढ़ूँगी। अग्निदत्तजी से तो अब मैं बाण-विद्या सीखूँगी। कल इन्होंने थोड़ा-सा अभ्यास कराया था। अभी तो मेरा लक्ष्य ही नहीं सधता।"

ने ढूँढ निकाला। कुमार से बोला—"इब्न करीम आज आपके आने से कुछ ही समय पहले यहाँ आ गया है। उसके विषय में महाराज से कुछ कहना-सुनना है।"

मानवती ने पूछा—"यह कौन है पांडेजी ?"

राजकुमारी की बड़ी-बड़ी आँखों से आज अग्निदत्त अपनी आँखें न मिला सका। कुमार की ओर मुँह करके उत्तर दिया—"यह वही मुसलमान योद्धा है, जिसको कुमार ने सोहनपाल की रावर की रक्षा के लिये युद्ध करते हुए पकड़ा था।"

मानवती उन आँखों को अपनी ओर आकृष्ट करके फिर देखना चाहती थी, जिनको देखकर कभी तृप्त नहीं हुई। बोली—"पांडेजी, रावर में सोहनपाल की कुमारी थी और उनकी ठकुराइन ?"

पांडे ने स्थिर होकर उत्तर दिया—"हाँ, माना।"

कुमार ने आग्रह के साथ टोका—"और वहाँ सोहनपाल का लड़का सहजेंद्र भी तो था।"

मानवती ने बड़े स्नेह के साथ कहा—"भैया, वह शुभ अवसर कब आवेगा ?"

नाग गढ़ के कोट की ओर देखने लगा। अग्निदत्त ने मानवती की ओर इस प्रकार देखा, केवल एक क्षण के लिये, जैसे वह उस संपूर्ण मूर्ति को अपने नेत्रों में भर लेगा। नाग ने कहा—"चलो पांडे। इब्न करीम की नियुक्ति के लिये कुछ कहना होगा। मेरे कहते ही महाराज स्वीकार कर लेंगे।"

पांडे बोला—"सोहनपाल को सहायता देने के लिये भी तो आपको अनुरोध करना है।"

नाग ने धीरे से उत्तर दिया—"अभी कुछ न कह सकूँगा।"

पुण्यपाल

सारौल में पहुँचकर सोहनपाल ने अपना डेरा सारौल की पहाड़ियों के पूर्व तालाब से सटी हुई पहाड़ी के ऊपर बने हुए एक भवन में डाला। इसमें कोई नहीं रहता था। चंदेलों के राज्य-काल में यह तालाब और भवन बनवाए गए थे। सारौल के दक्षिण की ओर दो पहाड़ियों की एक घाटी थी, जिसका मुँह इस तालाब में पूर्व की ओर खुला था। उत्तर की ओर एक पहाड़ आरंभ होकर दो फंसों में फैलकर तालाब पर समाप्त हो गया था। तालाब के पूर्व में एक लंबी पहाड़ी-श्रेणी थी, जो उत्तर में आध कोस के लगभग फैली थी और दक्षिण में दूर तक चली गई थी। जहाँ सारौल की उत्तरीय पहाड़ी का अंत हुआ था, वहाँ से इस श्रेणी तक—पश्चिम से पूर्व तक—चंदेलों ने इस तालाब को बाँध दिया था। दक्षिण की ओर धीरे-धीरे भूमि ऊँची होती चली गई थी और जंगल से घिरी हुई थी। जंगल से आगे फिर और गाँव थे। जाड़ों में इस तालाब में थोड़ा-बहुत पानी भरा रहता था। चैत के बाद पानी सूख जाता था, परंतु हरियाली बराबर बनी रहती थी। यह अवस्था इस स्थान की अब भी है—पर अब कुछ अधिक भयानक है। जिस समय सारौल के पीछे पहाड़ी दर्रे में से आध कोस चलकर पूर्व की ओर इस तालाब में उतरना पड़ता है, सामने जंगल और धुँधली पर्वत-मालाएँ दिखाई देकर एक गुप्त विचित्र और कोई भयानक रहस्य-सा उपस्थित करती हैं। सारौल यहाँ से लगभग एक कोस है। कई पहाड़ियों के बीच में होकर कुंडार सारौल की ओर झाँकता-सा है। कुंडार का गढ़ चाहे जिस ओर से देखिए, पहाड़ियों के बीच में से झाँकी-सी देता हुआ दिखलाई पड़ता है। सारौल से कुंडार जाने के लिये कई छोटी-छोटी पहाड़ियाँ, अनेक नाले और

नालों के काटे हुए बहुत-से टापू मिलते हैं, जो घोर वन से आवृत हैं, और थे। केवल थोड़ा-सा स्थान बीच में ऐसा है, जहाँ खेती होती थी।

सोहनपाल ने यह भयानकतामय सुंदर स्थान पसंद किया। मकान को हरी चंदेल ने पहले ही से आकर निवास-योग्य बना दिया था।

भरतपुरा से आने के कुछ समय पश्चात् जब सोहनपाल हरी चंदेल को बिदा कर चुका, दिवाकर ने उसको सूचना दी कि पुण्यपाल करेरा से आए हैं।

पुण्यपाल नागदेव से कुछ वर्ष अधिक आयु का युवक होगा। उसका रंग साँवला, ऊँचा-पूरा और शरीर बहुत पुष्ट था। उसकी आँखें कुछ छोटी और बहुत उतावली थीं।

सोहनपाल ने आदर के साथ पुण्यपाल को बिठलाया। उन दोनो के सिवा वहाँ और कोई न था। भरतपुरा-गढ़ी की लड़ाई का विवरण सुनकर बुंदेलों की हानि पर उसने शोक प्रकट किया और आश्वासन दिलाया कि थोड़े-से सैनिक करेरा से पहरेदारी इत्यादि के लिये बुलवाए देते हैं। सोहनपाल ने कृतज्ञता प्रकट की। फिर और वार्तालाप हुआ। सोहनपाल ने कहा—"लक्षण अच्छे मालूम होते हैं। राजा ने सहायता का वचन दिया है।"

"बदले में उसने माँगा क्या है?"

"कुछ नहीं, केवल यह कि राज्य में यथाशक्ति शांति बनी रहे।"

"मैंने सुना है कि कुंडार में करीम नाम का एक कारीगर लाया गया है।"

"ऐसी ख़बरें हवा की चाल से भी ज़्यादा तेज़ चलती हैं। लाया तो गया है, परंतु हमको उससे क्या संबंध?"

"वह हथियार बनाने और अन्य सामरिक बातों में बड़ा चतुर है। मैं उसको करेरा ले जाना चाहता हूँ।"

"यह कैसे हो सकता है?"

"चेष्टा करूँगा।"

सोहनपाल चुप रहे।

जैसे पानी बरस रहा हो, ऐसी शीघ्रता में पुण्यपाल ने कहा—"राजा की सहायता न-जाने कब तक मिलेगी। मिलेगी या नहीं मिलेगी, इसमें भी संदेह है। तब तक मैं अपनी सेना को सुसज्जित करता हूँ। और सब लोगों के ठहरने का प्रबंध कुंडार में किया है?"

"हाँ, कुंडार को मैंने अधिक सुबीते का समझा। थोड़े ही दिन के लिये तो प्रबंध है। और न-जाने हम लोगों को कहाँ-कहाँ भटकना पड़े। इन लोगों को साथ लिए घूमने में बड़ी अड़चन पड़ती है।"

पुण्यपाल ने कुछ धैर्य और कोमलता के साथ अनुरोध किया—"करेरा न भेज दीजिए?"

"कुटुंब को कुंडार के सिवा और कहीं पहुँचाने में एक बड़ी कठिनाई है। वीरपाल का कोप-भाजन कोई नहीं बनना चाहता। तुम अकेले ऐसे साहसी हो, जिनको कुंडार या मोहानी या ग्वालियर का भय नहीं है, परंतु ग्वालियर के मुसलमान तुमसे निकट पड़ते हैं और तुम स्वयं सदा सेना सजाने और लड़ाई-भिड़ाई में लगे रहते हो। यह कुटुंब तुम्हारे लिये इस समय बोझ हो जायगा, कुंडार में किसी को बोझ न होगा।"

पुण्यपाल कुछ उदास हो गया।

सोहनपाल ने देखकर कहा—"रानी के पास भी तो हो आओ। तुम ठहरोगे तो यहाँ घंटे-आध घंटे ही, न-जाने कितने वेगगामी हो, कहाँ-कहाँ जाओगे, क्या-क्या करोगे।"

पुण्यपाल मुस्किराकर भीतर गया।

हेमवती पुण्यपाल को देखकर वहाँ से हट गई। पुण्यपाल ने रानी को अभिवादन किया।

रानी ने गद्गद होकर कहा—"तुमको देखकर जी बहुत जुड़ा जाता है। अच्छे हो बेटा?"

पुण्यपाल ने कुशल-क्षेम का यथोचित उत्तर देकर कहा—"क्या करूँ ? काकाजू तो मानते ही नहीं, करेरा सब लोग चले चलो, तो मैं सदा सेवा में बना रहूँगा।"

रानी ने आश्चर्य के साथ कहा—"करेरा ! ऐसा कहीं होता है ? जब भगवान् वह शुभ घड़ी लायँगे, तब लोग कहेंगे कि बुंदेला लड़की का धान्य खाते हैं !"

इतना कहकर रानी दूसरी ओर चली गई। हेमवती पासवाली एक कोठरी में खड़ी थी। पुण्यपाल ने उस ओर आँख उठाई। हेमवती वहाँ से न निकली, वहीं और सिमट गई। पुण्यपाल कोठरी के द्वार के बाहर खड़ा होकर बोला—"बहुत दिनों बाद जुहार करने आया हूँ। क्या दर्शन भी न होगा ? पहले तो हम लोग खेले-कूदे हैं. अब क्या हो गया है ?"

हेमवती का दृढ़ उत्तर सुनाई दिया—"पहले जुझौति को स्वतंत्र करिए।" परंतु वह दिखलाई नहीं पड़ी।

पुण्यपाल ने काँपते हुए स्वर में कहा—"यदि मैं इस व्यवसाय में मारा ही गया और तुम्हारे दर्शन भी न हो पाए, तो मन में कलक रह जायगी।"

"पँवार होकर मरने से डर ? तब फिर जिस प्रयत्न को आप व्यवसाय कहते हैं, उसमें हाथ मत डालिए।"

"अच्छा, तो मेरा जुहार तो सामने आकर स्वीकार कर लीजिए।"

"यहीं से नमस्कार कर लिया। अपना कर्तव्य पालन कीजिए। इस समय बुंदेले पँवार हैं और पँवार बुंदेले। इससे अधिक और क्या शक्ति-संग्रह आपका है ? मुझे आश्चर्य है कि आपको व्यर्थ की बातें करने का समय मिल जाता है।"

पुण्यपाल की आँखों में स्नेह के स्थान में कुछ रूक्षता दिखलाई दी। बोला—"मनुष्य बिना आशा के काम नहीं करता है।"

जुझौति की स्वतंत्रता किस आशा से कम प्रेरणा का काम करती है ?"

पुण्यपाल का नेत्र अस्थिर हो गया। बोला—"मुझे स्पष्ट उत्तर दीजिए कि किसी अवस्था में, किसी समय, कभी आप विवाह करेंगी या नहीं ?" पर उसे कोई उत्तर नहीं मिला।

"अच्छा यह न बतलाइए। केवल इतना ही कह दीजिए कि आपका प्रेम है या नहीं ?" फिर भी कोई उत्तर न मिला।

"तो क्या मैं यह समझूँ कि आपको मुझसे कुछ घृणा है ?" कोई उत्तर नहीं।

कुछ देर ठहरकर पुण्यपाल ने पूछा—"क्या आप मेरा जीवित रहना पसंद करती हैं ?"

उत्तर मिला—"जुझौति की स्वतंत्रता के लिये।"

"तो क्या मैं बिलकुल निराश होकर जाऊँ ?"

बहुत क्षीण स्वर में हेमवती ने उत्तर दिया—"नहीं।"

पुण्यपाल वैसे ही जुहार करके वहाँ से चला आया। बाहर दिवाकर का मुस्किराता हुआ मुख दिखलाई पड़ा।

दिवाकर ने पूछा—"राजा, अब कहाँ की तैयारी है ? क्या आज ही कहीं चले जाओगे ?"

"और आप ?"

"कुंडार जाने का आदेश हुआ है।"

सोहनपालजी एक कर्मण्य मनुष्य को और अकर्मण्य बनाने भेज रहे हैं। और सहजेंद्र ?"

"वह भी वहीं जायँगे।"

"तब हुआ चौपट। और कौन जायगा ?"

"दो बुंदेला-सरदार और आयँगे।"

"आपको कुंडार का जाना अच्छा मालूम होता है ?"

"बुरा भी नहीं मालूम होता।"

"सो क्यों ?"

"आप ही बतलाइए कि बुरा क्यों मालूम हो ?"

"जुझौति की स्वतंत्रता क्या केवल स्वप्न ही रहेगी ?"

"यह प्रश्न आप लोगों के हाथ में है। हम साधारण सैनिक तो आदेश का पालन-मात्र करते हैं।"

दिवाकर पुण्यपाल की उतावली प्रकृति को जानता था। पूछा—"आप कहाँ जाने का विचार कर रहे हैं ?"

"मैं भी कुंडार चलूँगा।" पुण्यपाल ने उत्तर दिया।

दिवाकर को अचभा हुआ। बोला—"कुंडार में आप क्या करेंगे ?"

उस उतावली आँख में भी कुछ मुस्किराहट आई। "वहीं चलकर बतलाऊँगा।" पुण्यपाल ने कहा।

दिवाकर को मालूम था कि पुण्यपाल और हेमवती के सगाई-संबंध की कुछ चर्चा सोहनपाल के घर में हो चुकी है। इसलिये उसे संदेह हुआ कि पुण्यपाल अपने इष्ट विषय के लिये कुछ समय कुंडार में व्यतीत करेगा। परंतु उसे दो संकटों का विचार करके कुछ बेचैनी हुई। एक तो यह कि पुण्यपाल से कुंडार का राजा प्रसन्न नहीं है। उसको हम लोगों के साथ देखकर राजा के चित्त में शंका होगी और कार्य-सिद्धि में विघ्न उपस्थित होगा। दूसरे, हेमवती विवाह करने से इनकार कर चुकी है। इसलिये पुण्यपाल के साथ झगड़ा बढ़ने की संभावना है। झगड़ा बढ़ने से भी कार्य-सिद्धि में पूरी-पूरी बाधा उपस्थित होगी।

दिवाकर को कुछ अन्यमनस्क देखकर पुण्यपाल ने तीक्ष्ण मुस्किराहट के साथ कहा—"डरिए मत रायजी, पुण्यपाल कुंडार जाकर आप लोगों को नहीं सतावेगा। वह आपके और अपने साधारण उद्देश्य के संबंध से जायगा।" फिर हँसकर बोला—"कुंडार के राजा के किसी आदमी से रार भी मोल न लेगा।"

सहजेंद्र के वहाँ आने पर वह चुप हो गया। सहजेंद्र ने पुण्यपाल के ठहरने और भोजन का प्रबंध कर दिया।

जब वह चला गया, सहजेंद्र ने व्यंग्य के साथ दिवाकर से कहा— कुँवर-जी की तलवार का म्यान दिनोंदिन छोटा होता चला जाता है। यह क्या तुमसे लड़ रहे थे ?"

दिवाकर ने हँसकर कहा—"यदि मैं उन्हें लड़ने का अवसर दूँ, तो मुझे ही मूर्ख कहना चाहिए। लड़ते नहीं थे, कहते थे कि हम भी कुंडार चलेंगे।"

"कुंडार वह न जायँ, यों ही अच्छा। परंतु वह किसी की मानेंगे थोड़े ही। एक परिमित वृत्त के भीतर तो मैं उनका हठ चल जाने दूँगा, उसके बाहर नहीं।"

"भाई साहब, हम अपने थोड़े-से मित्रों को शत्रु नहीं बना सकते। इतना अच्छा है कि पुण्यपालजी किसी एक स्थान में अधिक समय तक नहीं टिक सकते।"

सहजेंद्र हँसने लगा। बोला—"साथ-साथ जायँगे ?"

"नहीं, न साथ जायँगे, न साथ रहेंगे, न साथ लौटेंगे।"

थोड़ी देर में पुण्यपाल आ गया। उसने सहजेंद्र से कहा—"मैं कुंडार में आपकी केवल इतनी सहायता चाहता हूँ कि आप मुझे इब्न करीम को पहचनवा दें।"

सहजेंद्र कारण नहीं पूछना चाहता था। इसलिये उसने हाँ भर दी।

दूसरे दिन दिवाकर और सहजेंद्र कुंडार जाकर रहने का स्थान देख आए और तीसरे दिन हेमवती इत्यादि को लेकर कुंडार पहुँच गए। पुण्यपाल अलग चला गया। इन लोगों के चले जाने के दो-तीन दिन पीछे १०-१२ सैनिक करेरा से सोहनपाल के पास रक्षा इत्यादि के लिये आ गए। जाने के पहले इनको पुण्यपाल ने चिट्ठी द्वारा बुलवा लिया था।

प्रलोभन का प्रतिकार

संध्या के समय योद्धा के वेश में एक पुरुष कुंडार-नगर के बाहरवाले मंदिर से कुछ दूर यों ही टहल रहा था। उसको वहाँ टहलते हुए अधिक समय नहीं हुआ था कि आधे चेहरे पर नक़ाब डाले एक दूसरा पुरुष वहाँ आ गया। यह भी योद्धा-वेश में था।

नवागंतुक ने दूसरे से कहा—"आपका नाम इब्न करीम है?"

उसने उत्तर दिया—"ज़रूर। कहिए, क्या है?"

"यों ही। क्या आपको कुंडार में अच्छा लगता है?"

"बुरा भी नहीं लगता। नेज़े को चाहे जिस बाँस में ठोंक दो, भाले का काम देगा। और कुछ पूछिएगा?"

"आपको कुंडार में कोई कष्ट तो नहीं है?"

"सिर्फ़ यही कि जवाब देते-देते हैरान हो गया हूँ। दिन-भर यही लगा रहता है, कौन हो? क्या हो? कौन जाति के हो? बाप का क्या नाम है? अगर यही सब पूछना हो, तो गाँव में चाहे जिससे पूछ लेना, नाकों दम आ गया है। यहाँ अकेला ज़रा तफ़रीह के लिये निकल आया, सो यहाँ भी पीछा न छोड़ा।"

दूसरे ने कहा—"ख़ाँ साहब, मैं इस गाँव का नहीं हूँ।"

इब्न करीम ने घमंड के साथ कहा—"जनाब नक़ाबपोश साहब, अौवल तो मैं पठान व तुर्क-वुर्क नहीं हूँ। अरब का रहनेवाला सैयद हूँ। यह कि आप काफ़ी दिक़ कर चुके, तशरीफ़ ले जाइए।"

नवागंतुक ने कुछ हठ-पूर्वक कहा—"मैं आपका भला करने आया हूँ।"

इब्न करीम धैर्य के साथ बोला—"कहिए, किस तरह?"

"आपको यहाँ जो वेतन मिलता हो, उससे दुगना वेतन आपको मिलेगा।"

"काम क्या करना होगा ?"

"बस यही, जो आप यहाँ करते हैं।"

"यह वेतन कहाँ मिलेगा ?"

"करेरा में, यहाँ से पच्चीस कोस पर।"

"आपका नाम ?"

"आप चलने का वायदा कर दें, तो नाम भी बतला दूँगा।"

इब्न करीम ने तपाक के साथ कहा—"आपका नाम है नक़ाबपोश और आप हैं अँधेरी दुनिया के शहंशाह। अगर मैं वायदा न करूँ, तो आप नाम बतलाएँगे या नहीं ?"

नवागंतुक ने उत्तर दिया—"न।"

इब्न करीम ने बड़ी ठंडक के साथ कहा—"और अगर मैं वायदा कर दूँ, तो आप बतलाएँगे ?"

"हाँ।"

"इब्न करीम ने ज़रा पास आकर चेहरा-मोहरा अच्छी तरह भाँपना चाहा। नवागंतुक पीछे हटकर बोला—"वायदा करिए।"

"अच्छा, मैं वायदा करता हूँ कि तुम्हारे साथ नहीं जाऊँगा, क्योंकि तुम कुंडार के दोस्त नहीं मालूम होते। अब तुम कुंडार के राजा की इजाज़त बग़ैर नहीं जा सकोगे। तलवार पर हाथ मत डालो, उसका बहुत भरोसा मत करना। मेरे साथ-साथ क़िले में चलो, वर्ना गर्दन पकड़कर ले चलूँगा।"

नवागंतुक ने तलवार निकाल ली। इब्न करीम भी ख़ाली हाथ न रहा।

इब्न करीम बोला—"राजपूत हो या कोई ऐरे-ग़ैरे ?"

उसने उत्तर दिया—"राजपूत। सँभलो।"

इब्न करीम पर राजपूत वार करने को ही था कि उसने पैतरा बदलकर कहा—"यह वार राजपूतों के क़ायदे के खिलाफ़ है। मेरा नाम तुम्हें मालूम है। अगर मैं मारा गया, जिसका मुझे यक़ीन नहीं है, तो तुमको दुनिया में डींग मारने का मौक़ा मिलेगा कि तुमने उस्ताद करीम को जीत लिया; और अगर मैंने तुमको मसल डाला कि जिसकी कामिल उम्मेद है, तो मुझको यही अरमान रहेगा कि अपने शिकार का नाम भी न मालूम कर सका।"

नवागंतुक ने बिगड़कर कहा—"मेरा नाम है पुण्यपाल पँवार। करेरा का राजा हूँ। आज तक किसी से अपमानित नहीं हुआ। मुसलमान की जीभ कतर डालने के लिये तो मेरी तलवार दाँत पीसे बैठी रहती है। अब सँभल।"

इब्न करीम ने कहा—"अपने भगवान् की याद कर ले आज। चाहे राजा हो, चाहे मज़दूर, अभी अपनी शमशीर के घाट उतारता हूँ।"

इतने में कहीं से एक दूसरा योद्धा आ गया। इसके चेहरे पर पट्टी नहीं थी। उसने आकर धीरे से कहा—"मत लड़ो। मंदिर के पास रक्त बहाने की मनाई है।"

दोनो ठहर गए।

इब्न करीम ने कहा—"मैं आपको पहचानता हूँ। आप रियासत के दुश्मन नहीं हैं। यह आदमी रियासत का दुश्मन मालूम होता है। इसको पकड़ना चाहिए।"

इस नवागंतुक ने शायद पुण्यपाल के पकड़ने की ज़रूरत नहीं समझी। पकड़ने का नाट्य करके अपने हाथ की कोहनी करेरा-सरदार के पेट में धीरे से हूल दी, जिसका अर्थ पुण्यपाल की समझ में यह आया कि यहाँ से चले जाने में ही मंगल है। संकेत पाकर पुण्यपाल वहाँ से तुरंत चल दिया। इब्न करीम पीछे दौड़ने को हुआ। न-मालूम बीच में पड़नेवाले

व्यक्ति का पैर मोच गया और किसी पत्थर की ठोकर लग गई कि वह धम्म से इब्न करीम के पैरों के पास गिर गया। उसके गिरने से इब्न करीम भी भदभदाकर जा गिरा। पुण्यपाल तब तक लापता हो गया।

इब्न करीम ज़रा चीख़कर बोला—"क्या बुरे मौके पर गिरे तुम, भवाखर। दुश्मन हाथ से निकल गया।"

"मेरा नाम दिवाकर है मियाँ, भवाखर नहीं। तुमने तो मेरी हड्डी पसली चूर कर दी।"

यह दिवाकर था।

अपने-अपने कपड़े पोंछ-फटकारकर दोनो वहाँ से चल दिए और आग्रह के साथ एक दूसरे की चोट के विषय में प्रश्न करते रहे।

एक दूसरे से अलग होते समय दिवाकर ने अनुरोध किया—"मीर साहब, आज हम लोगों के हाथ से क़ैदी निकल गया, बड़ा भद्दा काम हुआ। इसका ज़िक्र कहीं मत करिएगा, नहीं तो राजा हमें और आपको दोनो को बुरा-भला कहेंगे।"

इब्न करीम ने कहा—"मुझे अपने काम से मतलब है, मुझे क्या पड़ी है कि एक बात कहूँ और सौ सवाल उठवाऊँ।"

तीन आश्चर्य

सहजेंद्र इत्यादि के कुंडार पहुँच जाने के दूसरे दिन धीर प्रधान हुरमत-सिंह के पास नज़र-भेंट के लिये आया। उसका सत्कार किया गया, परंतु साहाय्यदान के विषय में स्पष्ट कह दिया गया कि दिल्ली से विष्णुदत्त पांडे के लौट आने पर कुछ किया जायगा, परंतु गोपीचंद ने धीर को विश्वास दिलाया कि तीन-चार महीने प्रतीक्षा कर लेने में कुछ नहीं बिगड़ता। विष्णुदत्त पांडे से मिलकर और गोपीचंद के आश्वासन की पुष्टि पाकर धीर प्रधान अपने और साधनों के अनुशीलन के लिये सारौल लौट गया। जाते समय अग्निदत्त और विष्णुदत्त दोनो से सोहनपाल के कुटुंब को अपनी थाती समझने के लिये अनुरोध करता गया। विष्णुदत्त ने चाहा कि धीर, सहजेंद्र इत्यादि को अपने यहाँ एक साथ भोजन करावें, परंतु धीर विष्णुदत्त के यहाँ एकांत भोजन करके चला गया। दिवाकर ने उसको पुण्यपाल और इब्न करीम की टक्कर का वृत्तांत सुना दिया था, इस-लिये वह वहाँ से शीघ्र चला गया, जिससे पुण्यपाल सारौल में अनावश्यक समय तक न ठहरे।

धीर के जाने पर सहजेंद्र और दिवाकर भोजन के लिये एक ही समय पर विष्णुदत्त के यहाँ गए। जैसी कि परोसने की रीति बुंदेलखंड में अब भी है, उसी रीति के अनुसार दोनो को खिलाने-पिलाने के लिये तारा की नियुक्ति हुई। अग्निदत्त साथ बैठ गया। विष्णुदत्त एक आसन पर माला लेकर बैठा, परंतु भजन नहीं कर रहा था।

तारा परोसने आई। दिवाकर ने उसको देखा—सहजेंद्र ने भी। दिवा-कर ने आँख चुराकर अग्निदत्त की ओर देखा। दोनो का एक-सा रूप, लगभग एक-सा देह, एक ही वय। दिवाकर को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने

भोजन करते-करते निश्चय किया कि एक बार अच्छी तरह देखूँगा कि अग्निदत्त और तारा में कोई अंतर है या नहीं। विष्णुदत्त या अग्निदत्त जब कोई खाद्य वस्तु लाने के लिये कहते थे, तब तारा आ जाती थी, नहीं तो भीतर बनी रहती थी।

एक बार तारा ने दिवाकर के पास खाने को कुछ परोस दिया। उसने नाहीं नहीं की। तारा ने समझा कि यथेष्ट नहीं परोसा, वह थाल में और रखने लगी। दिवाकर अभी तक नीची गर्दन किए भोजन का मान रख रहा था। निषेध के लिये एक हाथ ज़रा-सा उठाया और सिर ज़रा अधिक ऊँचा। अपनी समझ में उसने तारा को अच्छी तरह देख लिया। तारा ने उसका अनिच्छा-सूचक संकेत पाकर भी परोस दिया। विष्णुदत्त ने कहा—"एक और बेटी।"

तारा ने परोसने की चेष्टा की। दिवाकर ने दृढ़ता-पूर्वक दोनो हाथों से अपने थाल को आच्छादित कर लिया। तारा ने एक जगह छिद्र पाकर परोस दिया। दिवाकर ने उसकी ओर देखकर कहा—"अरे बस।"

तारा अपने प्रयत्न में फलीभूत होकर कुछ मुस्किराई और चली गई। जैसे सुंदर मयूरी एक डाल से दूसरी डाल पर चली जाय।

इसके पश्चात् दिवाकर के इनकार करने का अवसर उपस्थित नहीं हुआ।

भोजन करने के पश्चात् सब लोग एक जगह बैठे। पान-सुपारी के बाद विष्णुदत्त ने वार्तालाप आरंभ किया।

बोला—"दिवाकर तुम्हारे पिता और हम साथ-साथ के हैं। तुम्हारा उस समय जन्म नहीं हुआ था बेटा। तुम्हारे डोकर बड़े गुरू हैं।"

दिवाकर ने आदर-पूर्वक कहा—"जी हाँ, मैंने भी सुना है कि आपका और उनका बहुत साथ रहा है।" परंतु 'गरू'-शब्द जिन कीर्तियों के भावार्थ का द्योतक है, वह उनको नहीं सुनना चाहता था। इसलिये चर्चा बदलने के लिये बोला—"क्यों काकाजू, आप दिल्ली कब तक जायँगे?"

विष्णुदत्त ने कहा—"मेरी यात्रा, बेटा, कल से आरंभ हो जायगी। अग्निदत्त और तुम तो परिचित हो?"

दिवाकर ने कहा—"हाँ, बहुत अच्छी तरह से। भरतपुरा की गढ़ी की रक्षा में आपके पराक्रम का समाचार पहले सुन लिया था और दर्शन पीछे मिले थे।"

विष्णुदत्त अपने लड़के से बोला—"अग्निदत्त, तुम्हारा और दिवाकर का वही बर्ताव होना चाहिए, जो मेरा और भीर का रहा है।"

अग्निदत्त ने कुछ विवश-सी हँसी हँसकर कहा—"हम और वह लड़ेंगे थोड़े ही। जब यहाँ आए हैं, तब आनंद-मंगल के साथ ही रहेंगे।"

दिवाकर ने उमंग के साथ कहा—"काकाजी, यदि यह भाई साहब लड़ भी बैठेंगे, तो मैं अपने हथियार पहले ही कुएँ में डाल दूँगा।"

विष्णुदत्त इस पर बहुत हँसा। बीच-बीच में दिवाकर अग्निदत्त को बारीकी के साथ देखता था, मानो किसी से तुलना कर रहा हो।

विष्णुदत्त बोला—"दिवाकर, तुम तो मुझसे अपने पिता द्वारा परिचित हो, परंतु कुँवर सहजेंद्र मुझे कम जानते होंगे। राजा सोहनपाल मुझको बहुत अच्छी तरह जानते हैं। मैं उनका आशीर्वाद-दाता हूँ।"

"आशीर्वाद"-शब्द में क्षत्रियत्व की कोई गंध न पाकर अग्निदत्त ने अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

सहजेंद्र ने कहा—"महाराज, हम बुंदेले तो ब्राह्मणों के चरण-सेवक हैं।"

विष्णुदत्त बोला—"परंतु आप अग्निदत्त को किसी पूज्य-भाव से न देखिएगा। इसको अपना छोटा भाई समझिएगा। थोड़ा उपद्रवी है।" और वह हँसा।

सहजेंद्र ने उत्तर दिया—"वह, महाराज, हम लोगों के सिर-माथे है।"

अग्निदत्त का शरीर मानो जल उठा। सोचा—"कौन किसका छोटा भाई? सब सदृश, सब समान, सब एक-से हैं।" परंतु कोप को संयत करके खाँसने लगा।

विष्णुदत्त ने कुछ सरल कटाक्ष के साथ प्रश्न किया—"तुम लोगों में से किसी का विवाह हो गया है ?"

दिवाकर ने नीचा सिर किए हुए कहा—"जी नहीं, हम लोगों के माता-पिता विपद् में हैं। संकट के समय शृंगार का क्या काम ?"

विष्णुदत्त ने स्नेहमय व्यंग्य के साथ कहा—"ओहो, तुम तो साहित्य और काव्य में भी दखल रखते हो ! यह विषय धीर को भी किसी समय प्रिय था।"

बुड्ढे की ढिठाई पर दिवाकर कुढ़ गया। परंतु लज्जा से सिर नीचा करके रह गया।

अधिक अवस्थावाले लोग अपने से कम अवस्थावाले युवकों की नम्रता और विनयशीलता को अपने पद और अपनी अवस्था का कर-स्वरूप समझते हैं। इन युवकों की विनय से विष्णुदत्त भी संतुष्ट हुआ।

बोला—"तुम लोगों का दिन में कोई काम तो करने को है ही नहीं, क्या किया करोगे ? समय को शतरंज या चौसर में बिताओगे ?"

सहजेंद्र ने कहा—"हम लोगों के पास कुछ पुस्तकें हैं। उन्हें पढ़ते रहेंगे। कुछ पुस्तकें आपके भांडार में से अग्निदत्तजी हमको दे देंगे। ......"

"और कुछ जंगली जानवर अपने प्राण हाथ में लेकर तुम लोगों के तीरों के सामने जंगल में बैठे-बिठाए ही आ जाया करेंगे।" विष्णुदत्त ने टोककर कहा—"अग्निदत्त को पुस्तकों के साथ इतना प्रेम नहीं है, जितना तीर-तूणीर से।"

अग्निदत्त ने प्रतिवाद के स्वर में कहा—"मैं तो राजकुमार के साथ कभी-कभी सैर-सपाटे के लिये चला जाता हूँ।"

सहजेंद्र बोला—"हम लोग भी कभी-कभी, जब आपकी अनुमति होगी, आपके साथ हो जाया करेंगे।"

विष्णुदत्त हँस पड़ा—"मैंने तो पहले ही कहा था। युवकों का हृदय इस तरह की दौड़-धूप के पीछे बहुत रहा करता है।" फिर कुछ गंभीर

होकर बोला—"वृद्धावस्था में भी सुख है, परंतु उसका आनंद निराला है। जब तुम लोग बुड्ढे होओगे, तब तुम लोगों को मालूम पड़ेगा। युवावस्था का भीषण झंझावात शांत होकर वृद्धावस्था के गंभीर शांत आकाश में परिणत हो जाता है, परंतु उत्तरावस्था में सुखी वही रहता है, जो जवानों की सच्ची ठसक बनाए रक्खे हो।"

इसके पश्चात् सहजेंद्र और दिवाकर अपने घर चले गए।

सहजेंद्र ने दिवाकर से कहा—"विष्णुदत्त बहुत वृद्ध नहीं है। बड़ा मज़ेदार आदमी जान पड़ता है।"

दिवाकर बोला—"कुंडार में आते ही थोड़े समय में ही दो-तीन विचित्रताएँ देखीं।"

सहजेंद्र ने पूछा—"क्या-क्या ?"

"इब्न करीम और पुण्यपाल की लपट-झपट।"

"तुमने बड़ी शरारत से करीम को गिराया।"

"नहीं गिराता, तो बखेड़ा हो जाता। सारा कार्य-क्रम उलट-पलट जाता।"

सहजेंद्र ने पूछा—"और कौन-सी विचित्रता ?"

दिवाकर ने उत्तर दिया—"दूसरा आश्चर्य अग्निदत्त और उसकी बहन तारा। दोनो बिलकुल एक-से हैं। एक को देखकर दूसरे का भ्रम होता है।"

सहजेंद्र ने व्यंग्य के साथ कहा—"अजी महाशय, इस पिछले आश्चर्य की छाया में और कोई आश्चर्य तो नहीं आ छिपा है ?"

दिवाकर ने दृढ़ गंभीरता के साथ कहा—"छिः ! उस बेचारी अबोध, और निर्दोष कन्या के लिये मेरे जी में कोई निंद्य-भाव कैसे उठ सकता है ? कभी-कभी तो आप वज्रपात करते हैं।"

सहजेंद्र हँसने लगा।

दिवाकर ने अपने पूर्ववत् भाव के साथ कहा—"तीसरा आश्चर्य है,

विष्णुदत्तजी पांडे। वृद्ध हैं, परंतु बातें युवकों-जैसी। अग्निदत्त में अपने पिता से अधिक गंभीरता।"

"और पिता से अधिक अभिमान। परंतु हम लोगों को किसी के अभिमान से क्या करना है ? कुंडार में सारा जन्म तो काटना नहीं है।"

दिवाकर ने चमत्कृत नेत्रों से कहा—"और यदि जन्म-भर यहाँ काटना भी होगा, तो इस घर में रहकर नहीं।"

आखेट

विष्णुदत्त पांडे दिल्ली चले गए। उसके एक-दो दिन पीछे एक दन राजकुमार अग्निदत्त के घर पर आया। अग्निदत्त और तारा ने उसको बहुत आदर के साथ लिया। कुमार ने तारा से कहा—"तारा, तू कई दिन से क़िले में नहीं गई। मानवती तेरी बड़ी बुराई करती थी, और कहती थी कि आज न आवेगी, तो यहीं आकर तारा का गला दबोच डालूँगी।"

तारा के होठों पर अनुपम मुस्किराहट नाच उठी। बोली—"दादा, मैं क्या करूँ? काकाजू की आज्ञा थी कि सहजेंद्र कुमार की बहन हेमवती के पास भी बैठना-उठना और वह स्वयं यात्रा के लिये तैयार हो रहे थे, इसलिये मैं कुमारी के पास नहीं जा सकी।"

कुमार ने तारा को चिढ़ाने के लिये कहा—"और तूने अपना चर्खा कातना बंद किया है या नहीं?" वह अपना मुँह बिचकाकर चर्खा कातने का अभिनय करने लगा।

तारा ने अपनी भौंहें सुंदर प्रशस्त माथे के नीचे और स्वच्छ सुंदर नेत्रों के ऊपर थोड़ी-सी सिकोड़ीं, परंतु होठों पर कोप की वक्रता का प्रयत्न करने पर हँसी आ गई। जैसे बालक मचलकर बोलता है, तारा ने कहा—"रहँटा तो, दादा, सभी लड़कियाँ चलाती हैं।" इसके पश्चात् वह जल्दी से पैर के पैजने की झंकार करती हुई वहाँ से भीतर चली गई।

कुमार ने कहा—"अग्निदत्त, यह बेचारी कल की दुधमुँही बच्ची उस व्रत का साधन कैसे करेगी? मुझे तो कल्पना करके रोमांच हो आता है।"

अग्निदत्त ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया—"ऊँह ! इससे भी अधिक कठोर व्रत लड़कियों ने किए हैं। ये ही लड़कियाँ तो किसी समय इतनी कठोर हो जाती हैं कि अग्नि में जल मरती हैं।"

नाग बोला—"स्त्रियों की प्रकृति का समझना कठिन है। देखो न, मेरा पत्र हेमवती ने चुपचाप ले लिया। कहाँ तो तीर-तरकस कसने के लिये विना बुलाए सामने आ गईं और कहाँ अब यह कठोरता ! शिकार का न्योता देने के बहाने चलो न उनके डेरे पर।"

अग्निदत्त तुरंत सहमत हो गया। दोनो सहजेंद्र के डेरे पर पहुँचे।

दिवाकर और सहजेंद्र दोनो भीतर थे। बुंदेला पहरेदार पौर की अटारी पर स्वस्थता-पूर्वक बैठे कुछ बातचीत कर रहे थे।

घोड़े की लगाम हाथ में लेकर, कुमार द्वार पर खड़ा होकर आँगन की ओर झाँकने लगा। हेमवती कौतूहल-वश सामने आ गई। कुमार ने बड़े चाव के साथ उसको प्रणाम किया। प्रणाम का बहुत साधारण उत्तर देकर हेमवती सूचना देने के लिये अपने भाई के पास चली गई। दोनो शीघ्रता से बाहर आ गए। घोड़े के बाँधने का प्रबंध करके कुमार और अग्निदत्त को पौर में बिठला लिया।

सहजेंद्र कुमार के आगमन से बहुत कृतज्ञ मालूम होता था।

राजकुमार ने कहा—"आपका तो उधर आना होता ही नहीं।"

सहजेंद्र ने लज्जित होकर कहा—"इस बीच में यहाँ रहने-सहने में ही समय लग गया। इधर एक-दो दिन से दिवाकर शास्त्र की इस भीषण समस्या में उलझे हुए हैं कि यदि हम लोग सिर के बल चलने लगें, तो पैरों में होकर फिर कोई दूसरा सिर निकल आवेगा या नहीं।" इस विवाद को लेकर देर तक दिल्लगी और चहल-पहल होती रही।

अग्निदत्त ने अपने आने का उद्देश्य बतलाया इन युवकों को आखेट के आमंत्रण में आक्षेप ही क्या हो सकता था ?

सब अपने-अपने घोड़े कसकर तैयार हो गए। कुछ दिन चढ़ आया

था, इसलिये दिवाकर ने कुछ कम उत्साह के साथ कहा—"इस समय जंगली पशुओं का मिलना तो कठिन ही है।"

नागदेव उमंग के साथ बोला—"अवश्य मिलेंगे। पछोथर से पूर्व की ओर, परसा के पहाड़ के बीच में, कहीं-कहीं बड़ा घना और बीहड़ जंगल है। नाले और भरके भरे हुए हैं और नालों का सरताज बकनवारा वहीं है। कुछ थोड़ा-सा भोजन साथ लिए लेते हैं। बकवारे की गहरी तली में किसी चट्टान के ऊपर बैठकर क्षुधा-पिपासा शांत करेंगे।"

अग्निदत्त ने कहा—"साबर, चीतल, सुवर, नाहर, तेंदुआ, रीछ आपको सभी से भेंट होगी, ज़रा वहाँ तक चलिए तो।"

इस समय सब घोड़ों पर सवार हो चुके थे, परंतु कुमार का घोड़ा द्वार की दिशा को नहीं छोड़ना चाहता था। वह एक तरह से अपने घोड़े को नचा रहा था। सहजेंद्र मन में कुमार के कौशल की सराहना कर रहा था। दिवाकर उसको महज़ दिखावट ख़याल कर रहा था।

कुमार ने घोड़ा थामकर एकाएक अग्निदत्त से कहा—"पांडेजी' राजधरजी को और लिवा लाओ। धूर्त शिकारी के बिना तो शिकार आधी उजाड़ मालूम पड़ेगी।"

अग्निदत्त इस व्यक्ति के लेने को तेज़ी के साथ अपना घोड़ा बढ़ाकर चल दिया।

सहजेंद्र ने कुमार से पूछा—"राजधर महाशय कौन हैं?"

कुमार ने कहा—"राजधर प्रधान मंत्री गोपीचंद का लड़का है। बड़ा फुर्तीला और बड़ा घाती शिकारी है। जानवर एक बार उसको दिख जाय, तो फिर क्या मजाल कि उसके तीर से पीछा छुटा ले।"

सब लोग उत्सुक होकर राजधर की प्रतीक्षा करने लगे। कुमार धीरे से अपना घोड़ा द्वार के ठीक सामने ले आया, और आँगन की ओर जल्दी से किसी को उसकी दृष्टि टटोलने लगी। वहाँ हेमवती न थी। उसने कई बार ऐसा किया, परंतु वह विफल-मनोरथ रहा। सहजेंद्र ने कोई

ध्यान नहीं दिया। दिवाकर ने देखा, परंतु उसको कोई बात खटकी नहीं।

इतने में अग्निदत्त उस व्यक्ति को लेकर आ गया, जिसको कुमार ने बुलवाया था। परिचय कराने के समय दिवाकर ने देखा, तो ऐसा भान हुआ, मानो राजधर की आँखें धूर्त और क्रूर मनुष्य के माथे में चिपकी हों, परंतु उस समय उसको राजधर की शरीर-रचना ने अधिक आकृष्ट नहीं किया और उसकी यह धारणा नहीं हुई कि राजधर धूर्त और क्रूर मनुष्य है, किंतु यह कि वह धूर्त शिकारी है। उसका डील-डौल ठीक दिवाकर-सरीखा था, परंतु मुख पर वैभव नहीं था। सब लोग जंगल की ओर चल दिए।

घने जंगल में पहुँचने पर यह स्थिर हुआ कि शिकार होने पर पुकार लगाई जाय, तो सब नियत स्थान पर पहुँच जायँ। यदि देर तक कोई जानवर न मिले, तो पलोथर के ठीक नीचे की गहराई में, जहाँ से पहाड़ के खाद में जाते हैं, पहुँचकर एक दूसरे के आने की प्रतीक्षा करें। इस स्थान पर सब लोग अलग-अलग हो गए।

सालय, करधई, रेंवजा, नेगड़, अड़ूसा, खैर काँकेर और मकोय के घने जंगल में, जहाँ कहीं-कहीं शिकारियों को हतोत्साह करने के लिये लंबी घास भी खड़ी हुई थी, इस दल को अपने घोड़ों के कारण बड़ा कष्ट उठाना पड़ा। जगह-जगह काँटे चुभे, और भरकों तथा नालों में होकर घोड़ों को निकालने में कई स्थानों पर प्राणों पर आ बनने का संकट उपस्थित हुआ। बहुत जानवर दिखलाई पड़े। परंतु दिखलाई पड़ते ही तिरोहित हो गए। तीर खींचने का अवसर तक न आया। भटकाव इतना हुआ कि सब-के-सब इधर-उधर दिशाओं में तितर-बितर हो गए। सहजेंद्र और दिवाकर उस वन के लिये नए थे, इसलिये उन्होंने यथाशक्ति स्वच्छ बचते हुए टीले और मैदान पसंद किए। दोनों एक दूसरे से अलग भी पड़ गए, तो भी इष्ट स्थान पर पहुँचने की दिशा अपनी आँखों के सामने रक्खी।

थोड़े समय पश्चात् थक-थकाकर सबसे पहले दिवाकर वहाँ पहुँचा, जिसको वह निर्दिष्ट स्थान समझता था। यह स्थान पलोथर के नीचे सबसे ऊँची चोटी से लगभग आध कोस हटकर दक्षिण की ओर था। बकनवारा नाला यहीं से पहाड़ से सटकर उत्तर की ओर बहता चला गया है। सूर्य पश्चिम की ओर अभी नहीं ढला था, परंतु बकनवारे की बहुत ऊँची ढो के कारण आधी तली पर छाया थी। पानी चट्टानों और पत्थरों को तोड़ता-फोड़ता हुआ बहता चला जाता था।

किनारे के दोनो ओर सघन हरे पेड़ खड़े हुए थे और उनके पीछे विकट बीहड़ झाड़ी और भयानक भरके तथा सामने पलोथर की ऊँची पहाड़ी थी। नाला मचलता हुआ बहता चला जा रहा था। दोनो ओर सुनसान अनंत एकांतता का राज्य था। ऐसा लगता था, मानो भय की गोद में सौंदर्य खेल रहा हो। दिवाकर ने घोड़े को अपने पासवाले नाले की तली में एक वृक्ष से बाँध दिया, और पानी पीने के लिये धार में हाथ डाला। पानी इतना ठंडा था, जैसे हिम हो। प्यास को शांत करके पानी के किनारे एक घास के टीले के सहारे टिककर वह पलोथर पहाड़ी के विकट, सुनसान सौंदर्य को देखने लगा। इससे पहले दिवाकर बुंदेलखंड के अनेक मनोहर पर्वत, झील, वन और नदियाँ देख चुका था, परंतु एक ही स्थान में प्रकृति की ऐसी भयानक छटा देखकर उसका चित्त मस्त हो गया। उसने अपने आप कहा—"इस सुंदर देश के लिये प्राण देना बड़े गौरव की बात होगी।"

इतने में तारा का सरल सुहावना मधुर चित्र मन की किसी अज्ञात क्रिया द्वारा उसकी आँखों के सामने आ खड़ा हुआ। उसने उस चित्र की उपस्थिति का कोई विरोध नहीं किया। भयानक नाला, डरावनी पलोथर, सुंदर जल-धारा, ऐसे स्थान में कोई भी कोमल विमल चित्र मन को क्यों दुःख देने चला? दिवाकर ने कभी उस चित्र की सरलता को, कभी उसकी

पवित्रता को, कभी छवि-छटा को और कभी लावण्य को सराहा। फिर बहते नाले, किनारे के सघन वृक्ष और पीछे की भयानक ऊँची पहाड़ी को देखने लगा। इतने में वह चित्र फिर आँखों के सामने आया। गुलाबी रंग की धोती का कोटा, सोने के चूड़े और बाजूबंद तथा चमकनेवाले चाँदी के हलके पैजने कुछ समय तक मन को लहर देते रहे! उसके पश्चात् हठ-पूर्वक परोसने और निषेध कर देने पर भी परोसने के प्रयत्न में सफल होने की मुस्किराहट और फिर वेग-पूर्वक गमन का चित्र आँखों के सामने आया। वह इस चित्र के अवलोकन में इतना डूब गया कि बिना कारण उसको हँसी आ गई। इतने में फिर वह चित्र आकर आँखों में समाने लगा। दिवाकर ने कहा—"यह क्या? मुझे इस चित्र से क्या प्रयोजन? छिः-छिः, दूर।" इसके बाद वह नाले की तेज़ धार को देखने लगा। कोमल तरल जल-धारा ने ठोस कठोर चट्टान को काट दिया! धार और चट्टान को देखते-देखते फिर वही चित्र आँखों के सामने आ गया। दिवाकर चटपट बैठ गया और आँखें तरेरकर बोला—"क्या! मेरा मन—दिवाकर का मन—उस बेचारी ब्राह्मण-कुमारी के पीछे दौड़ रहा है? अच्छा, अब की बार तो सामने आओ।"

इस चिनौती पर फिर चित्र सामने नहीं आया। अपनी इस प्रश्नोत्तरी और अनावश्यक कोपशीलता पर दिवाकर को हँसी आ गई। फिर अवहेला के साथ बोला—"अच्छा, अब कोप नहीं है, महाशय चंचल मन, अब की बार तो ज़रा उधर जाइए, कितने कोड़े लगाता हूँ। धत्तेरे की!"

फिर वह चित्र सामने नहीं आया। थोड़ी देर में धूल, टूटे काँटों और घास-पत्तों से लिपटा हुआ सहजेंद्र भी वहीं आ गया। उसके आने के पहले ही दिवाकर चौंककर खड़ा हो गया था। सहजेंद्र दिवाकर को देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। बोला—"अरे धूर्तराज, तुम यहाँ कब से आ बैठे हो?"

दिवाकर हर्ष प्रकट कर कहने लगा—"देखिए, धूर्तराज हैं इंद्र और आप सहज ही इंद्र हैं, तब बतलाइए, मेरे धूर्त होते हुए भी राजा तो आप ही रहेंगे न ?"

सहजेंद्र को इस कटाक्ष पर खिलखिलाकर हँसना पड़ा। घोड़ा बाँधकर और हाथ-पाँव धोकर सहजेंद्र भी दिवाकर के पास आ बैठा।

पलोथर की सबसे ऊँची चोटी की ओर देखकर बोला—"स्वामी अनंतानंद ने यही स्थान कुछ दिनों अपने ठहरने के लिये निश्चित किया है। कैसा भयानक और एकांत है। योगियों के ही योग्य है।"

दिवाकर ने कहा—"ऐसे या दूसरे प्रकार के विचित्र सौंदर्यवाले स्थान जुझौति में सैकड़ों हैं; परंतु जुझौति स्वतंत्र नहीं है, यही खेद है।"

सहजेंद्र ने उत्साह-पूर्वक कहा—"दिवाकर, यदि हम और तुम बने हैं, तो एक-न-एक दिन जुझौति स्वतंत्र होगा। यदि खंगारों का ही एकछत्र स्वाधीन राज्य संपूर्ण जुझौति पर हो जाय और अपनी-अपनी ढफली अपना-अपना राग बजाना बंद हो जाय तथा यहाँ मुसलमानों की कोई सत्ता न रहे, तो मैं इसी में परम सुख मानूँगा।"

दिवाकर ने आह भरकर कहा—"खंगारों की छत्रछाया में यह सिद्ध होता हुआ नहीं दिखता। इधर बुंदेले बाबा वीर के पश्चात् ऐसे कट-फट गए हैं कि कुछ भी करने में असमर्थ-से हैं। परंतु आशा इतनी अटकी हुई है कि जो कुछ पंचम बाबा और वीर बाबा कर सके, वह हम लोग भी पुरुषार्थ से कर सकेंगे, हिम्मत नहीं हारना चाहिए।"

"पुण्यपाल के अनंत अदम्य उत्साह की मैं प्रशंसा करता हूँ। परंतु वह दूरदर्शी बहुत कम है।"

"उस दिन तो उन्होंने सब बंटाधार ही कर दिया होता।"

सहजेंद्र ने कुछ रूखे स्वर में कहा—"उस पर उनको यह उतावली लगी हुई है कि चाहे हम लोगों का उद्देश्य सिद्ध कभी भी हो, विवाह

उनका पहले हो जाना चाहिए। हेमवती ने तो इनकार-सा ही कर दिया है। बेचारी हैरान हो चुकी है। उधर एक दिन पिताजी भी स्पष्ट इनकार करते-करते रह गए। माताजी अवश्य शीघ्र संबंध कर देने में कुछ हानि नहीं देखतीं।"

दिवाकर ने कहा—"विवाहों के पचड़े तो शांति के समय के विषय हैं। इस समय तो हम लोग हथेली पर अपना सिर रक्खे हुए फिरते हैं। प्रणय और विवाह में इस समय रक्खा ही क्या है ?"

सहजेंद्र थोड़ी देर बहते हुए जल को देखता रहा। बोला—"भाई, अब तो भूख लग आई है। हम लोग तो कुछ अपने साथ लाए नहीं हैं। इस वन में कहीं-कहीं सीताफल के वृक्ष लगे हैं, परंतु फलों की ऋतु निकल गई है। झरबेरी में बेर लगे हैं।"

"मैं लाता हूँ।" कहकर दिवाकर थोड़े-से बेर तोड़ लाया। उनको, खाते-खाते दोनो खूब हँसे।

सहजेंद्र ने कहा—"अग्निदत्त के साथ तो भोजन-सामग्री होगी ?"

दिवाकर ने हँसकर उत्तर दिया—"जब अग्निदत्त की हो, तब न ? यदि खंगार-क्षत्रियों के यहाँ की पकी हुई हो, तो उसे कौन खायगा ?"

सहजेंद्र ने कठिनाई समझ ली। फिर इधर-उधर से बैठे-बैठे कंकड़ उठा-उठाकर एक दूसरे पत्थर को ताक-ताककर दोनो मारने लगे।

सहजेंद्र हँसकर बोला—"दिवाकर, तुम ब्याह क्यों नहीं कर लेते ?"

दिवाकर ने बहुत भोले भाव से कहा—"किसके साथ, महाराज ?"

"अजी, किसी के साथ सही।"

"मेरा विवाह तो हो चुका है। आपको मालूम भी है ?"

सहजेंद्र ने कुछ परिहास, कुछ आश्चर्य और कुछ कौतूहल के साथ कहा—"ज़रा वधू का नाम भी तो सुनूँ।"

दिवाकर ने हँसकर कहा—"नाम सुनकर आप चकराएँगे। वर्णन-मात्र किए देता हूँ कि उसका जीवन अनंत है, अजर और अमर है।"

"वह कौन है शास्त्रीजी महाराज ?" सहजेंद्र ने पूछा ।

दिवाकर ने उत्तर दिया—"मृत्यु ।"

इस पर सहजेंद्र को किसी कवि की एक उक्ति याद आई । बोला—"कवि लोगों ने भी इन गोरे-चिट्टे चेहरों के लिये क्या आकाश-पाताल एक किया है ! कितनी स्याही और कितना काग़ज़ ख़राब किया है !"

दिवाकर ने मुँह बनाकर कहा—"जी हाँ, देखिए न । कोई तो रात-भर चंद्रमा या तारों की ओर टकटकी लगाए रहता है । कोई अँधेरी रात में काले बादलों के भीतर चमकती हुई बिजली को देखकर तड़प उठता है, तो किसी को सिवा आँसू बहाने और आहें भरने के संसार में और कुछ रह ही नहीं गया है । कभी-कभी जिन स्त्रियों के लिये ये कवि लोग अपने कथा-नायकों की ऐसी मिट्टी पलीद करते हैं, उनको भी यह लोग पीला और लाल कर डालते हैं, परंतु उन बेचारियों को इतना अधिक कष्ट नहीं दिया जाता ।"

सहजेंद्र ने उसी व्यंग्य के साथ कहा—"नहीं भाई, शकुंतला को तो प्रणय की ऐसी लू लगी कि उशीर का लेप तक कर डालना पड़ा । क्यों-जी, यदि कवियों की इन नायक-नायिकाओं के लिये एक-एक वैद्य की भी व्यवस्था कर दी जाय, तो काव्य का रंग शायद कुछ जमे ।"

"अजी, उस नायक कमबख़्त को फिर पूछेगा कौन, जो वैद्य को दिखाकर दवा भी पी ले ? नायक तो ऐसा होना चाहिए, जो दिन-रात विरह-व्यथा में छीजता रहे और अंत में बबूल का काँटा होकर या तो अपने कविजी के हाथ में छिद जाय, या अपनी विरह-विभूति किसी केशिनी, नितंबिनी, कामिनी के पद-कमल में जाकर इस तरह चुभा आए कि किसी तरह चिमटी से निकाले जाने पर भी न निकले ।" दिवाकर ने कहा ।

इस पर सहजेंद्र ने विह्वल होने का नाट्य करते हुए कहा—"ना भाई, यदि नायक सूखकर काठ-ईंधन हो जायगा, तो सम-सहानुभूति के नियम

के विरुध क्या नायिका मूसल ही बनी बैठी रहेगी ? वह तो वियोग-कष्ट से हो जायगी अदृश्य, एकदम छूमंतर ।"

दिवाकर—"क्योंजी, इन कवियों के दलित-पीड़ित नायक कुछ खाते-पीते तो होंगे ही नहीं ?"

"झरबेरी के बेर तोड़-तोड़कर खाते हैं और नाले का ठंडा पानी पीते हैं।" सहजेंद्र ने कहा।

इस पर दोनो अपनी गंभीरता छोड़कर हँसने लगे।

दिवाकर ने मुँह बिगाड़कर क्षीण स्वर में कहा—"भाई साहब, उनसे जाकर कहना कि बुरी हालत है, घुल-घुलकर नाले में बहे चले जाते हैं और आहें भर-भरकर कोयला और राख हुए जाते हैं।"

इस भाव को दिवाकर क़ायम न रख सका। बेतरह हँस उठा।

सहजेंद्र ने अपने को गंभीरता में विशेष क्षमताशील समझकर कहा—"नहीं जी, यह कुछ नहीं। तुम तो हट्टे-कट्टे केवल ग्यारह मन सवा पाँच सेर हड्डी-मांसवाले नायक हो। वास्तव में, उधर उनकी अवस्था भयानक हो उठी है। बिलकुल ऐसी हो गई है, जैसी पतझड़ के मौसिम में पीपल का पत्ता, या क्या ?...हमारी कविता यहाँ कुछ अधिक काम नहीं करती। वह पीली-पीली यदि तुम-सरीखे हट्टे-कट्टे भारी-भरकम नायक को सही-सलामत और समूचा देख ले, तो मेरे काव्य को इसमें कोई संदेह नहीं कि वह वसंत-ऋतु की कोपलों की तरह हरी-भरी हो जाय।"

दिवाकर ने एक क्षण के लिये इधर-उधर देखकर कहा—"सचमुच ही यदि नायक-नायिकाओं-सरीखे कोई जंतु संसार में हैं और यदि वे कान देकर हमारी-आपकी बात सुन रहे हों, तो क्या कहें ?"

सहजेंद्र ने उत्तर दिया—"यही कहेंगे कि कुछ ऐसे निपट निठल्ले निरंकुश गँवार भी पृथ्वी के ऊपर बिना सींग-पूँछ लगाए विचरण करते हैं, जिनसे यह रोग दूर से ही नमस्कार करता है।"

दिवाकर ने कुछ गंभीर होकर कहा—"क्योंजी, वास्तव में क्या

यह रोग संसार में है भी कहीं या निरी कवि-कल्पना है ? अथवा कुछ पागलों की संपत्ति है ? क्या वास्तव में मनुष्य सब कुछ भूल-भालकर इसी वितंडावाद के पीछे पड़ जाता है ?"

इतने में पास ही वन में किसी ने कई बार पुकारा।

सहजेंद्र ने कहा—"इन लोगों का तो शिकार हो गया।"

दिवाकर बोला—"इधर हम लोगों ने भी तो बहुत-से बेर तोड़ डाले।"

सहजेंद्र ने प्रस्ताव किया—"हम लोग तो अब यहाँ से टलते नहीं। यहीं कहीं नाले के आस-पास वे लोग भी आ जायँगे। थोड़े समय तक यदि वे लोग यहाँ न आए, तो पुकार लगाकर बुला लेंगे। जब पूछेंगे, क्या मारा ? कह देंगे, कई बेर।"

सहजेंद्र और दिवाकर को बहुत समय तक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी। नागदेव आगे-आगे आया। वह राजधर के घोड़े को भी पकड़े हुए था। अग्निदत्त लोहू लुहान अपने घोड़े पर था। राजधर उसको साधे था।

सहजेंद्र और दिवाकर तुरंत उठकर पास आ गए।

सहजेंद्र ने चिंतित होकर पूछा—"यह क्या हुआ ? कैसे लगी ?"

अग्निदत्त हट्टा-कट्टा नहीं था, परंतु बहुत दृढ़ था। आह को दबाकर बोला—"एक चीतल ने अपने पैने सींग से ज़रा हाथ छील दिया है।"

नागदेव ने कहा—"हाथ ज़रा नहीं छिला है, सींग से एक जगह फूट गया है। पांडे बहुत कड़ा है, इसलिये उस घाव को कुछ गिनता नहीं है।"

पांडे को सँभालकर घोड़े पर से उतारा गया। घाव को धोकर पानी की पट्टी रख दी गई। पांडे को नींद आ गई। एक जगह थोड़ी-सी धूप आ रही थी, वहीं उसको लिटा दिया।

दिवाकर ने पूछा—"यह चोट इनको कैसे लग गई ?"

राजधर ने उत्तर दिया—"झाड़ी में से चीतल एकदम घबराकर निकल भागा। इन्होंने बचाव के लिये सहसा हाथ पसार दिया, चोट आ गए।"

नाग क्षुधातुर जान पड़ता था। बोला—"जब तक पांडे विश्राम करते हैं, हम लोग थोड़ा-सा भोजन कर लें।"

राजधर ने नागदेव के घोड़े की पीठ पर से खाने की चीज़ें खोलीं और कुमार के सामने रख दीं।

सहजेंद्र और दिवाकर एक दूसरे का मुँह देखने लगे।

कुमार ने अनुरोध के साथ कहा—"थोड़ा-सा अवश्य खाइए। आपने भी तो बहुत परिश्रम किया है।"

दिवाकर ने बहुत अनुनय-विनय के साथ कहा—"नहीं, आप भोजन कीजिए। हम लोगों को क्षुधा नहीं है।"

राजधर परिहास के ढंग पर बोला—"फिर ये बेर और बेर की गुठलियाँ किस बात की प्रमाण हैं?"

कुमार ने कहा—"आप तो संकोच करते हैं। थोड़ा-सा अवश्य खाना पड़ेगा।"

दिवाकर की इच्छा हुई कि इस समय यदि सामने कोई भी वन्य पशु दिखलाई पड़ जाय, तो यहाँ से भाग निकलने का बहाना मिल जाय।

कुमार आग्रह करने लगा और वे दोनो क्षमा माँगने लगे। कुमार को उन लोगों की क्षमा-प्रार्थना का वास्तविक कारणसमझ में न आया। अंत में हार मानकर उसने प्रार्थना बंद कर दी। थोड़ा-सा भोजन अलग रखकर शेष राजधर और कुमार ने समाप्त कर दिया।

अग्निदत्त को घोड़े पर बिठलाकर कुमार नाग साधकर चलने लगा। विश्राम कर लेने के बाद अग्निदत्त कुछ अधिक चेतन भी हो गया था। राजधर मार्ग दिखलाने लगा। कुछ दूर आगे चलकर सहजेंद्र के मुँह से एकाएक निकल पड़ा—"दिवाकर, ज़रा जल्दी चलना चाहिए, संध्या होने को आ रही है, कुंडार दूर है, और भूख के मारे दम निकला जाता है।"

राजधर ने, जो पास ही था, यह बात सुन ली। बोला—"खाना मेरे पास अछूता रक्खा हुआ है, खा लीजिए।"

अब सहजेंद्र क्या कहता ?

सहसा इस बात के मुँह से निकल जाने पर सहजेंद्र को पछतावा हुआ।

दिवाकर ने कहा—"अब तो घर पर ही चलकर खायँगे।"

राजधर को इस टाल-मटोल पर कुछ संदेह हुआ। बोला—"क्षत्रिय को क्षत्रिय के यहाँ भोजन करने में क्या संकोच हो सकता है ?"

दिवाकर ने रुखाई के साथ उत्तर दिया—"खाने-पीने के विषय में सब अपने-अपने मत रखते हैं। इसमें संकोच की बात नहीं। फिर यहाँ जब भी तो नहीं है। दूसरे, संध्या का समय आता जाता है। अँधेरी रात है। विलंब होने से यहाँ रात में कष्ट होगा।"

राजधर ने पीछा न छोड़ा। अंत में सहजेंद्र और दिवाकर के चुपकी साध लेने पर राजधर भी चुप हो गया। नागदेव पीछे-पीछे आ रहा था। उसने कुछ नहीं सुना।

शुश्रूषा

अग्निदत्त को संध्या समय तक घर ले आए। घाव को देखकर तारा घबरा गई। पड़ोस में रहनेवाले जगजीवन नाई का जर्राही में नाम था। बुलाया गया। दुबला-पतला अधेड़ अवस्था का काइयाँ आदमी था। जर्राही भी करता था और वद्यक भी।

जिस समय घाव की पट्टी हटाई गई, दिवाकर इत्यादि मौजूद थे। तारा को वहाँ से हटा दिया गया था। वह उस स्थान से हटकर भी आँगन के एक ऐसे कोने में खड़ी हो गई, जहाँ से सब दिखलाई पड़ सकता था।

चोट दाहने हाथ में लगी थी। मांस फट गया था, हड्डी बच गई थी। एक जगह से मोटी खाल लटक गई थी।

दिवाकर ने कहा—"वैद्यजी, इस खाल के काटने से पांडे को कष्ट बहुत होगा। कोई ऐसी दवा लगा दीजिए, जिसमें घाव की जलन को ठंडक पहुँचे, और कुछ दिन बाद मरी हुई खाल अपने आप टपक जाय।"

जगजीवन ने नीची आँखें किए हुए आलोचना की—"और यदि मरी हुई खाल में पीव पड़ गई और घाव विषैला हो गया, तो प्राणों पर बन आयगी।"

आँगन से सिसकने का-सा शब्द सुनाई दिया।

जगजीवन ने उस तरफ़ निहारकर कहा—"कक्को, रोउती काय खों हौ भैया खों मैं अबै चंगी करें देत हों।"

वास्तव में सिसकने का शब्द तारा का था। उसने पास आकर भरे हुए गले से कहा—"बाई तो अस्वस्थ हैं, चारपाई पर पड़ी हैं। उनको सूचना नहीं है। कहने से कदाचित् तुरंत उनका अंत हो जाय।"

अग्निदत्त ने कुछ कराहते हुए, परंतु दृढ़ता के साथ, कहा—"तारा, क्यों मरी जाती है ? यह साधारण चोट जग्गू काका अभी हाल ठीक किए देते हैं ।"

तारा अग्निदत्त के सराने आ बैठी । अब उसकी आँखों में आँसू नहीं थे । पर केशों की एक लट छिटककर सामने आ गई । ऐसा प्रतीत होता था, जैसे बाल-रवि को बदली ने घेर लिया हो ।

दिवाकर ने जगजीवन से कहा—"आपके जर्राही के औज़ार यदि बहुत तेज़ हों, तब तो खाल को काट दीजिए, अन्यथा ठंडक देनेवाली दवा का प्रयोग करिए ।"

दिवाकर के निश्चयमय प्रस्ताव पर जगजीवन ने मुस्किराकर कहा—"आप अपने सिर का एक बाल दीजिए ।"

तारा किसी आश्चर्य के उद्घाटन की प्रतीक्षा में कभी दिवाकर और कभी जगजीवन के मुँह की ओर देखने लगी ।

दिवाकर ने सिर में से कई बाल तुरंत तोड़कर जगजीवन के हाथ में दिए ।

सहजेंद्र ने कहा—"क्या कोई जादू होगा ?"

नागदेव ने उत्तर दिया—"ज़रा देखिए तो ।"

जगजीवन ने रेशम में लिपटी हुई एक पतली चमचमाती छोटी-सी छुरी निकाली और बोला—"देख लीजिए, आपका कोई बाल बीच में से चिरा हुआ तो नहीं है ?"

दिवाकर ने निश्चय के साथ कहा—"बाल कभी चिरा हुआ हो नहीं सकता ।"

"तो मैं उसे चीरकर दिखलाए देता हूँ ।" जगजीवन बोला । और उसने बाल को तेज़ जलते हुए दीपक के पास ले जाकर दिखलाया ।

बाल दिखलाई नहीं पड़ता था, इसलिये सब लोग दीपक के पास जुटकर आ गए । दिवाकर और जगजीवन बिलकुल पास थे, और लोग

सारस की तरह अपनी-अपनी गर्दनें उत्सुकता के साथ निकाले पीछे खड़े थे। एक ओर तारा खड़ी थी। अग्निदत्त को एक क्षण के लिये सब लोग भूल गए। और कदाचित् एक क्षण के लिये अग्निदत्त भी अपने दर्द को भूल गया।

जगजीवन ने बाल को दिवाकर के हाथ में दे दिया। उसने परीक्षा कर ली कि एक ही बाल है, दो नहीं हैं। तारा ने भी ज़रा और पास आकर देख लिया कि बाल एक ही है। उसकी आँखों में क्षण-भर पहले आँसू का कोई चिह्न नहीं था, परंतु पुतली के आस-पास की सफ़ेदी में कुछ लालिमा थी, पलक भारी थे और लंबी बरौनी सीधी थीं।

जगजीवन की विद्या और हस्तकौशल में, बिना किसी प्रयोग की परीक्षा किए हुए ही, तारा के मन में विश्वास हो गया और आशा हो गई अपने भाई के शीघ्र स्वास्थ्य लाभ करने की। इसलिये मुख-मुद्रा पर उसी तरह के सौंदर्य का गौरव झलक आया था, जैसा पानी बरस जाने के पश्चात् संगमरमर की चट्टान पर धुली हुई चंद्रिका के छिटकने का हो। तारा ने दिवाकर के हाथ में बाल को देखा, और देखा दिवाकर की सरल दीप्तिमय आँख को। दिवाकर को ऐसा जान पड़ा, मानो आकाश में पश्चिम दिशा की ओर संध्याकालीन तारा जगमगा रहा हो।

जगजीवन ने देखते-देखते अपनी छुरी से चीरकर एक बाल के दो हिस्से कर दिए। सबको अचंभे में डूब जाना पड़ा, परंतु नागदेव जग-जीवन की इस क्रिया को पहले से जानता था, इसलिये उसने केवल प्रशंसा की, कोई आश्चर्य प्रकट नहीं किया।

बोला—"मैं अपने मन में खाल कटवा देने के पक्ष में पहले से था, परंतु इस पगली के रोने से कुछ विचलित हो गया था, और आप लोगों के सामने हथियार की परीक्षा का किया जाना भी देखना चाहता था।"

"तो अब विलंब न करना चाहिए।" अग्निदत्त ने कहा—"वैद्यजी, आप तुरंत अपना काम आरंभ कर दें।"

दिवाकर ने तारा की ओर देखकर बहुत कोमल स्वर में कहा—"आप यहाँ से चली जायँ।"

"मैं कौन डरती हूँ।" तारा ने पलक ज़रा नीचे करके सरल मुस्किराहट के साथ कहा।

नागदेव अधिकार के स्वर में बोला—"नहीं तारा, तू यहाँ से चली जा।"

तारा वहाँ से चली गई।

जगजीवन ने बिना किसी संकोच के घाव के ऊपर की लटकी हुई खाल को एक ही दो सपाटों में काटकर अलग कर दिया, और दवा लगाकर पट्टी बाँध दी। नागदेव से बोला—"रात को दवा और पट्टी छः बार बदली जानी चाहिए।"

यह प्रश्न उठा कि रात-भर कौन बैठेगा? जगजीवन ने बैठे रहने की अनिच्छा प्रकट नहीं की, परंतु उसको और बीमारों की भी देख-भाल करनी थी, इसलिये उसके रात-भर बैठने पर किसी ने ज़ोर नहीं दिया।

तारा ने आँगन ही में से कहा—"मैं बैठी रहूँगी।"

यह अस्वीकृत हुआ।

सहजेंद्र ने कहा—"हम लोग वैद्यराज के निकट रहते हैं। दिवाकर या मैं इस कर्तव्य का सहज पालन कर लेंगे। बोलो दिवाकर, तुम या मैं?"

दिवाकर ने उत्तर दिया—"मैं बैठूँगा। आप थके हुए हैं, सोएँ।"

अग्निदत्त को नींद आ गई थी। दवा का प्रबंध करके जगजीवन वहाँ से चला गया। फिर सब लोग वहाँ से चले गए। दिवाकर पांडे

के नौकर से कह गया कि ब्यालू करने के बाद आता हूँ। तारा बैठी रही।

थोड़ी देर में अग्निदत्त की आँख खुल गई। पूछा—"सब लोग चले गए?"

तारा ने कहा—"हाँ, परंतु दिवाकर जी अभी लौटकर आते हैं।"

"काहे के लिये?"

तारा ने उत्तर दिया—"आपकी दवा और पट्टी रात में छ बार बदली जायगी। दिवाकरजी यह काम करेंगे।"

अग्निदत्त कराहा और बड़बड़ाया—"दिवाकरजी! दिवाकरजी!" परंतु ख़ैर। इसके बाद वह फिर सो गया।

थोड़ी देर में दिवाकर आ गया। उसने तारा से नम्रता के साथ कहा—"आप जायँ। मैं सोऊँगा नहीं, ठीक समय पर पट्टी बदलता रहूँगा। आप सो जायँ।"

तारा ने ज़रा ग्रीवा मोड़कर, कृतज्ञ नेत्रों से, विनम्र मुस्किराहट के साथ मृदुल स्वर में, जैसे थके हुए पथिक को शीतल पवन कोई संवाद सुनाता हो, कहा—"आपको आज रात बहुत कष्ट होगा।"

दिवाकर ने हँसकर दृढ़ता के साथ कहा—'नहीं, कोई कष्ट न होगा।'

तारा धीरे से वहाँ से चली गई।

अग्निदत्त को कुछ तो उस रात चोट के कारण और कुछ बार-बार पट्टी बदलने और दवा लगाने के कारण अच्छी नींद नहीं आ सकी। उसने एक बार दिवाकर से कहा भी कि क्या कोई ऐसी दवा न थी कि एक ही बार सवेरे तक के लिये लगा दी जाती। परंतु वैद्यों के रहस्य सब किसी को मालूम नहीं होते, केवल इतने प्रतिवाद पर ही उसको संतोष कर लेना पड़ा।

दिवाकर को उस रात एक क्षण भी पलक नहीं लगी। वह अपने आसन पर भी बहुत कम जमकर बैठ पाया। कोहनी के ऊपर हाथ के सूज जाने के कारण अग्निदत्त को हाथ हिलाने में कष्ट होता था, इसलिये वह बेचैन था। दिवाकर ने अनेक बार कभी हाथ धीरे से इधर का उधर खिसकाया, कभी सिर नीचा किया, कभी ऊँचा, और कभी तिरछा। इतनी शुश्रूषा की कि उसको रात के शीघ्र बीत जाने पर आश्चर्य हुआ।

तड़के तारा आई। ठीक वैसे ही, जैसे पूर्व-दिशा में ऊषा का आगमन हो और दूब के ऊपर ओस के कणों ने मोतियों के पाँवड़े डाल दिए हों।

रात-भर के जागरण के कारण यद्यपि दिवाकर थका न था, तथापि मुँह रूखा हो गया था, परंतु उसकी आखों की ज्योति मलिन दीपक के प्रकाश में भी अधिक सप्रभ मालूम होती थी। तारा ने उत्कंठा के साथ पूछा—"भैया अब कैसे हैं?" दिवाकर के जागरण पर उसकी आँखों से दया-सी टपक रही थी।

दिवाकर ने उत्तर दिया—"कोई चिंता मत कीजिए, बहुत अच्छी तरह हैं। छहों पट्टियाँ बदल-बदलकर बाँधी जा चुकी हैं। सूर्योदय के होते ही मैं वैद्यराज को बुलाकर दिखला दूँगा?"

तारा वहीं बैठ गई। दिवाकर ने सोचा, बड़ी सुशील लड़की है—बिलकुल देवी। वह कभी अग्निदत्त की ओर देखती थी और कभी-कभी सूर्योदय की बाट में आकाश की ओर। दिवाकर केवल अग्निदत्त की ओर या आँख की थकावट मिटाने के लिये इधर-उधर। जब कभी दिवाकर अग्निदत्त का वस्त्र या कोई अंग सीधा करता, तो तारा प्रश्नमय नेत्रों से उसकी ओर देखती।

सवेरा होते ही दिवाकर जगजीवन को लिवा लाया। उसने अवस्था अच्छी बतलाई। कोहनी के ऊपर की सूजन के लिये ओषधि की व्यवस्था

मानवती की सगाई

चलने-फिरने योग्य होने के लिये अग्निदत्त को दो-तीन दिन लग गए, परंतु उसको फिर दिवाकर की तीमारदारी की ज़रूरत नहीं पड़ी।

अच्छे होने पर वह क़िले में गया। महाराज और रानी को अपनी कुशल-वार्ता सुनाकर मानवती के पास गया। राजकुमार स्नान कर रहा था। एकांत पाकर मानवती की आँखों में आँसुओं की धारा बह निकली। बोली—"तुमने अपने हाथ से लिखकर चिट्ठी भी कुशल की न भेजी? मैंने महाकष्ट में यह समय काटा है। दादा तो संक्षेप में कह देते थे, अच्छे हैं। मैं उनसे अधिक पूछ-ताछ भी नहीं कर सकती थी। उधर तारा भी एक क्षण के लिये नहीं आई।"

अग्निदत्त ने अपने हाथ से उसके आँसू पोछकर कहा—"तारा तो बेचारी मेरे पास बनी रही। आती कैसे? लो, अब अधिक मत रोओ। मेरा कलेजा टूक-टूक हुआ चाहता है।"

मानवती के काले नेत्रों में लाल डोरे पड़ जाने से एक विशेष मादकता आ गई। बोली—"बहुत दिनों से तुमने बाण-विद्या का अभ्यास नहीं कराया।" उसके नेत्रों में तृष्णा थी।

अग्निदत्त ने दायाँ हाथ कुछ अलग रख बाएँ हाथ से मानवती का कुसुम-माला-जटित सिर लपेट लिया और चाहा कि उसे छाती से लगा ले कि किसी के पैरों की आहट मालूम पड़ी। दोनो झट से अलग हो गए। मानवती चौंकी हुई हिरनी की तरह और अग्निदत्त घबराए हुए चोर की तरह।

रानी ने कमरे में पैर रक्खा कि अग्निदत्त ने सँभलकर मानवती से कहा—"चलो तो अपना तीर-कमान उठा लो।"

रानी इस प्रस्ताव पर कुछ चकित-सी हो गई। बोली—"जसी मानवती पागल है, तैसे तुम मूर्ख हो। तीर-कमान का यह कोई समय नहीं है। कुमार भोजन करने जा रहे हैं, तुम दोनो चलकर इनके साथ भोजन करो।"

दोनो साथ हो लिए। दोनो अपने-अपने मन में इस विश्वास को प्रबलता के साथ जमाने की चेष्टा कर रहे थे कि रानी ने नहीं देख पाया। अग्निदत्त ने कल्पना की—"यदि देख भी लिया होगा, तो वह इतनी भोली-भाली हैं कि इसको सिवा बाल-केलि के और कुछ न समझा होगा।"

भोजन के उपरांत कुमार और अग्निदत्त एक कमरे में चले गए, कुमारी अपने आगार में और रानी हुरमतसिंह के पास पहुँची।

हुरमतसिंह ने आदर के साथ बिठलाया।

रानी ने कुछ देर के बाद कहा—"मानवती की सगाई कर दो।"

हुरमतसिंह ने हँसकर कहा—"सगाई तो होगी ही, परंतु आज दुपहरी में इस प्रस्ताव के पेश करने का क्या कोई विशेष मुहूर्त है?"

रानी ने सोचकर कहा—'कोई विशेष मुहूर्त नहीं है, परंतु अब मेरा दृढ़ संकल्प है कि उसका विवाह शीघ्र होना चाहिए। सयानी हो गई है।"

"आज कोई नई सयानी तो हो नहीं गई है? वर को ठीक कर लेंगे, तब तो विवाह होगा।"

"आप राजा हैं मनुष्यों के शासन के लिये। स्त्रियों के विषय में हस्तक्षेप करने का अधिकार आपको किसी ने नहीं दिया है। वर आपको कहाँ मिलेगा? जितने हमारी जाति के जागीरदार हैं, वे हमसे सब छोटे हैं, महोबा के शासक हमारे कुल के हैं। इनमें

से किसी के यहाँ संबंध नहीं हो सकता। मैंने एक वर स्थिर किया है।"

"वह कौन?" राजा ने पूछा।

रानी ने उत्तर दिया—"गोपीचंद का लड़का राजधर उपयुक्त वर है। कुल अच्छा है। घर भी संपत्तिमान् है और लड़की घर-के-घर बनी रहेगी।"

राजा ने दृढ़ता के साथ कहा—"कभी नहीं। गोपीचंद हमारा सेवक है। राजधर के साथ सगाई नहीं होगी।"

रानी ने दुगुनी दृढ़ता के साथ कहा—"होगी और अवश्य होगी।

राजा को रानी की दृढ़ता देखकर हँसी आ गई। बोला—"और स्त्रियों की तरह तुम भी मूर्ख हो। राजधर हमारी लड़की का पति कैसे होगा? हम उसके लिये योग्य वर की खोज करेंगे।"

"कहाँ पर? कब?"

"कहीं पर, कभी।" राजा ने अप्रतिहत उत्तर दिया।

रानी ने बड़ी कुटिलता के साथ कहा—"यदि पंद्रह दिन के भीतर आपने किसी और वर को स्थिर न किया, तो मैं स्वयं गोपीचंद के घर सगाई का संदेश भेजूँगी, फिर देखें आप क्या करते हैं? मुझे इसका दंड शूली दीजिएगा?"

राजा ने नरम पड़कर कहा—"यह लो, अब उठा तुम्हारे माथे का कीड़ा। अरे बाबा, यदि मैं योग्य वर न ढूँढ़ पाऊँ, तो तुम अपने मन की कर लेना। यदि राजधर गोपीचंद का लड़का न होता, तो तुम्हारा यह रण-घोष किस बिरते पर होता?"

"मैं किसी साधारण सैनिक के साथ ही सगाई का प्रस्ताव करती। और अधिक ठहरना अब असंभव है।"

राजा ने बात टालने के लिये कहा—"मानवती बाण-विद्या सीख रही थी, उसमें क्या पारंगत हो गई? कुछ दिनों और सीख लेने दो।"

रानी ने भड़ककर कहा—"भाड़ में जाय तुम्हारी बाण-विद्या। अब तो मैं माना को स्त्रियों के काम-काज सिखलाऊँगी।"

राजा ने कुछ गंभीर विचार के साथ कहा—"तुम्हारा प्रस्ताव बुरा नहीं है। मैं इस अवसर पर दो काज एक साथ करना चाहता हूँ। अर्थात् माना के विवाह के साथ-साथ नाग का भी विवाह।"

"परंतु यदि सोहनपाल ने संबंध स्वीकार न किया, तो मानवती का विवाह किसी भाँति भी न रुकेगा। आषाढ़ के पहले उसका पाणि-ग्रहण हो जायगा और संबंध प्रस्ताव का समय पंद्रह दिन से आगे न जायगा, यह मेरा निश्चय है। यदि सोहनपाल की कुमारी के साथ विवाह न हो पाया, तो नाग अपने लिये वधू चाहे जहाँ ढूँढ़ लेगा, परंतु मैं मानवती के विवाह का मुहूर्त और आगे नहीं बढ़ाऊँगी।"

राजा की आँखों से एक ज्वाला-सी निकल गई। बोला—"सोहनपाल मेरे प्रस्ताव को अस्वीकृत करेगा? वह बाट का बटोही, मार्ग का भिखारी इस प्रस्ताव से गौरवान्वित होगा या अप्रतिष्ठित? मैं यदि उसको सहायता न दूँगा, तो माहौनीवाले अपने भाई वीरपाल से एक अंगुल-बराबर भी भूमि न ले सकेगा। रानी, तुम जानती नहीं हो। क्षत्रियों को अपनी भूमि से बढ़कर संसार में और कुछ अधिक प्यारा नहीं होता। सोहनपाल मेरे प्रस्ताव को सुनकर हर्ष के मारे नाच उठेगा और यदि उसने अस्वीकार किया, तो मैं कहूँगा कि पागल है।"

फिर एक क्षण बाद मुट्ठी बाँधकर बोला—"यदि वैसे संबंध करने के लिये राज़ी न होगा, तो मैं ज़बरदस्ती करूँगा। सबको पकड़ लूँगा और फिर नाग का विवाह होगा।"

फिर कुछ नरम होकर कहने लगा—"यह कोई निंदा का कार्य भी न होगा। सोहनपाल की लड़की कुमार को चाहती है। ऊपर के लोग यदि विघ्न-बाधा उपस्थित करेंगे, तो मैं उनका कठोरता के साथ शासन

करूँगा। मैं स्वयं अपना प्रस्ताव दिल्ली से विष्णुदत्त के लौट आने पर करूँगा, इस बीच में परोक्ष रीति से पता लगाऊँगा कि सोहनपाल की इच्छा इस विषय में क्या है।"

रानी ने किसी तरह की कोई पराजय का लक्षण प्रकट नहीं किया—"जो दीखे सो करो, मैं मानवती की सगाई पंद्रह दिन के भीतर करूँगी।"

राजा ने रानी की विजय स्वीकार की। बोला—"मैं सहमत हूँ। इस विषय में तुम जो कुछ करोगी, मुझे मान्य होगा।"

जागीरदारों की सम्मति

कुछ दिन बाद धीर प्रधान कुंडार आया। सोहनपाल को सहायता देने का विषय उठाया गया। गोपीचंद ने तली झाड़ने के लिये हेमवती की सगाई के विषय में पूछा। धीर की सूक्ष्म बुद्धि ने समझ लिया कि गोपीचंद का क्या तात्पर्य है। कुंडार से सहायता मिलने का सोहनपाल के दल को पूरा भरोसा था, इसलिये धीर ने यह नहीं कहा कि खंगारों और बुंदेलों के बीच में विवाह-संबंध एक असंभव दुर्घटना है, उसने अधिक सरल मार्ग स्वीकार करके कहा कि करेरा के पुण्यपाल से सगाई की बातचीत हो गई है, परंतु विवाह का अभी कुछ ठीक नहीं है। आशामय गोपीचंद को इस निराशा-जनक उत्तर में भी आशा दिखलाई दी और उसने कहा—"की हुई सगाइयाँ टूट भी तो जाती हैं?"

चालाक प्रधान ने उत्तर दिया—"हाँ-हाँ, टूट भी जाती हैं।"

गोपीचंद ने कुछ और आगे बढ़कर प्रस्ताव किया—"राजाओं का संबंध राजाओं के साथ होना चाहिए।"

प्रधान ने प्रस्ताव के मर्म को समझ लिया। अपना मतलब साधने की इच्छा से बोला—"हाँ, यह तो उचित ही है।" इसके बाद धीर ने गोपीचंद को स्मरण दिलाया कि सहायता प्रदान के लिये जिन जागीरदारों की सम्मति लेनी हो, अब ले ली जाय।"

गोपीचंद ने मान लिया और विवाह-संबंध के विषय पर और बातचीत नहीं की।

धीर के चले जाने के बाद गोपीचंद ने हुरमतसिंह से धीर से मिलने

का हाल बढ़ाकर कहा और विवाह-संबंध की आशा उसके जी में और जाग्रत् कर दी।

कुमार को भी मालूम हो गया। उसने सहजेंद्र और दिवाकर के साथ शिकार खेलने के अवसरों में वृद्धि कर दी। परंतु हेमवती से मिलने का अवसर प्राप्त नहीं हुआ। राजधर और अग्निदत्त भी साथ जाया करते थे। राजधर के कान में न-मालूम कहाँ से एक दिन भनक पड़ गई कि शायद एक शुभ दिवस ऐसा भी आवे कि जब वह मानवती को अपनी कह सके। वह अधिक प्रफुल्लित दिखलाई पड़ने लगा।

अग्निदत्त को उस दिन का आलिंगन बहुत मँहगा पड़ा। उसके बाद जब कभी मानवती से भेंट और बातचीत हुई, सदा किसी-न-किसी के समक्ष—मानवती के साथ कभी रानी रहती थी और कभी कोई और। तारा मानवती के पास अधिक बुलाई जाने लगी और ऐसे बहुत-से अवसर ढूँढ़े जाने लगे, जिन पर अग्निदत्त का क़िले में अधिक आना-जाना बचाया जा सके।

अग्निदत्त को इसका आभास हो गया, परंतु उसको राजधर की आशाओं का पता न था। फिर भी न-मालूम वह क्यों उदास रहा करता था। दिवाकर अपनी हँसोड़ी बातों से और यह सोचकर कि मंडली में किसी का चुपचाप या गंभीर रहने का अधिकार नहीं है, प्रसन्न करने की चेष्टा किया करता था। दोनो में एक प्रकार की थोड़ी-सी प्रीति हो गई। दिवाकर कभी-कभी उसके यहाँ जा बैठता था, परंतु यह न समझ सका कि अग्निदत्त किस उधेड़-बुन में है, और उसकी उदासी का वास्तविक कारण क्या है। अग्निदत्त किस चिंता में मग्न रहता है, इस बात के पता लगाने की चेष्टा सरला तारा ने भी की, परंतु वह भी विफल-मनोरथ हुई।

माघ के आरंभ में हुरमतसिंह ने अपने राज्य के सरदारों को निमंत्रित

किया। सभा का अधिवेशन बहुत गुप्त रक्खा गया, तो भी माहौनी के वीरपाल को मालूम हो गया। वह बुलाया नहीं जा सकता था, इसलिये नहीं बुलाया गया और इसी कारण उसको सभा का अभिप्राय भी मालूम हो गया। उसको कुंडार के अस्त-व्यस्त बल की कोई आशंका नहीं थी। तो भी उसने ऊपरी बनाव रखने के लिये हुरमतसिंह को कहला भेजा कि सोहनपाल का पक्ष न किया जाय। गोपीचंद ने टाल-मटोल उत्तर देकर वीरपाल के दूत को बिदा कर दिया। वह समय बड़ी उखाड़-पछाड़ और अशांति का था। चाहे जो चाहे जहाँ अपने पराक्रम से राज्य काटकर एक टुकड़े का राजा बन बैठे और चाहे जो चाहे जिस दिन बाट का भिखारी हो जाय।

जुझौति में केवल कुंडार ऐसा राज्य था, जहाँ सत्तर-पछहत्तर वर्ष से कुछ शांति थी। उन दिनों एक मनुष्य को दूसरे का भय लगा रहता था। मनचले योद्धा युद्ध और अशांति के समय का स्वागत किया करते थे। मुसलमान टूट पड़े, उन्होंने एक-एक करके क़िलेबंद राजाओं को हरा दिया और जहाँ पीठ फेरी, तहाँ फिर उन क़िलों को हिंदुओं की किसी-न-किसी जाति ने अपने अधिकार में कर लिया। यह क्रिया इसी तरह बहुत दिनों तक जारी रही।

वीरपाल भी ऐसे ही लोगों में से था। उसको विश्वास था कि न तो दिल्ली अमर है और न कुंडार अमर रहेगा। पंचम के इतिहास और बुंदेलों के पुरुषार्थ का उसे उसी तरह भरोसा था, जैसा कि सोहनपाल को। अंतर इतना था कि सोहनपाल के पास मनुष्य बहुत कम थे और अपने पक्ष के न्याय में विश्वास बहुत अधिक। और उसके पास दो अपूर्व व्यक्ति थे—एक धीर प्रधान-सा चतुर नीतिवेत्ता, और दूसरे वे अर्ध-विक्षिप्त उत्साह-प्रमत्त स्वामीजी, जिनके विचित्र गान का परिचय इस कहानी के पिछले पृष्ठों में दिया जा चुका है। सोहनपाल को पुण्यपाल की सहायता का पक्का विश्वास था। वह चाहता था

कि कुंडार और करेरा की सम्मिलित सेना लेकर माहौनी को मार मिटाऊँ और वीरपाल के दर्प को चूर्ण कर दूँ। इसके पश्चात् क्या होगा, यह किसी ने स्थिर नहीं किया था। शायद धीर ने कुछ स्थिर किया हो, तो किसी को मालूम नहीं।

कुंडार के सब खंगार जागीरदार माघ की अमावस्या के पहले ही एकत्र हुए। परिहार, कछवाहे और चौहान भी आए। धीर के विशेष प्रस्ताव पर पुण्यपाल भी आया। बहुत-से लोग नहीं भी आए।

राजा जिनको अपना अधीन समझता था, वे सब, खंगारों को छोड़कर, अपने को दो-दो, चार-चार गाँवों का नरेश समझते थे।

सोहनपाल को सहायता दिए जाने के प्रस्ताव पर पुण्यपाल ने सबसे पहले हामी भरी। खंगार-सरदारों को तो आक्षेप था ही नहीं। कछवाहे और परिहार सरदारों ने कहा कि हमारी सीमा के निकट मुसलमानों के आक्रमण का भय लगा रहता है, इसलिये हम साधारण से अधिक सहायता न देंगे।

पुण्यपाल भी अपने को एक स्वतंत्र नरेश समझता था। छोटे जागीरदारों को नाहीं करते देख उसने सोचा कि कहीं मेरी हामी का अर्थ यह न लगाया जाय कि इन छोटे जागीरदारों से भी छोटा हूँ और कुंडार की पूरी अधीनता को अपने सिर पर लेकर चलता हूँ। इस भाव से प्रेरित होकर वह सभा में बोला—"यदि ये ठाकुर आपकी बात में आना-कानी करते हैं, तो मुझको क्या पड़ी है, जो इतनी दूर करेरा से पहूज और बेतवा के भरकों में भटकता फिरूँ?"

राजा ने कुछ क्रुद्ध होकर कहा—"मुझे आज ही समाचार मिला है कि कुछ दिन पहले आप इसी बेतवा के भरकों में भटकते फिर रहे थे।"

पुण्यपाल ने निर्भय होकर कहा—"सो क्या हुआ ? आपका मैंने बिगाड़ा ही क्या है ?"

राजा ने आँख चढ़ाकर कहा—"सो क्या हुआ ? आप हमारे कारीगर इब्नकरीम को यहाँ मार डालने के लिये आए थे, इस अराजकता से आपको क्या मिलता ?"

गोपीचंद ने मामला बिगड़ता हुआ देखकर कहा—"महाराज, यह जवानी की गर्मी का कारण है। क्षमा कीजिए। करीम ने इनका अपराध तो मुझको आज बढ़ा-बढ़ाकर सुना दिया, परंतु अपना कुछ भी नहीं बतलाया, क्षमा कीजिए।"

राजा ने अपने स्वभाव के विरुद्ध शांति होकर पूछा—"आपको अपने बुंदेले-भाई की सहायता तो करनी चाहिए ?"

पुण्यपाल ने उत्तर दिया—"इसी नाते तो मैं तैयार हो गया था, परंतु आप इन छुटभैयों से तो कहिए।" और उसने बड़ी करारी दृष्टि से पड़िहार और कछवाहे जागीरदारों की ओर दृष्टिपात किया, मानो एक ही अवलोकन में भस्म कर देगा।"

एक पड़िहार-सरदार ने बिगड़कर कहा—"कोई ठाकुर छुटभैया नहीं कहलाया जा सकता, परंतु पँवार-जैसे गँवारों की बात का हम बुरा नहीं मानते।"

पुण्यपाल ने अपनी तलवार पर हाथ डाला। राजा इस खेल के भीतर-ही-भीतर प्रसन्न हुआ, ऊपर बनावटी क्रोध की बोली में बोला—"मेरे ही सामने ! राजसभा में ! गोपीचंद, ये दुर्दमनीय सरदार आपस में किसी दिन कट मरेंगे, यदि मेरी भुजाएँ इतनी लंबी न हों, तो निश्चय ही ये एक दूसरे का नाश कर डालें।"

पुण्यपाल ने हुरमतसिंह की अहंमन्यता-भरी हुई इस बात के मर्म पर ध्यान न देकर कहा—"पँवार गँवार भले ही हों, पड़िहारों-सदृश सियार नहीं हैं।"

पड़िहार-सरदार ने अपनी तलवार खींच ली, बोला—"पड़िहार सियार! गँवार, तुझको इसका उत्तर देना पड़ेगा। बोल, कहाँ और कब?"

"यहीं और अभी।" पुण्यपाल ने तलवार झन्नाटे के साथ हवा में उठाकर कहा।

राजा को यह पसंद नहीं आया। परंतु उसको ऐसे दो सरदारों का द्वंद्व-युद्ध देखने की अनिच्छा न थी, इसलिये बोला—"म्यान में तलवारें बंद करो। तुम लोगों के यहाँ लड़ते ही तुम्हारे सैनिक जो बाहर हैं, आपस में भिड़ जायँगे और व्यर्थ रक्तपात होगा। यदि तुम लोग सच्चे सामंतों की तरह धर्म-युद्ध करना चाहते हो, तो समय और स्थान नियुक्त कर लो। मैं स्वयं वहाँ उपस्थित रहूँगा और धर्म-युद्ध के नियमों का तुम लोगों से पालन कराऊँगा। फिर जिसकी ओर न्याय और पराक्रम होगा, उसको विजय-श्री उपलब्ध होगी।"

राजा ने अपने अधिकार के उपयोग और प्रयोग करने का इसको अच्छा अवसर समझा और इस प्रस्ताव पर फिर ज़ोर दिया।

पड़िहार और पँवार पारस्परिक हिंसा के कारण राजा के इस प्रस्ताव के अंतर्गत राज्याधिकार-स्थापना के अवसर-प्राप्ति की आकांक्षा को न समझ सके। दोनो ने स्वीकार कर लिया। स्थान और समय के प्रश्न पर विचार करके राजा ने प्रभुत्वमय स्वर में कहा—"हम समझते हैं कि आगामी चैत्र-पूर्णिमा का दिन और तालाब के पास की भूमि इस अवसर के लिये उपयुक्त समय और स्थान हैं।" दोनो ने इसको मान लिया।

पड़िहार-सरदार ने पूछा—"जो हार जाय और अपने वैरी की खड्ग से किसी प्रकार बच जाय, उसको इस गँवार बर्ताव का क्या दंड दिया जायगा?" और उसने पुण्यपाल की ओर इस तरह घूरा, जैसे कच्चा ही चबा जायगा।

राजा ने शांति के साथ कहा—"जो तुम लोग स्वयं निश्चित करो।"

पुण्यपाल ने उस कुपित अवस्था में सोचा कि दंड-दान की बात को

मानता हूँ, तो दंडदाता और दंडदाता के विधान के अस्तित्व को भी मानना पड़ेगा और दंड-दान के प्रस्ताव से मुकरता हूँ, तो अभी यह पापी पड़िहार कायर कहकर पुकारेगा। कायर शब्द के प्रयोग की संभावना से भयभीत होकर निर्भीक पुण्यपाल ने दृढ़ता के साथ कहा—"दंड मिले, और प्राण-वध से कम नहीं। परंतु आपके वधिक को यह कष्ट उठाना नहीं पड़ेगा, मेरा खाँड़ा स्वयं वधिक का काम करेगा।"

"मेरा भी" पड़िहार ने कड़ाके के साथ कहा। राजा ने दोनो को शांत कर दिया।

प्राण-वध के दंड-विधान की योजना पर राजा को हर्ष हुआ। जैसा कि उसने पीछे से एक दिन गोपीचंद से प्रकट कहा था। सोचा—"हर हालत में ठीक है। इन दो उद्दंडों में से एक-न-एक किसी-न-किसी तरह अवश्य मरेगा।"

थोड़े समय पीछे सभा विसर्जित हुई। विसर्जन के पहले किसी सरदार ने कोई और अधिक वचन नहीं दिया। राजा ने केवल आशा प्रकट की कि मैं जब बुलाऊँगा, आप लोग ससैन्य आ जायँगे। जिन्होंने हामी भर दी थी, उन्होंने फिर हामी भर दी; जिन्होंने नाहीं की थी, वे चुप रहे, और जिन्होंने नाहीं नहीं की थी, उन्होंने नाहीं नहीं की।

तारा का व्रत

अग्निदत्त के दिन ज्यों-त्यों कटने लगे। क़िले का आना-जाना कुछ कम हो गया। कुमार का साथ शिकार में अधिक रहने लगा। राजधर इन सब अवसरों पर कुमार के पास मौजूद रहता दिखलाई पड़ने लगा। पहले कभी इतना साथ न रहता था। न पहले कभी नागदेव को इतना संतुष्ट रखने की उसने चेष्टा की होगी। सहजेंद्र और दिवाकर भी प्रायः इस आखेट-विहार में इन लोगों के साथ रहते थे, परंतु खाना अपने साथ ले जाया करते थे। कुमार को यह बात बहुत अच्छी नहीं मालूम होती थी, परंतु वह कोई बात कहकर सहजेंद्र को अप्रसन्न नहीं करना चाहता था। इसलिये उस विषय की ओर उसने अधिक ध्यान नहीं दिया, परंतु राजधर के जी में यह भेद-भाव बहुत खटकता था, परंतु कहता वह भी कुछ नहीं था।

अग्निदत्त की उदासी का कारण कुमार की समझ में न आया था। इसलिये उस दिन पूछा—"क्यों शास्त्रीजी, किस विवाद की मीमांसा में मग्न रहते हो? इधर जब से तुमको हाथ में चोट लगी, कुछ विचित्र-से हो गए हो।"

अग्निदत्त ने प्रश्न के भीतर ही उत्तर को पाकर कहा—"वह चोट अब भी हड्डी में कसकती है और शिकार से कुछ मन ऊब उठा है।"

कुमार ने चुटकी लेने के प्रयोजन से कहा—"कहीं उधर से चपत तो नहीं लगी? तुमसे उस विषय में फिर कोई और बात ही नहीं हो पाई। कुछ ख़याल ही न रहा।"

अग्निदत्त ने टाल-मटोल का उत्तर दे दिया। इसके बाद फिर कोई विशेष बात दोनो के बीच में नहीं हुई।

धीरे-धीरे माघ की अमावस्या आई, अग्निदत्त को तारा के व्रत की याद उसकी रुग्ण माता ने दिलाई। दूसरे ही दिन अमावस्या थी।

शक्तिभैरव पर जल और लाल कनेर के फूल चढ़ाने के लिये तारा के साथ लिये एक अधेड़ आयु की मालिन को ठीक किया गया, परंतु फूल देवरा से किस तरह आवें? देवरा से फूल लाने के लिये अग्निदत्त को अपने मन में विशेष उत्साह न जान पड़ा, परंतु पिता को वचन दे चुका था और देवता-संबंधी कार्य में विद्रोह करने का काफ़ी साहस न था, इसलिये अमावस्या के सबेरे ही अग्निदत्त घोड़े पर सवार होकर देवरा की ओर प्रस्ताव करने को हुआ कि नागदेव और राजधर आ गए। उन्होंने आखेट का प्रस्ताव किया। अग्निदत्त ने खेद के साथ अपनी कठिनाई बतलाई। जिस काम में मन न लगे, उससे निकल भागने का कोई अवसर सामने आने पर वह और भी बोझिल मालूम होने लगता है, इसलिये अग्निदत्त को पहले ही दिन कनेर के फूल लाना बहुत अखरा। नाग को कारण मालूम था, इसलिये उसने देवरा जाने के लिये उसे आरूढ़ किया। इतने में सहजेंद्र और दिवाकर भी आ गए। दोनो की मुख-मुद्रा से आखेट के लिये चाव टपक रहा था। अग्निदत्त इन लोगों के सामने ऐसा जान पड़ता था, जैसे विकसित कुसुमों के समक्ष कुम्हलाया हुआ फूल।

दिवाकर को तारा के व्रत का हाल नहीं मालूम था, यद्यपि बस्ती में लगभग सब लोगों में इसकी चर्चा हो चुकी थी।

दिवाकर ने पूछा—"क्या पांडेजी, आप हम लोगों के साथ न चल सकेंगे?"

पांडे ने एक अर्ध-संयत आह लेकर कहा—"न भाई, अब कई महीने तक सबेरे के समय शायद ही कभी आप लोगों के साथ जा सकूँ। कनेर के फूल लाने देवरा जा रहा हूँ।" यह कहकर अग्निदत्त वहाँ से चलने को हुआ।

दिवाकर ने कहा—"मैं कुमार के साथ जाने के लिये पहले ही निश्चय न कर चुका होता, तो मैं चला जाता। क्या किसी बड़े आवश्यक कार्य के लिये फूल चाहिए हैं?"

"फिर बतला दूँगा।" अग्निदत्त बोला और वहाँ से चला गया।

दिवाकर अपने कौतूहल का शमन न कर सका। उसने कुमार से पूछा। जंगल में प्रवेश करने के पहले मार्ग में कुमार ने इस व्रत का उद्देश्य और उसकी कठोरता विस्तार के साथ कह सुनाई। इधर तारा की धारणा थी कि प्रातःकाल ही शक्तिभैरव की ओर यात्रा करनी पड़ेगी, इसलिये वह स्नानादि से छुट्टी पा चुकी थी। अग्निदत्त को दो-ढाई कोस जाना था और देवरा से सीधे शक्तिभैरव के मंदिर पर दो कोस का मार्ग फिर तै करके पहुँचना था। तारा ने सोचा, तब तक मानवती के पास हो आऊँ।

जिस समय वह मानवती के पास पहुँची, उसने स्नान भी न किया था, इसलिये एक ने दूसरे को नहीं छुआ। दूर से ही बातचीत हुई। मानवती ने कहा—"आज तुम्हारा व्रत आरंभ होगा, भगवान् करें, तुम सफल होओ।"

तारा ने बड़े भोले भाव से कहा—"माना, तुम्हारा ब्याह कब होगा?"

मानवती ने प्रचंडता के साथ उठते हुए किसी मनोवेग का दमन करके उत्तर दिया—"मैंने तो तारा, अभी तक कोई व्रत ही नहीं साधा है।"

"तो क्या सब किसी को व्रत साधना पड़ता है? ऐसा तो नहीं देखा।"

"हाँ ठीक है, किसी को वर सहज ही प्राप्त हो जाता है, किसी को कठिनाई के साथ, और किसी का वर मनोनीत होते हुए भी नहीं मिलता।"

तारा ने इस वाक्य में कुछ विशेष व्यंजकता भान न की।

मानवती ने कुछ अकचकाते स्वर में पूछा—"तुम्हारे भैया कहाँ हैं ?"

"फूल लेने देवरा अभी हाल गए हैं।"

"मैं चाहती हूँ कि इस व्रत के कष्ट-साधन के पुरस्कार में उनको भी वधू मिल जाय।"

इन शब्दों के उच्चारण करने के बाद जो कारुणिकता मानवती की आँखों में दिखलाई पड़ी, उसका कारण तारा के लिये दुर्गम था। फिर मानवती ने स्निग्धता के साथ पूछा—"तारा, जब तुम पूजा के पश्चात् हाथ जोड़कर, आँखें मूँदकर देवता के सामने खड़ी होओगी, तब किस प्रकार के आदर्श वर की कामना करोगी ?"

तारा ने कहा—"मैं क्या जानूँ ?"

"परंतु किसी की मूर्ति को अभी तक हृदय में स्थापित भी किया है या नहीं ?"

"मैंने तो ऐसा कभी कुछ नहीं किया है और न कुछ ऐसा कर सकूँगी।"

"दुर पगली ! देवता मन-चाहा वर देगा, परंतु मन में किसी की चाह भी तो हो।"

तारा ने सरलता के साथ कहा—"मुझे यह सब सोचने की कभी आवश्यकता ही नहीं हुई। देवता की जो इच्छा होगी, सो होगा।"

इसके बाद तारा घर चली आई और वहाँ से मालिन को साथ लेकर शक्तिभैरव की ओर चल दी। तारा एक हाथ में छोटा-सा ताँबे का कलश और दूसरे में पूजन-सामग्री लिए थी। ऊबड़-खाबड़ मार्ग में कभी-कभी उसका पैजना किसी कंकड़ से टकराकर झंकार कर देता था, मानो किसी देवी की अर्चना के लिये झालर बजी हो।

कभी नीचे देखने के स्थान में ऊपर देखने के कारण पाँव चूक जाता था, तो अँगूठे को ठोकर लग जाती थी। उस समय वह दर्द की आह को वहीं दबा जाती थी।

मार्ग में चारो ओर किरणमय आकाश के नीचे ऊँची-नीची पहाड़ियाँ थीं, जहाँ-तहाँ हरी-भरी दूब लहलहा रही थी, मार्ग भी टीलों और छोटे-छोटे मैदानों में होकर गया था। जिस समय तारा घाटियों के बीच में से मैदान में निकल पड़ती थी, ऐसा जान पड़ता था, जैसे हिमालय से गंगा निःसृत हुई हो।

जिस समय तारा शक्तिभैरव के मंदिर पर पहुँची, उसने अग्निदत्त को फूल लिए हुए पाया। वह भी ज़रा ही देर पहले वहाँ पहुँचा था। परंतु बहुत थका हुआ मालूम होता था। तारा अपना श्रम भूल गई और अग्निदत्त की थकावट पर उसका जी भर आया। बोली—"भैया, तुमको इस यात्रा से बहुत कष्ट हुआ है। नित्य किस तरह सहन करोगे ?"

अग्निदत्त खीझा हुआ बैठा था, परंतु तारा की मृदु वाणी पर किसका रोष बना रह सकता था ? बोला—"जब तक कोई और मनुष्य इस काम के योग्य नहीं मिल जाय, तब तक मैं इसे मज़े में करता रहूँगा। कुछ चिंता मत करो।"

तारा ने श्रद्धा के साथ भैरवी चक्र और शक्तिभैरव की मूर्ति पर जल डाला और फिर भक्ति के साथ लाल कनैर के वे विचित्र और मनोहर फूल चढ़ाए। फिर हाथ जोड़कर आँखें मूँद लीं और दया की भिक्षा माँगी, परंतु किसी पुरुष की प्रतिमा के विषय में कोई आकांक्षा प्रकट नहीं की। कोई प्रतिमा उसकी आँखों के सामने नहीं आई। अंत में अपने माता-पिता और भाई की कुशल-क्षेम के लिये प्रार्थना करके तारा वहाँ से बिदा हुई। अग्निदत्त घोड़े पर बैठकर चल दिया। मालिन से कहता गया—"तारा को साथ लिवाए लाना, कोई कष्ट न होने पावे।'

दिवाकर का व्यायाम

एक दिन अग्निदत्त ने उड़ती हुई खबर सुनी कि मानवती की सगाई राजधर के साथ होनेवाली है। जिस दिन उसने यह ख़बर सुनी, उस दिन और उस रात-भर उसको किसी ने नहीं देखा। तारा को आश्चर्य था कि क्या हो गया है। वह ज्वर का बहाना लेकर अलग एक कोठरी में जा लेटा। उसे संसार शून्य मालूम होने लगा और अपना शरीर व्यर्थ। रात को किसी प्रकार नींद आ जाने के बाद प्रातःकाल उसने इस विश्वास पर मन को जमाने की चेष्टा की कि शायद यह महज़ जनश्रुति हो, कम-से-कम तलाश तो करना चाहिए। इस कष्ट, इस व्यथा में पांडे ने सोचा—"सबेरे ही कनैर के फूल लाने के लिये जाना पड़ेगा, इस आफ़त को कैसे टालूँ?"

इस समय अग्निदत्त की सारी चिंताओं का केंद्र उक्त जनश्रुति की सत्यता की खोज थी। परंतु इस खोज के पहले उसे ऐसे 'योग्य' मनुष्य के ढूँढ़ने की चिंता हुई, जो देवरा से शक्तिभैरव के लिये कनैर के फूल ले आवे। कई नामों पर स्वल्प विचार करने के बाद उसे दिवाकर का स्मरण हुआ। उसने मन में कहा—"एक दिन दिवाकर ने कहा भी था, और उसको इस तरह का परिभ्रमण और व्यायाम पसंद भी आएगा। परंतु उससे कहूँ कैसे? नहीं, उससे नहीं, किसी और से कहूँगा।"

दिवाकर से वह आरंभ में अकारण ही रुष्ट था, परंतु धीरे-धीरे आखेट में साथ होने के कारण तथा एक पूरी रात की सेवा के पश्चात् वह दिवाकर की ओर से नरम हो गया था।

सूर्योदय होने के लक्षण दिखलाई पड़े। तारा स्नान की तैयारी कर

रही थी, पर अग्निदत्त ने अभी तक किसी व्यक्ति को स्थिर नहीं कर पाया था। अंत में उसने स्वयं जाने का निश्चय किया। घोड़े पर चढ़कर चला। एक स्थान पर दिवाकर धूप में खड़ा दिखलाई पड़ा। दिवाकर ने पूछा—"क्या देवरा जा रहे हो ?"

"जी हाँ।"

"आजकल आपका व्यायाम ख़ूब होता है। मुझे आपको देखकर बड़ी ईर्ष्या होती है। यदि ऐसा काम मुझे करने को मिले, तो एक घंटे में घोड़े को और अपने को पसीने से तर कर दूँ।"

पांडे के मुँह से सहसा निकल पड़ा—"जिस दिन मुझसे न बन पड़ेगा, उस दिन आपको ही कष्ट दूँगा।" फिर उसने सोचा कि दिवाकर से मेरा क्या संबंध कि उस बेचारे को कष्ट दूँ ?

दुपहरी में लौट आने पर अग्निदत्त से अच्छी तरह भोजन नहीं किया गया। उसको अभी तक यह नहीं मालूम हुआ था कि मानवती के साथ अकेले में भेंट क्यों नहीं हो पाती। उसने निश्चय किया कि आज अवश्य एकांत-मिलन का अवसर निकालूँगा।

वह क़िले में सीधा मानवती के पास पहुँचा। वह अकेले थी। देखते ही पांडे की आँखों में आँसू आ गया। दूसरों के साथ देखने के समय शायद कभी आँसू न आया होगा। छूटते ही उसने पूछा—"माना, क्या तुम्हारी सगाई होनेवाली है ?"

मानवती ने अपना सुंदर सिर आश्चर्य के साथ हिलाकर कहा—"नहीं तो।"

इतने में रानी वहाँ आ गई। अग्निदत्त भाव-परिवर्तन में कुशल हो गया था। जहाँ तक बना, उसने अपनी उदासी को छिपा लिया, परंतु उसने हृदय में गड़े हुए अनेक प्रश्न बाहर नहीं निकाल पाए थे, इस कारण भीतर ज्वाला-सी जल रही थी। मानवती अपने

क्लेश को नहीं छिपा सकी। एक ओर जाकर आसन को उठाने-बिछाने लगी।

रानी ने विना रुखाई के परंतु विना स्नेह के पांडे से कहा—"कहो भया, लेन-देन का सब हिसाब ठीक रखते हो या नहीं ? पांडेजी जब दिल्ली से लौटेंगे और तुम्हारा हिसाब गड़बड़ पाएँगे, तब तुम्हें भला-बुरा कहेंगे।"

"मैं हिसाब ठीक रख रहा हूँ।" अग्निदत्त ने कहा।

इस निष्प्रयोजन वार्ता से अधिक और कोई बातचीत नहीं हुई। रानी वहीं पर पहरा-सा लगाकर बैठ गई। मानवती को सिर उठाना तक बोझ हो गया। अग्निदत्त को वहाँ से चले जाने क लिये केवल एक बहाना ढूँढ़ने का विलंब हुआ। अग्निदत्त ने कहा—"मैं कुमार के पास जाता हूँ।" रानी ने इस पर कोई आक्षेप नहीं किया।

परंतु अग्निदत्त वहाँ से लौटकर कुमार के पास नहीं गया—अपने घर चला आया। वहाँ भी जी नहीं लगा, तो तलवार, तीर-कमान लेकर शिकार के बहाने एकांत-सेवन और एकांत-मनन के लिये एक ओर चला गया। संध्या-समय घर आ गया। परंतु उसकी आकृति से यह नहीं प्रकट होता था कि वह किसी निश्चय पर पहुँचा हो।

मानवती की सगाई की बात सोचकर उसके जी में पहला विचार इस संध्या-समय यह उठा कि यदि उसका विवाह किसी अन्य पुरुष के साथ हो गया, तो आत्मघात कर लूँगा। इतने में उसे नित्य प्रातःकाल कनैर के फूल लाने की बात का स्मरण हो आया। मन में बोला—"अब मैं फूल लेने नहीं जाऊँगा, मानवती के मन की बात जाने विना और सगाई के विषय का पूरा अन्वेषण किए बग़ैर अब और कुछ नहीं कर सकता। दिवाकर लाया करेगा। वह इस तरह के व्यायाम करने की इच्छा भी प्रकट कर चुका है।"

अग्निदत्त ने उसी संध्या-समय दिवाकर से अपनी अस्वस्थता का बहाना बनाकर देवरा से कनैर के फूल स्वास्थ्य-लाभ करने के समय तक लाते रहने का अनुरोध किया। साथ ही फूल लानेवाले के लिये व्रत के नियम भी बतला दिए। दिवाकर ने स्वीकार कर लिया। अनुरोध और स्वीकृति के पश्चात् अग्निदत्त को ऐसा जान पड़ा, मानो उसने कुछ खो दिया है। परंतु उसने अपने मन में कहा—"मैं दो या एक ही दिन में अपने अन्वेषण के कार्य को समाप्त कर लूँगा, इसलिये दिवाकर का अधिक अहसान सिर लेने की जरूरत न पड़ेगी।"

दिवाकर सबेरे उठकर देवरा गया। शिकार में बहुधा घूमते-भटकते रहने के कारण वह मार्गों से अच्छी तरह परिचित हो गया था। इसलिये देवरा पहुँचने में उसको कोई कठिनाई नहीं हुई। मार्ग में कई जंगली जानवर मिले, परंतु उसने व्रत के नियमों के अंकुश के कारण तीर नहीं चलाया। यों तो वह कुमार से पहले ही सुन चुका था, परंतु अग्निदत्त से सानुरोध सुनने के पश्चात् उसको उनका पूरा स्मरण रहा। फूल तोड़कर बहुत स्वच्छ वस्त्र में लपेटकर दिवाकर शीघ्र शक्तिभैरव आ गया। अभी तारा नहीं आई थी।

वह तारा की बाट जोहने लगा। बार-बार एक दिशा की ओर देखने लगा। जिसकी बाट देखी जाती है, उसकी आकृति का स्मरण करना प्राकृतिक है। वह सबसे अधिक उन कृतज्ञ नेत्रोंवाली तारा के चित्र की बाट जोह रहा था, जिनको उसने निशा-जागरण के अवसान पर, जब अग्निदत्त कराहने के बाद सो गया था, देखा था। परंतु उसे इस प्रतीक्षा में किसी विशेष भाव की प्रेरणा नहीं मालूम हुई।

कुछ समय बाद तारा आई। उसे पहले से मालूम था कि आज फूल कौन लावेगा। तारा ने अत्यंत मधुर कंठ से कहा—"ले आए?"

दिवाकर ने सिर नवाकर फूल तारा के हवाले किए और एक बार, केवल एक बार, उसकी ओर देखकर घोड़े को कुदाता हुआ वहाँ से चला गया।

आज तारा ने जब पूजा के बाद नेत्र मूँदे, तब एक क्षण के लिये कुदाते हुए घोड़े के सवार का चित्र आँखों के सामने आ गया। परंतु वह चित्र आँखों के सामने से शीघ्र चला भी गया।

राजधर का हर्ष

उन्हीं दिनों एक दिन राजधर के अपने पिता प्रधान गोपीचंद को बहुत प्रसन्न और बहुत अभिमान-युक्त देखा। वहाँ राजधर की मा भी थी। पिता ने राजधर से कुछ नहीं कहा। आँख मटकाकर और माथे को ऊँचा सिकोड़कर बड़े गंभीर भाव से बोला—"तुम्हें यह भवन अब बहुत बड़ा बनवाना होगा। राजा की लड़की क्या इस टूटी झोपड़ी में रहेगी?"

राजधर ने यह सुन रक्खा था कि मानवती की सगाई होनेवाली है। परंतु उसे यह नहीं मालूम था कि सगाई का पात्र कौन है। इस बात को सुनकर वह अत्यंत उत्सुक हुआ। उसका कौतूहल शांत होने में विलंब नहीं हुआ।

गोपीचंद की गंभीरता फिर गद्गद प्रसन्नता में परिणत हो गई। अपनी पत्नी से बोला—"भगवान् शंकर की कृपा हुई है, नहीं तो हमारा ऐसा पुण्य कहाँ था कि राजकन्या इस अँधेरे घर का दीपक होती।"

राजधर की समझ में आया, परंतु विश्वास नहीं होता था।

राजधर की मा बोली—"बात तो बतलाओ, मेरी समझ में कुछ नहीं आया।"

समझ में चाहे उसके न आया हो, परंतु एक आशा का प्रवेश हृदय में हो गया था।

गोपीचंद ने कहा—"राजधर के साथ राजकुमारी मानवतीजी की सगाई की बात आज श्रीमहाराज ने स्वयं कही है। मैं तो स्वीकार करने में अचेत-सा हो गया था।"

गोपीचंद की पत्नी यह संवाद सुनकर अचेत-सी नहीं हुई। आनंद के उन्माद और सच्चे या झूठे अभिमान से प्रेरित होकर बोली—"कौन-सी

बड़ी बात हुई ? मेरे सोने के लाल के भाग्य में राजकुमारी लिखी है, सो मिलेगी ।"

राजधर अपनी अँगरखे की तनी खोलने-बाँधने लगा । वहाँ से कहीं बाहर चला जाना चाहता था, परंतु हटने की इच्छा प्रबल नहीं थी ।

गोपीचंद ने भयभीत-सा होकर कहा—"सगाई का नारियल और पान दस-पाँच रोज़ में आवेगा । बात पक्की हो गई है । विवाह महाराज जल्दी करना चाहते हैं । इससे निवृत्त होते ही उनके लिये बस एक काम रह जायगा, राजकुमार का सोहनपाल की कुमारी के साथ विवाह । इसके बाद वह तो वानप्रस्थ हो जायँगे । मैं कुमार को काम सँभलवाकर जंगल का मार्ग लूँगा । फिर राज-कार्य को कुमार जानें और तुम्हारा राजधर । बस, इतने के लिये और जीना है । देखो, संन्यास का प्रश्न तो पीछे आवेगा, इस समय आभूषण और रत्नादि की समस्या सामने है । मैंने तुम्हारी गृहस्थी में कभी हाथ नहीं डाला । मुझे नहीं मालूम, तुम्हारे पास क्या है और क्या नहीं । यदि राजकुमारी के लिये उपयुक्त रत्नादि में कुछ भी कमी पड़ी, तो मैं विष खा लूँगा ।"

अब राजधर को अपनी अँगरखे की तनी के और अधिक सुलझाने-उलझाने की आवश्यकता नहीं जान पड़ी । बोला—"काकाजू, सहजेंद्र इत्यादि हम लोगों का छुआ भोजन नहीं ग्रहण करते ।"

गोपीचंद ने आश्चर्य और अभिमान के साथ कहा—"क्या खंगार ठाकुरों का छुआ भोजन नहीं करते ? यह असंभव है । इस राज्य में रहकर किसका यह साहस कि हम लोगों का ऐसा अपमान करे ? परंतु उन लोगों का अभिप्राय अपमान करने का न होगा ।"

राजधर बोला—"अपमान करने का तो उनका विचार नहीं था, परंतु इन लोगों में जाति-अभिमान की मात्रा बहुत अधिक मालूम पड़ती है ।"

गोपीचंद ने दर्प के साथ कहा—"अरे बेटा, तुम क्या जानो ; राजनीति का चक्कर बड़ा कठिन होता है। बुंदेले झख मारकर यहाँ आए और झख मारकर यहाँ से चले जायँगे। हज़ार बार ग़रज़ होगी, तो अपनी लड़की कुमार को देंगे, नहीं तो भाड़ में जायँ। हमारे कुमार उनकी लड़की के बिना कुँआरे थोड़े ही बने रहेंगे। अवसर पाकर महा-राज से इस बात का उल्लेख करूँगा।"

राजधर वहाँ और भी ठहरता, परंतु उसकी मा उसको बार-बार देखकर कुछ मुस्किरा रही थी, इसलिये वह वहाँ से चल दिया। घर में न ठहर सका। किसी से कुछ बातचीत करने की प्रबल उत्कंठा उत्पन्न हुई। कुमार के पास नहीं गया। महलों में सबसे अधिक आने-जानेवाले व्यक्ति की बधाई अंगीकार करने में उसके अभिमान और हर्ष पर और रँग चढ़ता। उसने सोचा कि अग्निदत्त के पास जी का ज्वर उतारने के लिये चलना चाहिए।

वह अग्निदत्त के पास पहुँचा। आज अग्निदत्त स्वयं कनैर के फूल लेने देवरा चला गया था। लौटकर इस समय एक पुस्तक पढ़ रहा था। उसके मुख पर उदासी और गंभीरता छाई हुई थी ; राजधर खिले हुए फूल की तरह मुक्त था। आज उसकी आँखों में धूर्तता या क्रूरता नहीं दिखलाई पड़ती थी, आनंद की दिव्यता आँखों में व्याप्त थी।

अग्निदत्त एकांत-सेवी हो चला था, इसलिये राजधर के आने से उसकी उदास मुद्रा में कोई अंतर नहीं आया। इससे राजधर को कोई चिंता नहीं हुई।

बोला—"आप तो शिकार में अब बहुत कम साथ जाने लगे हैं। बड़ा आनंद आता है। इस बीच में हम लोगों ने कई तेंदुए और साबर मारे।"

अग्निदत्त ने जमुहाई लेकर कहा—"मैंने भी सुन लिया था। इधर लेन-देन के काग़ज़ों में उलझा रहने के कारण आप लोगों से भेंट बहुत कम हो पाती है।"

"और आपको देवरा भी तो जाना पड़ता है।" राजधर ने सहानुभूति के भाव से कहा।

अग्निदत्त को यह विषय अप्रिय मालूम हुआ। बोला—"इस समय कैसे कष्ट किया?"

"कुछ नहीं, यों ही चला आया हूँ। आप कौन-सी पुस्तक पढ़ रहे थे?"

अग्निदत्त ने रुखाई के साथ उत्तर दिया—"एक नाटक पढ़ रहा था।"

इस रुखाई के स्वर से राजधर विचलित नहीं हुआ। बोला—"राजकुमारी को तो आपने काव्य इत्यादि पढ़ाए होंगे? हाल में तो आप बाण-विद्या सिखला रहे थे?"

राजकुमारी का नाम लेते ही राजधर के चेहरे पर एक क्षण के लिये तेज का एक मंडल-सा खिंच गया, पर अग्निदत्त का मुख तमककर लाल हो गया। उसने पूछा—"आपको इस विषय में प्रश्न करने की आवश्यकता क्यों पड़ी?"

राजधर अग्निदत्त के कोप को बिलकुल नहीं समझा। हर्षोन्माद के प्रवाह में बोला—"वैसे ही पूछा। आप बहुत दिनों कुमारी के गुरु रहे हैं, बहुत दिनों से परिचित हैं। मैंने तो उनको देखा ही कम है।"

अग्निदत्त के कोप की जो आँधी भीतर उठी थी, वह थम गई। अपने को सँभालकर वह कहने लगा—"आपने इस विषय को पहले कभी नहीं छेड़ा। आज क्या कारण उपस्थित हुआ है?" इस प्रश्न के साथ ही अग्निदत्त को संदेह हुआ कि कहीं मेरी प्रणय-कहानी तो नहीं इधर-उधर फूट निकली है।

राजधर ने आत्मगौरव की पुट देकर उत्तर दिया—"मैंने कुमार से इस तरह की बातें करना उचित नहीं समझा। उनसे कहता

भी क्या ? बड़े संकोच का विषय है । दूसरे के लिये इस तरह की बातें करने में कोई हिचकिचाहट नहीं मालूम पड़ती । अपने संबंध की बात ऐसी जगह छेड़ने में तो ऐसा जान पड़ता है, जैसे घड़ों पानी पड़ गया हो ।"

अग्निदत्त के शरीर में एकाएक एक बिजली-सी दौड़ गई । जिस आशंका को मिटाकर वह एक सुख-स्वप्न की कल्पना कर रहा था, जो आशंका, कम-से-कम, बिलकुल निराश होने के लिये विवश नहीं कर रही थी, उस आशंका के दूर होने का आभास अग्निदत्त को राजधर की अंतिम बात में दिखलाई पड़ा । उसका कलेजा धड़क उठा । भर्राए हुए गले से बोला—"आपकी बात मेरी समझ में नहीं आई । कुछ स्पष्ट कहिए ।"

उत्तर सुनने के लिये माथे के दोनो ओर की नसें फड़क उठीं । गला सूख गया । उसने एक हाथ से घुटने को और दूसरे से अपनी ठोड़ी को ज़ोर के साथ पकड़ लिया । सिर नीचा करके आँखें चढ़ाकर अग्निदत्त ने राजधर की ओर देखा ।

राजधर ने दूसरी ओर मुँह को ज़रा-सा फेरकर कहा—"तो आपने कुछ नहीं सुना ?"

अग्निदत्त का होंठ सूख गया था । उसने होंठ को दाँत-तले ज़रा-सा दबाया और अपनी ठोड़ी को थोड़ी और दृढ़ता के साथ पकड़ा । उत्तर में बोला—"कुछ नहीं ।" केवल सिर हिला दिया ।

राजधर ने सिर नीचा कर लिया । कनखियों से अग्निदत्त की ओर देखा । उन आँखों में धूर्तता का फिर एक बार राज्य दिखलाई पड़ गया । जाँघ पर एक छोटा-सा तिनका कहीं से आ चिपटा था । उसे उँगली से हटाता हुआ मुस्किराकर बोला—"सगाई तो हो गई है ।"

"किसके साथ ? किसकी ?" अग्निदत्त के मुँह से निकला। परंतु उसे यह चेत नहीं हुआ कि क्या प्रश्न किया है।

राजधर ने कुछ अधिक साहस के साथ सिर उठाकर कहा—"मेरे साथ, राजकुमारी की।"

जिस वज्रपात के लिये अग्निदत्त अपने को तैयार कर रहा था, वह हुआ। माघ के महीने में माथे पर पसीना झिलमिला आया और सारे शरीर में तीव्र ज्वर-सा चढ़ आया। थोड़ी देर के लिये सन्न-सा होकर रह गया। ठोड़ी और घुटने पर जमे हुए हाथ शिथिल हो गए।

राजधर ने यह लक्ष देखा, परंतु उसने समझा कि अग्निदत्त को इस सगाई पर आश्चर्य हुआ है। सिर उठाकर अधिक साहस के साथ बोला—"पांडेजी, क्या आप अचंभे में पड़ गए ?"

पांडे ने केवल सिर हिला दिया। राजधर ने निस्संकोच भाव के साथ कहा—"महाराज की कुमारी और प्रधान मंत्री के लड़के का संबंध कोई बहुत आश्चर्य की घटना तो नहीं है।"

अग्निदत्त ने भयानक भर्राए हुए स्वर में कहा—"आश्चर्य नहीं है, परंतु तुम्हें मैंने इस योग्य कभी नहीं समझा था।"

राजधर की आँखों में जो क्रूरता अभी तक छिपी हुई थी, वह बाहर आई। बोला—"ऐसी बड़ी-बड़ी बातें तो तुम्हारे काकाजी के भी मुँह से नहीं सुनाई पड़तीं। तुम शायद अपने को बहुत योग्य समझते हो ! मैं अयोग्य ही सही। परंतु महाराज और महारानी ऐसा नहीं समझते और न कुमारी ही ऐसा समझती होंगी।"

"कुमारी जैसा समझती होंगी, वह आपको पीछे मालूम पड़ेगा और मैं जैसा समझता हूँ, सो मैंने आपको बतला दिया है।" अग्निदत्त ने उग्रता के साथ कहा।

इस पर राजधर की आँखें भयानक हो गईं। परंतु कुछ न कहकर वह वहाँ से चला गया।

अग्निदत्त उठकर कमरे में चोट खाए सिंह की तरह घूमने लगा। चेहरे की उदासी चली गई। बड़ी-बड़ी आँखें संकीर्ण हो गईं। मुख तपे हुए ताम्र-जैसा लाल हो गया। अग्निदत्त ने मन में कहा—"मेरे जीतेजो राजधर मानवती का पति न हो सकेगा।"

नागदेव का प्रण

राजधर के चले जाने के थोड़े समय पश्चात् अग्निदत्त को घोड़े की टाप का शब्द सुनाई दिया। उसने और अधिक ध्यान नहीं दिया। इतने में घोड़े को अग्निदत्त के नौकर के हाथ में देकर राजकुमार भीतर आ गया।

इस समय अग्निदत्त का चेहरा ऐसा भाव-हीन मालूम होता था, जैसा आँधी के बाद सुनसान मैदान हो जाता है।

कुमार को अग्निदत्त कुछ दिनों से उदास, अनमना, बेचैन और गंभीर-सा दिखलाई पड़ता था, परंतु सहजेंद्र के साथ और कभी अकेले ही राजधर के साथ शिकार की सनक में मग्न रहने के कारण उसका ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ था।

पहले वह राजधर के घर गया था, परंतु उसको न पाकर अग्निदत्त के घर आया।

अग्निदत्त के मुख पर हर्ष का सहज स्वाभाविक चिह्न न देखकर कुमार ने कहा—"क्योंजी, तुम बहुत दिनों से दिखलाई ही नहीं पड़ते। क़िले में भी तुमको बहुत कम देखता हूँ। और जब दिखलाई पड़ते हो, बहुत उदास दिखलाई पड़ते हो। क्या बात है, जब से पंडितजी दिल्ली गए, निन्नानबे के फेर में तो नहीं पड़ गए?"

पांडे ने आँखें स्थिर करके कुमार की ओर ऐसे देखा, जैसे कुछ कहना चाहता हो। मुँह तक बात आई, परंतु यथेष्ट साहस की कमी के कारण जहाँ-की-तहाँ लौट गई। परंतु भाव के वेग में कोई फबने योग्य बात नहीं बना पाई। बोला—"राजधर अभी थोड़ी देर हुई, जब यहाँ से गए।"

"मैं राजधर के घर पर गया था, परंतु जान पड़ता है कि वह किसी दूसरे मार्ग से तुम्हारे यहाँ से लौटे, नहीं तो मुझको बीच में कहीं मिलते। परंतु मैं यहाँ राजधर की खोज में नहीं निकला था। मैं समझता हूँ कि तुम्हारी उदासी का कारण कोई स्त्री है।" कुमार ने हँसकर कहा।

अग्निदत्त कुछ कहने को हुआ था, परंतु मुँह न खुला। इतने में तुरंत कुमार बोला—"तो क्या कुछ उद्देश्य-सिद्धि में बाधा पड़ गई है?"

अग्निदत्त की यह धारणा होने लगी थी कि कम-से-कम रानी संदेह-वश मेरा और मानवती का अब अधिक संग पसंद नहीं करती, और शायद किसी संदेह के प्रवाह में कुमार का कान भी बह गया हो, इसलिये वह राजकुमार का साथ होने के अवसर बचाता था। अब उसको विश्वास हो गया था कि यदि संदेह किसी के मन में है, तो केवल रानी के मन में। उसने सोचा कि यह भी हो सकता है कि कुमार उदार विचारों का मनुष्य है और मेरा मित्र है, उसने यदि इस जन-श्रुति को राजमहल में सुन भी लिया होगा, तो उसके मन में कोई विषाद उपस्थित नहीं हुआ होगा। क्योंकि वह जाति-परजाति के संबंध की कल्पना को घृणा या क्रोध की दृष्टि से नहीं देखता था। परंतु पिछली बात पर उसको भरोसा नहीं होता था।

अपने प्रश्न के उत्तर में विलंब हुआ देखकर नागदेव ने हँसकर कहा—"तब तुम्हारी बीमारी मुझसे बहुत बढ़ गई है।"

अग्निदत्त ने उत्तर का अच्छा अवसर पाकर कहा—"आपके आशा-मार्ग का क्या हाल है?"

"मैं तो पहले ही जानता था कि मेरे विषय की छेड़-छाड़ होते ही तुम्हारा मुँह खुलेगा। मेरी तो कहानी संक्षिप्त है। मैं सहजेंद्र के यहाँ पहले से अधिक आने-जाने लगा हूँ, और तुमको यह मालूम है, मेरा वहाँ सत्कार होता है, हेमवती के दर्शन भी कभी-कभी हो

जाते हैं; परंतु वह हिमशिला-जैसी कठोर मालूम होती है। अभी तक उसने कोई संकेत इस तरह का नहीं किया है, जिससे विशेष आशा उत्पन्न हो। भरतपुरा की गढ़ी में जो पत्र मैंने उसके पास भेजा था, उसका उसने उत्तर ही नहीं दिया, इसीलिये दूसरा पत्र भेजने की मैंने चेष्टा नहीं की। यद्यपि मन में कई बार चिट्ठी भेजने का प्रस्ताव उठा, परंतु वह मन का मन में ही रह गया। मुझे तो यह जान पड़ता है कि वह बहुत गहरी है। चाहती तो अवश्य कुछ-न-कुछ होगी, परंतु प्रकट नहीं कर सकती या करना नहीं जानती। यदि उसका चाव मेरी ओर न होता, तो मुझे कभी दर्शन ही न देती। भान होता है कि वह अपने बाप और भाई के आदेश में बहुत चलती है, और वे लोग जिसको उसका वर निर्दिष्ट कर देंगे, उसको वह स्वीकार कर लेगी। मुझे यह विश्वास होता जाता है कि वह स्वयं कोई निर्णय न कर सकेगी।"

अग्निदत्त ने चेष्टा करके कहा—"शायद ही वह ऐसी स्त्री हो। अन्यथा इस अवस्था की लड़कियाँ स्वयं निर्णय कर लेती हैं, और उनको मा-बाप के आदेश या निर्देश की कोई आवश्यकता नहीं पड़ती, और न ऐसी दशा में माता-पिता का निर्देश कुछ कर ही सकता है।"

"मैं इस बात को नहीं मानता।" कुमार ने कहा—"कुछ स्त्रियाँ शायद ऐसी स्वच्छंद हों, परंतु अधिकांश का ऐसा स्वतंत्र होना असंभव है।"

अग्निदत्त ने पराजय का कोई चिह्न न दिखलाकर कहा—"मैं इस बात को नहीं मानता। स्त्रियाँ ऊपर आ बनने पर न मालूम क्या-क्या कर डालती हैं।"

"यदि ऐसा है, तो हेमवती भी मेरे लिये कुछ करके रहेगी।" कुमार ने हँसकर कहा—"परंतु यह बतलाओ कि तुम क्यों उदास हो? तुम्हारी प्रेयसी तुम्हें मिलेगी या नहीं?"

अग्निदत्त ने अपना भाव छिपाकर कहा— "कुछ नहीं कह सकता।"

"परंतु तुम्हारी उदासी का कारण तो तुम्हारी प्रेयसी ही है। सौगंद खाओ कि मेरी कल्पना गलत है।"

"क्या सौगंद खाऊँ! विष खाए हुए पर सौगंद का प्रभाव ही क्या पड़ सकता है?"

"ओफ़्फ़ोह! आज तो गहरे साहित्य में डुबकी लगाई! अग्निदत्त, बतलाओ, तुम्हारी व्यथा का क्या कारण है? क्या वह तुम्हें नहीं मिल रही है? क्या हाथ में आने को है? या कुछ और बात है?"

कुमार की सहानुभूति से अग्निदत्त कुछ पिघला। कुछ बात कहने को हुआ कि भीतर से किसी ने गला दबा लिया। एक क्षण बाद बोला— "मिले और न भी मिले।"

कुमार ने प्रश्न किया—"क्यों न मिले? क्या उसके माता-पिता रुकावट डाल रहे हैं?"

इस प्रश्न ने अग्निदत्त को अशांत भी किया और उत्साहित भी। बोला—"प्रण करो कि तुम मेरी सहायता करोगे।"

नागदेव ने आग्रह के साथ कहा—"तुम्हारी सहायता करने के लिये प्रण की आवश्यकता है? तुम्हारी ही सहायता न करूँगा, तो किसकी सहायता करूँगा? मैं कहता हूँ, यदि उस लड़की के माता-पिता तुम्हारे प्रणय में बाधक हैं, तो तुम उसको लेकर कहीं चल दो। परंतु इस मार्ग में दुर्गम कठिनाइयाँ हैं। पांडेजी एक, उनकी कीर्ति दो, तुम्हारा नाम तीन, लोकापवाद चार, पलायन के पश्चात् भ्रमण और निवास के स्थानों का कष्ट पाँच, समाज का त्याग छः इत्यादि अनेक आफ़तें हैं। महाराज भी शायद रुष्ट हों, परंतु उनके कोपानल को तो मैं शांत कर लूँगा। अग्निदत्त, तुम क्या सोच रहे हो?"

अग्निदत्त ने कुछ रुँधे हुए कंठ से कहा—"इन कठिनाइयों को मैं

कुछ नहीं गिनता। परंतु इन कठिनाइयों से पार पाने में मेरी सहायता करोगे ?"

नागदेव छाती पर हाथ ठोककर बोला—"अवश्य सहायता दूँगा।"

अग्निदत्त ने आँखें घुमाकर कहा—"देखो, इस प्रण को भूल मत जाना।"

नागदेव ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—"कभी किसी अवस्था में भी न भूलूँगा। तुम कैसी बातें करते हो ?" फिर हँसकर बोला—"परंतु तुम आकाश के उस नक्षत्र का नाम तक तो बतलाते नहीं हो। कौन है ? क्या है ? किसकी लड़की है ?"

अग्निदत्त की आँख में एक आँसू आ गया। बोला—"अभी मत पूछो, किसी दिन बतलाऊँगा।"

कुमार ने अपने कौतूहल का अधिक पीछा नहीं किया। बोला—"मैं तुमसे तब तक न पूछूँगा, जब तक तुम स्वयं न बतलाओ।"

फिर दूसरी चर्चा छेड़ने के अभिप्रय से बोला—"राजधर किसलिये आए थे ?"

कुमार ने यों ही पूछा था। प्रश्न के भीतर कोई विशेष तत्त्व नहीं छिपा था। परंतु अग्निदत्त ने उत्तर को महत्त्व देकर कहा—"उनका वार्तालाप भी मेरी उदासी का एक कारण था।"

कुमार ने कुछ चिंतित होकर पूछा—"क्यों, वह क्या कह गए ?"

अग्निदत्त उत्तर देने में कुछ हिचकिचाया, परंतु कह गया—"कहते थे कि कुमारी के साथ सगाई हो गई है। मैंने कह दिया कि 'तुम-जैसे अयोग्य पुरुष के साथ कभी सगाई न होगी।' इस पर रुष्ट होकर चले गए। क्या इस बात में कुछ तथ्य है ?"

कुमार हँस पड़ा। बोला—"तुम पागल हो और वह मूर्ख है। मानवती के लिये उसमें कोई अयोग्यता की बात नहीं देखता हूँ। और फिर अग्निदत्त, राजाओं की बेटियाँ सदा राजाओं को ही थोड़े ब्याही जाती

हैं। चलो, अब सहजेंद्र के यहाँ चलें। आज तुमको शिकार में चलना पड़ेगा।"

अग्निदत्त ने मन में कहा—"क्या यह अपने प्रण का पालन कर सकेंगे? शायद नहीं।" अनिच्छा होने पर भी कुमार के साथ वह चला।

जाते-जाते कुमार से उसने कहा—"कुमारी हेमवती को एक पत्र और भेजकर देखो।"

कुमार ने सिर हिलाकर कहा—"नहीं, मैं अभी पत्र भेजने के विचार में नहीं हूँ। व्यर्थ होगा। मुझे ध्रुव विश्वास है कि भीतर से वह मुझे चाहती है, परंतु संकोच के कारण प्रकट नहीं करती। उसके लिये या तो उसके माता-पिता निर्णय करेंगे, या कोई और निश्चय करेगा, वह स्वयं अंत तक अपने निश्चय को प्रकट न करेगी। अवसर प्राप्त होते ही किसी दिन प्रस्ताव करूँगा या कराऊँगा। यदि सोहनपालजी ने स्वीकार कर लिया, तो ठीक है, और यदि न किया, तो कोई उपाय निकालूँगा। परंतु सोहनपाल की ओर से मुझको आशा है।"

अग्निदत्त ने गूढ़ता के साथ कहा—"परंतु सोहनपाल इत्यादि आपके यहाँ खाते-पीते तक नहीं हैं, इस संबंध के लिये राज़ी कैसे होंगे? आपने इस बात पर भी विचार किया?"

नागदेव ने उत्तेजित होकर उत्तर दिया—"मुझे मालूम है। मैं देखकर भी अनदेखी कर देता हूँ, और खाने-पीने के झंझट को इस मार्ग का कंटक बनने ही न दूँगा। मुझे उन लोगों के इस अभिमान की कोई चिंता नहीं है, और मेरे पक्ष में बहुत-सी बातें प्रबल हैं। पहली तो राजाओं में स्वयंवर की प्रथा, दूसरी हेमवती का मेरे प्रति कम-से-कम घृणा का अभाव और कुछ-न-कुछ प्रेम, तीसरी सोहनपाल के लिये हम लोगों का सैन्य-बलिदान करने के लिये प्रस्तुत होना, चौथी मेरी दृढ़ प्रतिज्ञा, पाँचवीं महाराज की इच्छा, छठवीं सहजेंद्र इत्यादि का झुकाव और सातवीं अग्निदत्त का प्रत्येक अवस्था में सहायता देने की प्रतिज्ञा।" पिछली बात पर

कुमार ने अग्निदत्त की चुटकी ली और कहा—"क्यों नहीं अपने अभीष्ट स्थान पर पत्र भेजते हो? भेजा तो होगा?"

अग्निदत्त ने हलकी-सी आह लेकर उत्तर दिया—"इस समय पत्र भेजने की इच्छा नहीं है और न सुबीता है।"

"क्यों, क्या पहरे-चौकी लगे हुए हैं?" कुमार ने हँसकर पूछा।

"क्या बतलाऊँ।" अग्निदत्त ने उत्तर दिया—"पहरे-चौकी ही-से हैं। उपयुक्त पत्र-वाहक नहीं मिलता।"

कुमार ने पूर्ववत् ढंग से कहा—"तो कोई पत्र-वाहिका ढूँढ़ निकालो।"

"और एक से अनेकों में अपना भेद फैलाओ।" अग्दित्त ने अपना निश्चित मंतव्य प्रकट किया।

हुरमतसिंह

फागुन के समाप्त होने में थोड़े ही दिन शेष थे। पलोथर और सारौल के जंगलों की करधई शुष्क पल्लव हो गई। करौंदी और हरी हो उठी। महुए के पत्ते पीले पड़-पड़कर गिरने को हुए। करील में फूल आने लगे। पलाश चिकना हो गया, और उसके बड़े-बड़े फूलों से सुनसान जंगल में लालिमा छिटकने लगी। एक दिन कोयल ने कुहूक लगाई। बेतवा में पानी कुछ कम हो गया।

दुपहरी में गोपीचंद हुरमतसिंह के पास गया। राजा विश्राम कर रहा था, इसलिये उसको मंत्री का आना अच्छा न लगा। परंतु उसके लड़के के साथ मानवती की सगाई हो चुकी थी, दूसरे कुछ दिनों से गोपीचंद का शिष्टाचार बहुत बढ़ गया था। इसलिये भीतर की रुखाई को मुश्किल से दबाकर हुरमतसिंह ने कहा—"आओ, बैठो। कहो, ऐसी दुपहरी में कैसे आए?"

गोपीचंद ने बहुत मिठास के साथ कहा—"महाराज, कोई विशेष राज-कार्य तो नहीं है, किंतु एक प्रश्न बहुत दिनों से मन में समाया हुआ था—एक-आध बार कहने के लिये निश्चय भी किया, परंतु उपयुक्त अवसर न पाकर रुका रहा।"

हुरमतसिंह ने कुछ खीजकर कहा—"आज उपयुक्त अवसर मिला?"

"हाँ, अन्नदाता", गोपीचंद ने राजा की रुखाई पर ध्यान न देकर उत्तर दिया—"सोहनपाल की लड़की के साथ कुमार के संबंध होने की संभावना सहज नहीं मालूम होती।"

हुरमतसिंह ने पलँग पर बैठकर कहा—"सो तो मैं भी देख रहा हूँ। दिल्ली से विष्णुदत्त के आने के पहले कुछ न हो सकेगा। यदि उनके लौट-

राजा ने टोककर कहा—"तुम्हारी सम्मति के बिना मैं कुछ नहीं करूँगा।" फिर रूखे कंठ से हंसकर बोला—"यदि कभी तुमको सूली देने की आवश्यकता पड़ी, तो वह भी बिना तुम्हारी सम्मति के न होगा।"

मंत्री ने हँसने की चेष्टा की, परंतु आँखें भीतर गड़-सी गईं। बोला—"महाराज की यदि इतनी दया इस शरीर पर न हो, तो कितने दिन जीवित रह सकता हूँ।"

हुरमतसिंह का कोप, कम-से-कम प्रकट रूप में, शांत हो चुका था। कहने लगा—"तुम अपनी सम्मति तो बतलाओ।"

गोपीचंद ने बतलाया—"महाराज, मेरी क्षुद्र सम्मति में यह आया है कि कुमार का प्रेम सोहनपाल की पुत्री के लिये बहुत आगे बढ़ चुका है, अब तो जिस तरह हो सकेगा, उसको प्राप्त करने का उपाय किया जायगा।"

राजा ने कहा—"तो क्या बल-प्रयोग द्वारा?"

गोपीचंद राजा को पहचानता था। बोला—"नहीं महाराज। अभी बहुत दिन नहीं हुए, जब महाराजाधिराज पृथ्वीराज ने कन्नौज में संयोगिता का वरण किया था। संयोगिता के मन में जो बात थी, वह चौहानराज ने पूरी की थी। कुमार उनसे कुछ छोटे सामंत नहीं हैं।"

राजा की दृष्टि पूर्व-काल की ओर गई। एक आह भरकर बोला—"गोपीचंद, क्या समय था। जैसा पृथ्वीराज वैसे ही हमारे पूर्वज खेतसिंह। कैमास थे, चामुंडराय थे, कान्ह थे। अब ऐसे सामंत नहीं होते! जिस समय पृथ्वीराज ने संयोगिता का हरण किया, खेतसिंह उनके साथ थे। उन्होंने उस समय राठौरों के साथ जैसे कुछ हाथ किए, उससे हमारा कुटुंब अमर हो गया है।" फिर कुछ सोचने के बाद आग्रह के साथ बोला—"गोपीचंद, तुम कुछ सम्मति दे रहे थे?"

गोपीचंद ने बिलकुल बदला हुआ स्वर देखकर कहा—"महाराज,

अभी सोहनपाल बुंदेला को न निकाला जाय। विष्णुदत्तजी के लौटकर आने तक बुंदेला को अटकाए रखना चाहिए। यदि दिल्ली की अवस्था हमारे अनुकूल हुई, तो हम सोहनपाल से यह कहेंगे कि सहायता देने को तैयार हैं, परंतु पहले हमारे राजकुमार के साथ अपनी पुत्री को ब्याह दो। यदि उसने न माना, तो बुंदेला-कुमारी का हरण किया जायगा। यदि दिल्ली की अवस्था अनुकूल न हुई, तो वीरपाल को महौनी लिख दिया जायगा कि हमने सोहनपाल को सहायता देने से इनकार कर दिया है। इधर बुंदेला-कुमारी का हरण होकर सोहनपाल को यहाँ से बिदा कर दिया जायगा। हर हालत में अभी सोहनपाल को अटकाए रहना चाहिए, क्योंकि यदि कुमार निराश हो गए, तो हम लोगों के सिर पर वज्रपात हो जायगा।"

हुरमतसिंह ने प्रसन्न होकर कहा—"तुम बड़े पैने हो गोपीचंद। परंतु इस सब हरण-वरण का प्रबंध तुम लोग जैसा जानो, कर लेना। मैं तो बुढ़ापे में अब हाथ-पैर हिलाने योग्य नहीं रहा।"

गोपीचंद हर्ष के साथ बोला, मानो कोई शिकार हाथ लग गया हो—"महाराज की अनुमति-भर चाहिए, फिर तो हम लोग सब प्रबंध कर लेंगे। राजधर तो इस कार्य में अपना रक्त बहाने को तैयार है।"

हुरमतसिंह ने निषेध की उँगली उठाकर कहा—"राजधर या कुमार, किसी को कोई हानि न पहुँचे।"

गोपीचंद ने चाल चूकी देखकर तुरंत उत्तर दिया—"नहीं महाराज, किसी को हानि न पहुँचेगी, क्योंकि बुंदेला-कुमारी का मन राजकुमार की ओर है।"

राजा ने किसी बात का स्मरण करके कहा—"गोपीचंद, कुमार का वह पत्र जो उसने भरतपुरा-गढ़ी में हेमवती के नाम लिखा था, मेरे पास है। कुमार को मैंने इसलिये नहीं दिखलाया कि वह संकोच और लज्जा करेगा, और उसका कुछ प्रयोजन भी नहीं। विवाह हो जाने के पश्चात् अवश्य

कुमार के पास वह पत्र उसके चिढ़ाने के लिये भेज दिया जायगा, और चंदेल को विवाह के उपलक्ष में जब पाग-दुपट्टा दिया जायगा, तब इस स्वामिधर्मी के लिये दो-एक गालियाँ दूँगा, उस समय कुमार भी उससे रुष्ट न होगा।"

गोपीचंद ने राजा को फिर ठिकाने लाने के लिये कहा—"अन्नदाता, आजकल तो कुमार, सहजेंद्र और राजधर की खूब बनती है। ये लोग प्रायः साथ रहते हैं।"

राजा बोला—"तब तो लक्षण बुरा नहीं जान पड़ता। यदि स्वयंवर हो, तो मुझे आशा है कि हेमवती नाग के गले में विजयमाला डाले। परंतु मुसलमानों के उपद्रवों के कारण अब यह प्रथा उठ-सी गई है। मैंने भी तो स्वयंवर की रचना नहीं की। गोपीचंद, एक और बात मेरे जी में उठ रही है।"

गोपीचंद ने बड़ी उत्सुकता और दीनता के साथ गर्दन आगे बढ़ाकर कहा—"हाँ, अन्नदाता!"

राजा बोला—"रानी मानवती का विवाह शीघ्र करना चाहती हैं। कुमार का विवाह चाहे पीछे हो, मानवती का पहले हो जायगा। अक्षय तृतीया के पीछे का कोई मुहूर्त निश्चय हो जायगा।" फिर हँसकर बोला—"मानवती कुमार को इतना अधिक चाहती है कि वह इस आतुरता से कुछ भयभीत-सी हो गई है। उसकी आकांक्षा है कि पहले भाई का विवाह हो जाय। मुझको आशा है कि तब तक कुमार के विवाह का भी निर्णय हो जायगा।"

गोपीचंद ने खाँसकर हामी भरी। गोपीचंद ने फिर कहा—"वास्तव में आतुरता का कोई कारण भी नहीं है। मुहूर्त का निश्चय महीने-दो महीने पीछे हो जायगा।"

असमर्थ मानवती

मानवती को अपनी सगाई का हाल मालूम हो ही गया था। पहले ही से वह क़िले में अग्निदत्त के कम आने के कारण व्याकुल रहा करती थी, अब उसकी व्याकुलता और बढ़ गई।

अग्निदत्त से मन की बात न कह पाने के कारण मन बहुत व्यथित रहता था। उसको विश्वास हो गया था कि रानी को उसके प्रेम का हाल मालूम हो गया है, इसलिये वह और भी गड़ी जाती थी। कई बार उसने अपने एक पूर्व-निश्चय का स्मरण किया, परंतु वर्तमान संकोच के कारण उसके हाथ-पैर रह-से गए थे। पत्र भेजने की सामर्थ्य उसके मन के संकोच और रानी के चौकसपने से दब रही थी, परंतु इससे उसकी यह आशा निर्बल नहीं पड़ रही थी कि अंत में किसी-न-किसी बहाने ब्याह की घड़ी टल जायगी, और अग्निदत्त उसका होगा। इस आशा की दुर्गम कठिनाइयाँ उसकी आँखों के सामने बहुत कम और बहुत हलके रूप में आती और उसकी आशा के प्रवाह में बह जाती थीं। एक दिन किसी तरह अग्निदत्त से उसकी भेंट क़िले में एकांत में हो गई।

अग्निदत्त ने हृदय के उमड़ते हुए नद को गले में रोककर कहा—"माना, अब तुम पराई हो जाओगी?"

मानवती की आँखों में अब वह प्रखर कृष्णता नहीं मालूम पड़ती थी। पलक ढले हुए-से रहने लगे थे। स्वर के मार्दव में क्षीणता आ गई थी।

बोली—"कभी नहीं। चाहे प्राण चले जाय।" परंतु स्वर में वह निश्चय नहीं था, वह दृढ़ता नहीं थी, और न था वह नवीन विश्वास।

अग्निदत्त न तो समालोचना के लिये आया था, और न इस समय समालोचना करने के योग्य था। उसने कहा—"तुम्हारी यह बात ही मेरी जीवन का आधार है। इधर किसी और से तुम्हारा ब्याह हुआ और उधर मैंने परलोक की यात्रा की।" अग्निदत्त का स्वर काँप रहा था।

मानवती रोने लगी। सिसकते-सिसकते कहा—"मैं क्या करूँ? कहाँ जाऊँ?"

अग्निदत्त ने पूर्व की अपेक्षा अधिक दृढ़ता के साथ कहा—"ऐसा दरिद्र विचार प्रकट मत करो। मैंने निश्चय किया है कि यदि ब्याह की व्याधि सिर पर आती दिखाई दी, तो हम लोग इस विस्तृत संसार में कहीं भी अपने लिये थोड़ा-सा स्थान ढूँढ़ निकालेंगे, और विघ्न-बाधाओं की कुछ परवा न करेंगे। क्या कहती हो?"

अग्निदत्त आकांक्षा के साथ उसकी ओर देखने लगा। वह बोली—"यदि माताजी ने पकड़ लिया, तो मैं मार डाली जाऊँगी।"

अग्निदत्त उत्तेजित होकर बोला—"जब तक मैं नहीं मार डाला गया, तब तक तुम्हारा कोई रोम भी नहीं छू सकता। बोलो, क्या कहती हो?"

मानवती ने कहा—"तुम जो कहोगे, सो करूँगी।"

अग्निदत्त प्रसन्न हो गया। परंतु जिस समय मानवती ने उत्तर दिया, उस समय रानी का क्रुद्ध चित्र उसकी आँखों के सामने घूम गया, और घूम गई कुंडार-राज्य की सारी प्रचंड प्रबलता।

अग्निदत्त को उस क्षीण उत्तर में भी आशा के वासंतिक विकास और ऊषा के बलिष्ठ पवन का आभास जान पड़ा।

इतने ही में नागदेव ने वहाँ आकर अग्निदत्त को पुकारा। उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही वह भीतर चला आया। मानवती कीर आँखें फूली हुई थीं और आँसुओं का एक-आध कण उसके सुंदर

नेत्रों के नीचे चमक रहा था। परंतु अग्निदत्त प्रसन्न दिखलाई पड़ता था।

कुमार समझ गया कि कोई कष्टदायक वार्तालाप अभी-अभी हो चुका है।

कुमार ने रुष्ट स्वर में कहा—"तुम दोनो मूर्ख हो। मानवती, यहाँ से जाओ।"

मानवती घायल हिरनी की भाँति वहाँ से चली गई। उसको विश्वास हो गया कि कुमार को भी उसके प्रणय का पता लग गया। संकोच और भय ने उसके हृदय में और भी स्थान पकड़ा।

अग्निदत्त से कुमार ने कहा—"तुम बड़े अज्ञान हो। तुम इस दरिद्र लड़की से यह कह रहे होगे कि राजधर उसके लिये उपयुक्त वर नहीं है। क्यों उसके मन में विष बो रहे थे? राजधर से तुम्हारा ऐसा क्या वैर है? बल, बुद्धि और शस्त्र-प्रयोग में वह हम लोगों में से किसी से कम नहीं है।"

अग्निदत्त ने पहले सोचा था कि सब डूबा, परंतु नागदेव के प्रश्नों से उसको मालूम हो गया कि वास्तविक विषय का उसको बोध नहीं हुआ संकोच की दीवार नहीं टूट पाई। कुछ बहाना बनाकर अपने योग्य उत्तर का देना दुस्तर होता, इसलिये नागदेव के प्रश्नों के अंतर्गत विषय को ही विवश ग्रहण करके उसने उत्तर दिया—"कह तो मैं यही रहा था।"

नागदेव ने अधिक रोष के साथ कहा—"तुम इस बेचारी का जीवन दुःखी मत बनाओ। उसका साहित्य के अध्ययन का समय गया। अब वह जीवन में प्रवेश करेगी। आशा है, तुम उसके कान में भविष्य में राजधर के विरुद्ध एक अक्षर भी न डालोगे। हम लोग निश्चय कर चुके हैं कि उसका विवाह राजधर के साथ होगा। उस कोमल-मन बालिका के भीतर अभी निर्णय या निश्चय करने की शक्ति

उत्पन्न नहीं हुई है । कृपा करके आगे इस विषय की चर्चा कभी मत करना ।"

फिर इधर-उधर की कुछ बात करने के बाद अग्निदत्त वहाँ से चला गया। उसको मालूम हो गया कि यदि अपनी प्रतिष्ठा प्यारी है, तो अब क़िले के भीतर नहीं जाना चाहिए । कुमार के बुलाने पर एकआध बार वह गया भी तो मानवती के साथ उसकी भेंट नहीं हुई । इस घटना के पश्चात् उसका कुमार के साथ रहना बहुत कम हो गया । कुमार राजधर के साथ अधिक रहने लगा । उसने एकआध बार राजधर से मिलाप कराने की चेष्टा भी की । ज़ाहिरा कुछ मिलाप हो भी गया, परंतु दोनो एक दूसरे की ओर बिलकुल नहीं झुके। अग्निदत्त एकांत में रहने लगा। यद्यपि देवरा से कनैर के फूल लाने का जी में उत्साह नहीं था, तथापि वह पहले की अपेक्षा इस काम को अधिक बार करने लगा। जब अग्निदत्त नहीं जाता था, तब दिवाकर तो जाता ही था ।

मंत्रणा

एक दिन सारौल से सहजेंद्र के लिये बुलावा आया। वह पहुँचा, तो मंत्रणागार में सोहनपाल, धीर प्रधान, पुण्यपाल, दलपति, स्वामीजी इत्यादि को पाया। वही माहौनी से वैर-प्रतिशोध का विषय और उसके लिये उपयुक्त उपकरणों की चर्चा थी।

पुण्यपाल ने सहजेंद्र से पूछा—"कहिए, कोई समाचार है?"

सहजेंद्र ने कहा—"अभी तो कोई विशेष बात नहीं है।"

स्वामीजी बोले—"मैं बतलाता हूँ विशेष बात। ये सब लोग दिन-रात इधर-उधर आखेट में व्यस्त रहते हैं, इनको और समाचारों से प्रयोजन ही क्या है? क्यों न कुँवर?"

सहजेंद्र कुछ साधारण उत्तर देना चाहता था कि धीर ने कहा—"नहीं स्वामीजी महराज, यह जो कुछ कह रहे हैं, अनुचित नहीं कह रहे हैं। फिर सहजेंद्र की ओर संबोधन करके कहा—"नागदेव के साथ तो अच्छी बनती है?"

सहजेंद्र ने उत्तर दिया—"जी हाँ, बहुत अच्छी।"

स्वामीजी बोले—"बनती रहे बहुत अच्छी। हो गया इससे जुझौति का संस्कार।"

पुण्यपाल बोल उठा—"जुझौति का संस्कार अवश्य होगा स्वामीजी, परंतु नागदेव के साथ कुछ दिनों आखेट खेलने से रुकेगा नहीं।"

स्वामीजी ने तीव्रता के साथ कहा—"तुम कभी किसी से लड़ बैठते हो, कभी किसी को अपमानित करते हो, उधर हमारी आशा इधर-उधर भटकती फिरती है। क्या होगा हे हरे!"

पुण्यपाल ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज, यदि कभी-कभी मेरी जीभ कड़ी पड़ जाती है, तो मैं क्षमा किया जाऊँ, परंतु क्षत्रिय अपमान सहन नहीं करता—और यही मेरा दोष है।"

स्वामीजी ने उसी तीव्रता के साथ कहा—"पड़िहारों से तुमने बिगाड़ कर लिया है, कछवाहे तुम्हारे ही कारण हमारे सिद्धांत के साथ सहानुभूति नहीं दिखलाते।"

पुण्यपाल ने अपने क्षोभ को न सँभालकर टोकते हुए कहा—"तो फिर मुझको बिदा दीजिए, मैं अपना काम देखूँ। मैं यदि ऐसा बुरा हूँ, तो मुझे छोड़िए।"

धीर ने व्यग्र होकर कहा—"हमको मँझधार में छोड़कर आप जा कैसे सकते है? यह काम है तो आप ही का। आप स्वामीजी के कहने का बुरा मत मानिए। उनका हृदय इस देश के कष्टों से भरा हुआ है, इसलिये वह इस देश के उद्धार में ज़रा-सी भी बाधा पड़ती हुई देखकर क्षुब्ध हो जाते हैं। देखते नहीं हैं आप कि वह भजन-पूजन छोड़कर इस राजकीय काम में व्यस्त दिन-रात फिरा करते हैं। यदि उनकी बात का हम लोगों में से कोई भी बुरा माने, तो इसमें उनका दोष न समझा जायगा, हमारा ही दोष समझा जायगा।"

पुण्यपाल का रोष बढ़ा नहीं, शांत भी नहीं हुआ, परंतु उसने स्तब्धता अंगीकार कर ली।

इतने में द्वारपाल ने सूचना दी कि मुकुटमणि चौहान आए हैं।

आगत-स्वागत के साथ उसको बिठलाया गया। यह धँधेरादेव भी कहलाता था। सहजेंद्र का मातुल था। ५० वर्ष के निकट आयु थी। चेहरे से विचारशीलता, दूरदर्शिता और कुछ शिथिलता प्रकट होती थी। संक्षेप में धीर ने उसको स्थिति का परिचय कराया।

चौहान ने कहा—"महाराज हुरमतसिंह ने उस दिन राजसभा में सब सरदारों को आदेश दिया था कि आपकी सहायता के लिये प्रयत्न किया

जाय। परंतु अधिवेशन के अंत में कुछ कहा-सुनी हो पड़ी, इसलिये सब जागीरदार उठकर चले गए। फिर भी मुझको आशा है कि सहायता मिलेगी। कछवाहे और पड़िहार यदि तैयार नहीं हैं, तो कोई बड़ी हानि नहीं। उनके विना भी हम लोगों के पास यथेष्ट बल एकत्र हो जायगा।"

पुण्यपाल ने कहा—"उस दिन की सभा तो विना कुछ निश्चय किए ही उठ गई थी। कुंडार के राजा से सेना की सहायता मिलने की आशा अवश्य होती है, परंतु अभी तक उसका दर्शन नहीं हुआ है।"

चौहान बोला—"उसी दिन कुछ-न-कुछ बात निश्चित हो जाती परंतु......।"

पुण्यपाल ने कहा—"परंतु मैं उस भिगमंगे पड़िहार की बात को सहन कैसे कर लेता? मैं तो उसी समय उसका मूड़ काट लेता, पर न-मालूम कैसे रुक गया।"

चौहान ने अपने वय और पद के भरोसे कहा—"वह उचित नहीं हुआ। तरह दी जानी चाहिए थी। उस दिन की बातचीत न-मालूम कहाँ-कहाँ फैल गई है। सारे पड़िहार बुरा मान गए हैं।"

पुण्यपाल ने उत्तेजित होकर कहा—"बला से बुरा मान जायँ। जिस पड़िहार के जी में भरी हो, वह चैत्र-पूर्णिमा के दिन मेरी तलवार से अपनी बजा ले। मैंने यदि उस दिन बरौल की भवानी के सामने उस नीच का सिर न काटा, तो पँवार काहे का।"

चौहान शांति के साथ बोला—"आपकी उमंग सराहनीय है, परंतु आप लोग जिस कार्य में प्रवृत्त हैं, उसका ध्यान आपको अधिक रखना चाहिए। इस तरह की परस्पर कलह से राजा सोहनपाल का कार्य बिगड़ेगा, बनेगा नहीं।"

पुण्यपाल ने दुर्दमनीय उत्साह के साथ कहा—"कुछ हो, पड़िहारों का घमंड चूर्ण किए विना मैं चैन न लूँगा। वे दुष्ट यों भी हमारा हाथ

बटाने को तैयार न थे, अब यह बहाना ले रहे हैं। माहौनी चाहे पीछे विध्वंस हो, पड़िहारों का नाश मैं पहले करूँगा। मेरी बात का बुरा मान गए हैं! बटमार कहीं के।"

चौहान दृढ़ता के साथ बोला—"जब यह बात है, तब अभी आपकी कार्य-सिद्धि में विलंब है। जो लोग आपकी सहायता करना चाहते हैं, वे आपकी यह उत्तेजित स्थिति देखकर अपना हाथ पीछे हटा लेंगे.......।"

मुकुटमणि चौहान ने अपना वाक्य पूरा नहीं कर पाया था कि पुण्यपाल ने आतुरता के साथ कहा—"ऐसे मित्रों को लेकर हम क्या करेंगे, जो यथा इच्छा हाथ को आगे बढ़ा और पीछे हटा ले सकते हैं?"

चौहान बोला—"इन सब बातों पर विचार करने का आपको अधिकार है। आप इस समय राजा सोहनपाल के मुख्य सहायक हैं। आशा है, आपकी बात पर वह अच्छी तरह ध्यान देंगे।"

पुण्यपाल ने तुरंत उत्तर दिया—"मैं तो अपने मित्रों में यही टाला-टूली बहुत दिनों से देख रहा हूँ। कभी बरसात है, कभी गर्मी है और कभी जाड़े की खेती की उलझन।"

मुकुटमणि का धैर्य जाने को हुआ, बोला—"सुनिए राव साहब, आपके मित्र कुछ अपना भी सुबीता देखते हैं। कीचड़ में पाँव डालने के पहले उसकी गहराई समझ ली जाती है।"

"जिसका अर्थ यह है कि चौहान महाशय अपनी अनमोल सहायता तभी देंगे, जब या तो पड़िहारों के मैं हाथ जोड़ लूँ या जब विजय श्री के लाभ करने में किसी प्रकार का भी संशय न रह जाय।"

पुण्यपाल की यह झंझा-प्रवाह-सदृश वार्ता सुनकर सब लोग सन्न रह गए। सोहनपाल को दुःख हुआ। धीर ने बीच में पड़कर कहा—"हम

लोग सब मँझधार में पड़ी एक टूटी नाव को खे रहे हैं। आपस में मन मुटाव बढ़ाने से वह नाव कहाँ की होकर रहेगी?"

चौहान बोला—"मैं तो कुंडार के महाराज का सामंत हूँ, बिना उनकी आज्ञा के कुछ न कर सकूँगा।"

पुण्यपाल ने बेचैन होकर कहा—"मैंने भी अन्यथा नहीं सोचा था, आप कोई सहायता न करें, पँवार अकेले निबट लेंगे।"

चौहान ने उत्तर दिया—"क्या आपने मुझको इसी के लिये बुलाया था? यदि विश्वास नहीं है, तो मेरी सम्मति क्यों लेते हो?"

धीर ने शांत करने की चेष्टा की, परंतु पुण्यपाल चुप थोड़े ही रह सकता था, बोला—"आपके भीतर क्या है, यह जानने के लिये बुलाया था। कुंडार के सेवक होने पर भी आप क्षत्रिय हैं, परंतु खेद है कि आपके मन की नोक झड़ गई है।"

चौहान को सह्य नहीं हुआ। बोला—"क्षत्रिय तो पँवार हैं, हम लोग तो निरे सेवक हैं। जो दीखे, सो कीजिए, हमको इससे कुछ मतलब नहीं।"

सोहनपाल से न रहा गया। बोला—'दीवान जू··"

पुण्यपाल ने कहा—"नहीं, इनको अपने मन की करने दीजिए। मैं अकेला माहौनी की धज्जियाँ उड़ाऊँगा।"

मुकुटमणि चौहान उठ खड़ा हुआ। बोला—"सबको मेरा जुहार स्वीकार हो। जिस सभा में लड़कों की तूती बोले, उसका रक्षक भगवान् ही है। मैं जाता हूँ। जब फिर कभी आवश्यकता हो, तब उपस्थित हो जाऊँगा।"

बहुत रोकने पर भी मुकुटमणि वहाँ से चला गया।

स्वामीजी ने कहा—"अरे बुद्धिहीनो, क्यों परस्पर लड़े मरते हो? क्यों एक दूसरे के नाश पर उतारू हो? क्यों अंधे हो गए हो? हाय! तुम्हें कुछ भी नहीं सूझता? ओफ़! बड़े खोटे हो।"

धीर ने ऐसे कष्ट स्वर में कहा कि जैसा उसको पहले कभी कहते नहीं सुना गया था—"जो कुछ हमारे दोष हैं, वे प्रकट हैं। परंतु आप तो क्षमताशाली हैं। आपकी दया-दृष्टि हमारे ऊपर से न हटे।"

स्वामीजी उठ खड़े हुए—"मैं जुझौति-भर में अग्नि प्रज्वलित करूँगा। हाय! यह वही देश है, जिसके गौरव की समता कन्नौज और उज्जैन भी नहीं कर सकते थे! सब खो गया। सब चला गया।"

स्वामीजी के चेहरे से मानो व्यथा टपक रही थी।

सोहनपाल ने कहा—"महाराज, यह सब तो होता ही रहता है। आप दुःखी न हों। हम लोग चौहान को मना लेंगे। वह तो अपने ही हैं। परंतु अब कुंडार को शीघ्र अपनी सहायता के लिये आरूढ़ करने की बहुत आवश्यकता है। सहजेंद्र।"

सहजेंद्र ने नम्रता-पूर्वक कहा—"मुझे कुंडार से पूरी आशा है। यद्यपि कुंडार के राजा ने निश्चय वचन नहीं दिया है, परंतु नागदेव संपूर्णतया हम लोगों के साथ है।"

धीर ने कहा—"आपका या दिवाकर का कोई झगड़ा नागदेव के साथ न हो।"

पुण्यपाल बोला—"परंतु अपमान का जीवन कदापि व्यतीत न हो।"

सहजेंद्र दूसरी आँधी के लिये तैयार न था। उसने उत्तर दिया—"आप ठीक कहते हैं।"

इसके बाद स्वामीजी विना भोजन किए यह कहकर चले गए—"मैं पलोथर पर एक पखवारा ठहरकर तप करूँगा और फिर तीर्थों का भ्रमण करने निकल जाऊँगा।"

दूर से फिर वह गीत सुनाई पड़ा—"धन्न कुची तारौ, बिलैया लै गई पारौ।"

होली

सहजेंद्र ने रात में आकर सारौल की भग्न सभा का हाल दिवाकर को सुनाया।

दिवाकर ने कहा—"समस्या विकट है।"

सहजेंद्र बोला—"क्या करें, कुछ कहा नहीं जाता। दो एक होते हैं, तो तीन अलग हो जाते हैं। सब फैल-फुट्ट और तितर-बितर हैं। इस पराक्रम का इतना भरोसा नहीं है, जितना नीति का आसरा है।"

दिवाकर ने सोचकर कहा—"पुण्यपाल बहुत ही उद्धत हैं, परंतु हृदय उनका बहुत शुद्ध है। किंतु उन्होंने मामूजू को भी नाराज़ कर दिया है। अब उनके मनाने में कुछ समय लगेगा। मित्र कम दिखलाई देते हैं और शत्रु अधिक। परंतु बुंदेला नाम की प्रतिष्ठा है और न्याय तथा धर्म हमारे साथ हैं, इसीलिये आशा है, अंत में सब विषमताएँ अनुकूल हो जायँगी।"

सहजेंद्र बोला—"हम लोगों को तो सुनते रहने और आज्ञा पालन करने का ही अधिकार है।"

इतने में पड़ोस में बड़ा गुल-गपाड़ा सुनाई पड़ा। होलिका-दहन के पूर्व की रात थी। होली की लकड़ी माँगने के बहाने बच्चे, जवान और बूढ़े इधर-उधर गला फाड़कर चिल्लाते फिरते थे और जिस किसी की लकड़ी और काठ आँख बचाकर उठा ले जाते थे और होली के ढेर में उसको इकट्ठा कर देते थे और उस बेचारे का कुछ यश-गान कर देते थे। इस व्यवहार से बुरा माननेवाले की सिवा कुछ बड़बड़ाने के और अधिक कुछ कहा-सुनी नहीं करते थे। ऐसे हुल्लड़ में शायद सहजेंद्र या

दिवाकर कभी शामिल नहीं हुए थे। इसलिये उसके प्रकट रहस्यों में उनको एक गुप्त आनंद-सा मालूम हुआ।

अग्निदत्त अपने घर पर था, उसने भी यह हुल्लड़ सुना। राजा की तरफ़ से एक होली अलग जलती थी। उसके यत्किंचित् धूम-धड़ाके में नाग और अग्निदत्त प्रायः प्रति वर्ष शामिल होते थे, परंतु इस वर्ष नागदेव के मनाने पर अग्निदत्त अस्वस्थता का बहाना लेकर होली की लकड़ी इकट्ठी करने में साथ नहीं हुआ।

प्रजाजन वैसे तो इस काल में दबे हुए-से रहते ही थे। जाति-पाँति और ऊँच-नीच का भेद बहुत काफ़ी था। एक वर्ग के दूसरे वर्ग से संसर्ग करने के बहुत कम अवसर थे, और विपत्काल के सिवा परस्पर खुलकर मिलना कठिन होता था; परंतु होली एक ऐसा त्योहार था, जिसमें मन की उच्छृंखलता अपने पूरे विकसित-रूप में कलोल किया करती थी। भेद-भाव और ऊँच-नीच दो-एक दिन के लिये विदा माँग जाते थे, और अनेक प्रकार के बोझों से दबी हुई स्वाधीन वृत्तियाँ निरंकुशता के राज्य में उमड़ पड़ती थीं—प्रायः गंभीर आचार-विचार की सीमा उल्लंघन होने की आशंका उत्पन्न हो जाती थी, और समता की प्रवृत्ति मूर्तिमान् होकर आ खड़ी होती थी।

दिवाकर और सहजेंद्र को बिना किसी विचार-क्रिया के इस हुल्लड़ के साथ सहानुभूति थी।

अग्निदत्त कुछ दुःखी-सा था, और इस समय सारे जग का आमोद-प्रमोद उसको जंजाल मालूम होता था। दूसरों के हर्ष पर उसको ईर्ष्या हो रही थी, इसलिये उस मृदुल मनोहर रजत-चाँदनी में उसको छटपटाहट से भरी नींद आई। यदि सारी प्रकृति और संपूर्ण संसार उसके साथ समवेदना प्रदर्शित करके रो उठता, तो उसको आनंद होता।

साधारण अभ्यास के अनुसार दिवाकर ने प्रातःकाल अग्निदत्त से फूल ले आने के विषय में पूछ लिया।

प्रातःकाल ही दिवाकर देवरा की ओर गया। वायु में शीत था और सुगंधि। घोड़े की सवारी के कारण शीत पवन शीतल मालूम होने लगा और दिवाकर को अपने कंधों में बल प्रतीत हुआ।

कनैर के बग़ीचे में पहुँचकर उसने चाव से बड़े-बड़े लाल-लाल फूलों को झूमते हुए देखा। फूलों में होकर तारा की सरल चितवन मुस्किराती हुई, मुकुलित, मालूम पड़ी। चमूमी पड़िहार की अनुमति फूलों के तोड़ने के लिये पहले ही से प्राप्त थी, इसलिये कोई बाधा न पड़ी। फूलों को तोड़कर दिवाकर ने एक साफ़ धुले हुए रूमाल में बाँध लिया, और वहाँ से शक्तिभैरव की ओर चला।

देवरा से शक्तिभैरव-दक्षिण दिशा में था। उक्त स्थान की ओर जाते हुए दिवाकर के दाएँ हाथ की ओर बेतवा का गहरा नीला जल कहीं शांत धीरे-धीरे बहता चला जाता था और कहीं पत्थरों में होकर भर्राटे के साथ। बाईं तरफ़ पलोथर की पहाड़ी के पीछे सूर्य देवता अपना रथ हाँकते हुए चले आ रहे थे। सामने शीतल सौरभमय समीर बह रहा था। दिवाकर की आँखों के सामने एक चित्र आया। गुलाबी धोती का कछोटा, स्वच्छ चमकती हुई चाँदी के पतले पैंजने, कंठ में एक-दो सोने के रत्न-जटित आभूषण, प्रशस्त भाल पर रोरी की बुँदकी, लंबे केश, बड़ी-बड़ी सरल, शुद्ध आँखें और सहज निर्दोष मुसक्यान।

दिवाकर ने मन में कहा—"तारा निस्संदेह सुंदर है।"

यह चित्र और भी कई बार उसकी आँखों के सामने हठ-पूर्वक आया था, और उसने आसानी के साथ उसको अपने सामने से हटा दिया था।

आज उसने सोचा—"इस चित्र के अंशों पर ज़रा अधिक ध्यान देने में क्या हानि है? थोड़ी देर इसका अध्ययन करूँ और देखूँ कि किस अंग में कितना दोष है।"

समालोचना आरंभ हुई। गणित का पैमाना प्रयुक्त किया गया। परंतु दोष निकालते-निकालते उसकी यह धारणा हुई—"तारा में कोई दोष

नहीं मालूम पड़ता। परंतु कदाचित् इसमें मेरी भूल है। एक बार उसको अच्छी तरह देखकर तब दोष-गुण का निर्धारण करूँगा।"

फिर उसने विचार किया—"परंतु मुझे इसकी आवश्यकता क्या है? गुण हों या दोष, मैं निर्धारित करनेवाला कौन हूँ? तब मुझे उसको बारीकी के साथ अवलोकन करने की व्यवस्था करने की अटक क्या?"

अंत में यही निश्चय मन में रहा। शक्तिभैरव पर पहुँचकर ज़रा ठहरा था कि तारा आई, मानो पवन पर बैठकर कमल की सुगंधि आई हो। सूक्ष्म अवलोकन न करने का निश्चय कर लेने पर भी दिवाकर ने उसको सूक्ष्मता के साथ देखने की चेष्टा की। किंतु उसको ऐसा जान पड़ा, जैसे ज्वराक्रांत मनुष्य की आँखें किसी पुस्तक को पढ़ने के लिये उद्यत होते ही काँपने लगती हैं—ऐसा जान पड़ता है, जैसे पुस्तक के अक्षर काँप रहे हों। दृढ़ता के साथ देखने की भी चेष्टा की, परंतु सब प्रयत्न व्यर्थ।

तारा ने पुष्प हाथ में लेकर अपनी सहज मुसक्यान और सरल मनोहर चितवन के सथ कहा—"कल होली है। अधिक फूल चाहने पड़ेंगे। और लेते आना।"

दिवाकर ने उत्साह के साथ स्वीकार किया। चलने लगा। एक बार तारा को फिर देखना चाहता था। ठिठका। तारा ने कारण समझने के लिये उसकी ओर देखा, परंतु दिवाकर साहस करने पर भी उस ओर अपनी गर्दन न मोड़ सका, और न कनखियों से देख ही सका।

तारा ने उस दिन जब शक्तिभैरव के सामने वंदना के लिये हाथ जोड़कर आँखें बंद कीं, तब उसको दिवाकर कुछ अधिक समय तक दिखलाई पड़ा।

दूसरे दिन दिवाकर फूल लाने के लिये शीघ्र उठा। उस शीघ्रता में कुछ आतुरता थी और उस आतुरता में कुछ उमंग, कुछ व्यग्रता, कुछ कौतूहल और कुछ अन्यमनस्कता भी।

एक बार कुछ शांत होकर उसने सोचा—"मैं देवरा जाने के लिये व्यग्र क्यों हूँ ? और तारा को देखने के लिये उससे अधिक व्यग्र ? मैं अपने साथ कपट नहीं करूँगा। अवश्य मेरे जी में तारा के दर्शनों के लिये चाह है। पर क्यों ? वह ब्राह्मण है, मैं कायस्थ। फिर ऐसी इच्छा क्यों ? यह दुराचार है। अनाचार है। दुश्शीलता है।" दिवाकर अपने ऊपर कुपित हो गया—"हूँ ! मन की यह मजाल ! इतना दूर निकल गया !" फिर अपने कोप और अपने अचंभे पर अपने आप हँस दिया—"नहीं, बात कुछ नहीं है। जिस तरह लाल कनैर को देखकर मन प्रसन्न हो जाता है, करौंदी के छोटे-छोटे फूलों पर मुग्ध हो जाता है, उससे अधिक और कुछ नहीं है।" परंतु यह आत्मविश्वास अधिक समय तक न ठहरा। उसने सोचा—"अधिक देखने की इच्छा उचित नहीं मालूम पड़ती। उसका कोई अच्छा कारण भी नहीं है ; परंतु एक बार, केवल एक बार, अच्छी तरह उस सरल मनोहर मुख को देख लेने में क्या हानि है ? इस बार के देख लेने में कुछ अपने को ठगा तो बैठूँगा ही नहीं, और हानि की संभावना तो कदाचित् उस समय हो सकती है, जब तारा को मेरे देखने से कोई संदेह हो।" दिवाकर को पूरा भरोसा हो गया कि एक बार के देख लेने से कोई विशेष बात उत्पन्न नहीं हो सकती।

देवरा जाने के लिये तैयार हुआ ही था कि इतने में घोड़े पर सवार अग्निदत्त मिला।

दिवाकर ने पूछा—"आज आप कहाँ जा रहे हैं ?"

"देवरा। आज मैं फूल ले आऊँगा। कोई और काम नहीं है। कई दिन से अस्वस्थ हूँ, इसलिये प्रातः-समीर का सेवन और थोड़ा-सा व्यायाम हो जाने से शरीर अच्छा हो जायगा।"

"अस्वस्थता की दशा में कहीं आपके शरीर को और भी कष्ट न हो।"

अग्निदत्त ने हँसकर कहा—"नहीं, ऐसा न होगा। मैं आपका बहुत कृतज्ञ हूँ। आपने मेरे लिये बहुत कष्ट उठाया है और कदाचित् अभी

और भी कभी-कभी उठाना पड़े।" इतना कहकर अग्निदत्त देवरा की ओर चला गया और दिवाकर वहाँ इस तरह खड़ा रह गया, जैसे कोई नवविवाहिता वधू किसी सुनसान स्थान में छूटकर अकेली रह जाय।

घोड़े को जहाँ का-तहाँ बाँधकर दिवाकर सहजेंद्र की दृष्टि से बचने के लिये घर के एक एकांत-स्थान में चला गया। उसने सोचा—"मैं आज केवल एक बार तारा को जी-भरकर देखना चाहता था, सो भाग्य में न लिखा था। क्या करूँ? कल सही। कल भी यदि न जा पाया, तो? तब फिर कभी सही।"

फिर उसको एक बात का स्मरण हो आया—"तारा ने और अधिक फूल लाने के लिये कहा था। मैं अग्निदत्त से कहना भूल गया। अभी वह दूर नहीं गए होंगे। देखूँ।" बाहर जाकर देखा, तो अग्निदत्त का कोई पता न दिखलाई पड़ा। पीछे-पीछे जाकर सूचना देने की इच्छा मन में उठी और चलने को तैयार हुआ कि नागदेव और राजधर आ पहुँचे। सहजेंद्र उन लोगों के इस अनुरोध पर सहमत हो गया कि शिकार के लिये चला जाय। दिवाकर व्यस्त था। उसने न जाने क्या ठान ली। अस्वस्थता का बहाना लेकर वह पीछे रह गया। परंतु झूठ बोलने पर उसको परिताप हुआ।

उसने मन में कहा—"अब अग्निदत्त के पीछे-पीछे न जाऊँगा। सहजेंद्र इत्यादि जब सुनेंगे कि उनके साथ न जाकर अग्निदत्त के पीछे-पीछे ऐसी ज़रा-सी बात के लिये दौड़ा गया, तब लज्जित होना पड़ेगा। परंतु तारा जब थोड़े फूल पावेगी, तब क्या कहेगी? न-मालूम उसने किस मतलब से अधिक संख्या में फूल मँगाए थे।" फिर सोचा—"तारा अभी घर पर होगी, उससे कहे आता हूँ कि मैं फूल तोड़ने नहीं जा सका हूँ और अग्निदत्त से अधिक फूल तोड़ लाने के लिये नहीं कह पाया है। परंतु अग्निदत्त के घर पर न होने के कारण मेरा जाना उचित कैसे हो सकता है? देखनेवाले क्या कहेंगे? घर के नौकर कह

देंगे कि अग्निदत्त नहीं है, तब तारा को कैसे बुलवा सकूँगा ? तो जिस मार्ग से वह शक्तिभैरव जाती है, उस मार्ग पर पहुँचकर सूचना दे दूँ। परंतु इससे तारा के जी में कोई अनुचित संदेह उत्पन्न न हो और वह मेरे इस कार्य से बुरा न मान जाय कि बाट में इस तरह इस छोटी-सी बात के कहने के लिये पहुँचने की आवश्यकता ही क्या थी ?"

बहुत सोच-विचार के पश्चात् मन की अस्त-व्यस्त अवस्था में दिवाकर भीतर जाकर बैठ गया। हेमवती अपने काम में लगी हुई थी, उससे कोई वार्तालाप नहीं किया। बहुत ताव-पेंच खाने के बाद दिवाकर ने स्थिर किया—"फिर कभी देखूँगा—केवल एक बार और जी-भर के।"

सर्प-दंश की चिकित्सा

दिवाकर ने भीतर जाकर चैन नहीं पाया। बेचैनी ज़रा बढ़ती देखकर उसने अपने चरित्र की दृढ़ता का आश्रय लिया। अमुक समय और अमुक अवसर पर मैंने उक्त दृढ़ता के साथ काम लिया था, यह विचार मनुष्य को किसी-किसी मौक़े पर बहुत सहायता देता है। दिवाकर को भी अपने भीतर दृढ़ता प्रतीत हुई। आकृति दृढ़तामय बोध होने लगी और उसने अपने आप कहा —"अब मुझे उसको देखना ही न चाहिए।" फिर एक क्षण बाद सोचा—"परंतु फूल देने जब जाऊँगा, तब तो देखना ही पड़ेगा। वैरी की तरह कैसे उससे मुँह मोड़कर चला आऊँगा? और यदि फूल देने के लिये जाऊँ ही नहीं, तो क्या बिगड़ेगा?" इस विचार से ज़रा वह विह्वल हो उठा। वह मन में बोला—"वाह, ऐसा करने से तो मैं अपने व्यायाम से भी हाथ धो बैठूँगा। इतनी कड़ाई अनुचित है—और बात भी तो कुछ नहीं है।" एक क्षण पश्चात् उसने निश्चय किया—"जैसे पुरैन का पत्ता पानी पर रहकर भी पानी से अलग रहता है, वैसे ही मैं एक बार देखकर किसी कलमष को मन में न आने दूँगा, न रहने दूँगा।" इस विचार ने मानो सारी समस्या हल कर दी।

कुछ घड़ी बाद टाप का शब्द उसको सुनाई दिया। उसने सोचा कि अग्निदत्त लौट आया, तारा भी आती होगी। परंतु मन में कोई बेचैनी उत्पन्न नहीं हुई।

सहजेंद्र के आने में विलंब हो गया, अतः अकेले ही भोजन किए। और उसके पश्चात् एक पुस्तक हाथ में लेकर लेट गया। पढ़ता रहा।

थोड़ी देर में जगजीवन के द्वार पर शोर सुनाई पड़ा। कोई कह रहा था—"जल्दी आइए, साँप ने अभी-अभी काटा है।"

दिवाकर ने कंठ पहचान लिया। अग्निदत्त का स्वर था।

तुरंत पुस्तक बिस्तरे पर में पटककर दिवाकर नंगे पैर बिजली के तेज़ी के साथ जगजीवन के मकान की ओर दौड़ा। इस समय जगजीवन और अग्दित्त पांडे निवास की ओर दौड़े चले जा रहे थे। दिवाकर तुरंत उनके पास पहुँच गया। पीछे से इसी मौक़े पर सहजेंद्र, राजधर और नागदेव आ गए। यह असाधारण दौड़ देखकर वे भी अग्निदत्त के द्वार पर पहुँच गए।

दिवाकर ने हाँफते-हाँफते अग्निदत्त से पूछा—"क्या बात है ? क्या किसी को साँप ने काट खाया है ?"

अग्निदत्त—"हाँ।"

दिवाकर —'किसको ?"

अग्निदत्त—"तारा को।"

दिवाकर—"कहाँ ?"

अग्निदत्त—"हाथ में, पहुँचे के ऊपर।"

तारा बाहर से थोड़ी ही देर पहले आई थी। पौर के एक कोठे में से कुछ सामान लेने गई। धूप में से आने के कारण आँखों में चका-चौंध लगी हुई थी। ठीक तौर पर न देख सकी। सामान टटोलने के लिये हाथ डाला कि साँप ने काट खाया।

पौर में उस समय अग्निदत्त बैठा हुआ था। तारा ने चिल्लाकर कहा कि साँप ने काट खाया। अग्निदत्त ने तुरंत कोठे में जाकर लकड़ी से साँप को मार डाला, क्योंकि वह अभी भागा नहीं था। बिलकुल काला और बड़ा साँप था। इसके पश्चात् तारा को वहीं थर-थर काँपते हुए लोहू-लुहान हाथ लिए छोड़कर वह जगजीवन वैद्य को लिवाने दौड़कर गया और दौड़ता ही लिवा लाया। यह प्रकट हो ही चुका है। दिवाकर इत्यादि भी साथ-ही-साथ आ गए थे।

तारा कुछ तो घबराहट और कुछ दंश के कारण खड़ी न रह सकी।

जिस समय जगजीवन इत्यादि पौर में आए, वह गिरी हुई मिली। अग्नि-दत्त की आँखों में आँसू आ गए। बोला—"हाय मेरी बहन! तारा! तारा!"

तारा ने क्षीण स्वर में कहा—"भया!" पर वह रोई नहीं।

दिवाकर के चेहरे से भय और व्याकुलता टपकी पड़ती थी। परंतु वह उद्यत भी ऐसा दिखलाई पड़ता था कि यदि प्राणों के बदले प्राण मिल सकते हों, तो वह तारा के लिये अपने प्राण दे सकता था। जगजीवन ने जल्दी से नाड़ी देखी। बोला—"नावते को बुलाकर गंडा बँधवाओ। मेरे पास औषधि भी बहुत बढ़िया है, परंतु उसके सांगोपांग तैयार करने और प्रयोग करने में कुछ विलंब लगेगा।"

जगजीवन चतुर मनुष्य था। उसने अपनी दवा की तारीफ़ भी कर दी और साथ ही इस बात का भी प्रबंध कर लिया कि यदि दवा न चली, तो विलंब की ओट में असफलता के अपयश से बचाव हो जायगा। नावते का बुलावा भी कुछ विश्वास, कुछ भय और कुछ अपयश के बचाव के उद्देश्य से प्रस्तावित हुआ था।

नाग, सहजेंद्र और राजधर भी इस अवसर पर पौर में आ गए थे।

नाग ने कहा—"घाव को काटकर तुरंत उसका रक्त निकाल दीजिए। जब तक आपकी दवा लगेगी और नावता आवेगा, तब तक उस बेचारी लड़की का प्राण ही समाप्त हो जायगा।"

दिवाकर ने व्यग्रता के साथ कहा—"क्या कोई और उपाय नहीं।"

जगजीवन ने उत्तर दिया—"है, परंतु अतीव कठिन है। कोई अपने प्राणों पर खेलकर मुँह से घाव के विष को चूस ले। अभी साँप को काटे अधिक विलंब नहीं हुआ है।" और उसने एक क्षण में सब उपस्थित लोगों के चेहरों की ओर निगाह डाली। कोई आगे न बढ़ा। सहजेंद्र ने कुछ लक्षण साहस का दिखलाया, परंतु किसी ने वेग को लक्ष नहीं कर पाया, केवल देखा। दिवाकर का मुँह घाव पर लग चुका था।

सबके मुँह से इस भीम कर्म पर "ओफ़्" निकल पड़ा, और धीरे-धीरे सब दिवाकर को घेरकर खड़े हो गए। अग्निदत्त बहुत चिंता के साथ उसकी ओर देख रहा था।

दिवाकर कोमलता के साथ अपने दोनो हाथों से तारा का पहुँचा पकड़े हुए था, और बड़ी दृढ़ता के साथ घाव को चूस रहा था।

तारा ने आँखें खोल दी थीं। वह अचेत नहीं थी, परंतु मुख मुर्झा गया था। उसने हाथ को हटाने की चेष्टा नहीं की, लेकिन वह दिवाकर को प्राण-बलिदान का निषेध करना चाहती थी, और वह निषेध उन मधुर और करुण नेत्रों में वर्तमान था।

जगजीवन ने कहा—"वाह, शाबाश! परंतु पेट में न जाने पावे। थूकते जाओ।"

दिवाकर चूसता गया और थूकता गया। थोड़ी देर में घाव बिलकुल साफ़ हो गया, और दो जगह बहुत बारीक छेद दिखलाई पड़ने लगे।

जगजीवन ने कहा—"मेरी समझ में सब विष दूर हो गया है। अब आप छोड़ दें।"

परंतु दिवाकर ने नहीं छोड़ा। उसको संदेह था कि कदाचित् विष किसी अंश में बाक़ी हो। तारा के मुँह पर पसीने की बूँदें बिखर गईं। लंबे-लंबे केश इधर-उधर फैल गए। अब वह अचेत नहीं थी। परंतु आँखों से व्याकुलता टपक रही थी।

इस बीच में जगजीवन एक ओषधि खाने और लगाने की ले आया। बोला—"अब बस करो।"

इस पर दिवाकर ने घाव को छोड़ दिया। दिवाकर के मुख पर इस समय एक ऐसी दीप्ति व्याप्त हो रही थी, जैसी देर के बाद अपनी मा को देखने पर छोटे-से बालक के मुख पर दिखलाई पड़ती है।

जगजीवन ने नाड़ी देखकर खाने की दवा दे दी, और कुछ दवा घाव पर लगा दी। बोला—"अब कोई भय नहीं है। लड़की बच गई।"

अग्निदत्त ने दिवाकर को गले लगा लिया। आँखों में आँसू थे और गले में कंप। बोला—"आज तुमने जिस बहादुरी के साथ मेरी बहन के प्राण बचाए, उसके लिये यह वंश सदा कृतज्ञ रहेगा।"

दिवाकर ने सिधाई के साथ कहा—"उँह! मैंने किया ही क्या है? ज़रा-सी बात थी।"

सहजेंद्र की छाती गर्व के मारे फूल उठी। आँसू को मुश्किल से छिपाकर पोंछा। परंतु गले के कंप को वह न छिपा सका। हँसा, परंतु होठ थिरक गए। बोला—"अरे दिवाकर, मैं आज तक यह नहीं जानता था कि तू रक्त ऐसे मज़े में चूस लेता है। राक्षस!" दिवाकर हँसने लगा।

नाग ने भी दिवाकर को गले लगाया। कहा—"बुंदेले जिसके मित्र हों, उसको गर्व करना चाहिए और जिसके शत्रु हों, उसको चैन की नींद न सोना चाहिए।"

राजधर की प्रशंसा करने के लिये व्यग्र मालूम पड़ता था, परंतु उसकी बात में ईर्ष्या की मात्रा अधिक थी।

जगजीवन ने इस आनंद-वार्ता को बीच में ही समाप्त कर दिया। बोला—"आप लोग इस बात को शायद भूल गए हैं कि दिवाकरजी ने भयंकर काले साँप का विष अपने मुँह में अभी हाल ही में रक्खा है। मैं इनको ले जाकर अभी एक दवा से इनका मुँह धुलाता हूँ, और खाने के लिये भी कुछ जड़ी-बूटी देता हूँ, जिससे यदि विष का कोई प्रभाव हो भी गया होगा, तो दूर हो जायगा।"

दिवाकर ने दृढ़ता के साथ कहा—"आप मेरी चिंता न करें। थोड़ी देर यहीं ठहरकर पहले इनकी अवस्था को देखते रहें।"

जगजीवन ने आत्मविश्वास-पूर्ण वैद्य की तरह हँसकर उत्तर दिया—"आप भरोसा कीजिए। आपका त्याग पूर्णता के साथ सफल हो गया। अब कोई संकट नहीं है। बात ग़लत निकले, तो जीभ काट लेना।"

अग्निदत्त ने नम्रता के साथ कहा—"वैद्यजी ठीक कहते हैं। उनका

नाड़ीज्ञान दूर-दूर तक प्रसिद्ध है। यदि तारा की अवस्था ज़रा भी नाज़ुक होती, तो वह स्वयं उसको छोड़कर न जाते।"

नागदत्त ने भी समर्थन किया। राजधर ने भी कुछ भरभराकर कहा—"अब आप कुछ चिंता न करें। सब विष चूसा जा चुका है। कोई संकट नहीं है। चलिए वैद्यजी के यहाँ।"

अग्निदत्त ने अब राजधर की ओर ध्यान दिया। आँख करारी हो गई, परंतु बोला कुछ नहीं। दिवाकर से मुस्किराकर कहने लगा—"ये सब आपको यहाँ न ठहरने देंगे। वास्तव में है भी आपके मुख शुद्ध होने की आवश्यकता।" फिर तारा की ओर देखकर बोला—"तारा, सबको पहचानती है?"

तारा ने बिना प्रयत्न के मुस्किराकर कहा—"अब तो कुछ बात ही नहीं मालूम पड़ती।"

सब लोग दिवाकर को लेकर जगजीवन के घर चलने लगे। जाते समय तारा ने दिवाकर की ओर देखा। आँखों में सतृष्ण कृतज्ञता उछल रही थी। एक बार और देखा था। वह कृतज्ञता एकमुख थी और यह सहस्रमुख। दिवाकर ने अच्छी तरह देखा, पर और किसी ने नहीं।

पराजय

उस दिन संध्या-समय तक तारा बिलकुल स्वस्थ हो गई, और दूसरे दिन शक्तिभैरव पर जल और पुष्प चढ़ाने के लिये गई। दिवाकर की आकांक्षा थी कि वह स्वयं फूल तोड़ने के लिये जाय। ऐसा ही हुआ। उसने आज पहले से अधिक कनैर तोड़े।

जिस समय वह शक्तिभैरव के मंदिर पर पहुँचा, तारा थोड़ी देर पहले आ चुकी थी। दिवाकर जब जाया करता था, एक जगह चुपचाप बैठ जाया करता था। इस व्रत की घट-बढ़कर ख़बर शक्तिभैरव-ग्राम में भी पहुँच चुकी थी। आरंभ में तो सबके गार्हस्थिक रहस्यों के जानने का स्वत्व रखनेवाली जनता ने यथेष्ट कौतूहल प्रकट किया, परंतु उसमें कोई विशेष बात न देखकर और कठोर व्रत की बात समझकर बाद को दख़ल नहीं दिया। इसीलिये दिवाकर के फूल तोड़कर प्रायः आने पर सर्वांतर्यामी जनता ने अधिक ध्यान देना छोड़ दिया, और इतने पर ही संतोष किया कि देवताओं से संबंध रखनेवाले विषयों की छेड़-छाड़ नहीं करनी चाहिए।

तारा को वहाँ पहले ही से आया हुआ पाकर दिवाकर को कुछ आश्चर्य हुआ, कुछ भ्रम और बहुत हर्ष।

संकोच तो नहीं हुआ, पर रोमांच हो आया। दिवाकर ने तारा से कहा—"आज मैं तुम्हारे लिये बहुत फूल ले आया हूँ।"

तारा नव-प्रस्फुटित कली की तरह का मुँह बनाकर बोली—"वाह, कल तो ले नहीं आए। आप कल क्यों नहीं आए थे?"

दिवाकर ने तुरंत कई झूठे उत्तर सोचे, परंतु अनभ्यास के कारण हो अथवा और किसी कारण से हो, वह कह एक भी न सका। उसने एक भद्दा-सा प्रश्न किया—"कल इतने ही फूल लाऊँ या और अधिक?"

और साथ ही किसी लज्जा के मारे दिवाकर का चेहरा लाल हो गया।

तारा अपने पहले प्रश्न शायद भूल गई, सरलता-पूर्वक बोली—"चाहे जितने ले आना।"

दिवाकर उसके स्वास्थ्य के विषय में प्रश्न करना चाहता था, परंतु दंश-घटना के साथ अपना संबंध देखकर वह चुप ही रहा। एक बार अच्छी तरह देखने की उसकी इच्छा हुई और उसने देख लिया। तारा भी देख रही थी। दिवाकर उसको वहीं छोड़कर चल दिया। जब पास था, पीछे लौटकर देखने की इच्छा की, परंतु गर्दन न मुड़ी और आँखों ने कहना न माना। जब थोड़ी दूर निकल गया, तब लौटकर देखा, वहाँ से तारा तो क्या शक्तिभैरव का मंदिर भी न दिखाई देता था। तो भी उसके मुख पर इतना हर्ष अंकित था, मानो बुंदेलों के लिये उसने कोई युद्ध विजय किया हो।

मार्ग में आँखों के सामने तारा का चित्र कई बार आया। उसने उस चित्र से लड़ाई नहीं ठानी। कुसुम की कोमलता और प्रभात-प्रभा की मृदुलता उस चित्र में थी।

एक बार वह अस्थिर चित्त का चंचल हर्ष स्थिर हुआ।

दिवाकर ने गंभीर होकर अपने मन में कहा—"तारा सुंदर है, मनोहर है, मृदुल है और कोमल है। गंगा की तरह शीतल है और सूर्य की तरह पवित्र है। परंतु मुझे उससे क्या? वह कौन और मैं कौन! ब्राह्मण और अब्राह्मण के संयोग की कल्पना क्या? इसका तो विचार तक वर्णाश्रमधर्म के विरुद्ध है। परंतु सूर्य की, चंद्रमा की, नदी की, पर्वत की और पुष्प की कोई जाति नहीं। कोई भी देख ले। यदि मैं फूल को तोड़ूँ, तो दोष भले ही हो; परंतु जी भरकर देख लेने में किसी का क्या बिगड़ता है?" फिर दृढ़ होकर अपने-आप बोला—"इससे अधिक मैं न कुछ करता हूँ और न करूँगा ही।" दिवाकर ने सोचा—"मैंने अपने ऊपर विजय प्राप्त कर ली। क्या वास्तव में?"

उधर मंदिर से दिवाकर के चले जाने के पश्चात् तारा ने उस ओर नहीं देखा, जिस ओर दिवाकर गया था। वह मंदिर में गई और भक्ति-पूर्वक उसने मूर्ति पर जल और पुष्प चढ़ाए। आँखें मूँद कर सबसे पहले उसने यह प्रार्थना की कि जिस पुरुष ने अपने प्राणों की बाज़ी लगाकर उसको बचाया था, वह दीर्घजीवी हो। उसके बाद वह अपने व्रत के उद्देश्य के विषय में अर्चा करने लगा। परंतु किसी भाँति भी वह उस चित्र को अपने मन से न हटा सकी, जिसमें कोई अर्द्ध अचेत विह्वल पड़ा हुआ था और किसी घाव के ऊपर कोई अपना मुँह लगाए चिंता, उत्कंठा, दृढ़ता और आतुरता के साथ विष चूस-चूसकर फेंकता जाता था। तारा ने वहीं सोचा—"यदि दिवाकर अपने इस दुस्साहस के कारण समाप्त हो जाता, तो क्या होता? संसार में मुझको कहीं मुँह दिखलाने के लिये स्थान तक न रहता। बड़ा वीर है, बड़ा साहसी है। उसके मुख पर बड़ा तेज है और आँखों में बड़ी शक्ति है।"

पांडे का पत्र

अग्निदत्त बहुत दिनों से क़िले में नहीं गया था । कुमार नाग से उसका मिलाप यदा-कदा होता था। नाग अधिकतर सहजेंद्र के साथ शिकार पर रहता था । राजधर परछाहीं की तरह उसके पीछे-पीछे फिरता था । परंतु अग्निदत्त उतना दुःखी नहीं जान पड़ता था । यह नहीं मालूम कि उसको यह आशा थी या नहीं कि किसी प्रकार कदाचित् किसी अदृष्ट असंभव घटना के घटित हो जाने के कारण मानवती का विवाह राजधर के साथ न हो पावे, परंतु उसकी मुख-कांति मलिन नहीं मालूम पड़ती थी । युवकों के मन पर कष्ट की छाया, शायद, बहुत दिनों तक नहीं रहती । कष्ट उसके भीतर धधकता हो या न हो, उसकी आँखों में दूसरों से छिपने की वृत्ति दिखलाई पड़ती थी, और दिखलाई पड़ती थी होठों के आस-पास एक अस्पष्ट दृढ़ता—और शायद अपने कष्ट को चुपचाप सहन कर लेने का धैर्य ।

चैत्र-पूर्णिमा के ५-६ दिन पहले की बात थी । दिल्ली से विष्णुदत्त पांडे का भेजा हुआ एक मनुष्य पत्र लेकर आया । हुरमतसिंह ने मंत्री से उस पत्र को सुना और अग्निदत्त को बुलवाया ।

अग्निदत्त के पहुँचने पर राजा ने कहा—"मैंने अभी-अभी पांडेजी का पत्र पाया है । तुम्हारे लिये भी इसी में कुछ संवाद है । कुछ आसामियों के नाम लिखे हैं, जिनसे तुम रुपया उगाह लेना और घर को सँभाले रखना, बही-खाता लिखते रहना । इसके सिवा और उसमें कुछ नहीं है । मैं तुमको पत्र पढ़ने को दूँगा । राज्य के संबंध में जो बात लिखी है, तुम्हें भी वह सुना दी जायगी, तो कुछ हानि नहीं होगी । पांडेजी अक्षय तृतीया तक आ जायँगे । वहाँ का वृत्त यह है कि बादशाह बलबन मर गया है । उसके

लड़के बोगरा को गद्दी नहीं मिली, पोता मुईज़ुद्दीन कैकोबाद गद्दी पर बिठलाया गया है। सोलह-सत्रह बरस का निर्बल-तन और दुर्बल-मन छोकरा है। बड़े-बड़े सरदार आपस में गुट्ट बाँधकर शक्ति हथियाने की चिंता में लगे हुए हैं, और एक गुट्ट दूसरे गुट्ट के ध्वंस की तैयारी में निरत है। यह अभी या बहुत समय तक नहीं कहा जा सकता कि अंत में किस गुट्ट की विजय होगी। मेवाड़, मेवात, रणथंभोर इत्यादि दिल्ली-विध्वंस की तैयारी में हैं। बलबन के सूबेदार स्वतंत्र राज्य स्थापित करके आस-पास के राज्यों के हड़पने की चिंता में अनुरक्त हैं। दिल्ली के साथ हमारी संधि इस समय टूट-सी गई है। नई संधि इस कराल समय में किसके साथ की जाय और किसके साथ न की जाय, अथवा किसी के साथ की भी जाय। यह प्रश्न हमारे लिये कष्टसाध्य हो गया है।"

अग्निदत्त इस राजनीतिक विवेचना को सुनकर विचलित नहीं हुआ। बोला—"इससे महाराज के राज्य पर क्या प्रभाव पड़ सकता है? दिल्ली से संबंध रखने के कारण अनेक क्षत्रिय-राजा हम लोगों से रुष्ट हैं। यदि उस संबंध का विना लड़े-भिड़े ही विच्छेद हो जाय, तो इसमें हानि ही क्या है?"

हुरमतसिंह ने अवहेला के साथ कहा—"तुम अभी बच्चे हो, इस प्रश्न की उलझनों को नहीं समझ सकते हो। मैंने तुमको इस प्रश्न पर सम्मति देने के लिये बुलाया भी नहीं है। मैंने तुमको इसलिये बुलाया है कि तुम नाग के मित्र हो।"

अग्निदत्त की आँख में उठते हुए क्षोभ की एक रेखा आई, परंतु उसने अपने को संयत करके कहा—"आपकी आज्ञा उचित है।"

हुरमतसिंह ने कहा—"तुम्हें मालूम है कि सोहनपाल के एक कन्या है, जिसका नाम हेमवती है?"

"हाँ महाराज।" अग्निदत्त ने उत्तर दिया।

हुरमतसिंह बोला—"सच बतलाना। कुमार को आशा है कि बुंदेला-कन्या के साथ संबंध हो जायगा?"

"हाँ महाराज, परंतु..." अग्निदत्त ने अकचकाकर कहा।

हुरमतसिंह ने क्षुब्ध होकर कहा—"परंतु क्या ?"

हुरमतसिंह के क्षोभ पर अग्निदत्त को रोष नहीं आया। परंतु संग्राम करने की वांछा उसको हुई। आँखें नीची करके किंतु निर्भीकता के साथ बोला—"सोहनपाल महाराज की जाति के नहीं हैं, यही इस संबंध में बड़ी भारी बाधा।"

हुरमतसिंह ने अपना होंठ कुतरकर कहा—"तो क्या हम लोग नीच हैं ?"

अग्निदत्त ने अधिक नम्रता और अधिक निर्भीकता के साथ उत्तर दिया—"नहीं महाराज, हम लोग ऐसा ख़याल नहीं करते, परंतु जाति-विषयक विचार बुंदेलों के विचित्र हैं।" फिर सतर्क होकर बोला—"महाराज, वे लोग कहते हैं कि क्या कोई खंगार अपनी कन्या को बुंदेले के साथ ब्याहने को तैयार होगा ?"

राजा खड़ा हो गया। आँख से अंगार बरस गया। परंतु अग्निदत्त ज़रा भी भयभीत नहीं हुआ।

हुरमतसिंह ने हवा में हाथ फेंककर कहा—"इन भिखमंगों की यह हिम्मत ? खंगार-कन्या के साथ बुंदेले का संबंध ? अग्निदत्त, तू ठठोली करता है। बोल छोकरे, बोल कि किसी बुंदेले ने ऐसा नहीं कहा है।"

अग्निदत्त बिलकुल नहीं सकपकाया। उसने कठोर मृदुलता के साथ उत्तर दिया—"नहीं महाराज, मैं ठठोली की ढिठाई नहीं कर सकता हूँ। परंतु मैं किसी विशेष बुंदेले का नाम भी नहीं बतला सकता हूँ, जिसने ऐसी बात कही हो।"

हुरमतसिंह कुछ शांत होकर बैठ गया। मंत्री से बोला—"गोपीचंद, सोहनपाल को लिखो कि हम इस समय कोई सहायता नहीं दे सकते, वह कुछ और उपाय करें।"

गोपीचंद ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज..."

"तुम मूर्ख हो। जो कहता हूँ, सो करो।" हुरमतसिंह बोला।

गोपीचंद के विनम्र हठ ने राजा का पीछा नहीं छोड़ा। बिनती की—"महाराज, कुमार से भी कुछ पूछ लेना उचित होगा।"

राजा थोड़ी देर तक कुछ सोचता रहा। कुछ क्षण बाद शांत होकर बोला—"तुम ठीक कहते हो गोपीचंद, परंतु मेरा निश्चय यह है कि यदि बुंदेला-कुमारी ने स्वयं नाग को पाणिग्रहण का वचन दिया हो, तब तो मैं सोहनपाल की सहायता में अपने राज्य के कुशल-क्षेम की होड़ लगा सकता हूँ, और यदि केवल निराधार आशा ही हो, तो स्पष्ट इनकार करके इस प्रश्न की गुत्थी को काट-कूटकर अलग कर दूँगा। तुम बतलाओ अग्निदत्त, तुमको मालूम होगा।"

अग्निदत्त ने उत्तर दिया—"जहाँ तक मुझको मालूम है, हेमवती से कभी आज तक कोई बातचीत कुमार की नहीं हुई।"

हुरमतसिंह ने कहा—'तू झूठ बोलता है। भरतपुरा की गढ़ी में कुमार से उसकी बातचीत हुई है।"

मंत्री ने राजा की ओर करुण दृष्टि से देखा, परंतु हुरमतसिंह मार्ग में पैर रखने के बाद पीछे हटना बहुत कम जानता था। लापरवाही के साथ बोला—"मुझे सब मालूम है। कुमार ने हेमवती के पास चिट्ठी भेजी थी।"

अग्निदत्त चौंक पड़ा। राजा ने देख लिया। वक्र मुसकिराहट के साथ बोला—"है न झूठा? मैं पहले ही जानता था। परंतु आश्चर्य यह है कि पत्र-प्रेषण और प्रणय के पश्चात् भी आशा का मार्ग सहज नहीं है! बोलो अग्निदत्त, क्या बात है? यदि कुमारी नाग को चाहती है और उसका बंधुवर्ग रुकावट डाले है, तो मैं तुरंत उस विघ्न को पार करूँगा।"

अग्निदत्त विचलित हो गया था। पत्र का हाल राजा को कैसे विदित हुआ? अग्निदत्त का विचार-प्रवाह खंड-खंड होकर बहने लगा, परंतु

उसके चित्त में एक प्रेरणा थी। उसी के वशीभूत होकर वह बोला—"पत्र? पत्र—हाँ, परंतु क्या जानूँ, क्या कहूँ? कदाचित कुमारी की इच्छा हो या न हो, परंतु अभिमानी बुंदेले संबंध नहीं करना चाहेंगे, यह स्पष्ट मालूम होता है। वे लोग आपका भोजन ग्रहण नहीं करते।"

हुरमतसिंह कुपित नहीं हुआ। दृष्टि में तीव्रता और स्वर में दृढ़ता थी। बोला—"यदि कुमारी की ज़रा-सी भी इच्छा है, और बुंदेलों की किंचित् भी अनिच्छा, तो मैं देखूँगा कि संबंध क्यों नहीं होता।"

फिर सोचकर उसने कहा—"गोपीचंद, सोहनपाल को अभी केवल यह लिखो कि आपको सहायता दी जायगी, परंतु एक शर्त के साथ। अथवा यह मत लिखो। केवल इतना लिखो कि विष्णुदत्त के न लौटने तक सहायता की आशा न की जाय।"

गोपीचंद ने उत्तर दिया—"अन्नदाता, इसके लिखने की तो इस समय कोई बड़ी आवश्यकता नहीं मालूम पड़ती। वह तो उनको पहले ही बतलाया जा चुका है।"

"नहीं।" राजा ने कहा—"सोहनपाल को पांडे के दूत के आने का समाचार विदित हो जायगा। बिना किसी प्रतिफल के मैं सहायता कदापि किसी हालत में भी न दूँगा। यदि घमंडी सोहनपाल को शर्त स्वीकार नहीं है, तो मैं अभी से उसको सतर्क नहीं करना चाहता हूँ। बिलकुल इनकार करके उसको निराश नहीं करना चाहता हूँ। जब तक मेरी मनोवांछित घड़ी नहीं आ गई, तब तक सोहनपाल को अटकाए रखना चाहता हूँ। बस, यही सब बातों का सार है। क्यों अग्निदत्त, नाग का दृढ़ संकल्प हेमवती के साथ विवाह करने का है? पीछे तो नहीं हटेगा?"

उनका दृढ़ संकल्प है और वह कदापि पीछे नहीं हटेंगे। अग्निदत्त ने उत्तर दिया।

इसके बाद राजा ने अग्निदत्त से जाने को कहा और वह मंत्री के साथ गुप्त मंत्रणा करने लगा।

अग्निदत्त बहुत दिन बाद क़िले में आया था। रानी से न मिलने की इच्छा होने पर भी वह मानवती से एकबार मिलना चाहता था, इसलिये भीतर गया। कुमार सहजेंद्र के साथ आखेट के लिये चला गया था।

एक ही स्थान पर रानी और मानवती मिलीं। मानवती ने रानी से पीछे जाकर अग्निदत्त को नमस्कार किया, और उदासी के साथ बेबसी की निगाह डालकर धीरे-धीरे वहाँ से चली गई। रानी के साथ अग्निदत्त बातचीत नहीं करना चाहता था, परंतु वहाँ से टल भी नहीं सकता था।

रानी ने स्वयं वार्तालाप आरंभ किया। बोली—"पांडे, मानवती का विवाह अक्षय-तृतीया के दिन होगा। तुम्हें मालूम है ?"

अग्निदत्त सन्न हो गया। दबे हुए गले से बोला—"मुझे तो नहीं मालूम।"

रानी प्रसन्न थी। बोली—"मैंने मुहूर्त निर्धारित कराया है। आज ही निश्चय हुआ है। वर भी योग्य है, क्यों पांडे ?"

पांडे का जी जल उठा। सहसा बोला—"वर तो अयोग्य है, परंतु मुझे उससे कुछ प्रयोजन नहीं है। मुझे तो कुमार के विवाह की अधिक चिंता है।"

रानी ने कहा—"वह भी होगा। यदि भाग्य सीधा हुआ, तो अक्षय तृतीया तक वह भी हो जायगा। नहीं तो पीछे देखा जायगा।"

अग्निदत्त ने कुटिलता के साथ सम्मति प्रकट की—"मुझे तो उसमें बहुत विघ्न-बाधाएँ दिखलाई पड़ती हैं।"

रानी ने विश्वास के साथ कहा—"उनसे भी पार हो जायँगे।"

अग्निदत्त चुप नहीं हुआ। बोला—"उनसे पार पाना कठिन मालूम होता है। खंगारों को बुंदेले अपने से बहुत हेठा समझते

हैं। वे कहते हैं कि हम नीच जाति में अपनी लड़की का संबंध नहीं करेंगे।"

रानी ज्वालामयी हो उठी। बोली—"हैं! बुंदेलों का यह घमंड! उनका यह साहस! यदि सोहनपाल की कन्या के साथ नाग का विवाह न हुआ, तो मैं अपने को रानी कहना छोड़ दूँगी। आग बरसाऊँगी, प्रलय मचवा दूँगी! ब्याह कैसे न होगा? अवश्य होगा।"

अग्निदत्त मन-ही-मन प्रसन्न हुआ। बोला—"एक जाति का दूसरी जाति में विवाह कैसे होगा?"

रानी ने कुपित स्वर में कहा—"चुप रहो अग्निदत्त। हम भी क्षत्रिय हैं और बुंदेले भी क्षत्रिय हैं।"

छुटपन के लाड़ से बिगड़े हुए अग्निदत्त ने हठ-पूर्वक कहा—"बुंदेले ऐसा नहीं समझते। परंतु यदि दोनो दल दो अलग-अलग जातियाँ भी हों, तो भी विवाह में क्या हानि है? मेरी समझ में ऐसा विवाह हो सकता है। पहले भी हुआ है।"

रानी वहाँ से बिना कुछ कहे उठकर चली गई। अग्निदत्त भी संतोष के साथ, जैसे किसी अच्छे खेत में हाथ डाला हो, वहाँ से चला आया। उसने वहाँ से चलते-चलते अपने आप कहा—"ये सब बल-पूर्वक विवाह कर डालने पर कटिबद्ध हैं। कोई और भी यदि ऐसा करे, तो इनको इसमें आक्षेप न करना चाहिए।"

*

राजधर

इसके एक दिन पीछे गोपीचंद से कुछ बातचीत करने के बाद राजधर नाग के पास अकेले में गया।

उसने नाग से कहा—"दिल्ली का समाचार तो आपने सुन ही लिया है। अब बुंदेलों की सहायता का प्रश्न बहुत जटिल हो गया है और उसके साथ ही अपना निजी प्रश्न भी।"

कुमार उदास था। बोला—"भविष्य उज्ज्वल नहीं मालूम पड़ता।"

राजधर ने कहा—"भविष्य अपने हाथ में है। आप यदि स्वीकृति दें, तो मैं एक प्रस्ताव उपस्थित करना चाहता हूँ।"

कुमार ने सहज ही अनुमति दे दी। राजधर बोला—"कुमारी की अवश्य इच्छा इस ओर मालूम होती है; परंतु बुंदेलों के साथ इतनी घनिष्ठता हो जाने के बाद भी बिलगाव स्पष्ट प्रकट होता रहता है।"

कुमार ने अधीर होकर कहा—"यह तो कोई नया समाचार नहीं है।"

राजधर ने सावधान होकर कहा—"मेरा निवेदन यह है कि ऐसी अवस्था में केवल एक उपाय है। हम लोग बुंदेलों को प्रसन्न करने के लिये अनेक यत्न कर चुके, परंतु उनका असह्य अभिमान अनुचित बाधा डाल रहा है। मेरी समझ में अब वह समय आ गया है, या शीघ्र आनेवाला है, जब सोहनपालजी से विवाह-संबंध की चर्चा स्पष्ट-रूप से कर दी जाय।"

नाग बोला—"यह तो सब ठीक है, परंतु इधर तो हम लोग उनको सहायता देने में हिचक रहे हैं, उधर हम उनसे कुछ याचना करना चाहते हैं। ऐसी दशा में यह प्रयत्न सफल होता नहीं दिखाई देता...।"

असहनीय है। खंगारों ने राज्य बुंदेलों की सहायता से स्थापित नहीं किया है। जिस बाहु-बल से उन्होंने इसको स्थापित किया है, उसी बाहु-बल से उसको बनाए हुए हैं, और बनाए रक्खेंगे, और जो उनका अपमान करेगा, उसको हाथ-भर लोहा खिला देंगे।"

नाग ने मानो राजधर की बात पर ध्यान न देकर कहा—"कुमारी हेमवती तो अवश्य चाहती होगी।"

राजधर ने दृढ़ता के साथ कहा—"यह तो ध्रुव निश्चय है। उस चाह के सामने जो विघ्न है, उसको हम लोग चूर्ण करेंगे।"

नाग ने कुछ व्याकुलता के साथ पूछा—"महाराज क्या कहेंगे? प्रधान मंत्री क्या कहेंगे?"

राजधर ने ठंडक के साथ उत्तर दिया—"वे इस बात के विरुद्ध नहीं हैं। मुझे मालूम है। अवसर आने पर महाराज आपसे स्वयं कहेंगे, पिताजी ने स्वयं मुझसे कहा है।"

नाग के मन का मानो काँटा निकल गया। बोला—"मुझसे न-मालूम यह होगा या नहीं। मेरा दिल धड़कता है, परंतु तुम लोग जो कुछ निश्चय करोगे, उसका मैं अनुसरण करूँगा।" फिर सोचकर बोला—"एक बात याद रहे। जिस प्रयास के साथ हम लोग इस कार्य में निरत होंगे, उसी प्रयास के साथ कार्य-समाप्ति पर सोहनपालजी की सहायता का काम करना पड़ेगा, फिर चाहे जो हो। विवाह हो जाने के पीछे बुंदेलों के जी में कोई बुराई रहेगी भी नहीं। क्योंकि फिर ऐसे निरर्थक भाव के लिये स्थान न रहेगा। एक बात और है। पहले बहन का विवाह हो जाय, तब इस काम में हाथ डाला जाय, और तब तक इस चेष्टा से दूर नहीं हटना चाहिए कि जिससे विवाह बिना बल-प्रदर्शन के हो सके।"

राजधर पिछली बात का कुछ उत्तर न देकर नीची गर्दन करके और आँखें छिपाकर वहाँ से चल दिया।

"मेरे देव"

कभी दिवाकर और कभी अग्निदत्त कनैर के फूल देवरा से ले जाकर शक्तिभैरव पर तारा को देते रहे। चैत्र-पूर्णिमा के दो-एक दिन पहले तारा ने कुछ संकोच के साथ, मुस्किराकर कहा—"कल आप कुछ अधिक फूल ले आएँगे?" और साथ ही उसका मुख कुछ रंजित हो गया।

दिवाकर ने आँख ऊँची करने के प्रयास में नीचे ही देखते हुए इस प्रार्थना को स्वीकार किया।

दूसरे दिन बड़े सबेरे दिवाकर देवरा गया। गर्मी पड़ने लगी थी, इस लिये यों भी तारा प्रातःकाल ही शक्तिभैरव की ओर चल पड़ा करती थी, और जो कोई फूल लेने के लिये देवरा जाता था, वह भी तड़के ही चला जाता था। आज दिवाकर कुछ और जल्दी निकल पड़ा।

बगीचे में चमूसी से भेंट हो गई। पहले भी वह कई बार मिला था, परंतु कोई विशेष बातचीत नहीं हुई थी। दिवाकर ने जुहार किया। चमूसी ने जुहार का उत्तर देकर कुछ रुखाई के साथ पूछा—"कब तक ये फूल देवता पर चढ़ाए जाया करेंगे?"

दिवाकर ने बुरा नहीं माना। ठंडी-ठंडी हवा चल रही थी। करौंदी और नीम के फूलों की सुगंधि से बन प्लावित हो रहा था। मन किसी धुन में मस्त था। बुरा मानने के लिये स्थान ही कहाँ था?

दिवाकर ने उत्तर दिया—"अक्षय-तृतीया तक। बस, इसके आगे आपके उद्यान पर आक्रमण नहीं होगा।"

चमूसी ने असंतुष्ट मनुष्य की तरह बड़बड़ाते हुए कहा—"ये पेड़ मेरे हाथ के लगाए हुए हैं। इन फूलों पर अब तक बहुत कम लोगों ने आँख लगाई थी। पर अब जान पड़ता है कि व्रतों और अनुष्ठानों के मारे एक

न बचने पाएँगे। क्या किया जाय? जब तक नौकरी करनी है, तब तक कुंडोर की जो आज्ञा होगी, माननी पड़ेगी। क्यों महाशय, आप इस लड़की के कौन हैं, जिसकी तपस्या के साधनार्थ बड़े सबेरे आपको यहाँ बहुधा आना पड़ता है?"

दिवाकर कोई कड़ा उत्तर देना चाहता था, परंतु ऐसा न करके बोला—"ये फूल विष्णुदत्त पांडे की कन्या के व्रत के लिये जाया करते हैं। इससे अधिक जानकर आप और करेंगे ही क्या?"

चमूसी एक खिसियाए पशु-विशेष की तरह वहाँ से यह कहता हुआ चला गया—"बड़े बड़े व्रत सुने, परंतु ऐसा व्रत नहीं सुना। और आज पांडे की लड़की का व्रत है, कल किसी कोरी-चमार की लड़की भी ऐसा ही व्रत ठानेगी। ये फूल अब न बचेंगे। बुढ़िया के मरने का कुछ दुःख नहीं, पर यमदूतों ने घर देख लिया, यही चिंता की बात हुई।"

दिवाकर को क्रोध आ गया। शायद वह केवल मौखिक कलह करके चुप न रह जाता, परंतु चमूसी की दुर्बलता और अवस्था पर उसको दया आ गई और वह फूलों का एक ढेर इकट्ठा करके वहाँ से चल दिया।

शांत मन से उसने अपनी स्थिति के ऊपर विचार किया। दाहने हाथ की ओर बेतवा कलरव करती हुई बहती चली जाती थी, और सामने से करोंदी के फूलों की उन्मादक सुगंधि आ रही थी। उसने मन में कहा—"मैं अपनी स्वतंत्रता खो चुका हूँ। अपने आपको प्रवंचित नहीं कर सकता। तारा मुझको संसार-भर में सबसे अधिक मधुर, मृदुल, मनोहर और पवित्र मालूम पड़ती है। मैंने कोई चेष्टा उसकी ओर आकर्षित होने के लिये नहीं की। सदा मन को उस दिशा में जाने से रोका, परंतु विवश हो गया हूँ। विधि की कल्पना की संपूर्ण मंजुलता और कोमलता एक स्थान में एकत्र की गई है। परंतु इस कोमलता को किसी भी कठोर स्पर्श

से छिन्न-भिन्न न करूँगा, चाहे जो कुछ हो। तारा पूजा के योग्य पदार्थ है।"

जब दिवाकर शक्तिभैरव पहुँचा, तारा शक्तिभैरव के कुएँ के पास, जो मंदिर से लगा हुआ पश्चिम की ओर था और इस समय भी है, बैठी हुई थी। जैसे कोई ऊषा के दर्शन करके प्रसन्न होता है, दिवाकर ने उसी तरह आनंदित होकर फूलों का ढेर उसको दे दिया। तारा ने जिस समय फूलों को अपने अंचल में लिया, ज़रा-सा दिवाकर की ओर देखा। सहज सरल मुस्किराहट उसके होठों पर उस समय नहीं आई। ऐसा जान पड़ता था, जैसे ठिठककर रह गई हो। दिवाकर कुछ नहीं समझा।

तारा ने धीरे से कदाचित् भीषण प्रयास के साथ कहा—"अभी जाना मत।" और तुरंत मंदिर में चली गई।

उस मधुर-मंजुल आज्ञा को सुनकर दिवाकर के रोमांच हो आया। सिर घूमने लगा। वह अपने घोड़े की गर्दन पर, जो थोड़ी ही दूर पेड़ से बँधा था, हाथ रखकर खड़ा हो गया और दूरवर्ती पहाड़ियों की ओर देखने लगा।

उसने सोचा—"तारा ने मुझको आज ठहरने के लिये क्यों कहा है? क्या तारा रुष्ट हो गई है? मैंने कदाचित् एक-आध बार लंपटों की तरह उसकी ओर देखा है, यह शायद उसको असह्य हुआ है। इसीलिये आज वह मुझसे कहेगी कि 'सावधान, अपने कुल-शील का विचार करो।" मैं भर्त्सना का पात्र हूँ, और भविष्य में ऐसा कोई काम न करूँगा, जिसमें तारा को आक्षेप हो। यदि वह मुझसे रुष्ट हो गई है, यदि उसका झुकाव मेरी ओर किंचित्-मात्र भी नहीं है, तो इससे मुझे क्या? तारा अपनी पूजा करने से तो मुझको रोक ही नहीं सकती। हृदय-सिंहासन पर स्थापित तारा को पृथिवी-गामिनी तारा नहीं देख सकती, उसका वह कुछ नहीं कर सकती, उसका कोई कुछ नहीं कर

सकता।" दिवाकर की आँखें चमक उठीं, और चेहरे पर आभा की रेखा खिंच गई। दिवाकर ने प्रसन्न होकर अपने आप कहा—"इस देवता को अपने हृदय में रखकर चाहे जहाँ जा सकता हूँ और चाहे जो कर सकता हूँ।"

जब दिवाकर इसी तरह की कल्पनाओं में डूब-डूबकर उतरा रहा था, तारा मंदिर से निकली। साथ में मालिन थी और इधर-उधर स्त्री-पुरुष आ-जा रहे थे। तारा के अंचल में बहुत-से फल थे। उसने एक-एक, दो-दो करके सबको बाँटे। दिवाकर ने देखकर भी उसकी ओर दृष्टिपात नहीं किया। पहले तारा ज़रा ठिठकी, फिर मालिन से बोली—"मेरे लिये एक लोटा जल कुएँ से खींच ला।" मालिन जल लेने के लिये कुएँ की ओर चली गई और तारा ज़रा तेज़ी के साथ दिवाकर के निकट आई। तब दिवाकर ने नीची दृष्टि करके उसकी ओर देखा। तारा ने काँपते हाथ से बेले की कलियों की एक माला कनैर के अधखिले फूलों की एक माला से लिपटी हुई जल्दी से अपने अंचल से निकाली। उसने दिवाकर की ओर नहीं देखा, परंतु अपना हाथ उसकी ओर बढ़ा दिया। दिवाकर ने अपने दोनो हाथों की अंजलि में देवता का प्रसाद लेकर आँखों से लगा लिया। तारा ने कुछ कहने के लिये होठ हिलाए, परंतु कुछ कह न सकी। जल्दी से हट गई। फिर दूसरी ओर मुख करके खड़ी हो गई, और मालिन को जल लेकर आने के लिये बुलाने लगी। फिर एक बार, केवल एक बार, अपनी सुंदर ग्रीवा को मोड़कर दिवाकर की ओर देखा।

दिवाकर ने एक बार भोजन परोसने के समय आँखों में सहज-सरल मुस्किराहट देखी थी, दूसरी बार अत्यंत कोमल कृतज्ञता को देखा था, आज तीसरी बार उन आँखों में जो कुछ देखा, वह क्या था?

जैसे अचानक प्रचंड प्रकाश के प्रकट होने पर आँखें चकचौंधिया जाती हैं, दिवाकर उसी तरह सन्न होकर रह गया। आँखों के सामने तारे छिटक

गए। जब तारा मालिन के साथ वहाँ से चली गई, तब उसे उसकी अनुपस्थिति का स्मरण हुआ।

उसको उस स्थान से जल्दी चल देने की आकांक्षा नहीं हुई। तारा के पीछे-पीछे जाने का वह इच्छुक नहीं था।

वहीं खड़ा होकर वह उस स्थान की ओर टकटकी बाँधकर देखने लगा, जहाँ से तारा ने मालिन को पुकारा था और उसकी ओर विद्युत् का धारा-प्रवाह प्रसारित किया था।

वहाँ एक-दो घड़ी ठहरने के पश्चात् वह कुंडार की ओर चला। घोड़े को बहुत धीरे-धीरे चलाया। लगाम छोड़कर दोनो हाथों में फूलों को लेकर परखना आरंभ किया। कनैर के फूलों की माला जान पड़ता था कि बहुत जल्दी में गूँथी गई है। बेले की कलियों की माला, जिनमें से कुछ खिल गई थीं, अवश्य यत्न और श्रम के साथ गूँथी गई मालूम पड़ती थी। उसने सावधानी के साथ कनैर की माला को एक वस्त्र में रख लिया, फिर बेले की माला को बारीकी के साथ देखा। उसमें कुछ अक्षर-से बने हुए दिखलाई पड़े। बहुत ध्यान-पूर्वक देखने पर अक्षर पहचान में आ गए। पहले उसको संदेह हुआ कि शायद आँखों का भ्रम हो, परंतु परीक्षा के बाद उसको विश्वास हो गया कि संशय के लिये कोई स्थान ही नहीं है। माला में चार अक्षर गूँथे हुए थे—"मेरे देव।"

दिवाकर को ऐसा भान हुआ, जैसे उसका शरीर फूल की तरह हलका हो गया हो। चारो ओर मानो पुष्प और कलियाँ उद्भूत हो गईं। सारी भूमि हरी-भरी जान पड़ी और टीलों के पत्थर मानो आश्रय देने के लिये संकेत कर उठे। चैत्र के सूर्य की किरणें मृदुल हो गईं। पक्षियों की चहचहाट में वीणा की गमक का आभास जान पड़ा। वायु में किसी संगीत का औत्सुक्य, किसी कल निनाद का निवेदन प्रतीत हुआ।

दिवाकर ने बहुत सावधानी के साथ, जिसमें वह अटपटी गूँथी हुई माला टूट न जाय, कनैर की माला के साथ, वस्त्र में बाँध ली।

उसने अपने मन में कहा—"अभी-अभी तारा इसी मार्ग होकर गई है। उसके पद-चिह्न अवश्य धूलि पर होंगे। यह वायु उसके स्पर्श से अभी-अभी पवित्र हुई। कदाचित् आगे की पहाड़ियों की ओट में मार्ग पर चली जा रही होगी और उसने शायद एक-आध बार पीछे लौटकर भी देखा होगा। मार्ग पर आने-जानेवाले मनुष्य उस वायु-मंडल की पवित्रता में स्नान करते जाते होंगे। परंतु वह इतनी दूर आने-जाने के कारण बहुत थक जाती होगी। क्या किया जाय, उसका व्रत बड़ा कठोर है। उसका व्रत !"

वह दिन दिवाकर का जैसे कुछ आनंद में या निस्सीम तल्लीनता में व्यतीत हुआ, उसको वह कभी नहीं भूला होगा।

पूजा

दूसरे दिन दिवाकर फूल लेकर चाव के साथ शक्तिभैरव पहुँचा, और आदर, उत्कंठा तथा स्नेह की दृष्टि से तारा की ओर देखने लगा। वह छाया की तरह मालिन के पीछे-पीछे आ रही थी। उसने किसी समय यदि दिवाकर की ओर देखा हो, तो दिवाकर ने नहीं देख पाया।

घर लौटने पर सहजेंद्र ने दिवाकर से पलोथर पर स्वामीजी से मिलने चलने के लिये कहा।

विचित्र स्थान पर जाने की उमंग ने धूप या दुपहरी की परवा नहीं की। भोजन करने के पश्चात् दोनो पैदल पलोथर की ओर चले। पलोथर के लिये चक्कर का रास्ता देवरा होकर भी था, परंतु सीधा मार्ग पलोथर पहाड़ी के पूर्व की ओर था। जंगल में पहुँचने पर अभीष्ट स्थान के लिये दो मार्ग हो गए थे—एक पहाड़ी के बिलकुल किनारे-किनारे पथरीला, दूसरा एक स्थान पर बकनवारे नाले को पहाड़ी से दूर हटकर, लाँघकर फिर जंगल में जाकर दुबारा बकनवारे नाले को पार करके पलोथर की बस्ती के पास से पहाड़ी की सबसे ऊँची चोटी पर पहुँचने के लिये था।

दिवाकर के अनुरोध पर यही मार्ग पसंद किया गया।

दिवाकर बकनवारे नाले में उस स्थान की खोज में था, जहाँ शिकार खेलते-खेलते एक बार नागदेव इत्यादि के साथ में पहुँचा था—उस दिन जब अग्निदत्त को चोट आई। कुछ भटकने के बाद दोनो आदमी उक्त स्थान पर पहुँच गए।

नाले में पानी अब भी बह रहा था, परंतु धार में उतना बल नहीं था। प्यास बुझाकर दोनो थोड़ी देर के लिये किनारे से झुके हुए एक

पेड़ की छाया में बैठ गए। दिवाकर ने मन में कहा—"यहीं पर सबसे पहले तारा की प्रतिमा आँखों के सामने उपस्थित हुई थी।"

फिर एक आह लेकर उसने आँखें बंद कर लीं और सोचा—"तारा के इस पागलपन का क्या फल होगा? वह क्या व्रत कर रही है? किसके लिये व्रत कर रही है? क्या आरंभ ही से मैं उसके व्रत-भंग का कारण हूँ? मैं क्या करूँ, क्या न करूँ? यह निश्चय है कि तारा का नाश कदापि न होगा।"

इतने में सहजेंद्र ने चलने के लिये कहा। दिवाकर ने उत्तर दिया—"थोड़ी देर विश्राम कर लीजिए, फिर चलते हैं।" सहजेंद्र को इसमें कोई आक्षेप नहीं हुआ।

दिवाकर ने निश्चिंतता से आँखें मूँदकर मन में कहा—"तारा के साथ मेरा विवाह नहीं हो सकता और होने पर तारा को सुख नहीं मिल सकता। बंधु-बांधव और समाज से छिन्न-भिन्न होकर तारा जिस गर्त में जा पड़ेगी, उसकी कल्पना तक अत्यंत भयानक है। परंतु अभी ऐसी कोई समस्या समक्ष नहीं है, और शायद हो भी नहीं। फूलों की माला कोई विशेष संकेत न रखती हो। परंतु "मेरे देव" का और कुछ अर्थ नहीं हो सकता। फिर भी कदाचित् अवस्था की असंभवता को देखकर तारा समाज के प्रतिकूल न जाकर अनुकूलता का अनुसरण करे। ईश्वर करे, उसको कोई योग्य सुपात्र वर मिल जाय, जिसमें वह कली के प्रथम प्रस्फुटन के नाद को भूल जाय, और जीवन-मार्ग में साधारण स्वाभाविक गति से प्रवेश कर ले। इस प्रकार के अनुभव की मनोरंजक नवीनता शीघ्र विलीन हो जाती है। तारा की भी विलीन हो जायगी।"

एक आह भरकर उसने फिर सोचा—"वीणा की झंकार जहाँ से उठती है, उसी जगह विलीन होने पर उसकी झंकार की स्मृति-मात्र रह जाती है। तारा को कभी-कभी भूले-बिसरे कनेर के फूल याद आ जाया करेंगे, और एक कोई घोड़े का सवार—परंतु समय व्यतीत होने पर शायद

केवल कनैर याद रह जाय। वह अभी भूल जाय, तो बहुत अच्छा हो। उस सुंदर मुकुलित मुख को मैं कभी म्लान देखूँगा, तो कदाचित् उसी समय आत्मवध की कुत्सित इच्छा मन में उत्पन्न हो जायगी। मैंने अपने मन को बहुत आगे बढ़ जाने दिया। परंतु मैं क्या करता? मैं न-जाने क्यों इतना असमर्थ हूँ? परंतु अब बात आगे कदापि न बढ़ने दूँगा। यदि किसी तरह का कोई भी कष्ट तारा को हुआ, तो उसका पूरा दायित्व मेरे ऊपर होगा। तारा का विवाह शीघ्र किसी योग्य वर के साथ हो जाय, तो सारी कठिनाई दूर हो जायगी। क्योंकि अभी तक उसके कोमल मन पर कोई बात गहरी अंकित नहीं हुई होगी। और मेरा क्या होगा? कुछ भी हो। लोग विवाह करके करते ही क्या हैं? आफ़त मोल लेते हैं। हृदय-सिंहासन पर तारा विराजमान रहेगी—और मुझे चाहिए ही क्या? तारा कहीं रहे, उसका कोई भी सत्पुरुष पति हो, मेरे लिये कभी क्लेश का कारण न होगा, परंतु उस पवित्र छवि को मैं रक्खूँगा आजन्म अपने हृदय में। तारा को यदि अपने सिंहासन का पता लग जायगा, तो वह सुखी न रह सकेगी। अब तक मैंने चाहे जिस निर्बलता के साथ काम किया, परंतु अब निर्बलता के साथ काम करना नर-हत्या के समान होगा। तारा, तारा, यदि तुमको लेश-मात्र भी किसी प्रकार का दुःख हुआ, तो मेरे ऊपर वज्रपात होगा। तारा, तुम सुंदर हो, पवित्र हो। भगवान् तुम्हारी सुंदरता और पवित्रता की रक्षा करेंगे। तारा, तुमको कदापि संसार में कोई कष्ट न होने पावेगा, चाहे मेरा संपूर्ण जीवन इसी एक उद्देश्य के साधन में भले ही व्यतीत हो जाय, तुम रहना किसी सुपात्र पुरुष के गार्हस्थिक संसर्ग में। दिवाकर तुम पर प्रकट किए बिना तुम्हारे सुख-साधन में प्रवृत्त रहेगा और केवल यह चाहेगा कि तुम दिवाकर को कभी स्मरण न करो और न उसके पहचानने की चेष्टा करो। तारा, तुम पर्वतों की गौरी हो और जुझौति की श्री हो। तारा, तारा, मैं कुंडार क्यों आया?" और दिवाकर ने एक लंबी आह खींची। सहजेंद्र आँखें बंद किए पड़ा था, परंतु सोया

था। स्पष्ट आह का शब्द सुनकर ज़रा चौंका। बोला—"दिवाकर, क्या बात है? क्या कोई पीड़ा है?"

दिवाकर ने मुस्किराने की चेष्टा की, पर होठों पर से जैसे उसको कोई चुरा ले गया हो और छाया-मात्र छोड़ गया हो, ऐसी फीकी हँसी हँसकर बोला—"नहीं तो।"

महजेंद्र पीछा छोड़नेवाला जीव नहीं था, बोला—"तुम्हारा कुछ दिनों से विचित्र हाल हो रहा है, कुछ अनमने-से बने रहते हो। एकांत वास अधिक पसंद हो गया है। किस चिंता में मग्न रहते हो? कहीं उसी देवता की कृपा तो नहीं हो गई है, जिसकी दिल्लगी उड़ाने में और जिसके भक्तों के बाल नोचने में तुम कभी कसर नहीं लगाते थे?"

दिवाकर को इस पर वास्तविक हँसी आ गई। बोला—"चलो राजा, स्वामीजी के पास। अब स्वस्थ हूँ।"

सहजेंद्र ने हँसकर कहा—"तब तो मेरा अनुमान ग़लत नहीं मालूम पड़ता। परंतु महाशय दिवाकर राय, यह आविष्कार किसी गणित, ज्योतिष और दर्शन-शास्त्र की तखड़ी पर बैठ सकेगा या नहीं, इसमें संदेह है। क्या वास्तव में हवा का रुख किसी दूसरी ओर है? ज़रा भाई साहब, भाभी का नाम तो बतला दो।"

इस कटाक्ष के सुनते ही तारा का चित्र दिवाकर की आँखों के सामने उपस्थित हो गया, और उस चित्र के उपस्थित होते ही उसको ऐसा जान पड़ा, जैसे किसी ने कलेजे में सुई चुभो दी हो। कठिनाई से अपने भाव को दबाकर दिवाकर ने विनय के साथ सहजेंद्र से कहा—"आप ऐसी दिल्लगी तो न किया करें।"

"न किया करूँगा।" सहजेंद्र ने उसी भाव से कहा—"परंतु सच-सच बतलाओ कि क्या बात है, बात तो अवश्य कुछ-न-कुछ है।"

सहजेंद्र से दिवाकर ने कभी झूठ नहीं बोला था।

अर्द्ध-स्मित और अर्द्ध-गंभीर भाव से उत्तर दिया—"बात वास्तव

में कुछ नहीं है और जो कुछ है भी, उसका कोई महत्त्व नहीं है। फिर भी आपके कौतूहल को शीघ्र शांत कर दूँगा—थोड़े ही समय पीछे। तब तक स्वामीजी के पास चलिए।"

सहजेंद्र दिवाकर का मित्र था, परंतु राजा का लड़का था। अपने को इस टाल-टूल से अपमानित समझकर चुप हो गया। दिवाकर उसके इस भाव को समझ गया, परंतु उसने भी कोई बात नहीं की। दोनो चुपचाप अभीष्ट स्थान की ओर चले।

पलोथर पहाड़ों की ऊँची चोटी के नीचे बकनवारे के पूर्वीय किनारे पर पलोथर नाम का गाँव था। अब वहाँ हनुमान्‌जी का केवल एक चबूतरा है और जंगल से घिरे हुए खँडहल हैं।

बस्ती में न जाकर दोनो पहाड़ों पर धीरे-धीरे चढ़ गए।

ऊपर एक छोटी-सी खोह में पूर्व-परिचित स्वामीजी और पुण्यपाल बैठे हुए थे। ऊपर ज़ोर की हवा चल रही थी। ठंडी खोह में पसीने से लत-पत देह को वह हवा बरफ़-जैसी मालूम हुई।

स्वामीजी आज अधिक स्थिर-चित्त थे। बोले—"परसों चैत्र-पूर्णिमा है, परसों पँवार और परिहार लोहे से अपने-अपने बल का माप करेंगे। यह बुरा हुआ, सहजेंद्र।"

सहजेंद्र ने कोई उत्तर नहीं दिया।

पुण्यपाल ने नम्रता-पूर्वक कहा—"महाराज, अब तो जो हो गया, सो हो गया। यदि मैं द्वंद्व से मुँह मोड़ता हूँ, तो जुझौति-भर में पँवारों के वंश को कलंक लगता है। मैं आज आपसे अपनी ढिठाई की क्षमा माँगने आया हूँ। यदि इस युद्ध के बाद सम्मान-सहित बच गया, तो आजन्म आज्ञा-पालन करने में तत्पर रहूँगा और नहीं तो फिर जुझौति में जन्म लेकर इसके उद्धार की चेष्टा करूँगा।"

दिवाकर ने कहा—"महाराज, मैं संन्यास लेना चाहता हूँ।"

स्वामीजी ने व्यंग्य के साथ कहा—"इसलिये कि जिसमें शांति के साथ

कहीं खाने को मिलता रहे और जुझौति के उद्धार के लिये एक उँगली भी न हिलानी पड़े।"

दिवाकर बोला—"नहीं महाराज, इस आश्रम में रहकर निर्द्वंद्व होकर जुझौति की सेवा करता रहूँगा।"

स्वामीजी ने अवहेला के साथ कहा—"संन्यास नहीं लेने पाओगे। पहले उस कर्तव्य का तो पालन करो, जो सिर पर है।"

दिवाकर चुप हो गया।

स्वामीजी बोले—"कैसा उज्ज्वल भविष्य मालूम पड़ता है आप सब लोगों का! एक वीर गला काटने-कटवाने के लिये प्रस्तुत है, दूसरा संन्यास लेने की कामना कर रहा है!"

फिर एक क्षण ठहरकर बोले—"तुम लोगों को जिस बात के लिये बुलाया है, वह सुनो। मुझे विश्वास हो गया है कि कुंडार से तुमको कोई सहायता नहीं मिलेगी।" इस पर तीनो युवकों को अचंभा हुआ।

सहजेंद्र ने कहा—"महाराज, मुझको दृढ़ आशा हो रही है, परंतु आपके वचन का प्रतिवाद नहीं कर सकता। क्या आप कृपा करके बतलाएँगे कि आपका ऐसा विचार क्यों है?"

स्वामीजी ने उत्तर दिया—"संन्यासी के पास ऐसे एकांत बीहड़ स्थान में भी लोग कभी-कभी आ जाते हैं। कुछ ही दिन हुए हैं, बरौल की गढ़ी का गढ़पति कशुन खंगार आया था। उसने मुझसे बातों-बातों में कहा कि हुरमतसिंह की कुमारी का विवाह होनेवाला है, और राजा की इच्छा उन्हीं दिनों में अपने कुमार नागदेव का संबंध बुंदेला-कुमारी हेमवती के साथ करने का है।"

इस बात को सुनकर तीनो व्यक्ति तड़प उठे। पुण्यपाल काँप उठा और सहजेंद्र की आँखों से लोहू बरसने लगा।

सहजेंद्र ने कहा—"उस नीच पामर का यह साहस! खंड-खंड कर डालने योग्य है।"

स्वामीजी ने शांति के साथ कहा—"मुझे भी क्रोध आया था, परंतु इस समय क्रोध करने का अवसर नहीं है। मेरा आदेश है कि संयम के साथ काम करो। कदाचित् यह बरौल के उस वाचाल की कल्पना-मात्र हो। मैं पहले कुंडार के आश्रय-खोज के विपक्ष में था। परंतु अब मैं समझता हूँ कि विष्णुदत्त के लौट आने तक सब प्रकार का उपद्रव बचाए रखना चाहिए। विष्णुदत्त धीर का मित्र है और कुंडार के राजा पर उसका प्रभाव है। मेरी कल्पना है कि राजा ऐसा अनुचित प्रस्ताव और ऐसी कुत्सित इच्छा नहीं करेगा, परंतु कुंडार के इनकार के लिये तैयार रहना चाहिए, और अभी से किसी दूसरे ठिकाने का प्रबंध कर लेना चाहिए, जिसमें किसी कुसमय पर स्थानाभाव खटके नहीं।"

पुण्यपाल को पसीना आ गया था। भर्राए हुए गले को खींचकर बोला—"महाराज, मेरी पहले ही से कुंडार पर आस्था नहीं है और मेरा बस चले, तो कुंडार को धूल में मिला दूँ।"

दिवाकर किसी गंभीर चिंता में था, कुछ नहीं बोला।

स्वामीजी ने कहा—"तुम्हारा वह द्वंद्व-युद्ध जो परसों है, उसके लिये तो तुम कटिबद्ध हो? कुंडार की धूल उड़ाने का प्रश्न अभी बहुत दूर मालूम होता है।"

पुण्यपाल ने कुछ उत्तेजित होकर कहा—"मैं उस युद्ध को लड़ना भी न चाहूँ, तो नहीं बच सकता। जैसे अतिथि लौटाया नहीं जा सकता है, उसी तरह वैरी को पीठ नहीं दिखलाई जा सकती। मुझे आशीर्वाद दीजिए कि युद्ध में मारा भले ही जाऊँ, परंतु मुझे कभी कोई कायर न कह सके।"

"न, मेरा आशीर्वाद यह होगा कि यह युद्ध होवे ही नहीं।" स्वमीजी बोले।

दिवाकर ने कहा—"ऐसा हो, तो सबसे अच्छा।"

स्वामीजी दूर तक दृष्टि पसारकर बोले—"कैसी मनोहर, सुहावनी

भूमि है, और कैसी दुर्दशा-ग्रस्त है ! जब तक किसी क्षत्रिय का एकच्छत्र राज्य यहाँ नहीं हुआ, तब तक यह ललित, शुभ्र पृथ्वी यों ही छिन्न-भिन्न पड़ी रहेगी।"

फिर तुरंत उत्तेजित होकर बोले—"परंतु इसका उद्धार बहुत दूर है। तुम लोगों के बूते नहीं होता दिखाई देता। मैंने भी निश्चय किया है कि अब परलोक-चिंता करूँ।"

कुछ देर पश्चात् सहजेंद्र और दिवाकर कुंडार की ओर चले गए और पहाड़ी के पश्चिमी ओर से पुण्यपाल सारौल चला गया।

द्वंद्व देखने के लिये यात्रा

चैत्र-सुदी पूर्णिमा आ गई। अग्निदत्त कनैर के फूल देवरा से ले जाकर तारा को शक्तिभैरव में दे आया। तारा भी शीघ्र लौट आई। आज मानवती ने बरौल का द्वंद्व-युद्ध देखने के लिये चलने के विषय में कहला भेजा था। तारा को युद्ध देखने का बहुत शौक़ न था, परंतु एक स्थान में अनेक लोग एकत्र होंगे, ऐसे जमाव के देखने की इच्छा के कारण तारा ने मानवती के साथ बरौल जाने का संकल्प कर लिया।

हेमवती के लिये भी निमंत्रण आया। मानवती की ओर से नाग स्वयं निमंत्रण लाया था, परंतु सहजेंद्र ने अस्वस्थता का बहाना बनाकर इनकार कर दिया।

थोड़े समय पीछे तारा हेमवती के पास आई। तारा के अनुरोध करने पर हेमवती ने मानवती के पास निमंत्रण-स्वीकृति का संवाद भेज दिया, परंतु उसको यह नहीं मालूम था कि सहजेंद्र पहले ही इनकार कर चुका है। उसको केवल यह मालूम हुआ था कि मानवती भेंट करना चाहती है। उसने कभी पहले मानवती को नहीं देखा था। पुण्यपाल का युद्ध देखने की इच्छा उसके मन में प्रबल रही हो या निर्बल, मानवती से मिलने और उसको देखने-परखने की उमंग उसके मन में अवश्य काफ़ी थी। सहजेंद्र को जब हेमवती का विचार मालूम हुआ, तब उसको क्लेश हुआ। रोका। समझाया। परंतु हेमवती को निषेध का कारण कुछ नहीं बतलाया, इसलिये उसने एक नहीं मानी। सहजेंद्र विवश हो गया।

बरौल की ओर चल पड़ने के पहले नागदेव को मालूम हो गया कि हेमवती बरौल जायगी। सहजेंद्र के निषेध पर भी हेमवती ने जाने का संकल्प कर डाला, यह बात नाग को एक रहस्य, एक समस्या, मालूम पड़ी।

नाग ने राजधर से एकांत में कहा—"सहजेंद्र इत्यादि हेमवती पर बड़ा भारी बोझ लादे हुए हैं, परंतु वह किसी दिन उसको दूर फेंक देगी।"

राजधर बोला—"और हम लोग उस बोझ के दूर फेंक देने में सहायक होंगे।"

अग्निदत्त का मिलाप नाग से दिन-दिन कम होता चला आया था। जब कभी मिलता था, तो थोड़ी देर के लिये।

नागदेव के मन में भी अग्निदत्त से मिलने के लिये बहुत रुचि न थी। अपने प्रत्येक संकेत पर राजधर की तत्परता उसकी वृत्ति के अधिक अनुकूल थी।

परंतु आज अग्निदत्त ने किसी अस्पष्ट किसी दूरवर्ती आशा के वश नागदेव के साथ जाने की ठानी।

जब हेमवती का बरौल जाना निश्चय हुआ और पुण्यपाल से द्वंद्व-युद्ध होना था, तब सहजेंद्र और दिवाकर का जाना तो अनिवार्य ही था।

इस होनेवाले युद्ध की चर्चा कुछ दूर तक फैल गई थी। अतः बहुत-से लोग आए। पहले कुंडार फिर बरौल गए। हुरमतसिंह के साथ उसका मंत्री, एक छोटा-सा सैन्य-दल और इब्नकरीम जाने को तैयार हुआ।

राजा हुरमतसिंह इत्यादि ठाट-बाट के साथ हाथियों और घोड़ों पर सबेरे ही बरौल की ओर चल दिए थे। कुमार नाग अपने दल के साथ ज़रा देर में चला। मानवती, हेमवती और तारा के डोले इन लोगों के साथ गए। इसी दल के साथ सहजेंद्र और दिवाकर गए। दो बुंदेले सैनिक, जो कुंडार में सहजेंद्र के साथ रहते थे, हेमवती के डोले के साथ थे। मार्ग में कभी सब साथ हो जाते थे, कभी टुकड़ियों में और कभी अलग-अलग। जब कभी सहजेंद्र नाग को हेमवती के डोले

की ओर दृष्टिपात करते देखता था, तो उसकी देह जल उठती थी। नाग को उसके भाव का पता न था और वह कुछ अधिक स्वतंत्रता के साथ उस डोले के पास बने रहने की चेष्टा करता था। एक बार तारा और हेमवती के डोले बिलकुल पास-पास हो गए और नागदेव और दिवाकर का अकस्मात् साथ हो गया। सहजेंद्र, अग्निदत्त और राजधर पीछे एक भरके की निचाई में ओट रह गए। मानवती का डोला कुछ आगे था। तारा ने नागदेव से कहा—"दादा, यह मार्ग तो बड़ा ऊँचा-नीचा है, क्या देवरा इसी ओर है?"

नाग ने कहा—"हाँ।"

तारा ने दिवाकर की ओर देखकर सिर नीचा कर लिया।

थोड़ीदेर में सब लोग देवरा की चौकी पर पहुँचे। चमूसी सशस्त्र सैनिकों के साथ मिला। उसने नागदेव और सहजेंद्र को जुहार किया। पास ही बग़ीचा था। नाग ने कहा—"इसी बग़ीचे के कनेर आजकल इतने विख्यात हो गए हैं।"

चमूसी ने उत्तर दिया—"जी हाँ, परंतु अब फूल बहुत टूट चुके हैं।"

नाग ने चमूसी की बात पर ध्यान न देकर कहा—"यह कनेर और कहीं नहीं लगता। लगता भी है, तो इतने बड़े फूल नहीं देता।"

दिवाकर को चमूसी की शिकायत पर घृणा हुई।

सब लोग जल-पान और थोड़े विश्राम के लिये गढ़ी के भीतर चले गए। दिवाकर ने देखा कि गढ़ी का आँगन बड़ा है, छोटी-छोटी बहुत-सी कोठरियाँ हैं, परंतु पृथ्वी से लगी खिड़कीवाले कोठे के सिवा और कोई ध्यान देने योग्य चीज़ वहाँ न दिखलाई पड़ी। उस खिड़की में लोहे के मोटे-मोटे सींकचे लगे थे। पास जाकर सींकचों में होकर देखा, तो भीतर ऊपर की ओर से केवल एक रोशनदान से थोड़ा-सा प्रकाश आ रहा था।

अँधेरा तहखाना था। दिवाकर समझ गया कि यह क़ैदियों के लिये एक भयानक स्थान की सृष्टि है। इस कोठरी में जाने के लिये बाहर से कोई द्वार नहीं दिखलाई पड़ता था। द्वार तलाश करने की दिवाकर ने चेष्टा की, परंतु उसको न मिला। चमूरी ने उसको कोठरी की परीक्षा करते हुए देख लिया। पास आकर बोला—"देखते क्या हो, यह दुष्टों की दण्ड-शाला है।" और इस तरह से मुस्किराया, जैसे किसी बड़ी संपत्ति का अधिकारी हो।

दिवाकर ने केवल इतना कहा—"मालूम है।" और दूसरी ओर चला गया।

थोड़ी देर में घाट पर नावें लगा दी गईं, और नागदेव का दल बरौल के लिये चल दिया। चमूरी ने मानवती इत्यादि को शीघ्र नहीं जाने दिया। वह संसार की एक विचित्र वस्तु का अधिकारी था, उसको दिखलाए बिना वह कैसे गढ़ी के बाहर इन लड़कियों को जाने देता। चमूरी ने अपना तहखाना बतलाया। तारा ने पूछा—"दाऊजू, इस काल कोठरी में जाते किस तरह हैं?" यही उस्तादी असल में चमूरी को दिखलानी थी।

बोला—"इसका भेद बहुत कम लोग जानते हैं। मैं आप सब लोगों को बतलाता हूँ।"

इस कोठे की बगल में छत पर जाने के लिये छोटी-छोटी सीढ़ियाँ लगी हुई थीं। ऊपर जाकर वह बोला—"यह कोठेर रोशनदान ही इस बंदीगृह की कुंजी है। इसके सिरे को पूर्व की ओर खींचने से नीचे की पटिया भीतर को खिसक जाती है, फिर दक्षिण और उत्तर की ओर दीवारें उन्हीं दिशाओं में खींचने से उनसे सटे हुए पटिए भी अपनी-अपनी खोलों में समा जाते हैं। फिर मनुष्य के प्रवेश करने योग्य स्थान बन जाता है। क़ैदी को रस्सी में बाँधकर यहाँ से लटका दिया जाता है, फिर ये सब पटिए रोशनदान की दिवारों और सिरे को जहाँ का-तहाँ खींचकर

यथावत् जमा दिए जाते हैं।" चमूसी ने जैसा कहा था, वैसा करके दिखला दिया।

मानवती उदास थी। परंतु इस तमाशे को देखकर उसके मन में कौतूहल बढ़ा। पूछा—"रावजी, क़ैदी को भोजन भी यहीं होकर दिया जाता है?"

चमूपी ने उत्तर दिया—"न राजकुमारी, भोजन और पानी नीचेवाली खिड़की में होकर क़ैदी के पास डाल दिया जाता है।"

प्रसन्नवदना तारा का मुँह कुम्हला गया। उसने मानवती के कंधे पर हाथ रखकर अनुरोध किया—"कुमारी, इस भयंकर स्थान से चलो। मुझे यहाँ अच्छा नहीं लगता। सब लोग घाट पर आपकी बाट देख रहे होंगे।"

हेमवती निरीक्षण की दृष्टि से मानवती को देख रही थी, परंतु बोलती बहुत कम थी। क़ैदख़ाने के विषय में कुछ प्रश्न करने की इच्छा उसके मन में भी हुई, परंतु इस संकोच से कि कदाचित् उसके प्रश्नों का उत्तर कोई दे या न दे, चुप रही। सखी-सहेलियों के साथ तीनो लड़कियाँ घाट पर आ गईं। एक नाव में सब स्त्रियाँ बैठ गईं। रक्षकों के स्थान पर राजधर संकोच के मारे नहीं गया, अग्निदत्त जा बैठा। उधर सहजेंद्र के कहने पर दिवाकर और उसके दोनो बुंदेले सैनिक जाकर बैठ गए। और लोग दूसरी नावों पर जा बैठे।

दिवाकर ने एक बार भी तारा की ओर नहीं देखा। अग्निदत्त बेचैन था, जैसे किसी अवसर की खोज में हो।

थोड़ी देर में नावें बेतवा की पहली शाखा के नीचे जाकर लगा दी गईं, जहाँ वह सुड़ा के दक्षिणी सिरे पर बड़ी धार में आकर मिली है।

किनारे पर हुरमतसिंह के अनेक सरदार और सैनिक अगवानी के लिये मिले। किशुन खंगार उनमें सबसे आगे मिला। आगत-स्वागत के पश्चात् किशुन ने नागदेव से कहा—"आज मेरा अहो भाग्य है कि अन्नदाता ने

अपनी मित्र-मंडली-समेत यहाँ पधारने की कृपा की। यदि महाराज ने कुंडार में ही इस युद्ध की व्यवस्था की होती, तो इस दीन-दरिद्र टापू को यह गौरव कैसे प्राप्त होता?"

नाग ने संभ्रम के साथ कहा—"काकाजू, हम तो रोज़ यहाँ आएँ। कुछ दूर थोड़े ही है, परंतु नदी बीच में पड़ती है। और कौन-कौन आ गए हैं?"

किशुन ने स्वमहत्त्व-प्रदर्शन की कामना को कठिनाई से दबाकर उत्तर दिया—"अन्नदाता, सब सरदार आ गए हैं। पुण्यपालजी सबेरे ही आ गए थे? पड़िहार, कछवाहे, सेंगर और अपनी जाति के सब क्षत्रिय-सरदार आ चुके हैं। पड़िहार अधिक संख्या में आए हैं, परंतु उनमें बहुत चहल-पहल या उत्साह नहीं दिखलाई पड़ता। अखाड़े का प्रबंध हम लोगों ने इब्नकरीम को सौंपा है।"

चमूसी भी साथ आया था। किशुन ने जो वर्णन पड़िहारों के विषय में किया था, वह उसको अच्छा न लगा। बोला—"आप पड़िहारों का उत्साह लड़ाई के अवसर पर देखिएगा, खिलवाड़ में क्या उत्साह दिखलाना?"

नाग ने बात उड़ाकर कहा—"डोलों को आगे-आगे चलने दीजिए। हम लोग सब पीछे-पीछे चलेंगे।"

वहाँ से मार्ग थोड़ी दूर तक छोटे-से जंगल और एक-दो भरकों में होकर था। फिर खुला हुआ मैदान और खेती कटे हुए खेत थे। अल्प समय में गढ़ी में सब पहुँच गए।

यह गढ़ी काफ़ी बड़ी थी। चारो ओर दीवार खिंची हुई थी। कई बुर्ज तथा पश्चिम और पूर्व की ओर दो फाटक थे। गाँव दीवार के बाहर और गढ़ी से छोटा था। पश्चिम-दक्षिण के कोने में गढ़ी से बाहर एक बड़े मैदान में एक लंबा-चौड़ा अखाड़ा तैयार किया गया था। अखाड़े के चारो ओर बैठने के लिये छायादार बैठकें बनाई गई थीं। पश्चिम की ओर एक

बड़ा चँदोवा राजा और राजकुमार के बैठने के लिये तथा पास ही ज़रा नीचे और सरदारों के बैठने के लिये जगह बनाई गई थी। इसी चँदोवे के पास एक छोटा सुंदर चँदोवा स्त्रियों के बैठने के लिये बनाया गया था।

दो घटा दिन रहे, धूप में ठंडक आ गई, और सब लोग यथास्थान आकर बैठ गए। लगभग दो सहस्र सुसज्जित सैनिक भी निर्दिष्ट स्थानों पर डट गए।

इतने में मंत्री और कुछ सरदारों के साथ राजा हुरमतसिंह जयजयकार के बीच में राजसिंहासनवाले चँदोवे में आ बैठा। अग्निदत्त, दिवाकर, सहजेंद्र, गजधर एक ही जगह बैठे। नाग अपने पिता के पास बैठ गया। इनसे थोड़ी ही दूर पर हरी चंदेल बैठा था। राजा के पीछे चमूपति पड़िहार पहरा लगाने के लिये खड़ा था। किशुन, जहाँ प्रबंध की आवश्यकता न थी, वहाँ पर भी प्रबंध करने में अनुरक्त दिखलाई पड़ता था। सैनिकों की एक छोटी-सी भीड़ में अर्जुन भी दिखलाई पड़ता था। इब्न करीम राजा के चँदोवे के बाहरी भाग के पास हरी चंदेल के निकट खड़ा हुआ, अपने तैयार किए हुए अखाड़े के गुण-दोष परख रहा था। बीच-बीच में शोर-गुल बहुत बढ़ जाता था। अधिकतर लोग चिल्ला-चिल्लाकर अपने पक्षवालों को विश्वास दिला रहे थे कि विजयश्री पड़िहार के हाथ में रहेगी। पुण्यपाल के पक्ष-समर्थक बहुत थोड़े सुनाई पड़ते थे। पड़िहार एक ही स्थान पर एकत्र थे और पुण्यपाल के चुने हुए दो सौ सैनिक एक स्थान पर। इसी जगह पुण्यपाल का पक्ष-समर्थन बहुत ज़ोर-ज़ोर के साथ सुनाई पड़ता था।

राजा ने मंत्री से कहा—"क्या सोहनपालजी नहीं आए हैं?"

मंत्री बोला—"नहीं महाराज।"

राजा ने कहा—"इतना घमंड!"

सहजेंद्र ने सुन लिया और उसकी नाड़ी तीव्र गति के साथ चलने लगी।

नाग, जो राजा के पास ही बैठा था, बोला—"क्या उनको निमंत्रण न दिया गया था ?"

हुरमतसिंह ने उत्तर दिया—"ये जितने यहाँ आए हैं, सबको ही निमंत्रण थोड़ा ही दिया गया है ।"

नाग ने एक ओर देखकर कहा—"कदाचित् उनको कुछ काम लग गया हो अथवा अस्वस्थ हो ।"

राजा ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया ।

द्वंद्व

वंदीजनों ने यश गाया और कड़खावालों ने कड़खा।

इसकी समाप्ति पर राजा ने दोनो प्रतिद्वंद्वियों को बुलवाया। एक ओर से पुण्यपाल कवच, झिलम, टोप और शस्त्रों से सुसज्जित ऊँचा पूरा जवान भरी हुई चाल से आया। इसके झिलम पर सिंदूरी रंग की एक कलँगी लगी हुई थी। राजा के सामने आकर खड़ा हो गया। सिर को बहुत ही थोड़ा झुकाया और एक क्षण के लिये स्त्रियोंवाले चँदोवे की ओर देखकर नत-मस्तक सादर प्रणाम किया।

एक क्षण पीछे पड़िहार-सरदार भी कवच-शस्त्रादि से सुसज्जित राजा के सामने आया। उसने आते ही स्त्रियों को प्रणाम किया। राजा को उसने प्रणाम न कर पाया था कि पुण्यपाल बोला—"पड़िहार या जो कुछ भी तुम होओ, तुमने राजसभा में जो मेरा अपमान किया था, उसका तुमको दंड देने मैं आज यहाँ आया हूँ। परंतु मैं अकारण नर-रक्त नहीं बहाना चाहता। यदि तुम अपनी मूर्खता की क्षमा इस समय भी माँग लो, तो मैं तुमको छोड़ दूँगा।"

पड़िहारों की भीड़ में से बहुत-से कंठों ने कहा—"लगो, लगो, बचने न पावे पँवार।"

पँवार-दल की तलवारें खिच गईं! उनमें से कुछ ने कहा—"आज यहाँ से एक पड़िहार भी बचकर न जाने पावेगा।"

पुण्यपाल गरजकर बोला—"खबरदार! कोई आपस में मत लड़ना। लड़ाई मेरी और इस पुरुष की है, तुम लोग यहाँ केवल तमाशा देखने आए हो। बस।"

दुरमतसिंह ने मंत्री से धीरे से कहा—"हमारे यहाँ के सरदार कितने

अभिमानी और पाजी हैं, देखते हो गोपीचंद ? ये सब और इनके सब साथी आज ही यहीं कटकर मर जायँ, तो पाप कटे। पुण्यपाल कलँगी लगाकर मेरे सामने आया है !"

गोपीचंद ने कहा—"महाराज, यह अपने को राजा समझता है।"

राजा ने प्रतिद्वंद्वियों से पूछा—"तुम लोगों के पार्षद कौन-कौन हैं ?"

पार्षद नियुक्त हो चुके थे। वे आए। राजा ने उनसे कहा—"भूमि को देख लो और इन लोगों के हथियारों को। इन लोगों से सौगंध लेकर पूछो कि विषाक्त हथियार तो नहीं लाए हैं।"

स्त्रियों के चँदोवे में हेमवती कुछ कहने के लिये व्यग्र हो रही थी, उसको मानवती के प्रश्न ने कहने का अवसर दिया। मानवती ने पूछा—"यह लाल कलँगीवाला भीषण-काय मनुष्य कौन है ? पड़िहार या पँवार ?"

हेमवती, जो कुंडार से यहाँ तक बहुत कम बोली थी, बोली—"भीम-काय ? वह जुझौति के सामंतों के सौरभ हैं। तुम देखना, कितनी जल्दी अपने प्रतिद्वंद्वी को धूल चटाते हैं।"

तारा ने कहा—"क्या ये लोग सच्चे लोहे की तलवारों से लड़ेंगे ?"

मानवती बोली—"तारा, तू निरी अबोध है। ये लोग यहाँ प्राण देने-लेने के लिये इकट्ठा हुए हैं, खेल के लिये नहीं।"

"तारा ने कुछ उदासी और कुछ आश्चर्य के साथ कहा—"तो ये लोग एक दूसरे का गला काटने में संकोच नहीं करेंगे !" और ज़रा पीछे हटकर तमाशा देखने लगी।

भूमि की नाप और दोनो योद्धाओं के हथियारों की परीक्षा होने लगी।

जैसे और लोग इस समय ध्यान-पूर्वक युद्ध के इस प्रारंभिक भाग को देख रहे थे, उसी तरह इब्नकरीम भी सीने पर हाथ बाँधे देख रहा था कि हिंदुस्तानी वेश में एक दीर्घ नाकवाले पुरुष ने पीछे से उसके कंधे पर हाथ रक्खा। इब्नकरीम ने मुड़कर देखा और उसको पहचानने में उसे कठिनाई नहीं हुई।

बोला—"अत्ती, क्या क़बर में से......"

अत्ती ने टोक कर चुप रहने का संकेत किया। ज़रा हटाकर ले गया। इब्नकरीम ने पूछा—"अत्ती, धार में से कैसे बच गए?"

अत्ती ने उत्तर दिया—"तक़दीर ने बचाया। मगर इस समय लंबी कहानी कहने का मौक़ा नहीं है। भरतपुरा गढ़ी में इस समय कोई है या नहीं?"

"क्यों?"

"मतलब है।"

"बतलाओ, क्या?"

"पहले तुम यह बतलाओ कि कुंडार में किस नौकरी पर हो?"

इब्नकरीम का कौतूहल सतर्कता में पलट गया।

बोला—'गुज़र करता हूँ। अब तुम बतलाओ, कैसे आए? क्या यह तमाशा तुमने?"

"नहीं, तमाशा करने जानते हो, कालपी खुद मुख़्तार हो गई है?"

इब्नकरीम—"अच्छा?"

अत्ती—"हाँ, अब कुंडार में सल्तनत क़ायम होगी।"

इब्नकरीम 'कब?'

अत्ती—"आजकल में।"

इब्नकरीम—"किस तरह से?"

अत्ती—"मेरे साथ चलो, सब मालूम हो जायगा।"

इब्नकरीम—"कहाँ?"

अत्ती "यहाँ से छ मील के फ़ासले पर चेलरे के जंगल में, इसी कमबख़्त नदी के किनारे। देर मत करो। शाम होते ही हमला किया जाना है।"

इब्नकरीम की आँखें युद्ध का नाम सुनकर प्रज्वलित हो गईं। बोला—"किस जगह हमला करोगे, यहीं?"

अली—"ये सब बातें वहीं पर सुन लेना। मेरा जंगी घोड़ा देवल के उस मंदिर के पास एक नीम के दरख़्त से बँधा है। हम-तुम दोनो उस पर सवार होकर जा सकते हैं। हमारे सिपाही नेलरे से इस वक़्त चल दिए होंगे। जंगल-ही-जंगल होकर आएँगे। हमें-तुम्हें यहाँ से डेढ़ या दो मील चलकर ही मिल जायँगे।"

इब्नकरीम ने कहा—'यहाँ तुम क्या मेरे ही लिये आए थे या और किसी मतलब से ?"

अली ने उत्तर दिया—'ख़ास तौर से तुम्हारे लिये आया था। तुमको यहाँ रहते-रहते कुछ अर्सा हो गया है, इसलिये तुम यहाँ की सब बातों से ख़ूब वाक़िफ़ हो गए होगे। यही कारण मेरे यहाँ आने का था। तुमको लेने आया हूँ। कुंदार-सरीखे उस्ताद की इस वक़्त बड़ी ज़रूरत है। चलो, देर मत करो।"

इब्नकरीम—"मैं नहीं जाऊँगा—नहीं जा सकता हूँ।"

अली—'क्यों ?"

इब्नकरीम ने सोचकर कहा—"मैंने कुंडार में बहुत-सी दौलत इकट्ठी की है, उसका ठीक इंतज़ाम करके जाने कहो, वह कल आकर मिल जाऊँगा।"

अली—"कल ? लाहौल विला कूवत ! कल तक तो हम लोग कुंडार में दाख़िल हो जायँगे।"

इब्नकरीम—'बस-बस, ठीक है, मैं कल ही तुम लोगों को मिल जाऊँगा। मैं तो कल भी तुम्हारे काम आ जाऊँगा। इस वक़्त किसी तरह भी नहीं चल सकता। तुम्हारे साथ कितने आदमी हैं ?"

अली—"पाँच हज़ार—लो अब इनकार मत करो।"

इब्नकरीम—"अभी हरगिज़ न जा सकूँगा, मगर जल्द मिलूँगा।"

अली—"अच्छा, तो इतना तो बतला दो कि भरतपुर की गढ़ी में इस वक़्त कितने आदमी होंगे ?"

इब्न करीम—"बहुत होंगे, भरी पड़ी होगी।"

अत्ती ने आत्मविश्वास के साथ कहा—"अब की दफ़ा का हमला दूसरी तर्ज़ का होगा। एक दस्ता तो अभी यहीं आता है और इस मंदिर को तहस-नहस करके आग बरसाता है, दूसरा दस्ता सीधा भरतपुर जायगा, और तीसरा दस्ता दवरा के नीचे से कुंडार पहुँचेगा। एरच होकर भी दो दस्ते भेजने की तैयारी है, मगर वहाँ मुकाबला सख़्त होगा, लेकिन जब कुंडार हमारे हाथ में आ जायगा, तब एरच को घेरा डालकर मजबूर करने में देर न लगेगी। अच्छा, तो मैं जाता हूँ। इंशा अल्लाह ईमान की फ़तेह होगी। सलाम।"

इब्न करीम—"सलाम। पाक परवरदिगार ईमान को कभी ख़ानए-ख़राब नहीं होने देगा।"

अत्ती के चले जाने पर इब्न करीम जल्दी-जल्दी राजा के चँदोवे की ओर बढ़ा, परंतु उस जगह बहुत-से सिपाही आकर कतारें बाँधकर खड़े हो गए थे। उसको उन्हें पार करने में कुछ कठिनाई हुई।

उसी जगह अर्जुन एक बरौल के सिपाही से कह रहा था—"जा लड़ाई ई डांग में कराउन आए राजा, बरै उनकौ लच्छिन। कुंडार में कराउते, तो मुतकीं जनीमान्स देखवें खों आउतीं।"

उक्त सिपाही ने कहा—"हमने सुनी है कि राजा ने इन सरदार खों उतै ईसें नइं लरन दओ के बे और उनके साथी लरत-लरत गाँव में ऊदम मचा उठते। देखो तुम, घलत है अभई पड़हारन और पँवारन में। ऐई स तो तुम सब जनन खों भर्तपुरा सें बुलवा लओ कि इनको कटा आपसई में हो जाय और काऊ और पै हल्ला न बोल पावें।"

इब्न करीम ने अर्जुन को पहचान लिया। बोला—"चंदेल सामंत के पास मुझको इसी वक़्त ले चलो।"

अर्जुन ने पहचानकर कहा—"राम-राम बख़्श खाँ साब। कओ साब, चैन-चान?"

इब्नकरीम ने अनसुनी करके कहा—"मुझे चंदेल के पास इसी वक़्त ले चलो। या पता दे दो। भरतपुरा की गद्दी क्या बिलकुल ख़ाली है ?"

अर्जुन—"काए उतै को बैठो।"

इब्नकरीम—"और दबरा की ?"

अर्जुन—"न उतै कोउ आय।"

इब्न करीम—"ग़ज़ब हो गया, मैं ख़ुद राजा के पास जात हूँ।"

इतने में किसी ने राजा के चँदोवे में से चिल्लाकर लोगों को चुप किया। दोनो लड़ाकू अखाड़े में एक-दूसरे के सामने डट गए। पहले दोनो बैरियों ने अपने हथियार अलग रखकर एक दूसरे को गले से लगाया, फिर हथियार लेकर खड़े हो गए। चारो ओर सन्नाटा छा गया।

पुण्यपाल बोला—"हम दोनो क्षत्रिय हैं, युद्ध में क्षत्रिय की मृत्यु स्वर्ग का सहज द्वार है।"

पड़िहार हँसकर बोला—"यह तो हमारा-तुम्हारा दोनो का साधारण धर्म है।"

फिर पुण्यपाल ने स्त्रियों के चँदोवे की ओर मुँह फेरकर प्रणाम किया और तलवार उठाकर कहा—"सँभलिए !"

पैंतरा बदलकर पड़िहार बोला—"तैयार हूँ, आइए।"

इतने में राजा ने चिल्लाकर कहा—"ज़रा ठहरो।"

दोनो थम गए। ऐसा सन्नाटा छा गया कि सबको अपनी-अपनी साँस तक सुनाई पड़ने लगी।

राजा बोला—"इन दोनो योद्धाओं की लड़ाई के बाद लोग अपने-अपने घर जाने की चिंता में व्यस्त होकर तुरंत चल देंगे, इसलिये मैं इसी समय एक घोषणा करना चाहता हूँ। अक्षय-तृतीया के दिन राजकुमारी का पाणिग्रहण मेरे प्रधान मंत्री के सुपुत्र कुँवर राजधर के साथ होगा। सब लोग उस उत्सव पर पधारें। जिनके पास निमंत्रण पहुँच पावे वे और जिनके पास न पहुँच पावे, वे भी। युद्ध समाप्त होने के पश्चात् और

कोई किसी से लड़े नहीं, चुपचाप अपने-अपने घरों को सब जायँ। यदि पड़िहारों और पँवारों को आपस में निपटना है, तो मैं फिर कोई अवसर खोज दूँगा।"

अग्निदत्त ने इस घोषणा को छाती पर हाथ धरकर सुन लिया। पड़िहारों और पँवारों दोनो के दलों में और दूसरे कुलवाले उनके प्रतिपक्षियों में कुछ फुसफुसाहट और किंचित् ऊँचा स्वर सुनाई पड़ा, परंतु साफ़ समझ में न आया।

राजा ने कहा—"अब युद्ध आरंभ हो।"

दोनो प्रतिद्वंद्वियों ने अपने-अपने हथियार सँभाले।

इतने में भीड़ को चीरता हुआ इब्न करीम राजा के निकट पहुँच गया। लोग चक्कर में थे कि क्या पागल हो गया है।

इब्न करीम चिल्लाकर बोला—"लड़ाई बंद करिए।"

पुण्यपाल ने रुककर कहा—"अब की बार इस मुसलमान ने विघ्न डाला।"

इब्नकरीम ने भरे कंठ से कहा—"जी हाँ। एक दिन मुझे आपसे बदला लेना है। अभी मैं भूला नहीं हूँ। मगर पीछे देखा जायगा। महाराज, होशियार हो जाइए।"

राजा ने अचरज में आकर कहा—"करीम, क्या पागल हो गया है?"

इब्न करीम—"पागल नहीं हुआ हूँ, महाराज! दुश्मन चढ़ा चला आ रहा है। फ़ौरन् भरतपुरा और दवरा की गढ़ियों की तरफ़ फ़ौज रवाना कीजिए, नहीं तो कुंडार हाथ से जाता है, और आपकी इज़्ज़त-असमत भी।"

राजा बहादुर आदमी था, परंतु इस अचानक विपद्-समाचार को सुनकर जरा घबरा गया। बोला—"कौन दुश्मन? कहाँ से आ रहा है? कहाँ है? कब तक आवेगा? तुमने कैसे जाना?"

सिपाही जो विस्तृत अखाड़े के बाहर क़तार बाँधे खड़े थे, अखाड़े में

सिमट आए। दोनो प्रतिद्वंद्वियों को थोड़ी देर के लिये भूल गए। सबने परस्पर वे ही प्रश्न किए, जो राजा ने करीम से किए थे। बड़ी मुश्किल से शोर-गुल कम किया जा सका, तब इब्न करीम कहता सुना गया—"चेलरे की तरफ़ से पाँच हज़ार मुसलमान-सेना आ रही है। दो-तीन मील के फ़ासले पर रह गई होगी। मंदिर पर हमला होगा, और भरतपुरा तथा दबरा की गढ़ियों को क़ब्ज़े में करके यह फ़ौज कुंडार में जा कूदेगी।"

"तुमको कैसे मालूम हुआ?" कई स्वरों से एकदम आवाज़ निकली।

इब्न करीम ने उत्तेजित स्वर में कहा—"मुझको अभी-अभी मालूम हुआ है।"

किशुन ने पूछा—"किससे मालूम हुआ है? ठीक-ठाक बतलाइए।"

"अभी-अभी मुझको यहीं पर मालूम हुआ है। जिसने बतलाया है, वह यहाँ से चला गया है।"

गोपीचंद ने कहा—"तुमको उसे पकड़ लेना चाहिए था।"

इब्नकरीम—"पकड़ लेने का मुझे ख़याल ही नहीं हुआ। मैं तो उससे ख़बर सुनकर इस जल्दी में पड़ा कि कैसे आप लोगों को आगाह करूँ।"

हुरमतसिंह ने कहा—"मुझको इसमें दग़ा मालूम पड़ती है।"

इब्न करीम का चेहरा सुर्ख़ हो गया। बोला—"किसकी दग़ा?"

हुरमतसिंह बोला—"जिस किसी की हो। तुमने उसको पकड़ा क्यों नहीं?"

पुण्यपाल ने भीड़ में से चिल्लाकर कहा—"करीम कभी दग़ा नहीं दे सकता। मैं इस बात के लिये अपने सिर की होड़ लगा सकता हूँ।"

"और मैं भी" नागदेव बोला।

राजा सकपका गया। कहने लगा—"दग़ा उस आदमी की, जिसने करीम को बात बतलाई है। अब क्या करना चाहिए?"

हरी चंदेल बोला—"मैं अपनी सेना लेकर तुरंत भरतपुरा जाता हूँ। किसी को दबरा भेजिए।"

राजा—"दलपतिसिंह बुंदेला और मुकुटमणि चौहान को दबरा काफ़ी सेना के साथ भेजो। परंतु फिर यहाँ क्या होगा?"

इब्न करीम—"दुश्मन के मुक़ाबले के लिये यहीं इंतज़ार न करिए। अच्छी तादाद में आगे बढ़कर मोर्चा लेना चाहिए।"

पुण्यपाल ने कहा—"मैं जाऊँगा, पड़िहार चाहे जायँ, चाहे न जायँ।

पड़िहार सरदार बोला—"पँवारों को भी मुझे समझना है, और मुसलमानों से भी लड़ना है। भगवान् वह दिन जल्द लाएँगे, जब पड़िहार पँवारों का गर्व चूर्ण करेंगे।"

राजा ने भयभीत होकर कहा—"इस समय नहीं। इस समय झगड़ा मत करो। शत्रु का विरोध दृढ़ता के साथ करो। यहाँ की रक्षा के लिये क्या उपाय किया जाय।"

नाग ने कहा—"मैं यहाँ की रक्षा का भार लेता हूँ।"

पुण्यपाल ने कहा—"कुमार सहजेंद्र, आप मेरे साथ आइए।"

सहजेंद्र ने कहा—"प्रस्तुत हूँ। दिवाकर, तुम यहीं रहो।"

दिवाकर ने स्वीकृत किया।

नागदेव बोला—"अग्निदत्त, तुम मेरे साथ रहोगे या जाओगे।"

अग्निदत्त ने कहा—"कोई विशेष निश्चय नहीं है, चाहे चला जाऊँ, चाहे यहीं बना रहूँ—यहीं बना रहूँगा।"

भीड़ में कुछ लोग कह रहे थे—"हम जब रामनगर की तरफ़ से आ रहे थे, तब सुना था कि बहुत-सी भीड़ कहीं उधर से तमाशा देखने के लिये आ रही है।"

आक्रमण

तमाशा देखनेवाले सिर पर पैर रखकर इधर-उधर भाग निकले। अपने-अपने सरदारों के साथ सैन्य-दल निर्दिष्ट स्थानों की ओर चले, परंतु भिन्न-भिन्न सैन्य-दलों में परस्पर सहयोग स्थापित होने में काफ़ी देर लग गई। पुण्यपाल और नाग का दल ज़रूरत से ज़्यादा आगे निकल गया। किशुन खंगार का दल इब्न करीम के साथ बिलकुल ग़लत दिशा में जाकर फिर देवल की ओर लौट पड़ा। चमूसी के सिपाही टुकड़ियों में बरोल की गढ़ी के चारो ओर फैल गए।

राजा हुरमतसिंह अपने मंत्री और कुछ सैनिकों के साथ गढ़ी के एक सुरक्षित स्थान में चला गया। एक सुरक्षित स्थान में स्त्रियाँ पहुँच गईं और उन्हीं के पास नागदेव, दिवाकर और अग्निदत्त।

अग्निदत्त बहुत अशांत और अस्थिर मालूम पड़ता था। अवसर पाकर उसने मानवती को एकांत में बुलाने का साहस किया। उस समय हेमवती कुछ दूर एक खिड़की में होकर कुछ देख रही थी। मानवती के पास तारा थी। स्थिति के संकट के कारण किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया।

अग्निदत्त ने दृढ़ता के साथ कहा—"माना, अब समय आ गया है। अपने पूर्व-निश्चय पर दृढ़ हो?"

मानवती दुर्बल हो गई थी। आँखों में उतना तेज नहीं दिखलाई पड़ता था।

क्षीण कंठ से बोली—"बड़ी विपद् में हूँ। यदि मैं मर जाती, तो अच्छा होता।"

अग्निदत्त—"ऐसा मत कहो। तुम्हारे मुँह से यह बात सुनकर

कलेजा टूक-टूक होता है। मैं तुमको अब अधिक दुःखी नहीं देख सकता हूँ।"

मानवती—"बात क्या करूँ? मेरी तो कुछ समझ में नहीं आता।"

अग्निदत्त—"कुंडार को छोड़ना पड़ेगा। विस्तृत संसार में हमारे-तुम्हारे लिये बहुत काफ़ी स्थान है।"

मानवती उत्तर देने में असमर्थ दिखलाई पड़ी।

अग्निदत्त ने और तीव्र-दृढ़ता के साथ कहा—"माना, मेरे साथ चलो। यहाँ रहने से तुमको कभी सुख नहीं मिल सकेगा, और मेरा भी व्यर्थ ही अंत हो जायगा। चलो, रुको मत। दृढ़ता के साथ काम लो। अनिश्चय से सर्वनाश हो जायगा।"

मानवती ने घबराकर पूछा—"कब? किस तरह से?"

अग्निदत्त ने उत्तर दिया—"जो कुछ थोड़ा-सा सामान तुमको साथ में लेना हो, तैयार रख लो। मैं शीघ्र किसी दिन कुंडार के क़िले में तुम्हारे पास आऊँगा। हम-तुम दोनो पीछे की दीवार से ऊँची समस्थल पहाड़ी की छाती पर से दीर्घ विस्तृत संसार में निकल जायँगे। अन्यथा राजा ने जो घोषणा आज की है, वह मेरी और तुम्हारी दोनो की मृत्यु का घंटा-सा बजा है।"

मानवती बोली—"ये लोग मुझे और तुमको, दोनो को मार डालेंगे!"

इतने में तारा आती हुई दिखलाई पड़ी। अग्निदत्त ने कहा—"ज कुछ मैंने कहा है, उसका स्मरण रखना। मैं शीघ्र तुम्हारा उद्धार करूँगा।" और वहाँ से शीघ्र चला गया। तारा आई और मानवती को लेकर दूसरी ओर चली गई।

नागदेव कुछ दूरी पर एक सिपाही से बात कर रहा था। उसको एक ओर भेजकर स्त्रियों के स्थान की ओर उसने ताका। तारा और मानवत चली गई थीं, इसलिये नहीं दिखलाई पड़ीं। अग्निदत्त दिखलाई पड़ा।

उसके पास जाकर तुरंत बोला—"पांडे, आज निश्चय का दिवस है। हेमवती से स्पष्ट कहना है, बस।"

"कहो। इसमें मेरे साथ रहने की आवश्यकता नहीं पड़ सकती है। मैं दिवाकर के पास जाता हूँ।" पांडे ने कहा।

कुमार बोला—"जाओ, वह फाटक के पास खड़ा मिलेगा।"

पांडे चला गया।

जहाँ हेमवती थी, नागदेव को वह स्थान दिखलाई पड़ता था। उसी ओर बढ़ा। फिर ठहर गया। सोचा—"यदि मेरा तिरस्कार किया?" फिर अपने आप बोला—"अब चाहे जो कुछ हो, निबटारे की घड़ी आ गई है।" और फुर्ती के साथ हेमवती के पास पहुँचा। हेमवती अकचका गई। बोली—"क्या वैरी का आक्रमण हो गया है?"

"वैरी का आक्रमण नहीं है।"

अब हेमवती को कुमार के आने पर आश्चर्य हुआ।

कुमार ने कहा—"आज मैं सेवा में एक उत्तर पाने के लिये उपस्थित हुआ हूँ।"

हेमवती को कुछ डर लगा। उसको नाग के प्रश्न का इंतज़ार नहीं करना पड़ा।

नाग बोला—"मेरे जीवन की आशा आपके उत्तर पर अटकी हुई है।" कुमार की आँखों में संकोच न रहा।

हेमवती ने चारो ओर देखा। कोई निकट न था।

सिर ऊँचा करके बोली—"आपका क्या प्रयोजन है?"

नाग—"मेरा प्रयोजन? मेरे जीवन की आशा। मेरी आत्मा की न्योछावर। आपका आजन्म संग......।"

हेमवती ने टोककर कहा, जैसे लोहे की चोट से लोहे में झनझनाहट पैदा हुई हो—"मैं यह कौन सी भाषा सुन रही हूँ? आप जानते हैं, मैं कौन हूँ?"

जैसे आई नदी के ज्वार में किनारे का पेड़ उखड़कर निर्विघ्न बहता चला जाता है, नाग बोला—"प्राणधन, जीवन की एकमात्र आशा।"

जिस तरह धुआँधार बादलों को फाड़कर एकदम तीसरे प्रहर का सूर्य निकल पड़ता है, हेमवती का स्वर्ण-मुख ज्वलंत हो उठा। गला रुँध गया। कठिनाई से बोली—"मैं क्षत्रिय-कन्या हूँ। बुंदेला हूँ। आप खंगार हैं। जाइए।"

नाग के राज-मद और प्रणयोन्माद का योग हो गया। उसने उत्तेजित होकर हेमवती से कहा—"मैं कुंडार का राजकुमार हूँ और क्षत्रिय हूँ। आपके स्नेह की प्राप्ति के लिये असंभव पराक्रम को सहज-साध्य कर सकता हूँ।"

हेमवती—"इस समय जो संकट उपस्थित हुआ है, उसमें पराक्र दिखलाइए। यहाँ अकेली स्त्री के पास किसी बल-विक्रम के दिखलाने का अवसर नहीं है।"

नाग—"एक बार संतोष-जनक उत्तर मुझको दे दिया जाय—मैं तुरंत अपने को आहुति करने के लिये उद्यत हूँ।"

हेमवती—"आप राजकुमार हैं, परंतु यह लक्षण क्षत्रियों का नहीं है। जाइए।"

नाग—"जाता हूँ, परंतु आपकी एक हाँ पर मेरा संपूर्ण भविष्य निर्भर है।"

हेमवती ने नागिन की तरह फुफकारकर कहा—"यदि आप यहाँ से नहीं जाते हैं, तो मैं यहाँ से जाती हूँ। बुंदेला-कन्या न ऐसी भाषा सुन सकती है और न सह सकती है। और खंगार राजा होने पर भी बुंदेला-कन्या का अपमान करने की शक्ति नहीं रखता।" और वह वहाँ से दूसरी ओर चल दी।

नागदेव का गला सूख गया, और वह पसीने से तर हो गया। उसे पैर उठाना भी बोझिल हो गया। सारा शरीर ज्वर के मारे तपने लगा।

वह फाटक की ओर चला। एकांत में कहीं जाना चाहता था, परंतु फाटकके भीतरी भाग में दिवाकर टहलता हुआ मिल गया।

दिवाकर ने केवल शिष्टाचार के प्रयोजन से पूछा—"आप क्या अकेले ही कहीं बाहर जा रहे हैं?"

कुमार ने उसकी तरफ़ बिना देखे ही लापरवाही के साथ उत्तर दिया—"हाँ आप अपना काम देखिए।" और आगे बढ़ गया।

दिवाकर की आँख से एक चिनगारी छूट पड़ी। बोला—"हाँ, अच्छा।"

इतने में देवल के मंदिर के पास शोर हुआ। यहाँ पर किशुन खगार और इब्न करीम थे। मुसलमानों की एक टुकड़ी ने मंदिर पर धावा किया। आगे अत्तीबेग था।

करीम को हिंदू-सेना के साथ तलवार खींचे देखकर अत्ती ने उसको ललकारा। बोला—"दग़ाबाज़, यही तेरी मुसलमानियत है? सँभल।"

करीम—"आ बे, नापाक मुग़ल। रसूलिल्लाह ने बेईमानी करने की कभी इजाज़त नहीं दी।"

इसके बाद हिंदू-मुसलमानों की टुकड़ियाँ मंदिर के चारो ओर गुथ गईं। मुसलमानों के ज़ोरदार हमले को हिंदू न सँभाल सके। मुसलमानों का एक दल मंदिर के द्वार पर मूर्ति तोड़ने के इरादे से घुसने को हुआ ही था कि इब्न करीम दरवाज़े पर आकर खड़ा हो गया। अत्ती ने आकर वार किया। कहा—"मुशरिक, तेरे कुफ़्र का प्याला लबरेज़ हो गया।" वार का जवाब देकर करीम ने कहा—"अगर नमकहलाली खुदा के यहाँ सवाब है, तो आज मेरी तलवार खता नहीं करेगी।" और एक भरपूर दुहत्थी वार खाँडे से अत्ती के टोप-झिलमदार सिर पर किया। सिर टोप-समेत चिरकर दो टुकड़े हो गया और अत्ती धड़ाम से जा गिरा। अत्ती का पतन देखकर हिंदुओं के पैर जम गए, और वे मुसलमानों की टुकड़ी पर टूट पड़े। मुसलमान भागे और हिंदुओं ने उनका पीछा किया।

तारा उदास हो गई। बोली—"आपको यहाँ कष्ट है? मैं तो भगवान् से यह मनाती हूँ कि आप सदा यहीं बनी रहें।"

हेमवती को न मालूम यह बात क्यों अच्छी नहीं लगी। परंतु सरल, सहज, माधुर्यवती तारा से कड़ी बात कहने को किसका जी चाह सकता था? हेमवती ने कहा—"यदि किसी के लिये यहाँ रहने को जी चाहता है, तो तुम्हारे लिये तारा। नहीं तो इसी समय चले जाने की इच्छा होती है। तारा, जब हम लोग यहाँ से चले जायँगे, तुमको कैसा लगेगा?"

तारा की आँख में आँसू आ गया। जैसे देवताओं ने समुद्र को मथकर रत्न निकाला हो। बोली—"क्या कहूँ।"

हेमवती ने उसका आँसू पोंछकर उसको गले लगा लिया।

आँख का आँसू

उस दिन के बाद फिर नाग सहजेंद्र के गृह पर कभी नहीं दिखलाई पड़ा, और न अग्निदत्त नाग के साथ। सहजेंद्र को मालूम हो गया कि हेमवती कुंडार में नहीं रहना चाहती है और हुरमतसिंह को मालूम हो गया कि बुंदेलों के साथ रोटी-बेटी का व्यवहार केवल सुख-स्वप्न है। दिवाकर को भय हुआ कि अब कुंडार में अधिक दिन रहने को न मिलेगा और तारा को ध्यान हो आया कि वैशाख की अमावस्या के आने में थोड़े ही दिन रह गए हैं, और उसकी आनंदमय तपस्या समाप्त होने को आ रही है। राजधर को निश्चय हो गया कि मानवती के साथ उसका विवाह होगा और मानवती को विश्वास हो गया कि कोई भयानक घटना घटनेवाली है। किंतु बरौल-गढ़ी पर मुसलमानों के धावे का सहजेंद्र और पुण्यपाल द्वारा सफल प्रतिरोध होने के कारण सोहनपाल और धीर की धारणा हो गई कि हुरमतसिंह भाई के वैर-शोध की चिर चिंता को मिटाएगा, और पुण्यपाल ने समझ लिया कि सोहनपाल की विजय-पताका फहराने के लिये मानो देवताओं ने उसी को नियुक्त किया है।

अमावस्या के आने में अभी तीन दिन बाक़ी थे। अग्निदत्त ने एक दिन अपने पिता का बहीखाता लिखना एकदम बंद कर दिया। और बिना किसी को साथ लिए घोड़े पर कहीं चल दिया। तारा को किसी गाँव का नाम बतला गया, जो उस बेचारी को अच्छी तरह याद भी न रहा। दो दिन के बाद लौट आया। इस बीच में दिवाकर देवरा जाकर फूल लाता रहा, और तारा के साथ-साथ, पूर्वाभ्यास के विरुद्ध, शक्तिभैरव से कुंडार आता रहा। यद्यपि शक्तिभैरव और कुंडार के बीच का मार्ग दिन-भर बहुत अच्छी तरह चलता रहता था, तो भी मुसलमानों के बरौल-

आक्रमण के बाद से उसको इस सुरक्षित स्थान में भी संकट की शंका प्रतीत होने लगी थी। वह अपने घोड़े को इतना धीरे चलाता था कि जिसमें तारा को उसका साथ करने के लिये कोई प्रयास न करना पड़े।

दूसरे दिन तारा ने दिवाकर से पूछा—"आप क्या यहाँ से जानेवाले हैं?" मालिन उस समय उपस्थित न थी। तारा ने बहुत सहज भाव से प्रश्न करने की चेष्टा की थी, परंतु गला काँप गया था और आँखें नीची हो गई थीं।

दिवाकर ने उत्तर दिया—"हाँ तारा, किसी-न-किसी दिन यहाँ से जाऊँगा, परंतु अभी कुछ ठीक नहीं है।"

तारा की आँखें डबडबा आईं और वहाँ से वह हट गई। दिवाकर उस थोड़े-से चक्षु-जल में इस तरह से डूब गया, जैसे कोई गहरे समुद्र में डूबता-उतराता हो। कठिनाई के साथ दृढ़ता संपादित करके वह तारा के पास पहुँचा। अत्यंत कोमल और करुण स्वर में उसने कहा—"तारा।" परंतु जिस स्थान पर मालिन थी, तारा वहाँ चली गई। दिवाकर का शब्द शायद किसी ने भी नहीं सुना, किंतु दिशाओं के जिस गर्भ में झंझा समाकर विलीन हो जाती है, उसी में किसी अर्द्धरात्रीण राग की व्यथा की तरह दिवाकर का व्याकुल स्वर भी छिटक गया। उस दिन भी दिवाकर शक्तिभैरव से कुंडार तक तारा के साथ-साथ गया। वह किसी ध्यान में मग्न था, केवल उस समय चौंक-सा पड़ता था, जब घोड़ा कुछ तेज़ हो जाता था और तारा पीछे रह जाती थी। तब तारा को पीछे मुड़कर देखकर खड़ा हो जाता था, और उसको साथ लेकर आगे बढ़ता था।

चिट्ठी

हुरमतसिंह ने अपने मंत्री को बुलाया। जब आ गया, राजा ने उससे कहा—"सोहनपाल को लिखो कि कोई सहायता न दी जायगी।"

मंत्री—"मैं भी यही उचित समझता हूँ। इस राज्य में हमको छोटा समझनेवाले के लिये स्थान नहीं मिल सकता।"

राजा—"कुमार की उस चिट्ठी का अर्थ अब समझने की आवश्यकता है। बुलाओ।"

मंत्री—"महाराज, उस चिट्ठी को आपके हाथों में देखकर कुमार लज्जित होंगे।"

राजा—"नहीं होगा। एक बात तो पूछनी ही पड़ेगी। वही तो कुमार है, जो मेरी देह से उत्पन्न हुआ था।"

मंत्री की न चली। कुमार नागदेव बुलाया हुआ आया।

राजा ने कुमार से कहा—"बेटा, एक बात कहना है—मुझे विश्वास हो गया है कि तुम अभी तक धोके में रहे हो।"

नाग को आश्चर्य हुआ। वह राजा की बात को न समझा। बोला—"कैसा धोका?"

राजा हुरमतसिंह ने वह चिट्ठी कुमार के हाथ में दे दी, जो उसके पास अर्जुन के द्वारा हरी चँदेल ने भेजी थी।

कुमार का मुँह लज्जा के मारे पीला पड़ गया, और हुरमतसिंह का सहानुभूति के क्रोध के मारे लाल।

हुरमतसिंह बोला—"सोहनपाल और उसके भिखमंगे साथी अपने को बहुत ऊँचा समझते हैं, और हमको नीच! मुझे मालूम हुआ है कि बुंदेले हमारे साथ बेटी-व्यवहार नहीं करेंगे। न करें, मैं उन्हें विवश करूँगा,

परंतु यह बतलाओ कि चिट्ठी तुमने किस आशा पर लिखी थी ? अच्छा हुआ, जो वह अभीष्ट स्थान पर नहीं पहुँची। यदि पहुँच जाती, तो तुम्हारा जो अपमान होता, उससे एक भी बुंदेला इस पृथिवी पर न बचने पाता। बेटा, तुम्हें क्या कोई आशा है ? या थी ?"

नागदेव बिना कोई उत्तर दिए वहाँ से चल दिया। जाते समय उसने राजा को कहते सुना—"सोहनपाल को इसी समय लिखा जा रहा है कि कोई सहायता न दी जायगी।"

हुरमतसिंह ने गोपीचंद से कहा—"सोहनपाल को चिट्ठी लिख दो और आज ही भेज दो। यदि सोहनपाल फिर अभ्यर्थना करे, तो स्पष्ट लिख दो कि बिना लड़की ब्याहे सहायता नहीं मिलेगी। इस पर यदि मान जाय, तो ठीक है; न माने तो जैसे तुमसे मनवाते बने, वैसे मनवाना।"

मंत्री ने चिट्ठी लिखकर सोहनपाल के पास सारौल भेज दी।

चिट्ठी पाकर सोहनपाल को कष्ट हुआ। बहुत दिनों की बँधी हुई आशा बह गई। परंतु धीर को अपने उपाय पर विश्वास था। उसने सोहनपाल से कहा कि विष्णुदत्त की दिल्ली से दो-एक दिन में आने की खबर है। सोहनपाल ने इस निराशा-जनक चिट्ठी के पलटे में इसी कारण तुरंत कुछ भी लिखकर नहीं भेजा। परंतु सहजेंद्र के पास सूचना भेज दी, और यह कहला भेजा कि विष्णुदत्त के दिल्ली से लौटकर आते ही कुंडार से कूच करने की तैयारी रखना।

इस समाचार को पाकर हेमवती को बड़ा को सुख हुआ। और दिवाकर को ? कुछ कहा नहीं जा सकता।

दर्प-दलित नाग

नाग अपनी भेजी हुई चिट्ठी अपने ही हाथ में इतने दिनों के बाद ऐसे हाथों से पाकर भयानक विचारों में डूब गया। उसने एक चर राजधर को बुलाने के लिये भेजा।

नाग अकेले में बैठकर सोचने लगा—"मैं बड़े मूढ़ विश्वास में रहा हूँ। कितना मारा-मारा फिरा हूँ। साधारण स्थिति के लोगों की कितनी ख़ुशामद की है! सदा यही धारणा रही कि हेमवती का मुझ पर स्नेह है। स्नेह? हेमवती मुझको तुच्छा समझती है! अपने को क्षत्रिय और मुझको ओछी जाति का! कभी बुंदेलों के साथ तलवार का काम पड़े, तो बतलाऊँ कि मैं किस जाति का हूँ। उसने बरौल के मंदिर में मुझसे कई बार कहा था—'जाइए, जाइए।' जैसे कोई कुत्ते को दुतकारता है? सहजेंद्र की जितनी ख़ुशामद की, उतना ही सिर चढ़ गया। यह चिट्ठी महाराज के हाथ में कैसे पहुँची! मंत्री को मालूम होगा। उसको बतलाना पड़ेगा। यह निश्चय है कि चिट्ठी हेमवती के पास नहीं पहुँची और किसी ने शायद अर्जुना कुम्हार के हाथ यहाँ तक पहुँचा दी। अर्जुना की इतनी हिम्मत! परंतु कदाचित् हरी चंदेल ने उसको चिट्ठी देकर कुंडार भिजवा दिया हो। हरी चंदेल! चंदेलों के हम मालिक और हमारे साथ यह नीच बर्ताव! मुझको उसने चिट्ठी लौटा क्यों नहीं दी? अथवा जैसी मैंने आज्ञा दी थी, उसका पालन क्यों नहीं किया? हेमवती इनकार कर देती या और कोई उसकी ओर से मेरे प्रणय को अस्वीकार कर देता, तो आज यह अपमान सहन न करना पड़ता। मैं हरी चंदेल को देखूँगा। महाराज ने कहा था, 'तुम धोके में रहे हो।' इनको भी मालूम हो गया। मैंने राजधर और अग्निदत्त को अपनी व्यथा सुनाई

थी, परंतु अपमान का संपूर्ण विवरण नहीं सुनाया था। फिर इनको कैसे मालूम हो गया ? ओह ! बात सीधी-सी है। बुंदेले हमारे यहाँ भोजन नहीं करते—और क्या ? महाराज को विश्वास हो गया है कि बुंदेले मेरे साथ विवाह-संबंध को भी स्वीकृत नहीं करेंगे। मैं भी जानता था कि ये अभिमानी लोग इस तरह के संबंध के विपरीत होंगे। परंतु हेमवती के स्नेह की आशा थी। वह गई। हेमवती मुझे नहीं चाहती। कुत्ता या डोम-चांडाल के बराबर समझती है। कितना रूप और कितना घमंड ! मेरा तिरस्कार किया गया है ! मुझको नीच समझा गया है ! राजा का लड़का एक साधारण सैनिक की लड़की के भी योग्य न समझा गया ! कैसे बाल, कैसी आँखें ! कैसी देह, कैसी मुस्किराहट ! मेरे साथ विवाह होना असंभव है। असंभव है ?"

नाग आहत सर्प की तरह अपने कमरे में टहलने लगा। सारी देह जल रही थी और हृदय धक-धक कर रहा था।

फिर सोचने लगा—"हेमवती के साथ यदि विवाह असंभव है, तो नाग का विवाह संसार में किसी के साथ भी होना असंभव है। परंतु नाग का विवाह होगा और हेमवती का भी। और नाग का विवाह हेमवती के साथ और हेमवती का नाग के साथ। मैं हेमवती को बतलाऊँगा कि मैं घृणा या अवहेला के योग्य नहीं हूँ। मैं उसका पति होऊँगा और वह मेरी पत्नी। चाहे इसके लिये कुंडार-राज्य का बलिदान ही क्यों न करना पड़े। हेमवती मुझको नहीं चाहती। और मैं हेमवती को चाहता हूँ। कुत्ता भोजन को चाहता है और गृहस्वामिनी कुत्ते को टुकड़ा नहीं डालना चाहती। नागदेव सिंह—नागदेव श्वान ! हेमवती यदि स्नेह-पास में नहीं बँधती है, तो बल या छल-पाश में बँधेगी। नाग का अपमान ! न आज तक किसी ने किया और न कोई कभी कर पाएगा। और जो करेगा, वह किए को पाएगा। उस दिन देवी के मंदिर में कैसी सहज सरलता के साथ सिर उठाकर उसने मेरे प्रणय-निवेदन को ठुकराया था। मेरा बल-पौरुष

उस दिन न-जाने कहाँ चला गया, नहीं तो गुलाब के फूल की तरह उसको मुट्ठी में लेकर कुंडार चला आता। अब देखूँगा। एक दिन आवेगा, जब हेमवती मेरे अंक में होगी और इस अपमान की क्षमा माँगेगी। परंतु चिट्ठी महाराज के पास कैसे पहुँची? फिर देखूँगा।"

इतने में राजधर आ गया। उसने देखा कि कुमार की आँखें चढ़ी हुई हैं और मुँह उतरा हुआ है। उसके विवाह की तिथि नियत हो चुकी थी। दो दिन पीछे अमावस्या के दिन मंडप-विधान था। कुमार की यह अवस्था देखकर वह काँप गया। विनीत भाव से बोला—"क्या आज्ञा है?"

नाग—"यह कि सहजेंद्र को खूब शिकार खेलाओ और अंत में उसको कुंडार का राज्य दे दो और खंगारों से कह दो कि वे राख लपेट-कर जंगल में चले जायँ। बुंदेले हमसे बहुत बड़े हैं न!"

राजधर ज़रा-सा कुमार की ओर देखकर चुप रहा। परंतु उसकी एक चिंता दूर हो गई।

नाग ने कहा—"बुंदेलों का घमंड असहनीय हो गया है। कुछ उपाय कर सकते हो?"

राजधर ने उत्साह-पूर्वक उत्तर दिया—"पृथ्वी को बुंदेला-हीन किए जाने के उपकरण उपस्थित किए जा सकते हैं......"

नाग ने काटते हुए कहा—"अभी इतना बड़ा काम सामने नहीं है। इस समय यह पूछने के लिये तुमको बुलाया है कि हेमवती का विवाह मेरे साथ संभव है या असंभव?"

राजधर उत्तर देने में हिचकिचाया।

नाग ने कर्कशता के साथ कहा—"आप लोग सब असंभव समझते हैं, परंतु मैं अकेला इसको संभव ही नहीं समझता, प्रत्युत सहज भी।"

राजधर के जी में जी आया। उमंग के साथ बोला—"मैं भी इस बात को बहुत सहज समझता हूँ।"

"परंतु तुमको उसके साधन की क्रिया नहीं मालूम । नाग ने सरपट गति के साथ कहा और उसके जलते हुए नेत्र और भी जल उठे तथा उसके साँवले चेहरे में लाल आँखें ऐसी जान पड़ीं, जैसे काली रात में श्मशान भभक उठा हो ।"

राजधर बोला—"मुझे जो आज्ञा दी जाय, मैं उसके पालन के लिये आँख मूँदकर और सिर हथेली पर रखकर तैयार हूँ ।"

नाग ने कहा—"लड़ाई और प्रणय में सब घातें उपादेय हैं । यह बात ठीक है ?"

राजधर—"बिलकुल ।"

नाग—"तब हेमवती को जैसे बने तैसे अमावस्या की रात को बस्ती में से उठाकर क़िले में लाना होगा, चाहे एक लक्ष प्राणों का बलिदान इस काम में भले ही हो । ऐसा पहले भी हुआ है और भविष्य में भी होता रहेगा । यह तुम मुझसे पहले ही कह चुके हो कि प्रधान मंत्री महाशय ऐसे किसी काम में हमारा विरोध नहीं करेंगे और महाराज की सम्मति मैं अभी-अभी समझकर आ रहा हूँ ।"

राजधर—"उस रात को संसार के सब देवता और सब राक्षस भी हमारे इस काम में विघ्न न डाल सकेंगे ।"

नाग—"इतना बढ़कर न बोलो । मैं शक्तिभैरव की साधना करूँगा । वह कनेर के फूलों से प्रसन्न होते हैं । मैं स्वयं कल सबेरे देवरा जाकर कनेर के फूल ले जाऊँगा । और देवता पर चढ़ाऊँगा । वह मेरे सहायक होंगे ।"

राजधर—"पृथ्वीराज चौहान ने भी तो ऐसा ही किया था । प्रातः-स्मरणीय खेतसिंहजी उनके साथ थे ।"

नाग—"हाँ, अपमान पृथ्वीराजजी का भी किया गया था ।"

राजधर—"समय का निश्चय आप कर दीजिए । साधनों को मैं एकत्र कर लूँगा । मेरे पास कुछ ऐसे आदमी हैं, जो भेड़िए की तरह चुपचाप

शिकार खेल सकते हैं।" नाग के मुख पर शांति स्थिर दृढ़ता झलकने लगी।

बोला—"समय आधी रात के लगभग। मैं साथ चलूँगा। वैद्य अपना शुभचिंतक है और अकेला है। उसका मकान बुंदेलों के मकान से लगा हुआ है। अँधेरा होते ही उसके मकान में जाकर बैठ जाना चाहिए और अवसर पाते ही बुंदेलों के मकान के पीछेवाली खिड़की से धावा करना चाहिए। इस समय उस भवन में केवल दो मनुष्य हैं—एक सहजेंद्र और दूसरा दिवाकर। दो आदमी अँधेरी रात में हमारे अनेक आदमियों का कुछ नहीं कर सकेंगे। परंतु यथाशक्ति कोई आहत न होने पावे, ऐसा उपाय किया जाय कि हेमवती जागने न पावे, और जाग भी पड़े, तो बोलने न पावे; क्योंकि हल्ला हो पड़ने पर काम के बिगड़ने का डर है। मुझे तुम्हारी धूर्तता का पूरा भरोसा है। स्मरण रखना कि इसी अमावस्या को तुम्हारा और मेरा मंडप होगा।"

मंडप का नाम सुनकर राजधर प्रसन्न होकर चला आया। नाग की वह रात बड़ी कठिनाई से कटी। एक ओर सामंत नाग, दूसरी ओर आहतवर्ग नाग। एक ओर मनुष्य नाग, दूसरी ओर दर्प-युक्त नाग। एक ओर राजकुमार नाग, दूसरी ओर प्रणयोन्मत्त नाग। एक ओर वीर नाग, दूसरी ओर उद्धत नाग। एक ओर नागदेव और दूसरी ओर नाग-राक्षस। देवता पर राक्षस विजय पा चुका था, और खंगारों का सूर्य अस्ताचल की ओर जा चुका था।

व्रत का उद्यापन

अमवस्या जिस दिन थी, उस दिन अँधेरे में ही नागदेव देवरे कनैर के फूल तोड़ने गया। जिस समय फूल तोड़कर लौट रहा था, मार्ग में देवरे के निकट ही कुंडार से आता हुआ दिवाकर उसको दिखलाई पड़ा। दोनो को एक दूसरे का मिलाप अच्छा नहीं लगा।

दिवाकर ने शिष्टाचार-वश जुहार करके कहा—"आज बहुत सबेरे शिकार की तलाश में निकल पड़े ?"

नाग कुछ रुखाई के साथ बोला—"शिकार की खोज में नहीं आया। आज अमावश्या हैं, देवता पर फूल चढ़ाने के लिये शक्तिभैरव जाना था, उसी के लिये आया था।" और चल दिया।

दिवाकर को उसका स्वर अच्छा नहीं मालूम हुआ। रूखा और मीठा स्वर सब मनुष्य पहचान लेते हैं। परंतु इस बात का उसे हर्ष था कि नागदेव से और अधिक वार्तालाप नहीं हुआ था।

फूल तोड़कर वह भी शक्तिभैरव की ओर धीरे-धीरे बढ़ा। कुमार की मुठभेड़ बचाना चाहता था।

कुमार पूजा करके कुंडार चला गया। मार्ग में उसको तारा मिली। खड़ा हो गया। बोला—"तारा, आज हमारे यहाँ मंडप है। बुलावा आवेगा आना।"

"हाँ, दादा।" तारा ने कहा।

नाग—"अग्निदत्त कहाँ गए हैं ?"

तारा—"मैं गाँव का नाम भूल गई। उनको गए हुए दो दिन हो गए। कदाचित् आज आ जायँ।"

नाग—"उनको मंडप के समय तक तो आ जाना चहिए। बहुत दिन से मिले ही नहीं।"

इसके बाद नाग कुंडार की ओर चला गया और तारा शक्तिभैरव की ओर।

तारा जब मंदिर पर पहुँची, कुएँ के पास दिवाकर फूल लिए बैठा मिल गया। मालिन पुरोहित को दक्षिणा देने के लिये बुलाने चली गई। गाँव के स्त्री-पुरुष अभी कुएँ पर अधिक संख्या में नहीं आए थे।

दिवाकर ने साहस करके कहा—"आज आपके व्रत का उद्यापन है। मैं भी आपका व्रत सफल होने के लिये भगवान् से प्रार्थना करूँगा।"

तारा कुछ कहना चाहती थी। परंतु कुछ न कह सकी। कुछ स्त्री-पुरुष कुएँ पर आ गए। दिवाकर उठकर अपने घोड़े को सहलाने लगा।

जब स्थान ख़ाली हुआ, दिवाकर ने तारा के पास जाकर कहा—"तारा, जो कुछ मन में हो, उसको भूल जाना। आज इस पूजा का अंतिम दिवस है, इसलिये साहस के साथ इन बातों के कहने की ढिठाई करता हूँ। क्षमा करना। कदाचित् अब किसी बात के कहने का कभी अवसर न मिले। ईश्वर ने आपको कष्टों के लिये नहीं बनाया। मैं आज सच्चे हृदय से भगवान् से प्रार्थना करूँगा कि आपको आपके वर्ण का सुयोग्य और सुपात्र वर मिल जाय। यही प्रार्थना आप भी करना। मुझे इसमें अनंत आनंद प्राप्त होगा। मैं आजन्म आपके सुख के लिये सदा भगवान् से प्रार्थना करता रहूँगा। आप कोई चिंता मत करना। मैं तो जैसा संसार में आया था, वैसा ही चला जाऊँगा। यदि मैं भ्रम-वश कोई बात कह रहा होऊँ, तो मेरी भ्रम-पूर्ण धारणा के अन्याय को क्षमा करना। तारा, यदि कोई बात हो, तो मुझको भूल जाना।"

तारा ने नीची गर्दन करके सब सुन लिया। दिवाकर ने अपनी अंतिम बात से अपने को स्वयं हिला दिया। उठकर फिर अपने घोड़े के पास चला गया। घोड़े को थपकी देकर उससे बोला—"सिवा तेरे और मेरा संसार में कोई नहीं है।" दिवाकर की आँखों ने उस दिन न-मालूम कितने आँसू चुपचाप अकेले में उस पेड़ के नीचे डाले।

मालिन पुरोहित को लिवा लाई। तारा मंदिर में पूजन के लिये चली गई।

दिवाकर भी स्नान करके मंदिर में गया। उस समय पुरोहित उद्यापन कराके दक्षिणा ले रहा और मनोकामना की सिद्धि के लिये अशीर्वाद दे रहा था।

पुरोहित ने अपने अधिकार के गर्व के साथ कहा—"देखते नहीं कि एक बड़े घराने की लड़की का पूजन करा रहा हूँ? अभी यहाँ मत आओ।"

दिवाकर सहम गया। उसको क्रोध नहीं आया। बोला—"मैं एक किनारे से निकलकर जल चढ़ा आऊँ?"

पुरोहित निष्ठुर था। बोला—"नहीं जा सकते हो। जब यह यहाँ से चली जायँ, तब वहाँ जाने पओगे।"

दिवाकर उलटे पाँव लौटने को हुआ कि तारा ने पुरोहित से कहा—"मेरा पूजन हो चुका। मैं जाती हूँ। उनको मत रोकिए।"

पुरोहित ने धर्म की दुहाई देकर कहा—"ऐसा मत करो, ऐसा मत करो। बेटी, पूजा खंडित हो जायगी।"

तारा बोली—"उनको वहाँ जाने दीजिए। देवता सबके लिये एक-से हैं।"

यजमान को रुष्ट न करने की इच्छा से पुरोहित ने अपना अधिकार-व्यवहार वापस लिया और बहिर्गत दिवाकर को भीतर बुला लिया।

दिवाकर ने पूजा करके मन-ही-मन प्रार्थना की—"हे भगवान्, यदि मेरे हृदय में स्वार्थ नहीं है, तो तारा को ऐसी सुमति देना कि वह अपने लिये अपनी जाति का योग्य सुपात्र वर ग्रहण करे, और मुझे इतनी शक्ति देना कि मैं सदा तारा को अपने हृदय-सिंहासन पर बिठलाए रहूँ, संसार में जैसा अकेला आया था, वैसा ही अकेला बना रहूँ, और अंत में आपके चरणों में लीन हो जाऊँ।" प्रार्थना करते-करते दिवाकर गद्गद

हो गया और हाथ जोड़ने के बहाने छिपा-चुराकर उसने अपने आँसुओं का वेग पोंछ लिया।

जब तक दिवाकर ने प्रार्थना की, तारा ने मंदिर नहीं छोड़ा। जब दिवाकर मंदिर के बाहर हुआ, तारा भी निकल आई। सूर्योदय हो रहा था। दिवाकर का मुख किसी पवित्र विषाद की दिव्यता से दीप्त हो उठा था और तारा के मुख-मंडल से किरणें झर रही थीं।

अमावस्या के दिन

मार्ग में तारा और दिवाकर की कोई बातचीत नहीं हुई। कुंडार पहुँचकर तारा को मानवती के मंडप का बुलावा मिला। इस अवसर पर स्त्रियाँ रात्रि में एकत्र होती हैं और मंडप की रीति आधी रात तक समाप्त हो जाती है। फिर भोज होता है और इस तरह कुल रात आनंद-मंगल में समाप्त हो जाती है। वर और वधू, दोनो के घरों पर यही होता है। तारा को इस अवसर पर जाने की इच्छा न थी; परंतु निमंत्रण अस्वीकार नहीं कर सकती थी, इसलिये उसने जाने का विचार कर लिया। हेमवती के पास भी निमंत्रण भिजवाया गया। नाग की कल्पना थी कि यों ही किले में आकर फँस जाय, तो अधिक बखेड़े की आवश्यता न पड़ेगी; परंतु हेमवती ने अस्वस्थता का बहाना करके आमंत्रण आस्वीकृत कर दिया। जो स्त्री निमंत्रण देने आई थी, उसने जाकर कह दिया कि स्वस्थ होने पर भी अस्वस्थता का बहाना कर दिया।

दोपहर होने तक अग्निदत्त भी आ गया। उसको निमंत्रण की सूचना तारा ने दी। बोली—"आज रात-भर मुझको किले में रहना पड़ेगा।"

अग्निदत्त ने कहा—"एक क्षण के लिये भी नहीं। तुम आज घर पर रहना। मैं आज संध्या समय फिर बाहर जाऊँगा और न मालूम कब लौटकर आऊँ—मा अकेली हैं, उनके पास रहना। तुम न जा सकने के विषय में कुछ मत कहलाना। मैं कारण कहलूँगा।"

तारा के लिये यह निषेध निष्कृति देने का हेतु हुआ। तारा की इच्छा हेमवती से मिलने की हुई; परंतु अग्निदत्त ने इसको अपनी अनुपस्थिति के दिनों के लिये, जिसका उसने कोई कारण नहीं बतलाया, इतने काम बतलाए कि वह हेमवती के पास न जा पाई।

हेमवती ने उस दिन एकाएक सहजेंद्र और दिवाकर से कहा—"अब कुंडार में एक क्षण भी ठहरने की आवश्यकता नहीं है।"

सहजेंद्र—"मैं भी ऐसा ही समझता हूँ। दिवाकर, कल सबेरे ही प्रस्थान कर दो। आज सब सामान इकट्ठा कर लो। कल प्रातःकाल चल देंगे। अब यहाँ रहने के लिये कोई कारण शेष नहीं है।"

दिवाकर—"मेरी समझ में अभी यहाँ कुछ दिन और ठहरना चाहिये।"

सहजेंद्र—"न मालूम तुम्हारा मन यहाँ क्यों अटका हुआ है। अब किस आशा के बिरते यहाँ और ठहरना चाहिए?"

दिवाकर—"विष्णुदत्त पांडे के लौट आने तक आशा के लिये स्थान है।"

सहजेंद्र—"वह न-जाने कब लौटेंगे, और उनके लौटकर आने और हमारे यहाँ ठहरने में कोई संबंध नहीं दिखलाई पड़ता। जिस कार्य को सुबीते के साथ संपादन करने के लिये हम लोग यहाँ चले आए थे और दाऊजू सारौल में रह गए थे, वह सफल नहीं हुआ। अब इस नगर में और अधिक टिकना असह्य मालूम पड़ता है।"

दिवाकर ने इस पर कुछ विवाद नहीं किया।

थोड़ी ही देर में धीर प्रधान आया। उससे सहजेंद्र इत्यादि को विदित हुआ कि विष्णुदत्त पांडे सारौल होते हुए अभी-अभी आ गए हैं और वह इसी समय राजा के पास जाकर सोहनपाल जी के अनुकूल हो जाने के लिये उसको आरूढ़ करने में भरसक प्रयत्न करेंगे। दिवाकर ने सोचा कि शायद दो-एक दिन कुंडार में और टिकने का अवसर प्राप्त हो गया।

विष्णुदत्त और धीर सारौल से भोजन करके चले थे। दोनो बहुत थोड़ी देर अपने-अपने घरों पर ठहरकर राजा के पास गए। राजा पहले ही सहायता देने से इनकार कर चुका था। विष्णुदत्त ने सच्चे जी से सोहन-पाल को सहायता देने का अनुरोध किया; परंतु हुरमतसिंह के हठ के

सामने उसकी एक न चली। धीर के यह स्मरण दिलाने पर कि सहायता देने का वचन दिया गया था, राजा ने कहा—"एक शर्त पर सहायता दी जा सकती है।"

धीर ने विनीत भाव से पूछा—"किस शर्त पर महाराज?"

हुरमतसिंह ने खुलकर कहा—"सोहनपालजी अपनी बेटी का विवाह मेरे राजकुमार के साथ करने का वचन दें, तो मैं पूर्ण रूप से सहायता देने का वचन देने को उद्यत हूँ।"

धीर तमतमा उठा; परंतु बहुत संयत स्वर में बोला—"यह वचन मैं अपनी ज़िम्मेदारी पर नहीं दे सकता, और न इसका ज़िक्र आज तक आपकी ओर से पहले कभी किया गया।"

गोपीचंद बैठा हुआ था। बोला—"भूलिए मत प्रधानजी। एक बार मैंने संकेत किया था।"

हुरमतसिंह बोला—"आज संध्या-समय तक मुझको हामी मिल जानी चाहिए। आज ही मंडप गड़ेगा और अक्षय-तृतीया को पाणि-ग्रहण होगा। यही मुहूर्त राजकुमारी के विवाह का भी स्थिर हुआ है।"

धीर प्रधान ने जाने के लिये उठकर कहा—"इस तरह का संबंध वर्णाश्रम-धर्म के विरुद्ध है। आप संध्या-समय तक की बाट न देखें। यह संबंध होता नहीं दिखता।"

विष्णुदत्त चुप रह गया। कुछ न बोला, कुछ न बोल सका।

हुरमतसिंह ने उत्तेजित होकर कहा—"हम लोग भी क्षत्रिय हैं। क्या हम बुंदेलों से छोटे हैं?"

धीर ने नम्रता के साथ उत्तर दिया—"ना अन्नदाता, आप हम लोगों से बड़े हैं, तब तो हम आपके आश्रय की खोज में आए। परंतु जो बात असंभव है, उसके विषय में मैं और अधिक निवेदन नहीं कर सकता।"

उमड़े हुए क्रोध को वहीं दबाकर मान-मर्दित धीर अपने डेरे पर

लौट आया। उसकी आकृति को देखकर सहजेंद्र और दिवाकर समझ गए कि कुछ नहीं हुआ।

धीर केवल यह कहकर वहाँ से चला गया—"कल प्रातःकाल ही सारौल में आ जाओ। चार बजे सबेरे कुछ आदमी और राजकुमारी के लिये सवारी आ जायगी। हम लोगों को कल ही सारौल भी छोड़ना पड़ेगा।"

इस पर किसी ने कोई प्रश्न नहीं किया। दूसरे दिन सबेरे सारौल की ओर जाने के लिये सामान बाँध लिया गया, केवल बिस्तर खुले रख लिए गए। हेमवती बड़ी प्रसन्न हुई। तारा से मिलने की कुछ इच्छा उसके मन में थी; परंतु वह ऐसी बलवती न थी कि जो कुंडार-त्याग के हर्ष के सामने अधिक समय तक ठहरती।

दिवाकर ने एक कपड़े में से सूखे हुए बेले और कनेर की दो मालाएँ एकांत में निकालीं और उनको एक लंबे और पतले कपड़े में सावधानी के साथ सींचकर गले में माला की तरह कपड़ों के नीचे इस तरह पहन लिया कि कोई देख न सके। वह दिन में कई बार घर के द्वार पर गया, जैसे किसी को देखने की इच्छा हो; परंतु वह जिसको देखना चाहता था, वह उसको न दिखलाई पड़ा। उसको तीसरे पहर के बाद केवल नागदेव अग्निदत्त के घर जाता हुआ दिखलाई पड़ा। वह इन लोगों के घर पर नहीं आया।

नागदेव ने अग्निदत्त को अकेले में अपना भीषण विचार सुनाया। अग्निदत्त ने उस विचार को बुरा नहीं कहा; परंतु सहयोग करने में अपनी असमर्थता प्रकट की, और संध्या-समय के पहले ही एक जगह आवश्यक कार्य के लिये बाहर जाने का बहाना बनाकर उसने अपना पीछा छुड़ाया। नागदेव ने जाते समय कहा—"अक्षय-तृतीया के दिन पाणि-ग्रहण होगा, तब तक अवश्य आ जाना।"

कठिनाई से अपने को सँभालकर अग्निदत्त ने कहा—"अभी दीवार है ही नहीं, चित्र बन ही जायगा।"

नाग पाषाण की मूर्ति-सी कठोर शांत आकृति करके बोला—"दीवार आज तैयार हो जायगी और चित्र बन जायगा अक्षय-तृतीया के दिन। यदि ऐसा न भी हो सका, तो मानवती के विवाह के समय तो तुमको मौजूद रहना ही चाहिए। तारा तो आज आवेगी?"

अग्निदत्त ने केवल "हाँ" कहा। नागदेव वहाँ से चला गया।

विष्णुदत्त पांडे उस दिन और रात को भी घर पर नहीं आ सका। राजा ने उसको घर पर नहीं आने दिया। विष्णुदत्त उदास था। राजा ने उसकी हार्दिक प्रार्थना को, जो उसने सोहनपाल को सहायता देने के लिये की थी, अस्वीकार कर दिया था। सम्मानित करने की दृष्टि से और उक्त उदासी को दूर करने की इच्छा से विवाह का सारा प्रबंध-भार हुरमतसिंह ने विष्णुदत्त पर डाल दिया। इसके अतिरिक्त दिल्ली की स्थिति का भी पूरा विवरण राजा को सुनाने के लिये विष्णुदत्त को रुक जाना पड़ा। इसका सार विष्णुदत्त ने अपने पत्र में पहले ही लिख भेजा था, इसलिये यहाँ विशद विवरण देने की आवश्यकता नहीं।

नागदेव से यह सुनकर कि अग्निदत्त किसी काम के लिये बाहर संध्या के पहले ही जानेवाला है, विष्णुदत्त को आश्चर्य नहीं हुआ। उसने सोचा—"असामी से रुपया वसूल करने जा रहा होगा। अब तो बहुत तत्परता आ गई है। अवस्था पाने पर और भी सँभल जायगा।"

अमावस्या की रात्रि

साँझ होते ही सहजेंद्र ने किवाड़ बंद कर लिए। हेमवती प्रसन्न थी। दिवाकर और सहजेंद्र खिन्न। सहजेंद्र ने दिवाकर से कहा—"आज हम लोगों की यह दुर्दशा हो रही है कि साथ में आदमी भी नहीं है। जो आदमी सबेरे आवेंगे, वे दाउजू के खास भृत्य हैं। जब तक हम लोग पहुँच न जायँगे, उन भृत्यों के बिना दाउजू को कष्ट होगा। दिवाकर, हम लोगों के अच्छे दिन आने की अब बहुत कम संभावना है। स्वामीजी ने पूरी चेष्टा कर ली, दाउजू ने क्षत्रियों को अपने पक्ष में लाने का पूरा प्रयत्न कर लिया, प्रधान काका अपनी नीति की अच्छी तरह परीक्षा कर चुके हैं, किंतु सब व्यर्थ ही हुआ। कुंडार से पूरी आशा हो गई थी; परंतु गाढ़े समय पर उस झूठे धुरमतसिंह ने कोरा उत्तर दे दिया। माहौनीवालों ने जैसे अन्याय हम लोगों के साथ किया, वह कभी नहीं भुलाया जा सकता। परंतु उसके प्रतिशोध का कोई उपाय नहीं सूझता। भविष्य बिलकुल अंधकारमय है।"

दिवाकर के मन में कोई और चिंता उठ रही थी, इसलिये इस कथन का उस पर कोई अवलोकनीय प्रभाव नहीं पड़ा। बोला—"अभी हताश होने का विशेष कारण नहीं। जब तक हम लोगों के शरीर में रक्त है, तब तक अध्यवसाय में त्रुटि नहीं करेंगे। अब आप अधिक चिंता न करें। बहुत सबेरे उठना है। आप सो जायँ।"

इस पर सब अपने-अपने बिस्तरों पर जा लेटे और सोने की चेष्टा करने लगे। परंतु इतनी जल्दी सोने का अभ्यास न होने के कारण किसी को जल्दी नींद न आई।

उस दिन सूर्यास्त के पहले से ही गर्मी ज़रा ज़्यादा थी। हवा में

सन्नाटा था। दो-एक बादल इधर-उधर आकाश में दिखलाई पड़ रहे थे। गर्मी और सन्नाटे से भान होता था कि आँधी आवेगी।

ये तीनो बिस्तरों पर जाकर लेटे ही थे कि आँधी का आरंभ हुआ। पहले धीरे-धीरे हवा चली, फिर नभ में धूल छाई हुई मालूम पड़ी। इसके पश्चात् प्रचंड झंझा सायँ-सायँ करके चलने लगा। आँधी में पृथ्वी से कंकड़ उड़-उड़कर मकानों की दीवारों से टकराने लगे। पेड़ ऐसे मालूम होते थे, जैसे उखड़कर आकाश-गंगा के किनारे जाकर लग जायँगे।

थोड़ी देर में बड़ी-बड़ी बूँदों से मेह आया, परंतु एक या दो क्षण बाद आँधी-पानी के साथ कहीं उड़कर पहाड़ों से जा टकराया। जितने वेग के साथ आँधी आई, उतने ही वेग के साथ समाप्त हो गई। तारे फिर इधर-उधर झिलमिलाने लगे, बादलों के टुकड़े आकाश में घूमने लगे। आँधी चली गई, ठंडी-ठंडी हवा चलती रही। हेमवती को निद्रा आ गई। दिवाकर को नहीं आई। मन में कुछ बेचैनी थी। क़िले से बाजों के बजने का शब्द सुनाई पड़ा, और उसी समय घर के द्वार पर किसी के आने की आवाज़ कान में पड़ी।

दिवाकर ने सोचा, भ्रम है; परंतु कान लगाकर सुनने लगा। फिर किसी के चलने की आहट मिली। पहले उसने सोचा, न जाऊँ, फिर विचार किया कि देखूँ क्या है। सहजेंद्र के पास धीरे से जाकर बोला—"ज़रा बाहर जाकर देख आऊँ, द्वार के पास किसी की आहट मालूम होती है।"

सहजेंद्र बोला—"अजी किस भ्रम में पड़े हो? बुंदेलों-सरीखे लोगों के पास किस इच्छा से और किस साहस से कौन आवेगा?"

दिवाकर—"तो भी देखूँ। इच्छा होती है कि आज रात को पहरा लगाऊँ। न-मालूम यह भावना जी में क्यों बार-बार उठती है।"

सहजेंद्र—"भले ही पहरा लगाओ और रतजगा करो। मैं तो सोता हूँ। पहरा लगाने का मुझे कोई कारण नहीं मालूम होता।"

यह कहकर सहजेंद्र ने करवट ले ली और दिवाकर अपनी ढाल कंधे पर डाल और तलवार हाथ में लेकर धीरे से दरवाज़े को खोलकर बाहर आया। वहाँ कोई भी न मिला। मुहल्ले की अधिकांश स्त्रियाँ क़िले में गई हुई थीं और अधिकांश पुरुष प्रधान मंत्री के घर पर मंडपोत्सव में भाग लेने और भोजन करने के लिये गए हुए थे। जा नहीं गए थे, वे अपने दरवाज़े बंद करके घर-भीतर हो गए थे। मकानों में दिए तक जलते नहीं दिखलाई पड़ते थे। मुहल्ले में सन्नाटा छाया हुआ था। इतने में विष्णुदत्त पांडे के मकान का द्वार खुला, और एक स्त्री बाहर क़दम-दो क़दम आती दिखलाई पड़ी कि फिर लौटकर मकान में चली गई।

दिवाकर को भ्रम हुआ कि कहीं तारा न हो। "कहाँ जाने को थी? क्यों लौट गई? यदि तारा नहीं थी, तो कौन थी? तारा थी, तो क्यों लौट गई? कहीं यही स्त्री तो हमारे द्वार तक नहीं आई थी? परंतु आहट स्त्री के पैरों की नहीं मालूम पड़ती थी। तब वह कौन था? और यह कौन थी?" इत्यादि प्रश्न दिवाकर के मन में उठे। उसने सोचा कि ज़रा-सा हटकर पौर में हो जाऊँ और किवाड़ों को अधखुला छोड़कर देखूँ कि कौन है और कहाँ जा रहा है। उसने ऐसा ही किया। उसे आधी घड़ी से अधिक प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।

अधखुले किवाड़ों में होकर देखा, तारा थी। ज़रा तेज़ी से पैर रखते हुए चली आ रही थी। पास ही से जा रही थी, इसलिये पहचानने में कठिनाई नहीं हुई। उसने अब तक तारा को सरल वेश में ही देखा था। आज का ठाठ-बाट और ही था और वेष-भूषा निराली। दिवाकर का कलेजा धक से रह गया। पहली भावना उसके जी में यह उठी कि वह मेरे पास आ रही है और इस कल्पना के करते ही उसका कलेजा काँप गया। परंतु जब वह उसके द्वार की ओर नहीं मुड़ी और ज़रा आगे बढ़ती हुई दिखलाई पड़ी, तब उसका वह भाव तो वहीं विलीन हो गया। अब यह भीषण संदेह मन में उठा कि किसके पास और कहाँ अकेली

आ रही है। एक क्षण में सोचा—"इतना रूप, इतनी कोमलता, इतनी सरलता, इतनी पवित्रता और फिर यह नीचता! भगवन्, धरती फट जाय कि जिसमें यह कुलकलंक को गाड़ दे। हाय! संसार में कितना छल, और कितना पाप-पूर्ण कपट है!" फिर उसी क्षण उसने सोचा—"मुझे इससे क्या? मैं इसका कौन हूँ? कल सवेरे शायद सदा के लिये इस स्थान का त्याग कर दूँगा। मुझे इसके पापाचार से क्या?" इस पर उसकी सारी देह जल उठी। सोचा—"गले में जो माला डाले हूँ, उसमें इसी ने ये अक्षर बनाए थे,—"मेरे देव," इसको तोड़कर इसके पास फेंक दूँ और कह दूँ—"मैं अपने अपमान का कोई बदला नहीं चाहता।" गले पर हाथ डालते ही तारा की सरल सहज सुहावनी मूर्ति आँखों में आ बसी। मन में कहा—"अभी नहीं तोड़ता हूँ। इससे एक बात कहकर फिर तोड़कर फेंकूँगा।" वह तुरंत बाहर आ गया। तारा कुछ ही क़दम आगे निकल पाई होगी कि दिवाकर ने दबे हुए गले से कहा—"तारा।"

तारा सुनते ही तुरंत खड़ी हो गई। पीछे मुड़कर देखा, दिवाकर फुर्ती के साथ उसके पास आकर खड़ा हो गया। आभूषणों से लदी हुई थी और सिर अच्छी तरह से ढके हुए थी, परंतु घूँघट नहीं निकाले थी।

दिवाकर ने कहा—"तारा, तुम इस समय कहाँ जा रही हो?"

तारा ने धीमे और काँपते हुए स्वर में उत्तर दिया—"तुमको मुझसे प्रश्न करने का क्या अधिकार है? अपने घर जाओ।" और वह आगे बढ़ने को हुई।

दिवाकर मार्ग छोड़कर खड़ा हो गया। बोला—"मेरे प्रश्न का उत्तर दिए बिना आगे न बढ़ने पाओगी। मेरे यहाँ रहते अपने मार्ग को बहुत सहज मत समझो।"

"मूर्ख" तारा ने कहा—"दूर हो, नहीं तो......"और उसने तुरंत अपने आँचल में से एक चमचमाती हुई बड़ी छुरी निकाली।

दिवाकर भयभीत नहीं हुआ। भर्राए हुए गले से बोला—"छुरी मैंने

आज पहले-ही-पहले नहीं देखी है। मारो, यह कलेजा खुला हुआ है। मैं प्रतिघात नहीं करूँगा।"

तारा तेज़ी के साथ पैतरा बदलकर वहाँ से भागकर क़िले के मार्ग पर चल दी। दिवाकर ने पीछा नहीं किया। सिर में चक्कर आ गया। और वह अपने घर की दीवार से सहारे के लिये जा टिका। थोड़ी देर के बाद, तबियत कुछ सँभलने पर, दरवाज़ा बंद करके जा लेटा।

सहजेंद्र ने पूछा—"क्या था?"

दिवाकर ने कहा—"केवल भ्रम। भटका, परंतु कुछ नहीं पाया।" सहजेंद्र चुप होकर सो गया।

दिवाकर को बिस्तर आग-से जान पड़ने लगे। हवा ठंडी चल रही थी; परंतु सारी देह से मानो अंगारे बरस रहे थे। बिस्तर छोड़कर वह टहलने लगा। पागलों-जैसी स्तब्ध हँसी हँसकर मन में बोला—"निस्संदेह मैं मूर्ख हूँ! हृदय के किस रक्त से कल्पना को सींचा था! अवश्य ही मूर्ख ही ऐसा किया करते हैं।" फिर सोचा—"कैसा ग़ज़ब का पैतरा था! तारा और यह पैतरा! असंभव, स्वर कैसा कर्कश! तारा और ऐसा स्वर! तब कौन थी? तारा के वेश में क्या कोई और था।? आकृति, वेश-भूषा सब तारा की और क्रिया......!"

थोड़ी देर टहलता रहा। बेचैन था, उद्विग्न। परंतु ऐसी हालत में भी मकान की पीछेवाली एक दिशा में मुँडेर पर उसको एक सिर-सा उठा मालूम पड़ा। उसने ठहरकर जो देखा, तो वह सिर ग़ायब हो गया। दिवाकर ने सोचा—"यह भी भ्रम ही है, या किसी मनुष्य का सिर था?" हथियार लेकर फिर बाहर गया। मकान का चक्कर काटा; परंतु कोई न दिखलाई पड़ा। फिर भीतर आकर अपने आप बोला—"आज क्या नरक-लीला की रात है? यह सिर मनुष्य का था, किसी पशु का नहीं हो सकता। परंतु खोजने पर भी मिला कोई नहीं! चुपचाप लेटकर देखता हूँ कि क्या होता है।"

मंडपोत्सव

कुंडार के क़रीब-क़रीब सारे स्त्री-पुरुष आज प्रधान मंत्री की हवेली और राजा के क़िले में मानवती के विवाह का मंडपोत्सव मनाने में लीन थे। दोनो स्थानों पर मंडप बनाए जा चुके थे और पूजन की सामग्री जुटाई जा रही थी। बाहर बाजे बज रहे थे और खेल-तमाशे हो रहे थे, भीतर स्त्रियाँ मंगल-गीत गा रही थीं। टुकड़ियों में बँटकर स्त्रियाँ कभी गाती थीं, कभी नाचती थीं और आपस में तरह-तरह की ठठोलियाँ कर रही थीं। मानवती किसी विनोद में भाग नहीं ले रही थी। वह इस तरह अपने को सजवा रही थी, जैसे बलि-पशु बलिदान के पहले सुसज्जित और राग-रंजित किया जाता है। उधर प्रधान मंत्री के घर राजधर के कोई-कोई मित्र उसका हर्षोन्मत्त मुख देखने के लिये बेकली प्रकट कर रहे थे; किंतु उनको उत्तर दे दिया जाता था कि कुमार के साथ शिकार खेलने के लिये संध्या-समय ही नदी के किनारे चला गया है, मंडप के समय तक आ जायगा। इतना शोर-गुल और इतना गड़बड़ मचा हुआ था कि प्रबंधकर्ता स्वयं उस तूफ़ान में समाए-से जाते थे। उधर क़िले में विष्णुदत्त भरसक उत्कृष्ट प्रबंध करने की चेष्टा कर रहे थे; परंतु प्रधान मंत्री के द्वार से अधिक यहाँ पर भीड़ होने के कारण गोलमाल और गड़बड़ भी वहाँ से कहीं अधिक थी। शोर के मारे गाना-बजाना कुछ न सुनाई पड़ता था।

लगभग दस बजे थे। भीड़ में से होती हुई तारा स्त्रियों में जा पहुँची। बहुतेरी स्त्रियाँ उसकी छवि और रत्नाभरण देखकर डाह के मारे झुलस गईं। प्रकाश में तारा के स्वर्ण-आभूषण, रत्न और मुक्ता झिलमिला रहे थे। गले में हीरा-जटित एक हार पहने हुए

थी, जिसकी आभा की दमक से लोगों की आँखें चौंधिया जायँ। रात के कारण चेहरे का रंग कुछ श्यामल मालूम होता था, और लावण्य में उन्मादक आकर्षण आ गया था। चेहरे से रूप और लावण्य का गर्व-सा टपका पड़ता था। बड़ी-बड़ी आँखों में विष की मादकता थी। जब तारा कनखियों से कुछ सतर्कता के साथ कभी-कभी देखती थी, तब उस अर्द्ध स्फुट तिर्छी चितवन में जितना आंदोलन करने की शक्ति मालूम होती थी, उतना वहाँ के कुल शोर-गुल में मिलाकर नहीं मालूम पड़ती थी।

तारा से कई परिचित स्त्रियों ने उसके वस्त्र और आभूषणों के विषय में कुछ कहा; परंतु वह साधारण-सा उत्तर देकर सीधी राजकुमारी के पास चली गई।

इस समय राजकुमारी का श्रृंगार किया जा रहा था। रानी पास थी। उसने भी तारा के आभूषणों की सराहना की। उसको सुनकर तारा के सुंदर कपोल लज्जा के मारे बार-बार रंजित हो जाते थे। तारा ने अर्द्ध नग्न अवस्था से लेकर मानवती का पूर्ण श्रृंगार बारीकी के साथ चुप-चाप देखा। इसमें एक घंटे से ऊपर लग गया। पूरा श्रृंगार हो जाने पर मानवती का सौंदर्य और भी प्रभावशाली हो गया। परंतु श्रृंगारों में भी उसके चेहरे पर, जो एक उदासी थी, वह छिप नहीं रही थी। ऐसी जान पड़ती थी, जैसे रत्न-जटित स्वर्ण-थाल में हाल का कुम्हलाया हुआ कमल।

तारा ने मानवती से कहा—"यहाँ गर्मी लग रही, चलो, थोड़े समय के लिये दूसरी ओर चलें।"

कभी-कभी मानवती अग्निदत्त के साथ बैठकर घंटों जिस स्थान पर विनोद-वार्ता किया करती थी, आज उसी ओर अग्निदत्त की बहन के साथ मंडपोत्सव के ठीक पहले जाने के लिये पैर उठाते ही उसको न-मालूम कितनी पुरानी बातों का स्मरण हो आया। किसी

सहेली ने कहा—"मंडप के नीचे कंकण आ गया है, शीघ्र लौट आना।"

मानवती ने भरे हुए कंठ से कहा—"हाँ।" ज़रा एकांत पाने पर तारा ने धीरे से कहा—"माना, तुमको इस विवाह में सुख है?"

मानवती ने किसी अंतर्व्याप्त पीड़ा को वहीं दबाकर कहा—"क्यों तारा, तुमने कैसे जाना कि सुख नहीं है? तुम्हीं बतलाओ, तुमने इतने कड़े व्रत का साधन किया, क्या तुम्हें निश्चय है कि जैसे वर की तुमने लालसा की है, वैसा ही वर तुमको मिल जायगा।"

"हाँ।" तारा ने इधर-उधर देखकर कहा। मानवती ने पूछा—"तारा, क्या तुमने यह अभिलाषा की है कि अपनी ही जाति का मनचाहा वर प्राप्त हो जाय? बतलाओ, छिपाना मत।"

तारा ने दूसरी ओर मुँह करके उत्तर दिया—"मैंने तो यह अभिलाषा की है कि चाहे जिस जाति का वर हो, मनचाहा होगा, तो उसी के साथ विवाह करूँगी।" मानवती ने लंबी आह खींची।

बोली—"तुम्हारे माता-पिता क्या कहेंगे? भाई क्या कहेंगे?"

तारा ने मानवती का हाथ पकड़कर धीरे से कहा—"थोड़ा-सा और एकांत में चलो, तब सब बातें बतलाऊँगी। मुझे वर मिल चुका है और वह मेरे हृदय में विराजमान है। अभी मंडप में देर है। परंतु मेरे लिये समय थोड़ा है। आओ, उधर चलो।"

मानवती और तारा भीड़ और मार्ग से हटकर एक एकांत स्थान में चली गईं।

दिवाकर आहत

दिवाकर को पड़े-पड़े देर हो गई, परंतु कुछ भी न दिखलाई पड़ा। दूर से मंडपोत्सव का नाद सुनाई पड़ता था या अपनी साँस। कभी सरल, सहज मुस्किराहटवाली तारा का दिव्य मुख और कभी डबडबाई हुई सुंदर सीधी आँखें, कभी उसका कोमल ललित संबोधन और कभी "मूर्ख, दूर हो, नहीं तो...." कभी उसकी शांत, धीर गज-गति, कभी वह गज़ब का पैतरा और पलायन याद आता रहा। इतने आभूषण लादकर इतनी तेज़ दौड़ सकती है! फिर बीच-बीच में द्वार के पास की आहट और मुँडेर पर निकले हुए सिर का स्मरण हो आता था। हवा ठंडी चल रही थी और परस्पर प्रतिकूल विचारों की वेगमय और प्रचंड उथल-पुथल के कारण मन थक-सा गया था। इसलिये सब कष्टों को थोड़ी देर के लिये भुला देनेवाली एकमात्र ओषधि—निद्रा ने दिवाकर का उपचार किया; परंतु झपकी लगे बहुत थोड़ा ही विलंब हुआ था कि मकान के पीछेवाली खिड़की की ओर एक खटाके के शब्द ने दिवाकर की निद्रा को उचाट दिया।

उसको निद्रा के आ जाने पर पछतावा हुआ। फिर कान लगाकर सतर्कता के साथ सुनने लगा। द्वार के पास स्पष्ट आहट मालूम हुई। एक क्षण बाद मकान के पीछे से आहट आई। दिवाकर ने सोचा, द्वार की तो साँकल बंद है, परंतु अटारी का पिछवाड़ा अरक्षित-सा है। इसलिये वह ढाल-तलवार लेकर अटारी पर गया। ज़ीना कोठे में होकर था। मकान के सब दिए बुझ चुके थे, निबिड़ अंधकार छाया हुआ था। दिवाकर ने अटारी पर जाने के समय सहजेंद्र को नहीं जगाया।

दबे पाँव अटारी पर पहुँचा। खिड़की के पर्दे के पास कान लगाया ही था कि ठीक नीचे कुछ मनुष्यों की फुसफुसाहट सुनाई पड़ी।

एक बोला—"तुम बड़े मूढ़ हो, उतावली में खेल बिगाड़ोगे। ज़रा देर ठहरकर चढ़ना।"

दूसरे ने कहा—"कुमार, अब विलंब मत करिए। यदि नसेनी के खटके से भीतर कोई जाग पड़ा होता, तो वहाँ से ललकार सुनाई पड़ती।"

तीसरे ने कहा—"जब मैं मुँडेर के पीछे से गया था तब दिवाकर जाग रहा था, मैंने उसको पहचान लिया था।"

पहले जो बोला था, उसने कहा—"राजधर, तुम अब और अधिक उतावली मत करो। यदि हल्ला हो पड़ा, तो बस्ती के लोग आ पहुँचेंगे। यद्यपि मैं बस्ती के लोगों की ज़रा भी परवा नहीं करता, तो भी व्यर्थ की चिल्ल-पुकार से बचना चाहता हूँ।"

इसके बाद थोड़ी देर तक शांति रही। दिवाकर ने पर्दे को एक ओर ज़रा-सा हटाकर झाँका। अँधेरा छाया हुआ था। बादलों के टुकड़ों में होकर तारे टिमटिमा जाते थे; परंतु खिड़की के नीचे एक नसेनी के ऊपरी हिस्से के सिवा और कुछ नहीं दिखलाई पड़ता था। सारी भूमि समस्थल जान पड़ती थी—जो आदमी नीचे खड़े थे, उनका एक झुरमुट-सा मालूम पड़ता था, पहचान में कोई नहीं आता था। एक आदमी सीढ़ी पर चढ़ता हुआ मालूम पड़ा। अवस्था-भेद के कारण साहसी दिवाकर का भी कलेजा धकधक कर रहा था।

दिवाकर ने सोचा—"चढ़ आने दूँ या यहीं से ढकेल दूँ? इन लोगों में से एक कुमार और दूसरा राजधर अवश्य है; परंतु एक नाम के कई मनुष्य होते हैं, और फिर दोनो के यहाँ आज मंडपोत्सव है। शायद ये कोई दूसरे लोग हैं। इस आदमी को यहाँ तक आ जाने दूँ, तभी मालूम होगा कि ये सब कौन हैं। एक दो को पकड़

लेना कुछ कठिन न होगा।" दिवाकर पर्दे के पास से ज़रा हटकर खड़ा हो गया।

इतने में किसी ने नीचे से कहा—"राजधर, बहुत धीरे से जाकर देखो, कोई जाग तो नहीं रहा है। देखना, हेमवती को चुपचाप दरवाज़े की राह उठा लाने में कोई असुविधा तो न होगी। हम लोग पीछे-पीछे आते हैं। पहले चुपचाप जाकर बाहरी किवाड़ों की साँकल खोल लेना या जैसा उचित समझ में आवे, करना। आज हमारे-तुम्हारे जीवन का परीक्षा-मुहूर्त है। सावधानी से जाना।"

दिवाकर को विश्वास हो गया कि इस गिरोह में एक नागदेव हैं और दूसरा प्रधान मंत्री का पुत्र राजधर। उसको इन लोगों के आक्रमण का प्रयोजन भी मालूम हो गया। "हेमवती को चुराने के लिये आए हैं। क्यों? नीच, पामर, पशु! अब विलंब नहीं करना चाहिए।" एक क्षण में दिवाकर की समझ में स्थिति आ गई। एक साथ ही आश्चर्य और क्रोध का वेग उमड़ आया। अतिथियों के साथ ऐसा बर्ताव! राजकुमार और सामंत होकर ऐसा नीचाशय! परंतु ऐसा नहीं है कि साहसी दिवाकर को भय न लगा हो। कुंडार का राजकुमार और मंत्री-पुत्र चोरी करने के लिये सामने हैं, नीचे और सदर दरवाज़े पर न-मालूम कितने आदमी खड़े हुए हैं, और सहजेंद्र सो रहा है। अपने को अकेला और विरोध में संख्या, बल और प्रभाव देखकर एक क्षण के लिये दिवाकर के हाथ-पैर ढीले हो गए।

जो आदमी सीढ़ी पर से चढ़ता चला आ रहा था, वह ऊपर आ गया। तब दिवाकर का क्षणस्थायी भय दूर हो गया और निश्चय ने उसका स्थान ले लिया।

जैसे ही वह मनुष्य पर्दे को हटाकर भीतर बढ़ने को हुआ, दिवाकर ने उसको बाहर ढकेलने के लिये हाथ बढ़ाया। वह मनुष्य भी सतर्क था। झटका देकर खिड़की की ओर लौटना चाहता था कि दिवाकर ने धर

दबाया। उक्त मनुष्य ने पर्दा पकड़कर दिवाकर के ऊपर फेंका। दिवाकर ने पर्दे को समेटकर उसको पकड़ना चाहा। वह मनुष्य अपना हथियार खींचने को हुआ ही था कि आधे पर्दे के साथ दिवाकर उससे लिपट गया। नीचे से किसी ने कहा—"राजधर, क्या हुआ?"

राजधर नहीं बोला। एक-दो क्षण खिड़की के ऊपर लपट-झपट होती रही कि पर्दा एक किनारे पर फट गया और दोनो लुढ़ककर नीचे आकर गिरे।

ज़ोर का शब्द हुआ, परंतु दिवाकर के चोट नहीं आई; क्योंकि राजधर नीचे और दिवाकर ऊपर गिरा था। जो पास खड़े थे, वे इस दृश्य से घबराकर दूर जा खड़े हुए। दिवाकर एक क्षण में खड़ा होकर खड्ग-हस्त हो गया। एक पैर कराहते हुए धराशायी राजधर की छाती पर रख दिया और दूसरा पृथ्वी पर। बोला—"अरे अभागे चोट्टो, सेंध लगाने के लिये तुमको कोई और घर नहीं मिला? कुशल चाहते हो, तो भगो।"

दिवाकर का स्वर मुहल्ले में गूँज गया। उन व्यक्तियों में से एक ने कहा—"मारो।" दिवाकर तैयार खड़ा था। पहले उसके ऊपर एक आदमी टूटा, फिर दो और फिर कई ने घेर लिया। मारो-मारो की आवाज़ बढ़ गई और हथियारों की खनखनाहट दूर तक सुनाई पड़ने लगी। मुहल्ले के कुछ मकानों की अटारियों की खिड़कियों में दिए जला-जलाकर स्त्री-पुरुष देखने-समझने की चेष्टा करने लगे; परंतु बाहर कोई नहीं आया। विष्णुदत्त पांडे के मकान की खिड़की में भी दिए का उजाला दिखलाई पड़ा। निविड़ अंधकार था, इसलिये दिवाकर किसी को अच्छी तरह अपना निशाना न बना सका, केवल कैंची भाँजकर अपना बचाव करता रहा।

मुहल्लेवाले थोड़े समय के अनंतर चोर-चोर, लड़ाई-हत्या की पुकार मचाने लगे। इतने में दिवाकर ने चिल्लाकर कहा—"मेरा

नाम दिवाकर नहीं, जो आज तुम सबों के यहीं टुकड़े-टुकड़े न कर दूँ।"

जगजीवन वैद्य अपने मकान में चिल्लाया—"दौड़ो, कुछ सैनिकों को लिवा लाओ। दिवाकर किसी राहगीर को मारे डालता है।"

इतने में उन लड़नेवाले व्यक्तियों में से किसी ने एक ढेला उठाकर ज़ोर से दिवाकर के मारा, जो उसके सिर में जा लगा। दिवाकर का सिर घूम गया और हाथ ढीला पड़ गया। इसी समय लड़नेवालों में से किसी की तलवार का खिंचता हुआ वार गले के पास से उसके हाथ पर जा लगा। गर्दन को तलवार छू गई और बग़ल से कंधा टेहुनी तक चिर गया। दिवाकर धड़ाम से जा गिरा।

लड़नेवाले व्यक्तियों में से एक ने ज़ोर से कहा—"वह पड़ा है ऐंठू दिवाकर।"

इसी समय मकान के भीतर आँगन में रोशनी दिखलाई पड़ी। मुहल्लेवाले, जो तमाशा देख रहे थे, चिल्लाए—"दिवाकर बेचारा मारा गया!"

आक्रमण करनेवाले व्यक्ति अपने साथी को उठाने की चिंता में व्यस्त हुए। इनके जो साथी दरवाज़े पर खड़े थे, वे भी आ गए। थोड़े ही समय के अनंतर कुछ दूरी पर किसी और के जल्दी-जल्दी आने की आहट मालूम पड़ी। इतने में दिवाकर को वहीं छोड़कर वह गिरोह अपने मृत या आहत साथी को उठाकर वहाँ से भागा।

उद्‌घाटन

एकांत पाकर मानवती ने तारा से पूछा—"अब बतलाओ तारा।"

तारा ने कहा—"मैं बतलाती हूँ; परंतु माना, क्या तुम इस विवाह से संतुष्ट हो?"

मानवती ने उत्तर दिया—"क्यों नहीं, हूँ तारा? माता-पिता की आज्ञा मानना ही सबसे बड़े संतोष का कारण है। बस, यहीं मेरी कहानी समाप्त होती है।"

तारा—"परंतु मेरी कहानी यहाँ नहीं समाप्त होती, मैं तुम्हारे मनो-नीत वर का नाम जानती हूँ।"

मानवती वहाँ से भागना चाहती थी; परंतु साहस करके बोली—"तारा, आज तू यह सब क्या बक रही है? इस तरह की चर्चा अनुचित मालूम पड़ती है।"

"अनुचित?" तारा ने आश्चर्य से कहा—"तुम्हें कुछ स्मरण है, माना?"

मानवती ने अच्छी तरह तारा की ओर देखा, तारा की आँखों में व्यग्रता नाच रही थी, उसने तारा को ऐसा पहले कभी नहीं देखा था।

मानवती अकचकाई, साहस का भाव दिखलाकर बोली—"किस बात का स्मरण तारा?"

"इस बात का" तारा ने धीरे से कहा—"कि तुमको आज रात को अभी अग्निदत्त के साथ बाहर जाना है।"

मानवती घबराकर दीवार से जा टिकी, जैसे किसी ने शूल हूल दिया हो।

तारा ने परंतु पास जाकर हाथ पकड़ लिया। बोली—"घबराओ मत, घबराओ मत। मैं तारा नहीं हूँ।"

मानवती ने क्षीण स्वर में कहा—"तब—तब तुम क्या—कौन हो!"

"तारा, मैं वह हूँ, जिसने अपना जीवन तुम्हारे लिये न्योछावर कर दिया है, मैं वह हूँ, जिसकी मनोनीत प्रेयसी मानवती है। माना, जैसी सुंदर तुम आज मालूम होती हो, तुम्हारे लावण्य में जितना उन्माद आज है, उतना पहले कभी नहीं देखा। बस, अब चलने के लिये तैयार हो जाओ, मैं तैयार होकर आया हूँ। मेरे साथ दस लाख मुहरों के मोल के रत्न हैं। पीछेवाली दीवार के नीचे सजा-सजाया घोड़ा तैयार है, रेशम की मोटी डोर की नसेनी तुमको उतारने के लिये लगी हुई है। आज तुमको गोद में लेकर घोड़े पर बिजली के वेग के साथ दौड़ने की आकांक्षा है। माना, विलंब मत करो, नहीं तो तुम्हारे पराए होने में अब विलंब नहीं है। साहस करो, ज़रा इधर मेरे साथ चली चलो, तुमको किसी सामान के लेने की आवश्यकता नहीं है।"

मानवती दोनो हाथ मुँह पर रखकर रोने लगी। सिसककर बोली—"मैं क्या करूँ, क्या न करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। इच्छा होती है कि विष खाकर मर जाऊँ। पांडे, आज इतनी भीड़ यहाँ पर है कि भागते ही हम-तुम दोनो पकड़कर मार डाले जायँगे। हाय, मेरा जन्म क्यों हुआ था! वह देखो, कोई यहीं पर आ रहा है।"

अग्निदत्त के कानों की शक्ति शायद इस समय कुंद हो गई थी। उसने कोई आहट नहीं सुनी। उत्तेजित होकर बोला—"चलो, भाग चलो माना, निश्चय से काम लो।" इतने में उस स्थान पर कुमार नागदेव आ गया, पसीने और खून में लथपथ था, आकृति भयानक हो रही थी।

मानवती सन्न होकर बैठ गई। तारा-वेशधारी अग्निदत्त धक से रह गया।

नागदेव ने कहा—"यह क्या है तारा? अभी तू क्या कह रही थी? माना, यह क्या हाल है?"

मानवती ने लगभग अचेतावस्था में कहा—"मैं नहीं जाऊँगी, दादा मेरा अपराध क्षमा करो।"

नाग—" 'नहीं जाऊँगी'—'अपराध क्षमा करो।' यह सब कुछ समझ में नहीं आता। तारा, अभी-अभी तू क्या कह रही थी कि चलो, कहीं चलो। इसका क्या अर्थ है?"

तारा—"यहीं घुमाने के लिये कह रही थी। मैं अब घर जाती हूँ।" वह गमनोद्यत हुई।

नाग बोला—"ऐसे नहीं जा सकती हो।" और उसका रास्ता रोक लिया।

लोग-बाग इधर-उधर अपनी धुन में मस्त थे। इस ओर किसी का ध्यान आकृष्ट नहीं हुआ।

नाग ने कहा—"मानवती, यह क्या पहेली है? तारा, ज़रा ठहरो। बिना सब बात जाने न जाने दूँगा।"

मानवती—"मैं क्या बताऊँ, क्या कहूँ, मेरा अपराध क्षमा करो दादा।"

नाग—"मैंने तुमको ऐसा कातर कभी नहीं देखा। बतलाओ, क्या तारा ने तुमको कुछ भला-बुरा कहा है?"

इतने में तारा-रूपी अग्निदत्त ने एक बार फिर निकलकर खिसकने की चेष्टा की। नाग ने फिर रोक लिया। अनभ्यास के कारण अग्निदत्त अपने सामने का वस्त्र जहाँ-का-तहाँ क़ायम न रख सका। दूर से आते हुए प्रकाश में अर्द्धगुप्त चमचमाती हुई छुरी को नागदेव ने देख लिया।

नाग ने अग्निदत्त का दाहना हाथ पकड़ लिया। बोला—"यह सब क्या रहस्य है? तू यह छुरी क्यों लिए है तारा? आज की यह सब रहस्यमयी स्थिति तेरी संपूर्ण प्रकृति के प्रतिकूल है।"

मानवती धीरे से चीख़ी और वहीं अचेत होकर गिर पड़ी। अग्निदत्त ने बाएँ हाथ से छुरी को छिपाने और दाहने हाथ को झटका देकर

छुटाने की चेष्टा की ; परंतु वह हाथ नागदेव की वज्र-मुष्टि में जकड़-सा गया था ।

दाहने हाथ की कलाई से ऊपर कुहनी के नीचे एक बड़े घाव का चिह्न नाग ने देखा । उसने वह घाव पहले अनेक बार देखा था । बोला—"यह घाव तुमको कब लगा था ?"

अग्निदत्त ने देख लिया कि अब बचकर निकलना या छिपना असंभव है । उसकी आँखों में एकाएक पागलों की-सी तीक्ष्णता आ गई । बोला—"एक भीख,एक भीख दे दो ।"

नाग ने आश्चर्य के साथ कहा—"भीख ?" फिर अचेत मानवती की ओर देखकर धूल और पसीने में सना हुआ नाग बोला—"कुछ समझ में नहीं आता. यह सब क्या घटना-चक्र है । तारा, क्या तू वास्तव मे तारा है या तारा-वेश में कोई राक्षसी ? तारा और छुरी ? असंभव । शायद मेरे पहचानने में भ्रम हो । मैं विष्णुदत्त को बुलाता हूँ । उनको मालूम होगा ।"

विष्णुदत्त का नाम सुनकर अग्निदत्त ने बाएँ हाथ से छुरी निकालकर अपनी छाती पर तानी । नाग ने दूसरे हाथ से अग्निदत्त का वह हाथ भी पकड़ लिया । और, झटका देकर छुरी छीन ली । फिर बोला—"तू तारा नहीं है । तारा-वेश में तू कौन है ?"

अग्निदत्त ने काँपकर कहा—"मुझे यदि मरने नहीं देते, तो मार डालो । अब एक क्षण भी जीने की इच्छा नहीं है ।"

नाग ने शीघ्रता से अग्निदत्त के दाहने हाथ के घाव को पहचानकर कहा—"यह किसी दिन शिकार में चीतल के सींग के कारण हुआ था । ठीक है ? या मैं अब भी संदेह के अंधकार में हूँ ?"

थोड़े ही फ़ासले पर स्त्रियाँ आमोद-प्रमोद में मग्न थीं । एक ओर मानवती अब भी अचेत पड़ी थी ।

अग्निदत्त को छिपने या बच निकलने की कोई आशा नहीं रही ।

आँखों में निर्भयता आ गई। बोला—"अब संदेह का कोई कारण नहीं है। मैं जो हूँ, आप जान गए हैं। आपने एक बार किसी विषय में सहायता देने का प्रण किया था।"

नाग ने टोककर कहा—"नीच, पामर, पिशाच! अपने मित्र के साथ यह घात! इस अबोध बालिका के साथ यह दैत्याचार!"

अग्निदत्त—"गाली देने से कोई लाभ नहीं। मैं आपको आपके प्रण का स्मरण दिलाता हूँ, और सहायता केवल यह चाहता हूँ कि यह छुरी मुझको अपनी छाती में भोंक लेने दीजिए।"

नाग का हाथ ढीला पड़ने लगा। बोला—"राक्षस, मित्रघाती, तेरे लिये आत्मघात की सुविधा बड़ा भारी दान होगा। मैं अपने हाथ से तेरा गला घोटूँगा।"

नाग ने अग्निदत्त के गले की ओर अपना एक हाथ बढ़ाया। अग्निदत्त ने गर्दन सीधी कर दी और कोई विरोध नहीं किया। रत्न-जटित आभूषण पहने स्त्री-वेश-धारी मरणोद्यत अग्निदत्त उस समय ऐसा मालूम पड़ा, जैसे चैत्र-कृष्णपक्ष की रात में मंगल तारा।

नाग ने अपना हाथ थाम लिया। नागदेव बोला—"चांडाल, राजपुत्र के हाथ से तेरी मृत्यु का होना तेरे लिये गौरव की बात होगी। तेरा तो कल काला मुँह करके गधे पर चढ़ाकर नगर में घुमाया जायगा, और प्रजा को आदेश दिया जायगा कि वे सब तेरे मुँह पर थूकें। इसके अनंतर श्वपच के हाथ से तेरा सिर कटवाकर घूरे पर फिकवा दिया जायगा।"

"जिसमें ब्राह्मण-वध का पुण्य आपको मिले।" अग्निदत्त ने कहा—"और साथ ही उस वध का कारण भी संपूर्ण संसार को कल ही मालूम हो जाय।" फिर पागलों-जैसी हँसी हँसकर बोला—"यह सब उत्सव तो धूल में मिल ही जायगा और आपकी कीर्ति-पताका भी खूब ही फहराएगी।"

रानी—"अग्निदत्त ! मुझे इस संकट का थोड़ा-सा आभास पहले से था, इसीलिये मैंने माता के शीघ्रता-पूर्वक विवाह का इतना हठ किया है।"

नाग—"मा, तुम मेरी मा हो। तुमसे क्या कहूँ। पहले से तुमने मुझे क्यों नहीं बतलाया ? क्यों गोदी में साँप को खिलाया ?"

रानी ने मानवती के पास जाकर उत्तर दिया—"नाग, अब और कुछ मत कहो। तुम्हारी कठोर बातों से मेरा यह फूल कुम्हला गया है। तुम इससे मत बोलो। कहीं और मन बहलाओ। मेरी माता का विवाह हुआ जाता है, फिर तुम्हें किसी कर्कश बात के कहने के लिये अवसर न मिलेगा। सावधान, इससे मत बोलना। मैं अग्निदत्त को मरवा डालूँगी। उसका घर खुदवा डालूँगी। तुम चिंता मत करो। जाओ भैया, यहाँ से।"

नाग वहाँ से चला गया। रानी ने मानवती को अपने आँचल से हवा की। थोड़ी देर में और बहुत-सी स्त्रियाँ वहाँ आ गईं। आमोद-प्रमोद बंद हो गया। हुल्लड़ मच गया। कोई कुछ और कोई कुछ कहता था। एक सिरे से दूसरे सिरे तक यह चर्चा होने लगी कि अभी-अभी कुमारी तारा के साथ थी, उसी ने कुमारी को कुछ कर दिया है। किसी ने थोड़ी देर में यह खबर भी फैलाई कि कुमार के साथ शिकार खेलने में राजधर का सिर फट गया है।

जयमाल

महजेंद्र के निवास-स्थान के पीछे से जब वे लोग अपने साथी को उठाकर ले जा रहे थे, और मुहल्लेवाले अपने घरों में कोलाहल कर रहे थे, उसी समय दिवाकर की ओर किसी के जल्दी-जल्दी आने की आहट हुई। एक स्त्री आई और जहाँ दिवाकर पड़ा हुआ था, वहाँ कुछ ढूँढ़ने लगी। बहुत शीघ्र उसको दिवाकर का शरीर मिल गया। उससे लिपटकर उस स्त्री ने कहा—"मेरे नाथ! मेरे प्राणनाथ!"

दिवाकर सिर में पत्थर लगने के कारण शिथिल होकर गिर पड़ा था। तलवार की चोट बहुत गहरी नहीं लगी थी। वह बिलकुल अचेत नहीं था। मुहल्लेवालों ने उसको यों ही मरा हुआ बतला दिया था।

उस अर्द्ध अचेत अवस्था में भी दिवाकर ने वह कंठ पहचान लिया। कंठ के नाद और शरीर के स्पर्श से दिवाकर के शरीर में अद्‌भुत बल का संचार हुआ। उसने कहा—"कौन है, तारा?"

वह स्त्री तारा ही थी।

बोली—"आप कुशल-पूर्वक हैं? मुझे धोखा तो नहीं हो रहा है?"

दिवाकर ने उठकर बैठने की चेष्टा की, न बना। बोला—"तारा, तुम अभी कहीं गई थीं?"

तारा ने उत्तर दिया—"आपके चोट बुरी तो नहीं आई है? मैं जगजीवन वैद्य को बुलाए लाती हूँ।"

दिवाकर ने रोककर कहा—"ठहरो तारा, मेरे लिए कहीं मत भटको। एकआध बात तुमसे और कर लूँ, फिर कदाचित् तुम्हारे कभी दर्शन न हों। यदि इन घावों से, जो बहुत साधारण हैं, बच गया, तो सबेरे ही

न-जाने कहाँ किस दिशा में जाना होगा। तारा, यह बतलाओ, अभी थोड़ी देर पहले तुम किस ओर जा रही थीं?"

तारा बोली—"मैं तो संध्या होते ही घर में पड़ रही थी। कहीं बाहर नहीं गई। अभी हल्ला सुनकर आई हूँ। हाय, आपके शरीर से लोहू बह रहा है। रोकिए मत, मैं जगजीवन को लाती हूँ।"

दिवाकर—"नहीं तारा, एक क्षण और ठहरो। तुम्हारे दर्शनों के साथ महायात्रा करने में दिव्य सुख है। अग्निदत्त कहाँ हैं?"

तारा—"दो-तीन घड़ी पहले तो घर में ही थे। अभी जब मैं यहाँ आई, तब वहाँ न थे। किले को गए होंगे।"

दिवाकर—"और पांडे दादा?"

तारा—"दुपहरी ही से क़िले में हैं।" कुछ क्षण दिवाकर चुप रहा। फिर बोला—"तारा, मेरी शपथ खाकर एक प्रण करो।"

तारा—"वह क्या?"

दिवाकर—"कि तुम मुझको भूल जाओगी।"

तारा—"आप भूल जाना और समझ लेना कि सब कोई भूल गया।"

दिवाकर—"मैंने भगवान् से तुम्हारे लिये वर की प्रार्थना की है।"

तारा—"मुझे अब संसार में कुछ नहीं चाहिए, मेरे पास सब कुछ है।"

इतने में अटारी में सहजेंद्र दिया लेकर आया। दिवाकर ने दिया देखकर कहा—"तारा, तुम जाओ। लोग तुमको मेरे पास देखकर क्या कहेंगे?"

तारा—"कहने दीजिए। तारा किसी को नहीं डरती।"

दिवाकर—"नहीं तारा, तुम अबोध हो, जाओ, मुझे भूल जाओ और संसार में सुखी बनी रहो। दिवाकर सदा ईश्वर से यही प्रार्थना किया करेगा, अर्थात् बचा रहा तो।"

गले की खाल कट जाने से खून बह रहा था। दिवाकर ने उसको पोंछने के लिये गर्दन पर हाथ फेरा। कपड़े की माला, जिसमें कनैर और बेले के सूखे हुए फूल बंद थे, न-मालूम कहाँ गिर पड़ी थी।

दिवाकर ने घबराकर कहा—"मेरी माला यहीं कहीं टूटकर गिर पड़ी है। तारा उसको ढूँढ़ दो।"

तारा ने टटोलकर शीघ्र उस टूटी हुई माला को ढूँढ़ दिया। दिवाकर ने कहा—"मेरे गले में बाँध दो।" तारा ने बाँध दी।

सहजेंद्र ने फटे हुए पर्दे को नंगी तलवार से अलहदा करके सिर निकालकर देखा। हाथ में दिया लेकर देखनेवाले को कम दिखलाई पड़ता है।

दिवाकर ने तारा से कहा—"इस कपड़े में वे ही कनैर और बेले के फूल हैं, जो तुमने प्रसाद में मुझको दिए थे। तारा, अब तुम जाओ। सहजेंद्र आ रहे हैं।"

तारा ने उत्तर दिया—"जब तक आपकी मरहम-पट्टी नहीं हो जायगी, मैं न जाऊँगी, चाहे कोई मुझे मार डाले।"

दिवाकर ने कराहा।

सहजेंद्र ने शब्द सुनकर कहा—"दिवाकर, बोलो दिवाकर, कहाँ हो और तुम्हारे पास कौन है। मैं अभी कूद कर आता हूँ।"

दिवाकर ने क्षीण स्वर में कहा—"मैं यहाँ पड़ा हूँ। कूदकर मत आना। स्थान ऊबड़-खाबड़ है। सदर दरवाज़े से आओ।" सहजेंद्र वहाँ से हट गया।

दिवाकर ने कहा—"तारा, हम-तुम दो भिन्न जातियों के हैं। हमारा-तुम्हारा मिलाप असंभव है। तुम अपना नाश मत करो। तुम आकाश-नक्षत्र हो, और मैं पृथिवी का कृमि-कीट।"

तारा बोली—"आप मेरे धर्म, मर्म और देव हैं। क्या पूजा भी न करने देंगे?"

दिवाकर रोने लगा।

एक क्षण उपरांत बोला--"तारा, तुम मुझे सुखी देखना चाहती हो?"

तारा भरे कंठ से बोली—"हाँ, यदि मुझे लाख कष्ट भी झेलने पड़ें, तो भी।"

दिवाकर—"तो तुम यहाँ से चली जाओ, और मुझे भूल जाओ।"

इतने में दूसरी ओर से सहजेंद्र आ गया। बोला—"दिवाकर, मेरे भाई, कुशल है? यह पास कौन है?"

तारा खड़ी हो गई। बोली—"मैं हूँ तारा। इनके बहुत चोट आई है। तुरंत कुछ उपचार कीजिए। न-मालूम कितना रक्त बह चुका है।"

सहजेंद्र—"तारा, मेरी धर्म की बहन तारा! तुमने मेरे दिवाकर को बचाया है। दिवाकर, एक बार बोलो कि तुम बच गए हो, सुरक्षित हो।"

दिवाकर—"मैं बच गया हूँ। तारा को यहाँ से जाने दीजिए।"

तारा—"ये किसी संकट में तो नहीं हैं?"

तारा काँप रही थी, परंतु अपने हृदय और स्वर को स्थिर रखने का घोर प्रयत्न कर रही थी।

सहजेंद्र ने दिए के प्रकाश में अच्छी तरह से दिवाकर के घाव देखे। खून में लतपत था, पर प्राणों का कोई भय न था। बोला—"विंध्य-वासिनी की कृपा से बाल-बाल बच गए हो। तारा, ये लोग कौन थे और तुमने कैसे इतना बड़ा साहस किया? बिना किसी हथियार के इतना पुरुषार्थ! तुम दुर्गा हो!"

तारा—"मैं तो पीछे आई हूँ। चोर या डाकू जो कोई भी हों, उनको यह पहले ही भगा चुके थे। अब आप कृपा करके शीघ्र इनकी मरहम-पट्टी का प्रबंध करें। हाय, लोहू बहुत बह रहा है।"

सहजेंद्र—"अच्छा बेटी, तुम दिया और तलवार हाथ में ले लो, मैं इनको उठाकर घर लिए चलता हूँ।"

दिवाकर—"मैं बिलकुल निर्बल नहीं हूँ। आप तारा को घर जाने दें, मैं आपके सहारे चला चलूँगा।"

तारा—"मुझे दिया और तलवार दीजिए। रीते हाथ आप इनको अच्छा सहारा दे सकेंगे।" ऐसा ही किया गया। आगे-आगे तारा तलवार और दिया हाथ में लेकर चली और पीछे-पीछे सहजेंद्र दिवाकर को सँभाले या बिलकुल अंक में भरे ले चला।

सहजेंद्र ने सोचा—"बुंदेलों की विंध्यवालों सिनी ने अन्याय-पीड़ित बुंदेलों की रक्षा के लिये अवतार लिया है।"

दिवाकर को आँखें आँसुओं से भीग रही थीं, परंतु हृदय में विचित्र प्रबलता भान हो रही थी।

अब मुहल्लेवालों को विश्वास हो गया कि जिसको उन्होंने मृत घोषित कर दिया था, वह उनकी किसी कृपा के बिना ही जीवित हो हो गया है। ऐसी बात पड़ोसियों को जरा कम अच्छी लगती है। कुछ तो निराश होकर भीतर जा लेटे, परंतु कुछ यह समझकर कि कोई चोर-डाकू अब घटना-स्थल पर नहीं है, तलवारें ले-लेकर बाहर निकल आए। एक, दो, चार और फिर अनेक। तब तक दिवाकर मकान के भीतर पहुँचा दिया गया। हेमवती भी जाग उठी थी। दिवाकर को घायल देखकर रोने लगी। तारा भी रोने लगी। सहजेंद्र ने दिवाकर को लिटाकर पानी पियाला और जगजीवन को बुलाने के लिये चला गया।

जगजीवन घर पर नहीं मिला, एक पड़ोसी ने घटना के विषय में अनेक प्रश्न करने और कोई ठीक उत्तर न पाने के बाद कहा कि प्रधान मंत्री के घर पर जगजीवन को कोई लिवा ले गया है, सहजेंद्र लौट आया। अब पड़ोसियों की भीड़ एकत्र होना आरंभ हो गई। बहुत-से

लोग घटना की उड़ती हुई ख़बर पाकर राजा और मंत्री के यहाँ का आमोद-प्रमोद छोड़कर भागते आए।

घटना का वर्णन और उसकी आलोचना, समालोचना और प्रत्यालोचना होने लगी।

राजधर के शिकार में सिर फटने का वृत्तांत तथा कुमारी और तारा का कांड और कुमारी का मृतप्राय हो जाना ख़ूब रंजित करके वर्णन किया जाने लगा।

एक बोला—"तारा तो अभी-अभी दिवाकर की लाश उठवाकर इस घर में गई है।"

दूसरे ने कहा—"तारा नहीं होगी, सहजेंद्र की बहन होगी। मैंने अपनी आँखों से देखा कि डाकू उसको पकड़कर लिए जा रहे थे कि दिवाकर ने सालों को मार भगाया।"

तीसरा बोला—"वाह! वाह! मैंने अपनी आँखों से तारा को इस घर में घुसते हुए देखा है।"

चौथे ने कहा—"तारा नहीं थी। तारा तो क़िले में क़ैद कर ली गई है। मैं हेमवती को पहचानता हूँ। हेमवती थी।"

सहजेंद्र और दिवाकर ने ये बातें भीतर से सुनीं! तारा को यह सब सुनकर आश्चर्य हुआ। तारा और मानवती की लड़ाई! तारा की समझ में कुछ नहीं आ रहा था। बोली—"मैं जाकर इनको समझाए देती हूँ कि मैं तो आज संध्या-समय के पीछे घर से निकली ही नहीं हूँ, मेरा वेश धरके यदि कोई कुमारी से लड़ा हो, तो मैं कह नहीं सकती।"

दिवाकर ने सहजेंद्र से कहा—"असल बात मुझको अकस्मात् मालूम हो गई है। आपको भी मालूम हो जायगा, कल तक सभी लोग जान जायँगे। इस समय हमारा कर्तव्य है कि इनको भीड़ में न जाने दें। इन दयालु पड़ोसियों से कह दीजिए कि व्यर्थ अपनी नींद ख़राब न करें, घर

आयँ।" तारा से कहा—"तुम बाहर जाकर किसी को कुछ मत समझाओ-बुझाओ।" तारा वहीं ठहरकर हेमवती से बात-चीत करने लगी। सहजेंद्र बाहर गया। प्रश्नों की बौछार पड़ी। सहजेंद्र धैर्य के साथ उत्तर देने लगा। दिवाकर निहत नहीं हुआ, सहजेंद्र के उत्तर का यही सार था, परंतु पड़ोसियों के इस प्रश्न का उत्तर सहजेंद्र को नहीं मिला कि वह स्त्री कौन थी। सहजेंद्र ने बार-बार केवल यही कहा कि तारा अपने घर पर है। न क़िले में गई और न यहाँ आई। "तब तो" एक पड़ोसी ने भीड़ में कहा—"मेरी बात निर्भ्रांत निकली कि इनकी बहन को ज़बरदस्ती चुरा ले जाने के लिये ही डाका पड़ा था।" सहजेंद्र प्रश्नोत्तरों से थककर और क्षुब्ध होकर किवाड़ बंद करने को हुआ ही था कि एक आदमी ने आकर धीरे से कहा—"चलो, यहाँ से चलो। मैं अभी-अभी राजा के यहाँ सुन आया हूँ कि यह मकान घेरा जायगा। सिपाही आना ही चाहते हैं।"

एक पड़ोसिन ने कहा—"यह भी कोई बात है? जिसके ऊपर डाका पड़े, उसी का घर घेरा जाय, बड़ा अन्याय है।" वह बोला—"राजा की आज्ञा है, चुपचाप घर चलो।"

उक्त पड़ोसिन ने कहा—"आग लगे ऐसे राज्य में।"

परंतु सहजेंद्र के किवाड़ बंद कर लेने पर सहानुभूति का दरवाज़ा बंद हो गया और बुद्धिमान् दूरदर्शी पड़ोसी सहजेंद्र को गालियाँ देते हुए शीघ्र अपने-अपने घरों को चले गए। सहजेंद्र ने दिवाकर को घेरे जाने की बात सुनाई।

दिवाकर ने सहजेंद्र से कहा—"विलंब मत कीजिए। तारा को घर भेज आइए। आज की रात विभीषिकाओं की क्रीड़ा का समय मालूम होती है। तारा, तुम जाओ।"

तारा ने निहोरा करके सहजेंद्र से पूछा—"इनके लिये कोई संकट तो नहीं है?"

सहजेंद्र ने उत्तर दिया—"कोई नहीं है, परंतु तुम्हारे लिये बहन, कुछ संकट की संभावना मालूम होती है। घर चलो, एक क्षण भी यहाँ मत ठहरो।"

तारा ने दिवाकर की ओर देखकर हेमवती को प्रणाम किया और बोली—"जीजी, मुझे भूल मत जाना।"

तारा रो उठी और शायद चोट के मारे दिवाकर कराह उठा।

सहजेंद्र तारा को उसके घर पर पहुँचाकर लौट आया। बाहर कोई आते-जाते में नहीं मिला। जैसे ही दिवाकर के पास आया, वह बोला—"यहाँ अब सबेरे तक के लिये मत ठहरिए। हम लोग अपने प्राणों के लिये नहीं डरते, परंतु हमारी मान-मर्यादा विपद् में है। क्या करूँ, मैं घोड़े नहीं कस सकता हूँ। आप ही यह कष्ट करिए। जो आवश्यक सामान लेना हो, ले लीजिए ; बाकी सब छोड़ दीजिए।"

सहजेंद्र ने पूछा—"तुम्हारा घाव जब तक अच्छा नहीं होगा, यहाँ से न जायँगे। थोड़े-से डाकू हमारा कुछ नहीं कर सकते।"

दिवाकर उत्तेजित होकर बोला—"वे डाकू अवश्य हैं, परंतु थोड़े-से नहीं हैं। मुझे विश्वास है कि कुंडार की समस्त सेना किसी अकृत अपराध में सबेरे तक हम लोगों को घेर लेगी और प्राणों से नहीं, मर्यादा से हमको बिदा लेनी पड़ेगी।"

सहजेंद्र—"हम लोगों ने क्या किया है? आक्रमणकारी कौन लोग थे?"

दिवाकर ने कराहते हुए कहा—"नागदेव, राजधर और उसके साथी। अचंभे में मत पड़िए। इस समय बुंदेला-लक्ष्मी संकट में है। जल्दी करिए, अन्यथा इस सारे नगर की नपुंसक सहानुभूति हमारे लिये कुछ भी न कर-धर सकेगी। एक क्षण भी मत खोइए। मैं निर्बल नहीं हूँ, और यदि मार्ग में मर भी जाऊँ, तो चिंता मत करना। छोड़कर चले जाना। बहन, तुम रो रही हो? बुंदेला-कन्या की आँख में संकट के

समय में आँसू ! यह कहाँ से सीखा ? कुल, राज-कुल, पंचम-कुल का स्मरण रखना। बहन, तैयार हो जाओ, मेरा मोह किया, तो कटार मारकर अभी मर जाऊँगा।"

हेमवती ने चेतन होकर कहा—"मैं तैयार हूँ भैया। तुमको अपने घोड़े पर गोद में रखकर ले चलूँगी।"

सहजेंद्र—"मैं दिवाकर-सरीखे दो को घोड़े पर पच्चीस कोस तक ले जा सकता हूँ।"

सहजेंद्र ने जल्दी-जल्दी घोड़े कस लिए और आवश्यक सामान साथ ले लिया। आधी रात के करीब तीनो कुंडार से सारौल की ओर चल दिए। सहजेंद्र की गोद में दिवाकर था। हेमवती के घोड़े पर सामान। चलते समय सहजेंद्र ने कुंडार की ओर देखकर मन में कहा—"यदि मैंने खंगारों का नाश न किया, तो मैं बुंदेला नहीं।"

अग्निदत्त का प्रण

अग्निदत्त कुंडार के क़िले में छुटपन से आया-जाया करता था और उसके प्रत्येक भाग से भली भाँति परिचित था। कुमार नागदेव के पास से कोठरियों और छतों पर अँधेरी में भी आसानी से होता हुआ पीछे की प्राचीर पर आया, और धीरे से सीटी बजाई। नीचे से किसी ने सीटी का उत्तर दिया। थोड़े समय में नियुक्त स्थान को ढूँढकर एक रेशमी सीढ़ी की सहायता से नीचे उतर आया। जिस व्यक्ति ने सीटी का उत्तर दिया था, उसने धीरे से पूछा—"अकेले ही ?"

अग्निदत्त ने कहा—"हाँ, यहाँ से थोड़ी दूर चलो। तुमको पिताजी के लिये पत्र दूँगा, उनको सबेरे दे देना।" थोड़ी दूर जाकर एक पहाड़ी की ओट में दोनो हो गए। घोड़ा साथ में था।

पहाड़ी की ओट होने पर अग्निदत्त ने आग जलाई, और अपना स्त्री-वेश अलग किया, फिर घोड़े पर से लिखने की सामग्री और काग़ज़ निकालकर अपने पिता को चिट्ठी लिखी। आधी रात का समय था।

"परम पूज्य पितृदेव,

आपने मुझ नीच कुलांगार को पाल-पोसकर इतना बड़ा किया, पर आज मैं सदा के लिये आपसे बिदा लेता हूँ। मैंने जो कुछ किया, वह अधिक समय तक छिपा नहीं रहेगा। इस चिट्ठी में लिखकर अब और लाज नहीं बटोरना चाहता हूँ। अभी-अभी उस नीच खंगार नाग ने ब्राह्मण का अपमान किया है। ब्राह्मण ने भगवान् को लात मारी थी, तब उन्होंने उस लात को चूम लिया था। आज खंगार ने ब्राह्मण को लात मारी है। आप इस विषय में राजा से कुछ मत कहिएगा। यदि

आप कुछ भी कहेंगे, तो वे नीच खंगार आपको विपद् में डाल देंगे। व आपकी जायदाद हड़पने की चेष्टा करेंगे। आप शांति के साथ अपने दिन काटिएगा। तारा को कोई कष्ट न होने पावे। उसके विवाह की चिंता कीजिएगा। मैं अब कुंडार न आऊँगा। मेरे विषय में कुंडार में दो-चार दिन में एक घोषणा की जायगी। उससे आप भयभीत मत होना। खंगारों का नाश निकट है। मैंने प्रण किया है कि खंगारों का नाश करूँगा या मर जाऊँगा।

अयोग्य अग्निदत्त।"

चिट्ठी लेकर वह व्यक्ति उस स्थान से चला गया। अग्निदत्त ने सब वस्त्राभूषण एक पोटली में बाँधकर घोड़े पर रख लिए। इतने में कुछ दूरी पर घोड़ों की टापें सुनाई पड़ीं। अग्निदत्त सारौल के मार्ग से कुछ दूर हटकर खड़ा था। झटपट एक टौरिया की ओट में घोड़े-समेत हो गया। उसने दूर से यह नहीं देख पाया कि कौन जा रहा है। जब टापों का शब्द बिलकुल न सुनाई पड़ा, तब अग्निदत्त सतर्कता के साथ धीरे-धीरे सारौल को बचाता हुआ उसी दिशा में कहीं चला गया।

विष्णुदत्त की चिंता

क़िले में तारा-मानवती-संग्राम का शोर सुनकर विष्णुदत्त को बड़ी चिंता हुई। उसने अग्निदत्त को तलाश किया। पर वह कहाँ से मिलता? तारा को ढूँढ़ा, वह भी न मिली। तब विष्णुदत्त घर पर आया। तारा को देखकर पूछा—"यह सब क्या गोल-माल था?"

तारा—"अभी-अभी डाकुओं ने सहजेंद्र का घर घेर लिया था। दिवाकरजी को बहुत घायल कर गए हैं, परंतु वह बच गए हैं। कुल पुरा इकट्ठा हो गया था। अभी-अभी सब लोग अपने-अपने घरों को गए हैं।"

विष्णुदत्त—"तू क़िले में गई थी?"

तारा—"मुझे भैया ने रोक दिया था और इच्छा भी नहीं थी, इसलिये मैं तो नहीं गई।"

विष्णुदत्त—"फिर मानवती से किसकी लड़ाई हुई?"

तारा—"यहाँ भी लोग इस तरह की चर्चा कर रहे थे, परंतु मेरी समझ में नहीं आता कि यह नर-लीला है या प्रेत-लीला।" विष्णुदत्त चुप रह गए।

आधी रात हो चुकी थी। परंतु उसको नींद नहीं आई। दो घंटे पीछे विष्णुदत्त को सहजेंद्र के डेरे के चारों ओर बहुत-से पैरों की आहट सुनाई पड़ी। उसको भय हुआ कि वास्तव में फिर डाका पड़नेवाला है और अब की बार कदाचित् मेरे ही ऊपर पड़े। खिड़की के पास बैठकर भोर और भय का आवाहन करने लगा। जब सवेरा होने को हुआ, तब देखा कि राज-सेना सहजेंद्र के मकान को घेरे खड़ी

है। जी में जी आया। बाहर निकलकर सेना के एक सरदार से पूछा—"क्या बात है ?"

उसने उत्तर दिया—"इन बुंदेलों ने कहीं डाका डाला है, इसलिये मंत्री ने आज्ञा दी है कि घर घेर लो और भोर होते ही स्त्री-पुरुष सबको पकड़कर क़िले में ले आओ। थोड़ी देर में पकड़-धकड़ होती ही है।"

धीरे-धीरे बहुत-से पड़ोसी इकट्ठे हो गए, उनके प्रश्नों के उत्तर में भी सैनिकों ने इसी भीषण आरोप को सुनाया, परंतु पड़ोसियों को विश्वास नहीं हुआ। वे लोग डाके की अपनी दूसरी ही कहानी कहते फिरते थे, और उसका प्रतिवाद ज़ोर-ज़ोर के साथ जगजीवन वैद्य करता जाता था। वह कहता था—"मैं तुम्हारी आँख-देखी कैसे मानूँ ? मेरा घर तो लगा हुआ है।"

तारा ने भी रात की कुल कहानी, अपनी बीती को छोड़कर, विष्णुदत्त को सुनाई। उस दिन नागदेव के विवाह की चर्चा धीर से की गई थी, और उसने बुंदेलों की ओर से इनकार किया था। विष्णुदत्त को संदेह हुआ कि रात का डाका चाहे जिसने डाला हो, परंतु इस समय का घेरा उक्त विवाह-प्रसंग से असंबद्ध नहीं है। वह खिन्न-मन होकर भीतर बैठे-बैठे अपने मित्रों पर आनेवाली व्यथा की प्रतीक्षा करने लगा।

थोड़ी देर में उसको अग्निदत्त का पत्र मिला। पत्र को पढ़कर तारा-मानवती-संग्राम का वास्तविक रहस्य उसको ज्ञात हो गया। उसको जितना क्लेश उस दिन हुआ, उतना जीवन में कभी नहीं हुआ था। उसी क्लेश की अवस्था में उसने सुना कि सहजेंद्र इत्यादि कोई भी घर में नहीं मिले, न-मालूम कहाँ विलीन हो गए। पुत्र-लोप में सहजेंद्र इत्यादि की विलीनता समा गई।

कुछ साधारण उत्सव के उपरांत अक्षय-तृतीया को घायल राजधर के साथ पीड़ित मानवती का विवाह हो गया। नाग ने जो घेरा अमावस्या

के सबेरे सहजेंद्र के डेरे के चारो ओर डलवाया था, उससे नगर-निवासियों को दृढ़ता के साथ इस विश्वास के फैलाने में बड़ी सहायता मिली कि बुंदेला-कन्या को राजकुमार नाग ज़बरदस्ती घसीटकर बाहर ले आया था। दिवाकर ने उसकी रक्षा में अपने हाथ कटवा डाले और राजधर का सिर फोड़ डाला, फिर सब-के-सब रात को चुपचाप भाग गए और नाग की सेना मुँह ताकती ही रह गई। यह समाचार या अपवाद कुंडार के बाहर भी नाना रूप धारण करके दूर-दूर तक फैल गया।

मानवती का राजधर के साथ विवाह हो जाने के पश्चात् यह राज-घोषणा की गई कि आज से किसी समय भी यदि अग्निदत्त कुंडार के राज्य में पाया जायगा, तो खाल खिंचवाकर उसकी लाश में भुस भरवा दिया जायगा। अग्निदत्त का कोई अपराध नहीं बतलाया गया।

परंतु इससे जनता की कल्पना में कोई बाधा नहीं आई। मानवती के उस रात अचेत हो जाने का कारण जनता के लिये समस्या हो रहा था। बहुत से अटकल लगाए गए; परंतु तारा के विख्यात भोले स्वभाव के कारण या तो वे अटकल किसी के चित्त पर चढ़े नहीं, या चढ़े भी तो उनको कीर्ति न मिल सकी।

अग्निदत्त के देश-निकाले की घोषणा को सुनते ही जनता की कल्पना को रचनात्मक कार्य मिल गया। अग्निदत्त और तारा देखने में बिलकुल एक-से थे। अवश्य ही अग्निदत्त तारा का वेश धरकर उस रात क़िले में गया होगा। क्यों? उत्तर कुछ कठिन नहीं था—मानवती-हरण करने के लिये। नहीं तो इतना कड़ा दंड क्यों दिया जाता? तुरंत दंड इसलिये नहीं दिया गया कि कदाचित् राजधर के साथ विवाह होने में बाधा पड़े। विवाह में जल्दी भी इसी कारण की गई। यदि यह बात ग़लत हो, तो तारा या विष्णुदत्त को दंड क्यों नहीं दिया गया?

इस जनवाद को सुनने के पहले ही विष्णुदत्त इसी निश्चय पर पहुँच गया था। उस दिन से विष्णुदत्त को लोग बाहर बहुत कम देखते थे।

लेन-देन ढीला हो गया। कुंडार-राज्य से अपना ऋण वापस पाने की आशा न रही। अग्निदत्त के चले जाने की बात को सुनकर उसकी चिर-रोगिणी माता का भी शीघ्र देहांत हो गया। अब एकमात्र तारा के लिये और इस आशा पर भी कि किसी सुअवसर पर कदाचित् हुरमतसिंह और नागदेव से अग्निदत्त के लिये क्षमा प्राप्त हो जाय, विष्णुदत्त को जीवन की चिंता रहने लगी। वह राजा के साथ अपना व्यवहार पुनर्जीवित करना चाहता था। सब ऋण छोड़ देने को तैयार था, परंतु उद्धत बाप बेटे से डरता था, इसलिये कुछ दिन यों ही समय व्यतीत करता रहा। तारा दीपक के प्रकाश की तरह घर को आभामय किए रहती थी। कभी मानवती से मिलने नहीं गई और न कभी मानवती ने उसको बुलाया विष्णुदत्त तारा के लिये सुपात्र वर की चिंता में व्यग्र रहने लगा, परंतु कोई ऐसा मिला नहीं।

तारा ने एक दिन कहलवा दिया कि जब तक भैया घर पर लौटकर नहीं आवें, इस तरह की चिंता दूर ही रक्खी जाय।

तब विष्णुदत्त को अग्निदत्त के प्रण की बात याद आई। सोचा—"यह कोमल बालक ऐसे किसी असंभव काम में प्रवृत्त न होगा, जैसा उसने अपनी चिट्ठी में लिखा था। किसी-न-किसी दिन वह अवश्य आवेगा और किसी-न-किसी दिन राजा और राजकुमार उसको अवश्य क्षमा कर देंगे।"

तारा को ऐसा विश्वास नहीं था। वह सोचती थी, इस घोषणा के कारण अपमानित अग्निदत्त अब कुंडार में लौटकर नहीं आवेगा, किंतु कुंडार-राज्य के बाहर किसी नगर में बाप और बहन को बुला लेवेगा और कदाचित् तब और वहीं कोई और भी मिल जाय।

तारा नित्य प्रातः और संध्या-काल में थोड़े समय के लिये न-जाने क्यों उस खाली मकान की ओर देखा करती थी, जहाँ सहजेंद्र इत्यादि के कुछ वस्त्रादि अब भी रक्खे हुए थे।

क्षत-विक्षत बुंदेला

सबेरा होने से पहले ही हेमवती, सहजेंद्र और दिवाकर सारौल पहुँच गए। जिस समय वे पहुँचे, डोला लेकर कुछ आदमी कुंडार आने के लिये तैयार हो रहे थे। सोहनपाल और धीर ने दिवाकर को देखा।

धीर बोला—"आज मेरा भाग्य धन्य है। स्वामी की सेवा में इसका प्राण भी चला जाता, तो कुछ परवा न थी।"

इसके बाद दिवाकर की मरहम-पट्टी की गई। घाव बहुत बड़ा नहीं था, परंतु खून अधिक निकल गया था और इस पर हुआ मार्ग का कष्ट, इसलिये बहुत निर्बल हो गया था।

अधिकांश बुंदेले कोई किसी युद्ध में और कोई किसी युद्ध में मारे जा चुके थे। बुंदेलों का यह दल बहुत टूटी-फूटी अवस्था में आ गया था।

सहजेंद्र ने रात के आक्रमण का और दिवाकर की वीरता का पूरा वर्णन सुनाया।

जितने बुंदेले इस समय बच रहे थे, सब के सुनते ही एड़ी से चोटी तक मानो आग लग गई। देर तक बदला लेने की प्रतिहिंसा की उत्तेजना-पूर्ण बातें होती रहीं, परंतु अंत में उपयुक्त साधनों की चर्चा छिड़ते ही सब सिर नीचा करके रह गए।

सोहनपाल ने कहा—"इस समय सबसे पहली चिंता यह है कि यहाँ से तुरंत कूच किया जाय। दिन-भर दलपतिसिंह की गढ़ी में काटें और फिर वहाँ से जहाँ भाग्य ले जाय, वहाँ प्रयाण करें।

इन बे-घर-द्वार बुंदेलों को सिवा बुंदेले के और कौन आश्रय दिए देता था? यही बात तै रही। उसी समय चुपचाप बहुत शीघ्रता के साथ तैयारी की गई, घोड़े और आदमी सामान के लिये काफ़ी थे। अपना सब

सामान घोड़ों पर लादकर, रात में सताई हुई किसी दिन निस्सहाय स्त्री की तरह, बुंदेलों की यह छोटी-सी टुकड़ी अंडाघाट पर से होती हुई दबरागढ़ी के सामने प्रातःकाल से ज़रा पहले पहुँच गई। दिवाकर डोले में लाया गया। हेमवती घोड़े पर आई। जिस समय अंडा घाट पर यह दल आया, हेमवती ने सोचा—"बड़े गौरव और सत्कार के साथ हम लोगों को कुंडार का राजकुमार इसी घाट पर ले गया था, तब मैं उसको नहीं जानती थी। ऐसा दुष्ट, ऐसा राक्षस!" इस दल के पीछे-पीछे धीरे-धीरे एक और सवार आया, परंतु वह दबरागढ़ी के सामने न ठहरकर बेतवा के उस किनारे से दक्षिण की ओर बढ़ गया, जहाँ आज-कल घुमगवाँ और मुगटा का जंगल है।

दलपतिसिंह बुंदेला ने सोहनपाल और उनके संगियों के साथ सज्जनता का बर्ताव किया, परंतु वह चिंतित बहुत था। उसको भय था कि कहीं कुंडारवालों को पता लग गया, तो सोहनपाल अपमान से न बचने पावेंगे, और वह स्वयं भी संकट में पड़ जायगा, परंतु शासन की शिथिलता के कारण पुरुषार्थी सामंतों को यह चिंता अधिक नहीं सताती थी।

दिन-भर के विश्राम के पश्चात् दिवाकर को बहुत आराम मालूम हुआ, परंतु घोड़े की सवारी के बिल्कुल योग्य वह अब भी नहीं था, तो भी दबरागढ़ी में अधिक ठहरना उचित न समझकर सोहनपाल ने संध्या के पश्चात् कूच कर दिया। यह निश्चय हुआ कि मुकुटमणि चौहान के पास कुंडारगढ़ चलना चाहिए।

चलते समय दलपतिसिंह ने उदास सोहनपाल से कहा—"अपने खड्ग की सौगंध खाता हूँ दाउजू कि बुंदेलों का जो अपमान इस नीच राजा ने किया है, उसका शीघ्र बदला लिया जायगा। यदि कुंडार को राख में न मिलाया, तो बुंदेला न कहना।"

कुंडार-भर को राख में मिलाने की प्रतिज्ञा को सुनकर दिवाकर को कुछ बेचैनी हुई, परंतु बोला नहीं।

दिन में पूछ-ताछ करने के लिये दो बार लोग आए। एक दल तो कुंडार से आया और एक दल भरतपुरा से। कुंडारवाले दल को दलपतिसिंह ने सहज ही में टाल दिया था, परंतु भरतपुरावाले दल को बुंदेला सहज में न टाल सका। उस दल में हरीचंदेल और अर्जुन कुम्हार थे। हरीचंदेल तो दलपतिसिंह के आश्वासन को मान गया। परंतु अर्जुन ने कहा—"दाउजू, इतै इत्ते घुरवन की लीद काए डरी? अबस करकें कोउ-न-कोउ इतै आश्रो है।"

दलपतिसिंह ने कहा—"यह लीद तुम्हारे खाने के लिये यहाँ पड़ी है।" बात बढ़ती, परंतु चंदेल ने अधिक ढूँढ़-खोज करने की प्रवृत्ति न दिखलाई। इससे अधिक चिंता का और कोई कारण दबरा की गढ़ीवालों को नहीं हुआ।

प्रातःकाल के समय सोहनपाल का दल ८ या १० कोस निकल गया था। कुंडारगढ़ जाने के लिये बड़ा बीहड़ वन उस स्थान में मिलता था, जहाँ पर आजकल झाँसी शहर बसा हुआ है। इस वन में छिपा हुआ एक सरोवर था, उसके किनारे दिन में विश्राम करने के बाद संध्या-समय कुंडारगढ़ के लिये फिर कूच कर दिया गया। दिवाकर डोली में था और सब घोड़ों पर थे। यात्रा धीरे-धीरे हो पाई। जंगली और पहाड़ी मार्ग था और रात अँधेरी थी। अँधेरे में ही ये लोग कुंडारगढ़ पहुँचे।

मुकुटमणि चौहान को सोहनपाल ने अपनी दुर्दशा का वृत्तांत सविस्तार सुनाया, और निहोरा करके कुंडार से बदला लेने में सहायता देने की प्रार्थना की।

मुकुटमणि ने कहा—"मेरे पास राजा की चिट्ठी आप लोगों को खोज कर पकड़ने के लिये आती ही होगी। राजा ने आपके साथ अच्छा बर्ताव नहीं किया, इसलिये मैं और कुछ तो नहीं करूँगा, परंतु आपसे विनय करता हूँ कि आप यहाँ न ठहरें, अन्यथा मैं संकट में पड़ जाऊँगा।"

धीर और सोहनपाल के बहुत कहने-सुनने पर मुकुटमणि ने दो दिन बुंदेलों को अपने यहाँ ठहरने दिया। दुरमतसिंह की कोई चिट्ठी मुकुटमणि के पास नहीं आई। वह सोहनपाल और मुकुटमणि के संबंध को जानता था, इसलिये उसने मुकुटमणि को सोहनपाल के विषय में कुछ नहीं लिखा, परंतु कुंडार के आदमी यहाँ भी आए और इधर-उधर चले गए। उनको पता न लगा, क्योंकि मुकुटमणि ने सोहनपाल आदि को सावधानी के साथ छिपाकर रक्खा था। बहुत विनय निवेदन के पश्चात् मुकुटमणि इस बात पर राज़ी हुआ कि यदि बुंदेलों की सहायता खंगार-बुंदेला-संग्राम में न करूँगा, तो खंगारों की भी न करूँगा।

धीर ने मुकुटमणि से इस विषय में पक्का वचन ले लिया।

इसके बाद सोहनपाल ने विवश होकर करेरा की ओर प्रस्थान करने का निश्चय किया। पुण्यपाल का उसको भरोसा था, परंतु वह उसके पास जाना नहीं चाहता था। इस समय मजबूरी थी। माहौनी के राज्य का हिस्सा गया। भरतपुरा की लड़ाई में क़रीब-क़रीब सब आदमी मारे गए, जो दो बचे थे, वे बरौल के आक्रमण में समाप्त हो गए थे। सिवा इने-गिने लोगों के और कोई साथ न था और कान में निरंतर कूक मारती थी कुंडार की बेइज़्ज़ती। टूटी-फूटी अवस्था में यह अस्त-व्यस्त बुंदेला-दल करेरा पहुँचा।

पुण्यपाल ने बहुत आदर और भक्ति के साथ सोहनपाल का स्वागत किया। एक बहुत अच्छा स्थान, काफ़ी सेवक और सैनिकों के साथ, रहने के लिये सोहनपाल को दे दिया। सोहनपाल इस कृपा के बोझ से दबा जाता था, परंतु विवशता के कारण उसको पुण्यपाल का आतिथ्य स्वीकार करना पड़ा। सोहनपाल की पत्नी ने हेमवती का हाथ पुण्यपाल को देने का निर्णय बहुत पहले कर लिया था, परंतु सोहनपाल ने ऐसा कोई निश्चय नहीं किया था। अब सोहनपाल की प्रवृत्ति भी इस विषय में बहुत कुछ अनुकूल हो गई, परंतु इसके लिये कुछ समय लगा।

पुण्यपाल ने जिस समय कुंडार के बर्ताव का वृत्तांत सुना, दाँत पीस डाले।

उसने कहा—"जिस तरह होगा, कुंडार का नाश करूँगा। छल से, बल से, कौशल से, जिस तरह से होगा, इस अपमान का शोध किया जायगा। जब तक कुंडार की ईंट से ईंट न बजा दी, चैन न लूँगा।"

सोहनपाल और धीर संतुष्ट हुए, परंतु इस तरह की इन सब प्रतिज्ञाओं में दिवाकर को किसी विशेष कर्कशता की गंध आती थी। इसलिये उसका मन येन केन प्रकारेण वैर-शोध की बात को स्वीकृत नहीं करता था। वह ऐसे अवसर पर सोचता था—"कुंडार में एक देव-मंदिर भी है, जिसमें तारा का निवास है।"

कुछ समय पश्चात् अमावस्या की रात की घटनाओं का एक नवीन पुराण जनवाद के रूप में प्रकट हुआ। जहाँ देखो, तहाँ यह सुनाई पड़ता था कि खंगार हेमवती को दूर तक पकड़कर ले गए थे, परंतु दिवाकर ने अपनी जान पर खेलकर उसको बचाया। सोहनपाल, पुण्यपाल और बुंदेले इस अपवाद को सुन-सुनकर, कलेजा पकड़-पकड़कर रह-रह जाते थे और तरह-तरह से बदला लेने की बातें सोचते थे।

अग्निदत्त और मानवती के संबंध में भी किंवदंतियों और जनापवाद ने कोई कसर नहीं लगाई। अग्निदत्त के देश-निकाले का समाचार भी शीघ्रता के साथ फैल गया। बुंदेले विष्णुदत्त को धीर का मित्र होने के कारण अपना शुभचिंतक समझते थे। इसलिये मानवती के संबंध में किंवदंतियों ने अग्निदत्त के विरुद्ध जिस अपराध की सृष्टि की थी, वह उनको बहुत बड़ा नहीं जान पड़ा, और कुंडार के राजा ने जिस दंड का विधान अग्निदत्त के लिये किया था, वह उनको कठोर मालूम हुआ तथा ब्राह्मण का दंड-विधायक ऐसा राजा और उसका वंश पाप का भागी प्रतीत हुआ। यदि हेमवती के साथ अत्याचार करने की चेष्टा न की गई होती, तो बुंदेले इस विषय को कदाचित् दूसरी दृष्टि से देखते।

जब दिवाकर बिलकुल अच्छा हो गया, तब सोहनपाल के साथियों का ध्यान माहौनी और कुंडार के वैरशोध की ओर गया। माहौनी को सोहनपाल इत्यादि कुछ समय के लिये भुला भी देते थे, परंतु कुंडार उनकी आँखों में काँटे-सा खटकता था।

स्वामी अनंतानंद को भी सब बातों का पता लग गया। उन्होंने भी बुंदेलों की बदला लेने की प्रवृत्ति को ख़ूब उभाड़ा। वह स्वयं धीर और सोहनपाल कई महीने, ऋतु-कुऋतु का ख़याल न करके, कछवाहों, सेंगरों, चौहानों, पड़िहारों, चंदेलों इत्यादि क्षत्रियों के पास बार-बार भटके, परंतु किसी ने भी सहायता की आशा नहीं दिलाई। वे लोग माहौनी के विरुद्ध सहायता देने में ही अकचकाते थे, फिर भला कुंडार के विरुद्ध सहायता देने के लिये क्यों कमर कस सकते थे? एक-मात्र पुण्यपाल अपने पँवारों-सहित आहुत होने के लिये तैयार था, परंतु ऐसा बलिदान कराने के लिये बुंदेला-पक्ष का कोई व्यक्ति राज़ी न था। समक्ष युद्ध में बेचारे मुट्ठी-भर पँवार खंगारों की भयानक शक्ति का कैसे मुक़ाबला कर सकते थे?

माहौनी ने अन्याय किया। उसका कुछ उत्तर न दे सके! अपने पेट की रोटी के लिये दूसरों का मुँह ताकना पड़ा! इज़्ज़त लेने को खंगार तैयार हुए। बहुत बड़ी बदनामी हुई! उस पाशविक अत्याचार का बदला न ले पाए! जुझौति के क्षत्रिय ऐसे तितर-बितर और पंगु हो गए कि एक अन्याय-पीड़ित और पद-दलित भाई के लिये कुछ नहीं कर सकते थे!

पंचम की संतान, विंध्यवासिनी के वर-प्राप्त पुत्रों की ऐसी दुर्दशा! ये सब बातें सोच-सोचकर सोहनपाल चिंता में छीजा करते और अकेले में बैठकर आँसू बहाया करते। दिवाकर और सहजेंद्र का आमोद-प्रमोद बंद हो गया। सब-के-सब इस तरह से रहते थे, जैसे सूतक मना रहे हों—जैसे बुंदेला-लक्ष्मी मृत हो गई हो!

सब ओर से निराश होकर सोहनपाल का क्षत्रियत्व और धीर प्रधान

का राजनीति-स्थान अंतिम पलों की बाट जोहने लगा। केवल पुण्यपाल कुछ आशावान् था। वह किसी, कभी न आनेवाले सुअवसर की, किसी अलिखित अनस्तित्वमय सौभाग्य की, ताक में था। उसकी आशा का मूल उसके अदम्य उत्साह में था। वही सोहनपाल को कभी-कभी उत्साहित करता रहता था। दिवाकर के लिये यह विषय अब उतना व्यक्तिगत नहीं रह गया था। वह अपनी माला दिन में एकाध बार ही उतारता था, और लगभग सदा उसको पहने रहता था। उसको एकांत अधिक प्रिय हो गया था। वह सोचता—"क्या कभी फिर देवरा में कनेर के फूल देखने को मिलेंगे?"

पद-प्रहार के उपरांत

वर्षा-रितु का अंत हो गया और शरद्-रितु आ गई। साहनपाल और सोहनपाल के मित्रों ने संसार को बहुत हिलाने-डुलाने का उपाय किया, परंतु सब विफल। इसकी खबरें हुरमतसिंह को भी किसी-न-किसी रूप में मिलीं, परंतु बुंदेलों के इस वामन-प्रयास पर उसको हँसने का अधिक अवसर मिलता था, भय का कम।

हुरमतसिंह और नागदेव को सोहनपाल के स्थान का पता लग गया था, परंतु जो लोग सोहनपाल को सहायता देने से मुँह फेरते थे, वे ही नागदेव की हेमवती-हरण की इच्छा को फलीभूत होने में घोर बाधक थे। एक दूसरे से कटे-फटे, कुंडार के राजा की अधीनता को बहुत ही साधारण माननेवाले कछवाहे-पड़िहार इत्यादि क्षत्रिय अभिमानी पुण्यपाल को नत-मस्तक करने में कुंडार की सहायता नहीं कर सकते थे, क्योंकि एक क्षत्रिय-कन्या का भी प्रश्न उसके साथ लगा हुआ था। वे किसी के भी काम के न थे।

अपमानित और देश-निष्कासित होने के उपरांत अग्निदत्त मन की व्यथा को शांत करने के लिये कुछ दिनों वनों और छोटे-छोटे ग्रामों में भटकता फिरता रहा। इसी परिभ्रमण में उसने अमावस्या की रात की घटनाओं का वर्णन विविध रूप में विविध प्रकार से सुना। वह स्वयं नागदेव के उस षड्यंत्र में शामिल होने को तैयार हो जाता, पर घटना-चक्र ने न होने दिया।

दिवाकर के साथ उसको कुछ स्नेह हो गया था। उसके आहत होने का हाल सुनकर कुछ खेद हुआ। परंतु दिवाकर के आघात का कारण उसी नागदेव को स्थिर करके, जिसने उसको अपमानित किया था, अग्निदत्त

को इस बात पर हिंसा-पूर्ण हर्ष हुआ कि संसार में नाग के कुछ प्रचंड शत्रु और बढ़े।

अग्निदत्त भी कई महीनों कुंडार के प्रति प्रबल सरदारों को उभाड़ने की चेष्टा में निरत रहा। कभी उन लोगों के पास सोहनपाल की प्रार्थना पहुँचती थी और कभी अग्निदत्त अपना संवाद पहुँचाता था। परंतु ये सरदार किसी तरह कुंडार के विरुद्ध हाथ उठाने को तैयार नहीं हुए। उनके मन में एक कल्पना अवश्य उठती थी कि अब कुंडार में कुछ गड़बड़ होनेवाली है।

अग्निदत्त के हृदय में कुंडार के राजा और राजवंश के लिये इतनी गहरी घृणा एकत्र हो गई थी कि उसको शायद वह केवल सोने के समय भूलता होगा। परंतु उस घृणा में डूबकर वह अपनी रक्षा के साधनों को शिथिल नहीं होने देता था, क्योंकि नाग को जानता था।

उक्त अमावस्या की रात के बाद से नाग वह हँसमुख, खिलाड़ी नाग न रहा। किसी उलझन में बिंधा रहने के कारण वह आपे से बाहर हो गया—दिल के दर्द को दबाने के लिये, दुःखों के बोझ को डुबोने के लिये किसी स्मृत को विस्मृत करने के लिये उसने मदिरा-पान बढ़ा दिया।

पीता तो पहले ही से था, परंतु बहुत थोड़ी। अब उसकी मात्रा में खूब वृद्धि कर दी। राजधर इत्यादि कुछ इसी तरह के व्यसनी युवकों की एक मंडली बन गई, जो मदिरा के नशे के समय आत्मविस्मृत और नशे के बाहर आत्मपीड़ित रहते थे। कुंडार के निवासियों ने इस परिवर्तन को देखा। छिपा भी कैसे रहता? देखकर और इस मंडली की बातें सुनकर उनको बड़ी अश्रद्धा हुई।

— —— ——

करेरा में

अग्निदत्त जब बहुत-से सरदारों के पास भटक चुका, तब उसने पुण्यपाल के पास जाने की ठानी। उसको यह मालूम हो चुका था कि सोहनपाल इत्यादि करेरा में ठहरे हुए हैं। वह यह जानता था कि मानवती के नाम से संबंध रखनेवाली उसकी बदनामी करेरा भी पहुँच चुकी होगी, इसीलिये वह अपने पूर्व-परिचितों से इस अवस्था में मिलने से बचता रहा था। परंतु जो भाव उसके मन में निरंतर प्रेरणा करता रहता था, उसने उसको इस बाधा के उल्लंघन करने पर अब आरूढ़ कर दिया। एक बात से उसको संतोष था—वह यह कि कुंडार ने पुण्यपाल के इष्ट-मित्रों का भी घोर अपमान किया है, इसलिये वह कुंडार के सभी तरह के शत्रुओं का स्वागत करेगा।

एक दिन अग्निदत्त पुण्यपाल के पास पहुँचा। पुण्यपाल को उससे घृणा नहीं हुई, परंतु वह ज़रा हिचकिचाया। अग्निदत्त उसके स्वभाव को जानता था।

बोला—"आपको यह भय तो नहीं है कि कुंडार से देश-निकाले का दंड पाए हुए राजवंश के वैरी को आश्रय देने में हुरमतसिंह के कोप का भाजन बनना पड़ेगा? यदि ऐसा हो, तो कष्ट के लिये क्षमा कीजिएगा। मैं जाता हूँ। आपके समक्ष यहाँ तक इसलिये चला आया हूँ कि आपकी उदारता के कारण राजाज्ञा होने पर भी मुझे कोई कष्ट नहीं हो सकता है।"

५-६ महीने के भीतर ही अग्निदत्त की आकृति बहुत बदल गई थी। रंग बहुत साँवला हो गया था। गाल की हड्डी उठ आई थी। आँखें धँस गई थीं, परंतु उनमें दीप्ति अधिक प्रचंड उत्पन्न हो गई थी। अग्निदत्त

के देश-निकाले की दुर्दशा उसके मुख पर ही अंकित देखकर वह द्रवित हो गया। बड़ी जाति का, बड़े आदमी का लड़का और उसके नाम के चारो ओर ऐसी कहानियों का मंडल बन गया था, जो पुण्यपाल के वैरी कुंडार-नरेश की कीर्ति को उसकी दृष्टि में उज्ज्वल नहीं करती थीं। अग्निदत्त के प्रति उसके हृदय में सहज ही सहानुभूति उत्पन्न हो गई। अग्निदत्त को पुण्यपाल ने आदर के साथ बिठलाया।

पुण्यपाल ने कहा—"मैंने कुंडार को सदा जैसा समझा है, वैसा ही अब भी समझता हूँ। आप जब तक चाहें, तब तक करेरा में निश्शंक होकर रहें।"

अग्निदत्त—"मैं यहाँ दिन काटने नहीं आया हूँ, मैं क्षत्रियों के पौरुष की परीक्षा करने आया हूँ।"

पुण्यपाल—"वह कैसे?"

अग्निदत्त—"खंगारों का नाश करके।"

पुण्यपाल—"उसमें तो हम लोग दत्त चित्त हैं।"

अग्निदत्त—"परंतु अभी तक सफलता की कोई आशा नज़र नहीं आती। मुझे मालूम है। मैं भी उन्हीं लोगों के पास इसी कार्य के निमित्त गया हूँ, जिनके पास आपका संदेश पहुँचा है।"

पुण्यपाल—"सफलता अवश्य मिलेगी।"

अग्निदत्त—"इतने सैनिकों से नहीं।"

पुण्यपाल—"अवसर मिलने पर थोड़े-से सैनिक खंगारों को घास-फूड़े की तरह काट गिराएँगे।"

अग्निदत्त—"वह अवसर बहुत दूर मालूम होता है।"

पुण्यपाल—"मैं तो तुरंत कुछ कर डालने को तैयार हूँ, परंतु जब तक धन और जन यथेष्ट संख्या में न हो जायँ, तब तक के लिये दूर-दर्शी लोग मेरा हाथ रोके हुए हैं। आप भी हमारी कुछ सहायता कर सकते हैं या केवल सलाह ही है?"

अग्निदत्त—"दस लाख मुद्राएँ भेंट करूँगा। आप सैन्य-संग्रह कीजिए।"

पुण्यपाल विष्णुदत्त की संपत्ति का हाल जानता था।

युद्ध में पुण्यपाल का धैर्य कभी नष्ट होता हुआ नहीं देखा गया था, उसका अभिमान भी विख्यात था।

अग्निदत्त के प्रस्ताव को सुनकर पुण्यपाल उछल पड़ा। अग्निदत्त को गले लगाकर बोला—"तुमको हम लोगों के पास देवतों ने भेजा है। धन कहाँ है?"

अग्निदत्त—"यहाँ पर नहीं लिए हूँ, परंतु इच्छानुसार जब चाहें, तब मिल सकता है।"

पुण्यपाल—"कुंडार में है। परंतु उसको खंगार लोग जिस समय चाहें, छीन सकते हैं।"

अग्निदत्त—"कुंडार का धन इसके अतिरिक्त है।"

शुभ समाचार का परिणाम

पुण्यपाल से इस आकस्मिक सहायता की आशा का हर्ष सहन न हो सका। उसने धीर और सोहनपाल को जा सुनाया।

अग्निदत्त का जो भाव कुंडार के प्रति होगा, उसका भान धीर और सोहनपाल को था, परंतु उसकी सीमा उनको विदित न थी। उस दुर्दशा और निराशा के वातावरण में इस सहायता-सूर्य के उदय के कारण वे भी प्रसन्न हुए। धीर ने सोचा, यदि सांपत्तिक सहायता की बात बढ़ाकर भी कही गई है, तो भी अग्निदत्त का मेल-जोल अनिष्ट या हानि का कारण नहीं हो सकता। धीर ने अग्निदत्त को अच्छी तरह परखने और उसका पूरा उपयोग करने का निश्चय किया। सहजेंद्र को भी पुण्य-पाल से मालूम हो गया, और उसके भी डूबते हुए उत्साह और प्रज्वलित घृणा को बड़ा भारी आश्रय मिला।

केवल दिवाकर उदासीन रहा। उसने मन में कहा—"पापी नाग से खुले खेत में लड़ने की शुभ घड़ी तो आनंदोत्पादक होगी; परंतु अग्निदत्त के द्वारा उसी की जन्म-भूमि का सिर नीचा होना तारा के भाई के लिये गौरव की बात नहीं हो सकती।"

परंतु वह अमावस्या की रात को भूला नहीं था और खंगारों के प्रति उसके हृदय में कोई स्नेह नहीं था। इसलिये पुण्यपाल के आशा-पूर्ण संवाद पर किसी तरह की भली या बुरी टीका-टिप्पणी नहीं की।

अग्निदत्त को आदर-सत्कार के साथ रक्खा गया। धीर ने उसको परखने की कोशिश की और उसकी खंगार-हिंसा को प्रबल और भरा-पुरा पाया। धीर ने अग्निदत्त की संपत्ति के विषय में मन भरना चाहा,

परंतु अग्निदत्त ने उसको प्रमाणित नहीं किया। विश्वास अवश्य यह दिला दिया कि कार्य आरंभ किया जावे, आवश्यकतानुसार धन मिलता रहेगा।

अग्निदत्त हरावल का नायकत्व और नीति का नेतृत्व करने की महत्त्वाकांक्षा रखनेवाला युवक था—वह उन लोगों में से नहीं था, जो द्वितीय श्रेणी की उत्कृष्टता से संतुष्ट हो जाते हैं।

अग्निदत्त के इसी गुण या अवगुण के कारण उसको बुंदेलों में घुल-मिल जाने में कुछ देर लगी। यह कहना कठिन है कि अग्निदत्त की घृणा कुंडार के राजवंश के प्रति अधिक थी या सोहनपाल आदि की, परंतु धुन में जुटानेवाली प्रेरक शक्ति दोनो की एक ही थी—प्रेरक भाव भी एक ही था। इसलिये मेल-जोल करने में किसी को भी देर लगाने की इच्छा न थी।

बुंदेलों ने अग्निदत्त का शीघ्र विश्वास करना और अपनी मंत्रणाओं में सम्मिलित करना आरंभ कर दिया। अग्निदत्त ने किसी स्थान से, जिसका रहस्य उसके सिवा किसी को मालूम न था, मणि-माणिक-रत्नादि धीरे-धीरे देने आरंभ कर दिए। सेना बढ़ाई जाने लगी।

करेरा में अग्निदत्त की उपस्थिति का पता हुरमतसिंह और नाग को लग गया, परंतु एक तो पुण्यपाल को अधीन समझने के सिवा अधीन करने की क्लेस-प्रद अभिलाषा खंगारों के जी में प्रबल नहीं थी, दूसरे मानवती के विवाह के पश्चात् उनके क्रोध में कुछ शिथिलता भी आ गई। वह क्रोध इतने से ही तृप्त था कि अग्निदत्त कुंडार में या खंगार-राज्य के बड़े नगरों में न दिखाई दे और चाहे कहीं बाहर भटके या पड़ा रहे। राजवंश का क्रोध पहली-पहली अवस्था में तो संपूर्ण पांडे वंश को भस्मीभूत कर डालने की ओर झुका था, परंतु विष्णुदत्त का अमावस्या की रात की दुर्घटना से कोई संबंध न देखकर कुंठित हो गया। विष्णुदत्त का राजवंश पर बहुत-सा ऋण था। शायद और लेना पड़े, लूट

कर भी लिया जा सकता था, परंतु कुंडार के अल्प-मान्य प्रजा-मत का कुछ ध्यान तो भी रखना पड़ा। विशेष कर हेमवती-हरण की बल-पूर्वक चेष्टा के अनंतर। उधर कुंडार के क्षत्रिय-सरदारों की राजनीतिक गति राजवंश की उलझन का सदा कारण रहती थी। वे लोग न तो कुंडार के पतन में किसी के सहायक होने के लिये उत्साह रखते थे और न किसी के गिराने में कुंडार की सहायता करने का। जब एक दूसरे से लड़ जाते थे, तब कुंडार को बीच में आ जाने का अवसर मिल जाता था, परंतु ऐसा बहुधा नहीं होता था। कुंडार की शक्ति बाहर से देखनेवाले के लिये भयानक थी, परंतु भीतर से देखनेवाले के लिये अस्त-व्यस्त। तो भी पुण्यपाल-सदृश शक्ति-शाली सरदार अकेले-दुकेले कुंडार का कुछ नहीं बिगाड़ सकते थे।

धीर और सोहनपाल इस बात को जानते थे, परंतु पुण्यपाल की उमंग पर-पक्ष को हलका समझती थी। इतना अच्छा था कि वह धीर और सोहनपाल की मर्ज़ी के ख़िलाफ़ कुछ नहीं करना चाहता था।

अमावस्या की रात की घटनाओं के बाद सोहनपाल आदि ने कुंडार के विरुद्ध जो पक्ष तैयार करने की चेष्टा की थी, वह राजा से छिपी न रही। राजा यह भी जानता था कि क्षत्रिय-सरदार सोहनपाल की सहायता करने को तैयार नहीं हैं, परंतु उसको यह भी मालूम था कि क्षत्रिय-सरदार खिन्न हैं और प्रत्येक समय, प्रत्येक अवस्था में, उनका भरोसा नहीं किया जा सकता है। इसीलिये बुंदेलों का निष्ठुरता के साथ पीछा नहीं किया गया। पुण्यपाल के सैन्य-संग्रह का भी हाल हुरमतसिंह और नाग को मालूम हो गया, परंतु उस क्रांतिमय समय में, एक प्रबल सरदार का सैन्य-वर्द्धन, कोई असाधारण घटना न थी। ऐसी दशा में पुण्यपाल के पास सोहनपाल का होना हुरमतसिंह के लिये कुछ खटके की बात अवश्य हुई, परंतु वह उसको रोक नहीं सकता था। इसलिये उसने एक उपाय किया।

बरौल के आक्रमण के पश्चात् कालपी के मुसलमान-सरदार के लिये दिल्ली की डावाँडोल स्थिति के कारण अपनी रक्षा के यत्न में निरत होना पड़ा और उसने थोड़ी देर के लिये कुंडार को अपने ध्यान से टाल दिया। परंतु हुरमतसिंह ने सोचा कि अब की बार कालपी का धावा बहुत बड़ी तैयारी के साथ होगा, इसलिये उसने कालपी के मुसलमानों के साथ बराबरी की संधि कर ली। कालपी का मुसलमान-सरदार अपने को इस संधि की शर्तों का पाबंद तभी तक समझता था, जब तक कुंडार को हड़पने के लिये उपयुक्त साधन और सुभीते का समय प्राप्त नहीं हुआ था। इस संधि ने कुंडार के गौरव को किसी की आँखों में नहीं बढ़ाया। राज्य के क्षत्रिय-सरदार इस तरह की संधि को सदा भय और घृणा की दृष्टि से देखा करते थे।

करेरावालों को भी इस संधि का पता लग गया। उस समय ग्वालियर में भी मुसलमान आ गए थे—कई बार मार कर निकाले गए और फिर प्रवेश पा गए। इसलिये सैन्य-संग्रह करते रहने पर भी धीर और सोहनपाल को बहुत संतोष नहीं था। खुले खेत कहीं पहले ग्वालियर के मुसलमानों से ही मुठभेड़ न हो जाय। यह भिड़ंत हो गई, तो कुंडार से लड़ने के लिये गाँठ में क्या बचेगा? यदि इस मुठभेड़ का निवारण हो गया, तो कहीं कुंडार और कालपी की संयुक्त शक्ति का सामना न करना पड़े? इस तरह की हालत में विजय की खुले रण-क्षेत्र में बहुत कम आशा थी। सोहनपाल और धीर जानते थे कि यह लड़ाई कदाचित् अंतिम बल की परीक्षा होगी और यदि इसमें विफल हुए, तो माहौनी से स्वत्व पाना तो असंभव होगा ही, कुंडार से वैर-निर्यातन असंभव से भी कुछ बढ़कर होगा। इन सब समस्याओं पर अग्निदत्त, सोहनपाल, धीर और कभी-कभी पुण्यपाल की आपस में बहस होती थी। इस बहस में अग्निदत्त की बात बहुत ध्यान के साथ सुनी जाती थी, जिसका कारण स्पष्ट है। इच्छा से या अनिच्छा से बुंदेलों को अपनी मंत्रणाओं में अग्निदत्त को

काफ़ी बड़ा स्थान देना पड़ता था। परंतु अग्निदत्त की अटूट घृणा उसको इस बात से परेशान होने से नहीं रोक सकती थी कि साधारण सामरिक उपायों से खंगारों का शीघ्र नाश कर पाना सहज नहीं है।

सहजेंद्र भी इन मंत्रणाओं में भाग लेता था, परंतु बहुत नहीं। दिवाकर उससे भी बहुत कम।

सहजेंद्र और पुण्यपाल को कुछ समय पीछे यह बात मालूम हो गई कि दिवाकर के जी में कुंडार के प्रति यथेष्ट घृणा विद्यमान नहीं है।

निराशा

अग्निदत्त को करेरा में आए हुए अनेक दिन हो गए थे। इस बीच में बहुत बैठकें धीर इत्यादि के साथ उसकी हुईं; परंतु शीघ्र फल-प्राप्ति की घड़ी कोसों दूर दिखलाई पड़ रही थी। इस समय अग्निदत्त के हृदय के और सब भाव शायद अंतर्द्धान हो गए थे, एक घृणा सर्वोपरि थी। सैन्य-संग्रह सुनने में जितना एकाग्र शब्द मालूम होता है, व्यवहार में उतना ही विस्तृत है। संगृहीत सेना एक क्षण में देखी जा सकती है, परंतु उसका संग्रह अनवरत परिश्रम और अथक धैर्य का काम है। सौ को एक स्थान पर लिखा हुआ देखने में कितनी देर लगती है? परंतु जिसने एक को सौ बार सौ जगह लिखकर अपने शांत धैर्य को कसौटी पर चढ़ाया है, वही जानता है कि सौ का योग कितनी थकावट के बाद प्राप्त होता है।

अग्निदत्त, सोहनपाल, धीर इत्यादि सब आरंभ में इस सैन्य-संग्रह को ही रामबाण समझे बैठे थे, परंतु कुछ दिनों बाद उत्साह शिथिल होने लगा। सब के मुँह से यही निकलता था कि अभी बहुत देर है। उधर अपमान का बदला लेने की प्रवृत्ति को समय ने भोथरा नहीं किया।

एक दिन धीर, अग्निदत्त, सोहनपाल अकेले में मिले। सिवा पुण्यपाल के और किसी के मुख पर उमंग नहीं थी। अग्निदत्त के मुख पर उस दिन किसी गूढ़ उद्देश्य की मुद्रा थी और धीर किसी घोर चिंता में निमग्न था।

अग्निदत्त ने कहा—"यदि इसी समय ग्वालियर की ओर से मुसलमानों का धावा हो जाय, तो या तो लड़-भिड़कर कट-कुट जाना पड़ेगा, अथवा उनकी अधीनता स्वीकार कर लेनी पड़ेगी।"

पुण्यपाल बोला—"अधीनता क़बूल करने से मैं कट जाना पसंद करूँगा।"

अग्निदत्त—"यह सब बड़ा अच्छा भाव है, परंतु इसका फल यह होगा कि हम लोगों के पीठ-पीछे मंदिर टूटेंगे, गउएँ मारी जायँगी, प्रजा लुटेगी और स्त्रियों का सतीत्व नष्ट होगा।"

सोहनपाल—"अधीनता स्वीकार कर लेने में उनका सहायक होना पड़ेगा और न केवल धन-धान्य देना पड़ेगा, वरन् यह सारी सेना इनके संकेत पर चाहे जहाँ लड़ने के लिये भेजना पड़ेगी। फल दोनो का हमारे लिये एक-सा है।"

धीर—"मैंने सुना है कि ग्वालियर से मुसलमान-सेना माल्वा लूटने के लिये जानेवाली है। यदि यहीं होकर निकल पड़ी, तो अग्निदत्त जो बात कह रहे हैं, उसका अवघाटन सचमुच ही होगा।"

सोहनपाल ने सिर पर हाथ धरकर कहा—"फिर क्या किया जाय, समझ में नहीं आता। जो कुछ कर सकते थे, सब किया। कोई बात उठा नहीं रक्खी। भाग्य पर कोई वश नहीं मालूम होता। मरने के पहले बाल-बच्चों के लिये हाथ-भर भूमि का भी प्रबंध न कर पाया। निज भाई यमराज से भी अधिक निष्ठुर निकला। उसका बस चले, तो हम लोगों को अँधेरे कुएँ में डलवाकर ऊपर से पत्थरों से मार डाले। कुंडार के नीच खँगारों ने आशा-भरोसा देकर और कुंडार में बुलाकर हमारा जैसा घोर अपमान किया, उसका ध्यान नित्य कलेजे के टुकड़े-टुकड़े किया करता है। प्रधान, अब तो जीने की इच्छा नहीं होती। विष खाकर मर जाऊँगा।"

पुण्यपाल—"आप विष खाकर मरेंगे, तो हम लोगों में से इस संसार को मुँह दिखलाने के लिये बचेगा ही कौन?"

धीर—"अब तो जो कुछ हो, शीघ्र होना चाहिए; क्योंकि ग्वालियर की ओर से मुसलमानों का आक्रमण अवश्य होगा। यदि हमारे पास यह

छोटी-मोटी सेना न होती, तो कोई इधर आँख भी न फेरता। इस आक्रमण के होने की दशा में कुंडार से सहायता माँगना मूर्खता ही नहीं, वरन् नीचता होगी और बिना कुंडार के संकेत के कोई हमारे लिये अपनी उँगली भी न उठावेगा। इस अवश्यंभावी आक्रमण के साथ ही हमारी सब आशाओं को रसातल जाना पड़ेगा।"

धीर के मुख से ऐसी निराशा-पूर्ण बात किसी ने कभी नहीं सुनी थी। सोहनपाल ने कष्ट-पूर्ण स्वर में कहा—"तब मुझे विष-पान से कोई न रोके, मेरे लिये आप लोगों ने जो-जो कुछ सहा है, उससे दूसरे जन्म में भी उऋण होना कठिन है।" धैर्यवान् सोहनपाल का गला भीषण आंतरिक वेदना के कारण भर आया। कुछ सँभलकर बोला—"कल के उपरांत संसार को इस बात के खोजने का कष्ट न उठाना पड़ेगा कि सोहनपाल कौन था और कहाँ गया। परंतु हमारी दुर्दशा के स्मारक हेमवती और सहजेंद्र रह जायँगे, सो जितना कष्ट उनके भाग्य में लिखा होगा, वे भुगतेंगे।"

पुण्यपाल कुछ कहना चाहता था, परंतु उदासी के उस वायु-मंडल में, उसकी भी उमंग विलीन हो गई।

धीर—"यदि आप विष-पान करेंगे, तो मैं भी आपके साथ महायात्रा में पीछे-पीछे चलूँगा।"

सोहनपाल को विश्वास हो गया कि धीर के पास अब कोई साधन बाक़ी नहीं रहा है। बोला—"मैं पांडेजी का बहुत कृतज्ञ हूँ। इनसे उऋण होना असंभव है। खेद है, बुंदेला होकर मरने से पहले अपना ऋण न चुका पाया।"

पुण्यपाल—"जब ऐसी बुरी हालत है, तब विष-पान की अपेक्षा रण में लोहा खाकर मरना ज़्यादा अच्छा होगा। चलिए, कुंडार या माहौनी या जहाँ इच्छा हो, वहाँ हल्ला बोलें और दो हाथ करके स्वर्ग की यात्रा करें। विष पीकर कुत्ते की मौत मरना मुझे अच्छा नहीं लगता।"

सोहनपाल—"हम लोग तो इसको कर्तव्य-वश कर सकते हैं, परंतु हमारे दीन सैनिकों ने क्या अपराध किया है, जो उनको यों ही कटवा डालें ? यह निश्चय है कि किसी भी ऐसे प्रयत्न में अंत में विजय प्राप्त नहीं होगी। रण में प्राण-त्याग का हमारा अभीष्ट सिद्ध हो जायगा, परंतु इसके लिये अपने कितने सैनिकों और अवलंबियों की हत्या करनी पड़ेगी ? इससे आत्मघात कहीं अच्छा है ।"

अग्निदत्त की आँखों में एक भयानक चमक दिखलाई पड़ी—"आप लोग शौक़ से अपने प्राण गँवाइए। मैंने इस तरह से मरने के लिये जन्म नहीं लिया है। मेरे एक प्रस्ताव को सुनिए। यदि सहयोग की इच्छा हो, तो मेरा हाथ बँटाइए, यदि कुत्तों या पागलों की मौत मरना है, तो आज से हमारी राम-राम है।"

परंतु उससे दिल्ली की और दिल्ली के सरदारों की नीति में कोई हितकारक परिवर्तन नहीं किया जा सकता।"

अग्निदत्त—"अर्थात् अब हम लोगों के किए कुछ भी नहीं हो सकता ?"

धीर ने कोई उत्तर नहीं दिया। सिर नीचा करके नाक खुजलाने लगा।

पुण्यपाल बोला—"आपने अपना प्रस्ताव नहीं बतलाया ?"

अग्निदत्त ने मर्मवेधी व्यंग्य के साथ कहा—"कल सब लोग विष-पान कीजिए। मरने के पहले कुंडार और माहौनी का नाम जपिएगा। दोनो अक्ष साफ़ हो जायँगे। बस।"

पुण्यपाल ने व्याकुल होकर कहा—"आप अपना प्रस्ताव तो बतलाइए। कम-से-कम मैं विष-पान के विरुद्ध हूँ।"

अग्निदत्त बोला—"विष-पान या विष-दान ?"

पुण्यपाल अग्निदत्त का मुँह देखने लगा। सोहनपाल समझ गया। परंतु बोला कुछ नहीं।

धीर ने कहा—"चाणक्य में इसका विधान है ?"

पुण्यपाल बोला—"मैं शस्त्र-प्रयोग के पक्ष में हूँ। विष-प्रयोग के पक्ष में नहीं।"

अग्निदत्त—"विष-प्रयोग हम लोगों के हाथ में छोड़िए और शस्त्र-प्रयोग आप अपने हाथ में रखिए।"

पुण्यपाल सीधा सिपाही था। इन दो के सहयोग का मर्म न समझा या समझने की चेष्टा नहीं की।

बोला—"तब ठीक है।"

सोहनपाल चुपचाप था।

अग्निदत्त ने अपना प्रवाह छोड़ा। बोला—"इस समय बल की आवश्यकता नहीं है। छल की आवश्यकता है। छल के पीछे बल का भी प्रयोग करना पड़ेगा।"

सोहनपाल ने कहा—"क्या ऐसा कोई उपाय नहीं हो सकता है कि किसी जगह सशस्त्र खंगार एकत्र हो जायँ और हम सब सशस्त्र उनके साथ युद्ध करें और विजय-लक्ष्मी लाभ करें ?"

धीर—"छल तो बल का अंग है।"

अग्निदत्त—"परंतु विजय-लक्ष्मी इस तरह के ढुलमुल छल और ढुलमुल बल से प्राप्त नहीं हो सकती।"

धीर—"हुरमतसिंह और नाग ने जैसा बर्ताव किया है, उससे उन दोनो को किसी तरह से भी समाप्त कर देने में कोई बुराई नहीं है।"

सोहनपाल—"मैं इससे बिलकुल सहमत हूँ। कोई ख़ास बुराई तो नहीं मालूम पड़ती।"

अग्निदत्त—"इससे कुछ नहीं होगा। हुरमतसिंह और नाग के मरने पर कुंडार के सिंहासन पर कोई और खंगार आ बैठेगा। कुंडार की शक्ति इन दोनो के ख़त्म होने से ख़त्म न होगी।"

धीर—"इसमें भी कोई संदेह नहीं है।"

पुण्यपाल—"क्यों, ऐसा नहीं हो सकता है कि इसी अवसर पर हमारी सेना तैयार रहे और कुंडार की सेना पर टूटकर उसको ध्वस्त कर दे ?"

अग्निदत्त—"कुंडार तक आपकी सेना सूक्ष्म शरीर धारण करके थोड़े ही जायगी। आप क्या यह समझते हैं कि प्रधान मंत्री गोपीचंद की सतर्कता आपके लिये उस समय सो जायगी ?"

धीर—"मेरी समझ में कोई ऐसा उपाय होना चाहिए कि हमारी सब सेना बिना रोक-टोक कुंडार पहुँच जाय, हुरमतसिंह और नाग का वध हो जाय, और कुंडार की सेना को परास्त करके हम कुंडार-गढ़ को अपने हाथ में कर लें।"

अग्निदत्त—"जब तक कुंडार-गढ़ पर अधिकार नहीं हुआ, तब तक

किसी उपाय से कार्य की सिद्धि न होगी। कुंडार-गढ़ के अधीन होते ही अन्य गढ़ियाँ अधीन हो जायँगी और क्षत्रिय-सरदार बुंदेलों के शासन को अंगीकार कर लेंगे। परंतु खंगारों की संख्या अल्प नहीं है।"

सोहनपाल—"आप और प्रधानजी जो कुछ निश्चय करेंगे, हम लोग प्राण-पण से उसके सिद्ध करने के लिये तुरंत संलग्न हो जायँगे। परंतु यह तो बतलाइए कि कुंडार गढ़ को अधिकृत करने के पश्चात् खंगारों से किस उपद्रव की आशंका हो सकती है?"

अग्निदत्त—"खंगारों के सर्वनाश के बिना कुंडार का अधिकार फूटी नाव में सोने के बराबर होगा। कोई-न-कोई खंगार अपनी भीड़ इकट्ठी करके असंतुष्ट, ईर्ष्या-लिप्त क्षत्रियों को भय या प्रलोभन से जीत लेगा। खंगार-जाति का फिर से सिंहासन पर आसीन होना उन लोगों की कल्पना के लिये कोई नई बात न होगी। यदि नाश करना है, तो संपूर्ण खंगारों का करो, नहीं तो विष-पान करके कल चिर निद्रा में सो जाओ। क्योंकि इसके सिवा और कोई उपाय है ही नहीं।"

धीर—"अग्निदत्त का कथन ठीक है। या तो सब खंगारों का नाश या हम लोगों का नाश, इसके सिवा और तीसरी बात नहीं है।"

सब लोग थोड़ी देर तक चुपचाप कुछ सोचते रहे।

पुण्यपाल बोला—"कहिए, कुछ कहिए। नाग के साथ-साथ यदि संपूर्ण खंगारों का भी नाश हो जाय, तो अच्छा ही है।"

सोहनपाल—"प्रधानजी, जुझौति को स्वतंत्र करने का शायद समय आ गया है। स्वामी अनंत नंद से भी पूछना पड़ेगा। यदि वह सहमत न हुए, तो यह सब सलाह मिट्टी में मिल जायगी।"

अग्निदत्त ने होंठ काटकर कहा—"राजनीति में धर्माचार्यों या योगियों

की सलाह की ज़रूरत नहीं है। मैं तो ऋषि चाणक्य को इस विषय में पारंगत समझता हूँ। उनसे विरुद्ध यदि कोई होगा, तो वह राजनीतिज्ञ नहीं है।"

धीर—"ऐसा न कहिए, स्वामी अनंतानंद पहुँचे हुए जीव हैं। वह हम लोगों के निश्चय से असहमत न होंगे। परंतु वह यहाँ पर नहीं हैं। तीर्थ-यात्रा के लिये न-जाने कहाँ निकल गए हैं और न-मालूम कब तक आवेंगे।"

सोहनपाल ने कुछ समय बाद कहा—"परंतु समस्या यह है कि सब खंगार ऐसे किसी एक स्थान पर किस तरह इकट्ठे होंगे, जहाँ हमारी सेना आ हो और उनको परास्त करके कुंडार-गढ़ को अपने अधिकार में कर ले और हम सदा के लिये बेखटके हो जायँ।"

अग्निदत्त—"इस समस्या के हल करने का भार आप प्रधानजी के और मेरे ऊपर छोड़ दीजिए। हम लोग अपनी तरकीब आपको कल बतलाएँगे, परंतु एक वचन चाहता हूँ।"

सोहनपाल—"वह क्या?"

अग्निदत्त—"हम लोग चाहे जिस निश्चय को निर्धारित करें, आप लोग इस बात से पीछे नहीं हटेंगे कि सब खंगारों का नाश कर कुंडार-गढ़ को अधिकृत करना है।"

सोहनपाल—"अंधे को आँखें मिलें, तो आँखों का तिरस्कार नहीं करेगा, किंतु दोनों हाथों से उनका स्वागत करेगा।"

अग्निदत्त और धीर प्रधान

उस बैठक के बाद अग्निदत्त और धीर फिर मिले।

अग्निदत्त ने कहा—"मैं यहाँ से किसी दूसरी दिशा को अपने प्रस्थान का प्रबंध करके तब आपके पास आया हूँ।"

धीर को आश्चर्य हुआ। बोला—"आपकी आयु यद्यपि थोड़ी है, तथापि आप अचंभों के कोष मालूम पड़ते हैं। कहाँ और किसलिये इतनी शीघ्रता से प्रस्थान करने की आवश्यकता आपको हुई?"

अग्निदत्त—"मैंने जिस उपाय की रचना की है, वह आप लोगों को शायद पसंद न आवे, इसलिये मैंने सोच लिया है कि अब और व्यर्थ समय और धन यहाँ नष्ट न करके किसी और दिशा में चला जाना चाहिए।"

धीर—मैंने भी एक उपाय सोचा है। यदि हमारी-आपकी बात मिल गई, तब तो आपको भागने की ज़रूरत न पड़ेगी।"

गए दिनों में अग्निदत्त के होठों पर बहुधा एक मुसकिराहट आया करती थी, जो उसके सुंदर मुख को देवता का रूप देती थी। वह मुसकिराहट इधर बहुत दिनों से उसके मुख पर नहीं देखी गई। गड़ी हुई आँखों में कुछ ऐसा अमानुषिक तेज, कुछ ऐसा भयानक कटाक्ष लक्ष होने लगा था कि यदि वह कभी मुसकिराता भी था, तो आँखों का विकट कटाक्ष उस क्षणिक मुसकिराहट को तुरंत समेट लेता था। भागने का नाम सुनकर अग्निदत्त एक क्षण के लिये मुसकिराया। बोला—"अग्निदत्त कभी किसी बात से नहीं भागा।" और तुरंत उस अमावस्या की रात को कुंडार में लातें खाने के बाद भागने का चित्र आँखों के सामने फिर गया। उसका रक्त खौल उठा और पसीने की बूँदें माथे पर झलक आईं। फिर एक आह लेकर बोला—"पहले आपकी तदबीर सुनूँ।"

धीर—"मेरी तदबीर एक ही बार प्रकाशित होगी, इसलिये पहले आप कहिए।"

अग्निदत्त—"मेरी भी दूसरी बार प्रकट न होगी, और इसीलिये प्रस्थान का प्रबंध कर आया हूँ। मैं मालवा की ओर चला जाऊँगा।"

धीर ने सोचा—"बड़ा हठी लड़का है।"

एक क्षण बाद बोला—"अच्छा, तो पहले मेरी ही तदबीर सुन लीजिए। सब खंगारों को एक ही स्थान पर किसी निमंत्रण द्वारा बुलाया जाय। वहाँ सिवा खंगारों के और कोई न बुलाया जाय। पास ही बुंदेलों की सेना रहे। हम लोगों का इशारा पाकर वह सेना खंगारों के ऊपर टूट पड़े, और उनको परास्त करके कुंडार-गढ़ को अपने हाथ में दाब ले।"

अग्निदत्त ने आँख घुमाकर कहा—"यह तो कोई नई बात नहीं है। सब खंगार आपके कहने से एक जगह इकट्ठे क्यों हो जायँगे? और आपकी सेना को अपने निकट आने ही कैसे देंगे? तदबीर बतलाइए, तदबीर।"

धीर ने हँसकर कहा—"बात तो पूरी सुनिए। यह तो मैं भी जानता हूँ कि हम लोगों के कहने भर से सब खंगार एक स्थान पर एकत्र नहीं हो जायँगे। उनको निमंत्रण दिया जायगा।"

अग्निदत्त—"किस बात का?"

धीर—"पहले यह बतलाइए कि यहाँ तक हमारी-आपकी तदबीर में कोई अंतर तो नहीं है?"

अग्निदत्त—"नहीं।"

धीर—"तब हमारी-आपकी तदबीर एक ही निकलेगी। मैंने अपनी तदबीर आधी बतला दी, अब आप बाक़ी बतला दीजिए।" अंत में अग्निदत्त की अधीरता ने उस पर विजय प्राप्त की।

बोला—"आपने वास्तव में बतलाया कुछ नहीं है, परंतु मैं अधिक

विलंब तक अटकना नहीं चाहता हूँ। यदि मेरा बतलाया हुआ उपाय पसंद आ जाय, तो मैं ठहर जाऊँगा, या आपका बतलाया हुआ उपाय मुझे अच्छा लगा, तो भी ठहर जाऊँगा, अन्यथा शीघ्र यहाँ से चला जाऊँगा।"

फिर ज़रा खखारकर बोला—"मेरा प्रस्ताव यह है। हुरमतसिंह के पास आप स्वयं जाइए। उससे कहिए कि 'बीती को बिसार दो' और अपराध क्षमा कर दो। सोहनपालजी अपनी कन्या का विवाह नागदेव के साथ करने के लिये तैयार हैं। कुंडार के पास ही किसी शुभ मुहूर्त में शीघ्र विवाह कर लिया जाय। विवाह होने के पूर्व आपके संपूर्ण खंगार बंधु-बांधव आवें। राजा इसको सहर्ष स्वीकार करेगा। विवाह के पहले जिस समय भोज के समय खंगार उपस्थित हों, तब उनको खूब शराब पिलाई जाय, क्योंकि वे खूब मदिरा-पान करते हैं। जिस समय वे मस्त हो जायँ, करेरा की सेना उन पर टूट पड़े और घास की तरह उनको काट-कूटकर फेक दे। इसके पश्चात् कुंडार के क़िले पर अधिकार कर लिया जाय। इस तरह के निमंत्रण में अन्य क्षत्रिय दूसरी जातियों के लोग बहुत कम सम्मिलित होंगे, इसलिये और दूसरे लोगों के मारे जाने की संभावना बहुत कम रहेगी। भोजन में विष देने की तदबीर अंधा उपाय है। यदि अभाग्य-वश विषाक्त भोजन की तैयारी का खंगारों को पता लग गया, तो हमारा सबका सर्वनाश होगा, और यदि उनको पता न लगा, किंतु किसी कारण हममें से कुछ को वही भोजन-सामग्री खानी पड़ी, तो व्यर्थ ही मारे गए। ऐसे निमंत्रण के अतिरिक्त और किसी तरह के निमंत्रण में हुरमतसिंह और उनके खंगार फँसनेवाले नहीं हैं। यदि मेरा प्रस्ताव बुरा लगा हो, तो मुझको बिदा दीजिए। मुझे दूर जाना है।"

धीर—"कुंडार के अन्य नगर-निवासी क्या कहेंगे? कुंडार-राज्य की प्रजा हमको क्या कहेगी?"

अग्निदत्त—"ऊँह, नगर-निवासी तो घरेलू झगड़ों के कारण राजनीतिक

बातों की उलझनों में पड़ने का अवकाश ही नहीं पाते और नगर-निवासियों की स्मरण-शक्ति इतनी पैनी नहीं है कि सदा सब बातों को ध्यान में रक्खें। इसके सिवा नगर-निवासी खंगारों की अपेक्षा बुंदेलों को बहुत शीघ्र पसंद करने लगेंगे। परंतु आपकी बातों से जान पड़ता है कि या तो आपने कोई उपाय सोचा नहीं है, और यदि सोचा है, तो मेरा और आपका उपाय एक नहीं है।"

धीर—"नहीं, मेरे और आपके उपाय में अधिक अंतर नहीं है। उसकी पूर्व और उत्तर कठिनाइयों को ही सोच रहा था।"

अग्निदत्त ने प्रसन्न होकर पूछा—"तो आप मेरे प्रस्ताव को स्वीकृत करते हैं?"

धीर ने गंभीर होकर कहा—"मैंने स्वयं इसी उपाय को सोचा है। क्योंकि इसके सिवा और किसी उपाय से निस्तार होता हुआ नहीं दिखता। यदि खंगार राजकुमार ने हम लोगों के साथ ऐसा नीच व्यवहार न किया होता, यदि खंगार-सेना ने हमारा डेरा न घेरा होता, यदि अतिथि के साथ ऐसा घोर पापाचार न किया होता, तो मैं कभी खंगारों के विनाश की बात न सोचता।"

अग्निदत्त—"इस समय इस बात की विवेचना की आवश्यकता नहीं है कि हमको क्यों ऐसा करना पड़ रहा है।"

धीर ने टोककर कहा—"इस समय स्थिति यह हो गई है कि या तो हमको मार डालना चाहिए या मर जाना चहिए। यदि हम नहीं मारते हैं, तो मरते हैं। मरने की अपेक्षा मार डालना ही श्रेयस्कर है, और फिर ऐसे लोगों को, जिन्होंने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से एक बुंदेला-कन्या, एक निर्दोष बालिका, का कौमार्य बलात् भंग करने, उसकी और हमारी पवित्रता को नष्ट करने, की भरसक चेष्टा की है। मारना तो पुण्य का कार्य होगा, इसलिये यही उपाय स्थिर रहा।" धीर के गूढ़ चेहरे पर एक भयानक भाव छा गया।

अग्निदत्त ने कहा—"सोहनपाल, पुण्यपाल इत्यादि इसको मान लेंगे ?"

धीर—"कैसे नहीं मानेंगे ? नहीं मानेंगे, तो क्या आत्मघात करेंगे ?"

अग्निदत्त—"और सहजेंद्र ?"

धीर—"जहाँ बाप तहाँ बेटा जायगा।"

अग्निदत्त—"और दिवाकर ?"

धीर—"दिवाकर ! दिवाकर ? दिवाकर जिस दिन अपने पिता के साथ न चलेगा, उस दिन उसका नाम दिवाकर न रहेगा।"

अग्निदत्त—"आप जानें। परंतु इस उपाय को काम में लाने के पहले सबके जी को पहले तौल लीजिए। यदि सोहनपालजी या उनके संबंधियों को इस प्रस्ताव से घृणा हो, तो मुझे शीघ्र बतला दीजिएगा। मैं अभी रुका जाता हूँ। यदि ये सब मेरे-आपके इस प्रस्ताव के अनुकूल हुए, तो इस प्रस्ताव को व्यावहारिक रूप देने के लिये जिन और छोटे-मोटे उपायों का उपयोग करना पड़ेगा, उनको पीछे तय कर लेंगे।"

धीर—"मैंने अपने स्वामी से कुछ-न-कुछ बातचीत पहले ही कर ली है। जो कसर रह गई है, उसको मैं आज ही पूरा करूँगा। यदि हम लोग इस प्रस्ताव को पूर्ण रूप से कार्य में परिणत करने को तैयार हुए, तो हमको दो कठिनाइयों का सामना इसी समय से करना पड़ेगा। एक तो यह कि इस प्रस्ताव का प्रयोजन नितांत गुप्त रहे, दूसरे यह कि हमारे सैनिक और अन्य साथी हमारे वास्तविक उद्देश्य को अंत समय पर ही जान पावें। समय के पहले सूचित होने से महा संकट उपस्थित होने का भय रहेगा।"

अग्निदत्त—"मुझसे तो कभी कोई इस बात को न पा सकेगा।"

कुंडार में धीर प्रधान

धीर ने सोहनपाल को मना लिया। सोहनपाल को सीधा करने में धीर को बहुत परिश्रम करना पड़ा। सोहनपाल ने सहजेंद्र को ठीक करने की चेष्टा की, परंतु वह केवल इतनी बात पर राज़ी हुआ कि जिस समय खंगार इकट्ठे हो जायँगे, वह ललकारकर उनसे लड़ेगा। ललकार के अर्थ को समझने योग्य चेतनता भी खंगारों में उस समय होगी या नहीं, इस विषय पर सहजेंद्र ने अपने मन को अधिक विवाद नहीं करने दिया। उसको आशा थी कि मदिरा-पान के आरंभ होने के पहले ही ललकारकर लड़ाई छेड़ दूँगा, जिसमें कोई हत्या के पाप का आरोप न कर सके। पुण्यपाल विष खिलाने तक को इतना बुरा नहीं समझता था, जितना सगाई के नाम को, परंतु अंत में रण के दाँव-पेंच की उपमा ने इसके भी घृणा-विजित मन को अग्निदत्त-धीर-प्रस्ताव की ओर झुका दिया।

दिवाकर को सारा षड्यंत्र अच्छा नहीं मालूम हुआ। उसने सोचा—"नागदेव कामांध है और हुरमतसिंह मदांध। वे लोग इस जाल में फँस जायँगे और हमारे पक्ष की प्रतिहिंसा को शांत होने का मार्ग मिल जायगा। मैं इसमें कोई भाग न लूँगा। एक बार कुंडार के दर्शन करके कहीं चला जाऊँगा। न किसी को मेरी आवश्यकता पड़ेगी और न मुझको किसी की।"

हेमवती ने भी सहजेंद्र और सोहनपाल को खंगारों से बदला लेने के लिये अच्छी तरह उसकाया। उसी के सुलगाने पर सहजेंद्र और पुण्यपाल की रुचि इस कार्य में और अधिक प्रवृत्त हुई।

हेमवती ने कहा था—"यदि बल से नहीं मार सकते हो, तो छल से मारो—पंचम-कुल की अपकीर्ति को किसी प्रकार धोओ।"

दुर्दशा-ग्रस्त, अपमानित, अन्याय-पीड़ित और आफ़त की मारी बुंदेलों की उस छोटी-सी टुकड़ी ने अंत में इस संदिग्ध सिद्धांत को स्वीकार किया कि सफलता ही साधनों के भले या बुरे होने की कसौटी है, न कि भले या बुरे साधनों का प्रयोग सफलता की कसौटी।

जब सब कार्य-क्रम तय हो गया, तब धीर एक-दो चुने हुए आदमियों को लेकर कुंडार पहुँचा। विष्णुदत्त के यहाँ ठहरा। विष्णुदत्त को मालूम था कि अग्निदत्त करेरा में है। जब तक वह करेरा में नहीं आया था, विष्णुदत्त बहुत चिंतित रहा था।

धीर से बोला—"वह अच्छी तरह है? दुबला तो बहुत हो गया होगा?" उसकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। धीर ने कठिनाई से विष्णुदत्त को शांत कर पाया था कि तारा आई। तारा का सहज-शुभ्र-लावण्य उदासी में कुछ दब-सा गया था। विष्णुदत्त उसको अग्निदत्त के विषय में धैर्य धारण किए रहने के लिये अनुरोध किया करता था।

तारा ने कहा—"काकाजी, भैया और सब लोग अच्छी तरह हैं?"

"सब लोगों" से सहजेंद्र, हेमवती, सोहनपाल इत्यादि का अर्थ लगाकर धीर ने उत्तर दिया—"सब अच्छी तरह हैं—ऐसी अवस्था में जितनी अच्छी तरह रह सकते हैं, उतनी अच्छी तरह हैं।"

अग्निदत्त के देश-निकाले का कारण भी कुंडार के बाहर विख्यात हो गया था। धीर भी जानता था, परंतु उस विषय को मर्मस्पर्शी समझकर नहीं छेड़ा।

तारा चाहती थी कि दिवाकर के घाव के विषय में विष्णुदत्त यदि कुछ पूछ लें, तो अच्छा हो; परंतु उनको इसका ख़याल न था।

बोला—"क्या करूँ, मैं करेरा में जाकर अपने लाल को छाती से लगाना चाहता हूँ। भला है या बुरा, जैसा है, है तो लाल; परंतु क्या करूँ, राजकोष के भय के कारण नहीं जा पाता हूँ। उसके कोई चोट लग गई थी?"

धीर ने उत्तर दिया—"उसके तो कोई चोट नहीं लगी थी, दिवाकर घायल हो गया था।"

तारा ने सोचा कि बिना प्रश्न के ही अब मनोवांछित विषय की चर्चा होगी।

विष्णुदत्त ने पूछा—"आप भोजन कर लीजिए, फिर आपके आने का मर्म सुनूँगा। मैं तो राजा के यहाँ अब बहुत कम जाता-आता हूँ, इसलिये वहाँ की स्थिति का ठीक पता नहीं है। आप लोगों के साथ राजा का संबंध अब कुछ ज़्यादा अच्छा हो गया होगा, इसीलिये आप आए हैं, क्या कोई बुलावा गया था?"

धीर ने कहा—"ऐसा कुछ भी नहीं है, परंतु जो कुछ है, उसको थोड़ी देर में बतलाऊँगा।"

तारा ने सोचा कि विषयांतर हो गया है। वहाँ से ज़रा हटकर, परंतु साहस करके बोली—"उनकी चोट अच्छी हो गई है?"

धीर—"मैंने कहा न कि अग्निदत्त के चोट कभी लगी ही नहीं।"

तारा ने साहस करके पूछा—"यहाँ से तो वह घायल होकर गए थे। तलवार लग गई थी।"

धीर ने कहा—"तलवार तो दिवाकर के लगी थी।"

तारा ने धीर से कहा—"उन्हीं के विषय में तो पूछा।"

धीर ने संतोष के साथ उत्तर दिया—"वह तो बिलकुल अच्छा है। परंतु जब से कुंडार से घायल होकर गया, न-मालूम क्यों बीमार-सा बना रहता है।"

विष्णुदत्त बोला—"मा तो उसकी छुटपन में ही परलोक-वासिनी हो गई थी?"

धीर ने आह खींचकर कहा—"हाँ।"

तारा वहाँ से चली गई।

सगाई का प्रस्ताव

भोजन के उपरांत विष्णुदत्त ने धीर से उसके आने का प्रयोजन पूछा। विष्णुदत्त धीर का मित्र था, परंतु उसको यह विश्वास न था कि राजा बुंदेलों और उनके सहवर्गियों से प्रसन्न है, इसलिये धीर को अपने घर में अधिक समय तक टिकाए रखने का उसे साहस नहीं था।

धीर ने कुंडार आने का कारण बतलाया कि नाग के साथ हेमवती की सगाई के लिये आया हूँ। विष्णुदत्त को बड़ा आश्चर्य हुआ, मन में कुछ परिताप भी हुआ, परंतु यह सोचकर रह गया कि राज्य-लिप्सा सब कुछ कराती है। इस संबंध की कल्पना पहले ही बहुत उपद्रव कर चुकी थी, इसलिये विष्णुदत्त ने कारण को अधिक खोदने की चेष्टा नहीं की, साधारण रीति से पूछा—"पहले तो आप लोग इस संबंध के प्रतिकूल थे, अब कोई विशेष कारण हो गया होगा?"

धीर ने उत्तर दिया—"हाँ, विपद् सब करा लेती है। इसके अतिरिक्त और कोई उपाय बुंदेलों के पास अपनी शक्ति-संवर्द्धन के लिये नहीं है।" एक क्षण के लिये विष्णुदत्त ने धीर की ओर देखा। फिर कुछ सोचकर बोला—"तुम राजा के पास कब चलोगे?"

धीर ने कहा—"कल प्रात:काल।"

विष्णुदत्त बोला—"मैं भी साथ चलूँगा। कोई हानि तो नहीं समझते हो?"

"हानि?" धीर ने कहा—"तुमको तो मेरे साथ चलना ही पड़ेगा। अग्निदत्त के लिये भी कुछ कहा जाय या नहीं?"

विष्णुदत्त ने कुछ घबराकर उत्तर दिया—"नहीं, तब तक कुछ न कहा जाय, जब तक राजा स्वयं चर्चा न करें।"

दूसरे दिन सबेरे सूचना करने के बाद धीर और विष्णुदत्त राजा के पास पहुँचे।

हुरमतसिंह, नागदेव, गोपीचंद और राजधर मिले।

धीर ने झुककर अभिवादन किया और हृदय में उठी हुई घृणा और लज्जा के वेग को दबा लिया।

नागदेव के मुख पर असाधारण लालिमा छाई हुई थी और पलकों के नीचे के नए गड्ढों में से मदिरा बोल रही थी। राजधर की आँखों में अहंकार का राज्य वर्तमान था।

हुरमतसिंह बोला—"अब किस षड्यंत्र की चिंता में हो प्रधानजी? तुम लोगों ने हमारे विरुद्ध शत्रुओं को उभाड़ने में तो कोई कसर लगाई नहीं। पांडेजी, यह तुम्हारे ही यहाँ आकर ठहरे होंगे?"

विष्णुदत्त भय के मारे थर्रा गया। बोला—"अन्नदाता, यह मेरे ही यहाँ आकर ठहरे हैं। परंतु यह बड़े शुभ कार्य के लिये आए हैं, और राज्य के शरणागत हैं।"

गोपीचंद ने राजा की ओर देखकर कहा—"वही माहौनी का पचड़ा लेकर आए होंगे?"

राजा बोला—"उस विषय में हमारा निश्चय इनको पहले ही से मालूम है। परंतु इतना राजद्रोह करने पर भी इनका साहस इन्हें हमारे सामने ले आया और विष्णुदत्त के साथ! इसी का मुझे आश्चर्य है। परंतु मैं प्रधानजी, तुम्हारे ही शुभ मुख से तुम्हारी वार्ता सुनना चाहता हूँ। इसका ध्यान रहे कि तुम अब हुरमतसिंह के सामने हो और यहाँ से सहज ही लौट जाना असंभव है।"

धीर ने विना भयभीत हुए नम्रता-पूर्वक कहा—"मैं तो दूत हूँ।"

हुरमतसिंह ने आँख चढ़ाकर कहा—"रामचंद्र के वंशज बननेवाले ये तुच्छ ठाकुर अपने को सम्राट् या मंडलेश्वर से कम नहीं समझते हैं। महाशय धीर, राजा के पास राजा का ही दूत जाता है। प्रजा का दूत

राजा के पास नहीं जाता। मेरा ख़याल है कि सोहनपाल को अभी कहीं का राज्य नहीं मिला है।"

विष्णुदत्त ने धीरे से धीर से कहा—"अपनी बात को तुरंत क्यों नहीं कहते?"

राजा कुछ हँसकर बोला—"देखते हो गोपीचंद, यह राजदूत विष्णुदत्त के संकेत बिना बोल भी नहीं सकता।"

गोपीचद ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज, आज संध्या-समय तक कम-से-कम एक राजद्रोही तो अपने किए को पहुँच जावेगा।"

धीर ने मुस्किराकर कहा—"मैं क्षमा-प्रार्थना के लिये आया हूँ।"

उस मुस्किराहट को देखकर हुरमतसिंह जल गया। बोला—"तुमने सोहनपाल की ओर से जितना राजद्रोह किया है, उतना सोहनपाल या किसी बुंदेले ने नहीं किया। तुम्हीं ने एक पागल साधू को भी इस राज्य के विरुद्ध छोड़ रक्खा है। तुम्हारे मस्तिष्क की कैंची जिस गति के साथ चलती है, उससे मै बहुत प्रसन्न हुआ हूँ, और उस प्रसन्नता के उपलक्ष में आज ही संध्या के पहले, जैसा मेरे प्रधान मंत्री ने अभी कहा है, तुम्हारा सिर धड़ से अलग कर दिया जायगा। तुम्हारे-सरीखा पाजी मनुष्य संसार में दूसरा मिलना असंभव है।" विष्णुदत्त का मुख मुर्झा गया।

धीर ने कहा—"मुझे अपनी बात कह लेने दीजिए, फिर इच्छा हो, संध्या-समय की प्रतीक्षा न करके इसी घड़ी सिर धड़ से अलग करवा दीजिएगा।"

हुरमतसिंह बोला—"कहो क्या कहना है?"

धीर—"मैं महाराज कुमार नागदेव के साथ सोहनपाल की कन्या कुमारी हेमवती की सगाई के निमित्त आया हूँ।"

सुनकर चारो आश्चर्य के मारे अपने आसनों से हिल उठे।

हुरमतसिंह—"विष्णुदत्त, क्या मैं ठीक-ठीक सुन रहा हूँ कि अंत में बुंदेले चेत में आ गए ? या यह कोई नया जाल है ?"

विष्णुदत्त—"महाराज, यदि जाल होगा, तो कितनी देर ठहरेगा ?"

धीर—"जाल नहीं है। मुहूर्त नियुक्त कर दीजिए। महाराज को कुंडार के बाहर विवाह के लिये नहीं जाना पड़ेगा। कन्या-पक्ष के सब लोग स्वयं यहीं पर आ जायँगे। यहीं पर वर-पक्ष के लोग भी सब इकट्ठे होंगे, महोत्सव होगा और फिर धूमधाम के सथ विवाह। मैं अपना संवाद कह चुका। अब चाहे सूली दे दीजिए, चाहे मेरा सिर कटवा डालिए। पांडेजी ने मेरे कार्य को समझकर मुझे अपने घर में डेरा दिया था, नहीं तो ऐसे मनुष्य को यह अपने घर में घुसने भी न देते, जिसका आज ही सिर कटनेवाला हो।

नाग और राजधर ने एक दूसरे की ओर परस्पर देखा। नाग चकित और उन्मत्त-सा हो गया था।

हुरमतसिंह ने धीरे से कहा—"तुमने आज से पहले जितने काम किए हैं, उसके लिये तुमको प्राण-दंड ही मिलना चाहिए, परंतु इस समय तुम जो कुछ कर रहे हो, यदि वह सच है, तो तुम्हारी जागीर में गाँव लगाए जाने चाहिए।

नाग को विश्वास नहीं हुआ कि समाचार सत्य होगा।

धीर ने कहा—"मेरी बात की सचाई के लिये महाराज चाहे जिस तरह अपना मन भर लें।

गोपीचंद बोला—"तुमको लौटकर नहीं जाने देंगे, क्या ठीक है कि तुम महाराज की दंडाज्ञा को सुनकर इस समाचार की सृष्टि कर रहे हो ?"

धीर ने धैर्य के साथ उत्तर दिया—"जब तक सोहनपालजी और उनके साथी कुमारी हेमवती के साथ कुंडार के निकट न आ जायँ, मुझको कहीं पहरे में रख दिया जाय। फिर दीनता-पूर्वक बोला—

"अन्नदाता, इससे अधिक प्रमाण मेरी सचाई का और क्या हो सकता है ?"

गोपीचंद ने कहा—"इसका क्या प्रमाण है कि कुमारी हेमवती ही यहाँ लाई जावेगी और हम लोगों को ठगने के लिये उसके बदले में और कोई कन्या न लाई जावेगी ?"

"जिन लोगों ने हेमवती को देखा है, वे स्वयं विवाह के पहले और विवाह के समय अच्छी तरह देख लें।" धीर ने कहा और नागदेव की ओर देखा।

नागदेव को परिवर्तित भाव की वास्तविकता में विश्वास हो गया।

हुरमतसिंह बोला—"तुम्हारी बात की साख मानता हूँ, परंतु तुमको लौटकर नहीं जाने दूँगा। सोहनपाल इत्यादि के आने तक सम्मान-पूर्वक तुमको यहीं पर रक्खा जायगा। जब वे लोग आ जायँगे, तब उनके पास चले जाना। तब तक के लिये तुम्हें इस कष्ट का कुछ खयाल न होना चाहिए।"

धीर—"नहीं महाराज, इसमें कष्ट काहे का ? मेरे स्वामी सोहन-पालजी हैं और आप उनके ऊपर हैं। जिसमें अंत में मेरे स्वामी को सुख हो, उसमें मुझको सुख-ही-सुख है। अब आप कृपा करके आज ही करेरा को दूत द्वारा पत्र भेज दें। मेरी एक प्रार्थना है।"

हुरमतसिंह—"क्या प्रार्थना है, प्रधानजी ?"

धीर—"यह कि विवाह के पश्चात् महाराज माहौनी-दमन में मेरे स्वामी की पूरी सहायता करेंगे।

हुरमतसिंह—"अवश्य। गोपीचंद, पत्र में स्पष्ट तौर पर यह बात लिख दो।"

धीर—"महोत्सव और विवाह के लिये समय और स्थान की नियुक्ति कर दी जाय, और पत्र में यह भी लिख दिया जाय कि मेरे स्वामी को कहाँ बसेरा दिया जावेगा ?"

हुरमतसिंह ने सोचकर कहा—"अब की बार देवरा की गढ़ी में उनको स्थान दिया जायगा, सारौल ठीक स्थान नहीं है। हमारी जो सेना इस समय देवरागढ़ी में है, उसको पलोथर-ग्राम में पहाड़ी की दूसरी ओर भेज दिया जायगा। विवाह के लिये स्थान कुंडार के तालाब के किनारे भवानी के मंदिर के पास उपयुक्त समझता हूँ। समय के विषय में मैं यह समझता हूँ कि जो कोई यहाँ से जाय, वह करेरा से सबको साथ लेता आवे। उनके यहाँ आने पर मुहूर्त निश्चित कर दूँगा।" फिर कुछ सोचकर बोला—"करेरा में अग्निदत्त और दिवाकर भी होंगे?"

धीर ने उत्तर दिया—"हाँ महाराज।"

हुरमतसिंह ने कहा—"उन दोनो के लिये मेरी आज्ञा है कि वे इस अवसर पर कुंडार में पैर न रक्खें। कुंडार के बाहर बने रहें, तो कोई आक्षेप न होगा, परंतु यदि कुंडार के भीतर पाए गए, तो कदापि क्षमा न किए जायँगे और प्राण-वध का दंड दिया जायगा। गोपीचंद, जो चिट्ठी सोहनपाल के पास भेजी जाय, उसमें ये सब बातें स्पष्ट लिख दी जायँ। पांडेजी, आपको इतने से ही संतुष्ट हो जाना चाहिए।"

विष्णुदत्त ने काँपते हुए गले से कहा—"मैं महाराज की इस कृपा के लिये अत्यंत कृतज्ञ हूँ। मेरे लिये वास्तव में यह बहुत है। वह पापी बालक कदापि कुंडार में नहीं आवेगा।" उनकी आँखों में आँसू आ गए।

दिवाकर के संबंध की आज्ञा को सुनकर धीर को विषाद नहीं हुआ, क्योंकि वह जानता था कि दिवाकर स्वयं इस तरह के आमोद-प्रमोद में भाग लेना पसंद नहीं करेगा। धीर प्रधान सम्मान के साथ इब्नकरीम की देख-रेख में रक्खा गया। एक ब्राह्मण-दूत के हाथों सोहनपाल के पास करेरा पत्र भेज दिया गया।

विष्णुदत्त ने सारा विवरण घर आकर तारा को सुनाया। वह कभी आश्चर्य करती थी और कभी खेद। उसको अमावस्या की रात के वास्तविक डाकुओं का हाल मालूम हो गया था। तारा की समझ में यह

नहीं आता था कि दिवाकर को कुंडार में आने से क्यों निषेध किया गया। उसने सोचा—"देवरा कुंडार से दूर नहीं है।" परंतु दुःखी होकर उसने विष्णुदत्त से पूछा—"कुंडार में आने के लिये भैया को क्यों मना किया गया?"

विष्णुदत्त ने कहा—"वह बुंदेलों के साथ देवरा अवश्य आवेगा। और देवरा कुंडार से दूर नहीं है।"

तारा बोली—"उन लोगों के आने पर मैं एक दिन देवरा जाऊँगी।"

विष्णुदत्त ने कहा—"मेरे साथ चलना।"

पत्रोत्तर

हुरमतसिंह की अहम्मन्यता-पूर्ण चिट्ठी कुंडार का ब्राह्मण-दूत सोहनपाल के पास करेरा से यथासमय ले आया।

धीर के रोक लिए जाने पर सबको क्षोभ हुआ। परंतु आंतरिक भावों को गुप्त रखना अभीष्ट था, इसलिये दूत का स्वागत किया गया। परंतु दूत के साथ ही सोहनपाल ने कुंडार की ओर कूच करना स्वीकार नहीं किया। उत्तर में जो पत्र भेजा, उसमें हुरमतसिंह की समय और स्थान-संबंधी सभी शर्तों को मान लिया, परंतु एक काम के लिये कुछ समय की अपेक्षा थी, इसलिये हुरमतसिंह से पूछा कि विवाह का उत्सव खंगारों की रीत के अनुसार होगा या बुंदेलों की रीति के अनुसार। साथ-साथ यह भी कहला भेजा कि महोत्सव में भाग लेने के लिये ज़रा बड़ी संख्या में बुंदेला-बांधव इकट्ठे होंगे। स्थान की शर्त में देवरा में ठहरने और सारौल का निषेध पढ़कर सोहनपाल को कुछ सोचना पड़ा था। देवरा एक ओर पलोथर की पहाड़ी से परिवेष्टित और दूसरी ओर बेतवा नदी, बरौल की गढ़ी और थोड़ी दूरी पर भरतपुरा से घिर हुआ था। सोहनपाल ने समझ लिया कि हुरमतसिंह कुछ सतर्कता से काम ले रहा है, यदि ज़रा भी चूक हुई, तो सब बुंदेले एक ही बार में भेड़-बकरी की तरह काट डाले जायँगे।

दूत के इस उत्तर के ले जाने के पश्चात् सोहनपाल को बड़ा कठिन परिश्रम करना पड़ा। बुंदेलों और पँवारों को शीघ्र इकट्ठा करना था। खंगार के साथ विवाह करने के पक्ष में ये लोग हो नहीं सकते थे, इसलिये जिनको साथ लेना था, उनको षड्यंत्र का रहस्य बतलाना पड़ा। जिनका विवेक कुछ जाग्रत् था और इस षड्यंत्र में भाग लेने को तैयार

नहीं हो रहे थे, उनको शंकाओं को दूर करना पड़ा। साथ ही सबसे रहस्य को गुप्त रखने की सौगंद लेनी पड़ी।

अग्निदत्त ने इस षड्यंत्र के शास्त्रीय अंग को, चाणक्य की शरण लेकर, अपने सहयोगियों के मन पर विविध प्रकार से जमा दिया। सहजेंद्र और पुण्यपाल को भी इस षड्यंत्र के पक्ष में बहुत कुछ समझाव-बुझाव करना पड़ा। जिस विषय की ओर सहजेंद्र की पूरी रुचि न थी, उसी का प्रतिपादन पहले तो उसने कुछ अरुचि और अविश्वास के साथ किया, परंतु ज्यों-ज्यों अधिक-अधिक प्रबलता के साथ प्रतिपादन की ज़रूरत पड़ी, त्यों-त्यों अरुचि और अविश्वास कम होता चला गया, और अंत में उसको षड्यंत्र की योजना की नीति पर न केवल पूरा विश्वास हो गया, प्रत्युत उस पर रुचि भी काफ़ी हो गई। आत्मप्रवंचन धीरे-धीरे आत्मविश्वास के रूप में परिणत हो गया।

निषेधाज्ञा पर विचार

यदि धीर कुंडार में रोक न लिया गया होता, तो यह अरुचिकर कार्य सोहनपाल और सहजेंद्र को शायद न करना पड़ता। धीर की अनुपस्थिति के कारण इन लोगों को यह काम अपने सिर दृढ़ता के साथ लेना पड़ा, और अपने को उन विचारों के साथ संयुक्त करना पड़ा जिनका प्रचार विवशता की दशा में उनको स्वीकार करना पड़ा था, और उस दशा में जिनका व्यवहार वे धीर और अग्निदत्त द्वारा किया जाना पसंद करते। अपने को प्रवाह में बहा दिए जाने की हद तक वे अपने विवेक के विवाद को दूर कर चुके थे, परंतु स्वयं उस प्रवाह के संचालक होने के लिये उद्यत न थे। धीर की अनुपस्थिति और अग्निदत्त के उत्तेजना-पूर्ण प्रेरक व्यक्तित्व ने उनको अग्रवर्ती होने के लिये मजबूर कर दिया।

सोहनपाल का पत्रोत्तर पाकर हुरमतसिंह ने कहला भेजा कि विवाह और विवाह का महोत्सव खंगार क्षत्रियों की रीति के अनुसार होगा। हुरमतसिंह अपनी जाति के बड़प्पन को किसी बात में और किसी भाँति भी छोटा नहीं करने देना चाहता था।

सोहनपाल यह चाहता ही था। यदि हुरमतसिंह बुंदेलों की रीति के पक्ष में अपनी सम्मति देता, तो भी सोहनपाल के दल के लोग खंगारों की रीति का प्रवेश किसी-न-किसी बहाने अवश्य कराते। खंगार ऐसे अवसरों पर जी खोलकर मांस और मदिरा का खान-पान करते थे। इस विषय में हुरमतसिंह की इच्छा को सोहनपाल ने बिना संकोच के स्वीकार कर लिया। अग्निदत्त और दिवाकर के कुंडार में प्रवेश करने की मनाही का और लोगों पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। एक हुरमतसिंह की अपकीर्ति का कारण

हुआ था और दूसरा हुरमतसिंह के रोष का लक्ष्य। अग्निदत्त ने इस निषेध की उपेक्षा की। उसने सोचा कि जब बाँस ही न रहेगा, तब बाँसुरी कहाँ से बजेगी?

दिवाकर ने उक्त निषेध पर दूसरी तरह से विचार किया। उसने सोचा—"मैं इस हत्या-कांड में नहीं पड़ना चाहता हूँ। यदि यह निषेध न होता, तो उत्सव और वध-लीला से दूर अलग बने रहने का कोई बहाना नहीं बना सकता था। दूर उससे हर हालत में रहना पड़ता ही। जिस समय ये लोग नरमेध-यज्ञ में सम्मिलित होंगे, मैं उन्हीं सुंदर पहाड़ियों की किसी वन-वीथि में भगवान् का जप करता हुआ कहीं सदा के लिये चल दूँगा। संसार से बिदा लेने के पहले यदि एक बार तारा का दर्शन हो जायगा, तो और कोई लालसा न रहेगी।"

कुंडार छोड़ने के बाद से दिवाकर बहुत उदास रहा करता था, परंतु जब से खंगार-विनाश के षड्यंत्र की रचना हुई, तब से उसका हृदय एक नए बोझ से दब-सा गया था। वह इस कार्य के विरुद्ध था, परंतु प्रतिवाद नहीं कर सकता था। नाग और राजधर से बदला लेने के पक्ष में था, परंतु बदले के उस भयानक ढंग से सहमत न था। कुछ काम करने को तबीयत न चाहती थी, परंतु सोहनपाल आदि की दुर्दशा देखकर और अपने बाप की अचल स्वामि-भक्ति से प्रेरित होकर वह असंभव उपायों को काम में लाने की उमंग में कभी-कभी तरंगित होने लगता था। उसके मित्र इसकी उदासी और कभी-कभी प्रकट होनेवाले क्षणस्थायी उत्साह को देखकर कहने लगते थे कि सिर में गहरी चोट लगने के कारण भीतर कुछ गड़बड़ हो गई है।

तारा यदि ऐसी अवस्था में उसको देखती, तो क्या सोचती, क्या कहती? एक बार यह प्रश्न दिवाकर ने स्वयं अपने आपसे किया था।

देवरा में

दृढ़ता और सतर्कता के साथ सोहनपाल के बुंदेले और उनके मित्र ने एक दिन देवरा की ओर प्रस्थान किया। अंडा-घाट पर पहुँचकर दलपति बुंदेले को भी सोहनपाल ने साथ ले लिया।

परंतु सारी भीड़ को देवरा ले जाने के पहले अग्निदत्त के परामर्श से सोहनपाल ने हुरमतसिंह का संदेह सुषुप्त रखने की इच्छा से अंडा-घाट पर पहुँचकर कहला भेजा कि हमारे बंधु-बांधवों की भीड़ अधिक एकत्र हो गई है, कहिए तो सब-के-सब देवरा पहुँच जाएँ, कहिए तो यहाँ सब-के-सब बने रहें। इसके साथ ही पलोथर के जंगल में शिकार खेलने के लिये बुंदेलों के लिये अनुमति चाही।

खंगार भी बहुत बड़ी संख्या में एकत्र हो चुके थे। इसलिये राजा को इस सीधी-सादी बात में कोई संकट नहीं मालूम हुआ। प्रार्थना स्वीकार कर ली गई। स्वीकृति का संवाद धीर और गोपीचंद अंडा-घाट पर लाए थे। गोपीचंद अपनी ऐंठ दिखलाता हुआ कुंडार को चला गया और सोहनपाल का दल धीर के साथ देवरा जा पहुँचा। साथ में हेमवती और उसकी मा भी थी।

देवरा पहुँचकर सबने अपने डेरे यथास्थान लगा लिए। संध्या होने से पहले दिवाकर ने सोचा कि पलोथर की ऊँची चोटी पर जाकर चारों ओर का दृश्य देख आऊँ, क्योंकि राजाज्ञा ने देह का कुंडार-प्रवेश वर्जित किया था, न कि आँखों का।

सूर्यास्त के घड़ी-दो घड़ी पहले दिवाकर चोटी पर पहुँच गया। उस समय वहाँ स्वामीजी नहीं थे।

कुंडार की ओर मुँह करके दिवाकर ने पर्वत-मालाओं में न-मालूम

क्या-क्या देखा। दाईं ओर देवरा का वह उद्यान था, जहाँ कनैर के पेड़ों में अब भी फूल लगे थे, बाईं ओर बकनवारा नाला और वह जंगल था, जहाँ उसने कभी कुछ और कभी कुछ सोचा था। सामने एक ओर शक्ति-भैरव और दूसरी ओर कुंडार। उस ओर किस स्थान में कौन-कौन निवास करता होगा?

दिवाकर ने एक आह ली और सोचा—"परसों यह भूमि नर-शोणित से प्लावित हो जायगी! इतने दिनों राज्य करने के उपरांत बेचारे खंगार अपनी मूर्खता के कारण परसों यहाँ से सदा के लिये चले जायँगे। सौ वर्ष का संचित किया हुआ मान-सम्मान एक दिन में नष्ट हो जायगा। खजराहो था। न रहा। कालिंजर हुआ। चला गया। महोबा ने जन्म लिया। वह भी मर गया। कुंडार ने सिर उठाया। उसका परसों दलन होगा। कैसा घटना-चक्र है! कैसा अनित्य संसार है!" फिर अपने मन में बोला—"कुंडार की महिमा खंगारों में नहीं है। उसकी महिमा का मंदिर तारा है, यदि तारा चिर-सुखी रही, तो कुंडार अमर है।" वह वहीं बैठ गया और बैठा-बैठा कुछ सोचता रहा।

इतने में पास ही एक बड़ी ऊबड़-खाबड़ चट्टान के पीछे से किसी के सिसकने का शब्द सुनाई पड़ा। दिवाकर ने खयाल किया कि हवा सायँ-सायँ कर रही है, परंतु उसको शीघ्र विश्वास हो गया कि यह किसी मनुष्य के सिसकने का शब्द है।

धीरे से पास गया। चट्टान के पीछे देखा—अग्निदत्त बच्चों की तरह रो रहा था।

दिवाकर ने सोचा कि चुपचाप खिसक जाऊँ, नहीं तो अभिमानी अग्निदत्त अपने को ऐसी निस्सहाय व्यथा में देख जाने से बहुत लज्जित होगा। दिवाकर वहाँ से तुरंत हटने को हुआ कि अग्निदत्त ने उसको देख लिया। आँसू पोंछकर खड़ा हो गया। अस्ताचलगामी सूर्य की किरणें अग्निदत्त के अश्रु-पुलकित लाल नेत्रों पर पड़ीं। अभिमान, संकोच और घबराहट का

एकदम सम्मिश्रण हो गया। अग्निदत्त ऐसा मालूम पड़ता था, जैसे कोई हाल का उजड़ा हुआ विशाल नगर हो।

दिवाकर ने और पीछे हटना व्यर्थ समझा। सोचा—"किसी मर्मस्थान पर आहत हुआ है। इसका भयानक सौंदर्य कितना करुणोत्पादक हो रहा है। सरल सुहावनी तारा दूसरा चित्र है।"

दिवाकर ने कहा—"भाई साहब!"

इतने कोमल स्नेहमय कंठ से दिवाकर ने पहले कभी अग्निदत्त को संबोधित नहीं किया था।

अग्निदत्त ने भग्नावशेष स्वर में कहा—"आप यहाँ कब से हैं?"

दिवाकर ने उत्तर दिया—"मैं बड़ी देर से यहाँ से कुछ दूरी पर बैठा हुआ था। शब्द सुनकर अभी-अभी यहाँ आया हूँ।"

"रोने का शब्द था।" अग्निदत्त ने कहा—"हाँ दिवाकर, मैं रोया हूँ। परंतु अब नहीं रोऊँगा। मैं जिसके लिये रोया हूँ, वह अब नहीं है। परसों के बाद मेरे लिये भी कोई नहीं रोएगा।"

दिवाकर ने कहा—"मुझे भी शायद कारण मालूम है। परंतु ऐसे विषय पर अब आपको कोई ध्यान नहीं देना चाहिए।"

अग्निदत्त ने आह भरकर कहा—"आपको कुछ नहीं मालूम, जिसके कारण मैं कुंडार के अनिष्ट पर उतारू हुआ हूँ, उसके लिये आँसू का एक कण भी डालना व्यर्थ अपव्यय है। दिवाकर, आपकी मा जीवित है?"

दिवाकर ने उत्तर दिया—"न।"

अग्निदत्त बोला—"मुझे जिसने जन्म दिया था, वह इसी कुंडार में थी। कुंडार-त्याग के समय उसके चरणों में माथे को नहीं टेक पाया था। आज सुना है, वह मुझ पापी के वियोग-दुःख में स्वर्गवासिनी हो गई है। उसके नाते केवल कुंडार मेरी जननी है, सो उसका शिरश्छेद करने के लिये मैं आप सब लोगों को लिवा लाया हूँ।"

दिवाकर ने अग्निदत्त के रोने का वास्तविक कारण अब समझा।

बोला—"अभी समय है, अग्निदत्त। आप अब भी अपने को अलग कर सकते हैं।"

"बुंदेलों के साथी होकर आपको ऐसा नहीं करना चाहिए।" अग्निदत्त ने कहा—"और फिर इस प्रपंच को छोड़कर मैं जाऊँगा कहाँ? जिऊँगा किसके लिये?"

दिवाकर का कंठ काँपने लगा। बोला—"तारा के लिये।"

अग्निदत्त की आँखें भयानक हो उठीं। बोला—"हाँ! वही एक मोह हृदय में शेष है। परंतु तारा मेरी मा से बढ़कर नहीं है, और उसके लिये जीकर मैं करूँगा ही क्या? तारा देवी है, पवित्र है। उसको संसार में दुःख नहीं हो सकता।"

दिवाकर ने उमंग के साथ कहा—"देवी नहीं, संसार की संपूर्ण साधुता की अधिष्ठात्री देवी है।"

फिर दिवाकर ने कहा—"पांडेजी, अभी आप जीवित रहिए। शीघ्र मरण के लिये हम सरीखे लोग बनाए गए हैं। मेरा अनुरोध है, निवेदन है, आप हम लोगों को छोड़कर कहीं अन्यत्र चले जायँ।"

अग्निदत्त ने छाती पर हाथ बाँधकर सूर्य की ओर देखा। देवरा की ओर से बुंदेलों के घोड़ों की हिनहिनाहट का शब्द सुनाई दिया।

बोला—"दिवाकर, मैं ब्राह्मण हूँ। खंगारों ने मेरा जो अपमान किया है, उसको अमावस्या की काली रात ही जानती है, और किसकी उपस्थिति में?" फिर दाँत पीसकर उसने कहा—"दिवाकर, नहीं, ऐसा नहीं होगा। रणचंडी के खप्पर में यदि खंगारों का रक्त न भरा गया, तो मेरा जन्म अकारथ गया। उसी खप्पर में अग्निदत्त का ब्राह्मण-रक्त भी जा मिलेगा। वह होगा सच्चा ब्राह्मण-खंगार-सम्मेलन। आप तो उस उत्सव में चलेंगे? मैं आपको वहाँ पर अपने पास चाहता हूँ।"

दिवाकर ने पूछा—"क्यों ?"

अग्निदत्त ने उत्तर दिया—"इसलिये कि यदि मैं घायल हो जाऊँ, तो आप मेरा सड़-सड़कर मरना निवारण करने के लिये एक ज़ोर का भरपूर वार गर्दन पर कस दें। कृपा होगी।"

दिवाकर ने कहा—"मैं न जाऊँगा। मैंने निश्चय कर लिया है।"

बहिष्कार

देवरागढ़ी का गढ़पति होने पर भी चमूसी पढ़िहार बुंदेलों के आगत-स्वागत पर नियुक्त किया गया, यह बात उस वृद्ध ठाकुर को अच्छी नहीं लगी। गढ़ी से उसके लगभग सब सैनिक हटाए जाकर पलोथर-ग्राम में भेज दिए गए, यह भी उसके मन को न भाया। खंगारों से रोटी-बेटी का संबंध करने के लिये आए हुए बुंदेलों के लिये उसके जी में कोई गौरव न था। ऐसों के सत्कार के लिये जुझौति के प्राचीन नरेशों का प्रतिनिधि चमूसी नियुक्त किया जावे, यह ऐतिहासिक दुर्घटना उसको खटकी। परंतु चमूसी को संतोष यह था कि हरी चंदेल भी उसके साथ इसी काम के लिये रक्खा गया था।

हुरमतसिंह ने सोचा था कि बेतवा नदी, पलोथर का पहाड़, पलोथर, बरौल और भरतपुरा की सेनाएँ बुंदेलों के सत्कार के लिये काफ़ी नहीं हैं। इसलिये उसने राज्य के दो पुराने और विश्वस्त सेवक भी बुंदेलों के कार्य-क्रम की देख-रेख के लिये सत्कार और आगत-स्वागत की ओट में देवरा पहुँचा दिए थे। विवाह के लिये इतने बुंदेलों और बुंदेला-मित्रों का एक स्थान पर जमाव देखकर उसको कुछ खटका हुआ था, परंतु बुंदेलों के साथ संबंध करने की उत्कट अभिलाषा ने उसे पूरी सतर्कता के साथ काम न लेने दिया।

पहाड़ की चोटी पर से अग्निदत्त और दिवाकर साथ ही लौटकर आए। देवरागढ़ी के पास हरी चंदेल और उसकी छाया अर्जुन मिले।

अर्जुन बोला—"धुआकरजू राम-राम। पांडेजू पालागन। अपुन तौ कुंडार में नै हौई नई? इतै का करत? सिकार ना खिला लो आओ नाहर को?"

अग्निदत्त आँख से अग्नि-वर्षा-सी करके चुपचाप वहाँ से चला गया। दिवाकर ठहर गया।

हरी ने अर्जुन को डाटकर कहा—"ऐसा पाजी है कि जीभ को लगाम लगाना ही नहीं जानता। यह विवाह हो जाय, फिर कोड़े लगाऊँगा।"

दिवाकर बोला—"अर्जुन, क्या यहाँ भी पहरा लगाने आया है? यदि तू अपनी जीभ पर पहरा लगाए, तो बड़ा अच्छा हो, फिर भी तेरी सीधी पैनी बातें मुझे पसंद हैं।"

हरी ने कहा—"यह घड़े में घड़ा मिलाता है, और जीभ को कभी-कभी ऐसा सरसराता है कि जी होता है काट लूँ।"

दिवाकर—"आप तो परसों उत्सव में शामिल होंगे?"

हरी—"जी हाँ।"

दिवाकर—"नगर से वह स्थान कितनी दूर है, जहाँ उत्सव मनाया जायगा?"

हरी—"यही आध कोस या पाव कोस। आप भी तो आएँगे?"

दिवाकर के विषय में राजा की आज्ञा हरी को विदित न थी।

दिवाकर—"नहीं। मैं नहीं जाऊँगा।"

फिर दिवाकर अपने डेरे की ओर चला गया।

बहुत देर तक देवरागढ़ी में और उसके बाहर आस-पास बड़ा गोल-माल मचा रहा। ज़्यादा रात निकल गई थी, तब कहीं सब लोग ठिकाने से हो पाए।

दिवाकर ने अपना बिस्तर गढ़ी के भीतर उस जगह लगाया, जहाँ दलपति बुंदेला और उसके परिचित लोग पहले से जाकर जम गए थे। चाँदनी छिटकी हुई थी।

रात कुछ अधिक निकल गई थी। दिवाकर दिन-भर का थका हुआ था और उस पर उसने किसी प्रेरणा के वश पलोथर की पहाड़ी की चढ़ाई

की थी, इसलिये अंग शिथिल-से मालूम पड़ते थे। सोने के लिये उसने आँखें बंद की थीं कि दलपति का शब्द सुनाई पड़ा। किसी से उसने कहा—"हरी चंदेल हम लोगों पर जासूसी के लिये लगाया गया है। इससे सावधान रहना पड़ेगा।"

एक और कंठ से कहा—"चौकसी करता रहे यहाँ रक्खा ही क्या है? कल विश्राम और परसों काम।"

"परसों की शिकार मज़ेदार होगी।" दलपति बोला।

"और वह?" एक कंठ ने पूछा।

दलपति ने कहा—"वह तो होगा ही जिसकी लाठी उसकी भैंस। मार-काट के बाद हम लोग शांत थोड़े ही बैठे रहेंगे। तीन-चार घर बहुत बड़े-बड़े हैं।"

दिवाकर की नींद उचट गई और वह ध्यान के साथ सुनने लगा।

दलपति ने धीरे से कहा—"विष्णुदत्त सबका सिरताज है। उसके घर में करोड़ों के रत्न-जवाहिर आदि हैं। जो जागेगा, सो पावेगा।"

दिवाकर बेचैन हो उठा। परंतु शांत पड़ा रहा।

एक कंठ से कहा—"इसका प्रस्ताव मैंने सोहनपालजी से एकांत में किया था। उन्होंने बिलकुल मना किया है।"

दलपति ने उत्तर दिया—"हम लोग स्वतंत्र स्वेच्छाचारी सैनिक हैं। कुंडार के खंगारों को और कुंडार के धन, दोनो को, साफ़ करेंगे।

एक दूसरे कंठ ने कहा—"सुना है, विष्णुदत्त की एक बड़ी सुंदर लड़की है। यदि वह मुझको पसंद करेगी, तो मैं इस सारे झंझट को तीर्थ-यात्रा समझूँगा।"

दलपति बोला—"चुप-चप। हमको किसी की बहू-बेटियों से कुछ मतलब नहीं है। हमको तो हीरा-माणिक चाहिए।"

फिर बहुत धीरे से बोला—"सोहनपालजी लेंगे किले के भीतर की

संपत्ति, तो हम मनचले दरिद्र सिपाही विष्णुदत्त के भी अधिकारी न होंगे ?"

चौथा बोला—"परसों कुंडार में वह आग बरसेगी कि हवा भी ख़ाक हो जायगी। सोहनपालजी को कुंडार का राज्य चाहिए और हमको कुंडार-नगर की संपत्ति। तीर को कमान से छूटने पर कोई नहीं लौटा सकता। उत्सव में तलवार खिंचने पर फिर हम लोगों को रात-भर के लिये कोई नहीं रोक सकेगा।"

दलपति ने कहा—"अब चुपचाप सो जाओ। नहीं तो अपनी मंडली के सब लोग उठ-उठकर यही रोचक कथा रात-भर कहेंगे। मंडली के बाहर बात न जाने पावे।"

इसके बाद सो गए। दिवाकर को नींद नहीं आई। बहुत बेचैन हो गया। उसको विश्वास हो गया कि उत्सव में खिंची हुई तलवार का इच्छानुसार रोक लेना उस समय सोहनपाल के लिये असंभव हो जायगा, और नर-हत्या के साथ-साथ कम-से-कम कुछ बुंदेले संपत्ति-हरण में भी तत्परता दिखलावेंगे।

दिवाकर ने सोचा—"विष्णुदत्त का घर इनमें से कुछ का लक्ष्य है। मैं उत्सव में शामिल न हो सकूँगा। विष्णुदत्त का क्या होगा ? तारा का क्या होगा ? क्या अग्निदत्त उस समय अपनी प्रतिहिंसा की काली छाया में अपने घर को देख पाएगा ? अग्निदत्त ने क्यों ऐसा दुष्कर्म किया ? क्या करूँ ? किस तरह तारा की रक्षा हो ? अग्निदत्त से कहूँगा, तो वह सोहनपालजी से कह देगा। सोहनपालजी इन लोगों को रोक-भर देंगे, परंतु शासन नहीं कर सकेंगे, और वह इस समय कोई ऐसा काम नहीं करेंगे, एक भी बुंदेले का मन उनसे फिर जाय। इस होनेवाली लीला के पूर्व-काल में किसी धर्म-नीति या न्याय-नीति की चर्चा करना राख पर घी डालने के समान होगा। तब क्या करूँ ? या तो मैं स्वयं जाकर विष्णुदत्त को सावधान कर दूँ या एक पत्र तारा के पास भेज दूँ ? परंतु

इससे बुंदेलों का सारा भंडाफोड़ हो जायगा और सब-के-सब खंगारों द्वारा कुतर डाले जायँगे।" इन बातों को दिवाकर ने लौट-पलटकर रात-भर सोचा। इतने में सबेरा हो गया। सब लोग अपने-अपने काम में लग गए।

सब लोगों के मन में एक विशेष उत्साह था। सब लोग एक दूसरे की ओर संकेतमयी दृष्टि से देखते थे, परंतु सिवा शिकार के और कोई चर्चा नहीं करते थे।

अग्निदत्त, सोहनपाल, सहजेंद्र, पुण्यपाल, धीर, दलपतिसिंह इत्यादि कुछ चुने हुए सरदार देवरागढ़ी के एक कोने में कुछ सलाह करते रहे। दिवाकर उस दिन-भर कहीं एकांत में कुछ सोचता रहा।

संध्या के पहले दिवाकर अकेले में अपने पिता के पास पहुँचा। हाथ जोड़कर बोला—"मैं बिदा माँगने आया हूँ।"

धीर ने चिंतित होकर पूछा—"कहाँ के लिये?"

दिवाकर—"सदा के लिये, देव।"

धीर बड़ी-बड़ी उलझनों को जीवन में पार कर चुका था। इसलिये घबराया नहीं। बोला—"सदा के लिये कहाँ जायगा? ठीक समय पर स्वामी को यहाँ छोड़कर कहाँ भागना चाहता है? आज इतना उदास क्यों है?"

दिवाकर—"कुंडार जाऊँगा।"

धीर—"अभी नहीं, कल जाओ।"

दिवाकर—"अभी जाऊँगा।"

धीर—"अपना वध कराने? तू जानता है कि इस महोत्सव के हर्ष में यदि खंगारों ने तेरे प्राण न लिए, तो ऐसे स्थान पर पकड़कर बंद कर लेंगे कि कल संध्या के समय उपद्रव के आरंभ होते ही सबसे पहले तुझे काट कर फेंक देंगे?"

दिवाकर—"मरना तो किसी-न-किसी दिन है ही?"

धीर दिवाकर की दृढ़ बातचीत सुनकर ज़रा अधीर हो गया।

बोला—"कुंडार जाने का तात्पर्य ?"

दिवाकर—"विष्णुदत्त के घर-बार की रक्षा। कल बुंदेले आपके पुराने मित्र का घर-बार लूटेंगे।"

धीर—"यह असंभव है। मैं इसका प्रबंध कर लूँगा। तुम्हें इसके लिये अपने प्राणों को संकट में डालने की आवश्यकता नहीं है। जाओ, अपना काम देखो।"

दिवाकर—"मेरे लिये अब और कोई काम शेष नहीं है। आपको सूचित किए बिना नहीं जा सकता था, इसलिये निवेदन करने और चरणों की धूल अपने माथे पर चढ़ाने के लिये आया हूँ। आप कल बुंदेलों के उपद्रव को नहीं रोक सकेंगे, और ऐसी दशा में विष्णुदत्तजी की बड़ी दुर्दशा होगी। मुझे निश्चय है, कुंडार में आज पहुँचने पर फिर न लौट सकूँगा। इसीलिये आज्ञा लेने आया हूँ।"

धीर—"मान लिया जाय कि कल बुंदेले कुंडार में लूट-पाट मचा डालेंगे, तो तू अकेला, यदि खंगारों की कृपा-दृष्टि से बच भी गया, तो क्या कर लेगा ?"

दिवाकर—"मैं आज ही जाकर विष्णुदत्त को कल होनेवाली घटना से सूचित कर दूँगा और उनको कुंडार छोड़ देने को कहूँगा।"

धीर—"और यदि विष्णुदत्त ने हुरमतसिंह से जाकर कह दिया, तो हम सबों का क्या होगा ?"

दिवाकर—"आप लोग अपनी तलवार से अपनी रक्षा कर लेंगे, और फिर आप इतने बहुसंख्यक हैं कि खंगार बुंदेलों का विनाश नहीं कर सकते।"

धीर—"तब तू हम लोगों की योजना प्रकट करने के लिये जा रहा है। विष्णुदत्त तेरा इतना बड़ा मित्र नहीं है, जितना मेरा है।"

दिवाकर—"देव, मैं निश्चय कर चुका हूँ। केवल आज्ञा माँगने आया

हूँ। क्या अकेले विष्णुदत्त के बच जाने से बुंदेला-खड्ग की प्यास न बुझेगी ?"

धीर—"तेरा यह प्रेम विष्णुदत्त के लिये है ? या कुंडर में किसी स्त्री के लिये ? बोल, अभागे।"

दिवाकर—"देव, कुंडार के खंगार ही दोषी हैं, या वहाँ की स्त्रियाँ भी ?"

धीर के लिये यह अनुभव बिलकुल नया था। पहले कभी दिवाकर ने अपने पिता से मुँह जोड़कर बात नहीं की थी। उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। परंतु अपने को सँभालकर बोला—"बेटा, तुम कुछ दिनों से बहुत उदास बने रहते हो। तुम्हारे मस्तिष्क की क्रिया कुछ उलट-पलट हो गई है। कल के बाद मैं तुम्हारी ओषधि कराऊँगा। तुम निश्चिंत होकर कहीं जा पड़ो और सो जाओ। मेरा विश्वास मानो, विष्णुदत्त के घर का बाल भी बाँका न होगा। मैंने ऐसा प्रबंध किया है कि हमारा कोई सिपाही बस्ती के किसी नागरिक को नहीं सता सकेगा।"

दिवाकर पैरों पर गिर पड़ा। बोला—"मुझे मत रोकिए। बुंदेलों की जो आँधी यहाँ इकट्ठी हुई है, उसके चल पड़ने पर कोई उसका शासन न कर सकेगा।"

धीर गंभीर हो गया।

बोला—"तुम यह नहीं सोचते हो कि अपनी इस कारवाई से तुम अपने को तो संकट में डालोगे ही, किंतु बुंदेलों के भी सर्वनाश के कारण बनोगे।"

दिवाकर ने खड़े होकर कहा—"यह सब कुछ न होगा देव, विष्णुदत्त के घर-बार की रक्षा हो जायगी, तो आपको भी सुख होगा।"

धीर का धैर्य जाता रहा। बोला—"तू क्या पागल हो गया है ?"

दिवाकर—"बिलकुल पागल नहीं हूँ।"

धीर—"जानता है, तू मेरा पुत्र है ?"

दिवाकर—"देह आपकी दी हुई है और आत्मा भगवान की।"

धीर—"यह मेरे मुँह पर! नीच कहीं का! स्वामिघात करेगा?"

दिवाकर—"एक परिवार की रक्षा स्वामिघात तो नहीं कहला सकती है। मैं अब जाता हूँ।"

दिवाकर गमनोद्यत हुआ। सामने सहजेंद्र दिखलाई पड़ा। कुछ दूरी पर और लोग इधर-उधर थे।

धीर ने कहा—"कुमार, इसको आगे न जाने देना।"

सहजेंद्र ने धीर का ऐसा व्यवहार कभी न देखा था। चकित रह गया।

दिवाकर आगे न बढ़ा।

धीर बोला—"लौटो, लौटो।"

दिवाकर एक क्षण के लिये निर्बल हो गया। किं-कर्तव्य-विमूढ़।

सहजेंद्र ने उससे पूछा—"दिवाकर, क्या बात है?"

दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया और फुर्ती से वह निकल भागने को हुआ।

धीर कड़ककर बोला—"सहजेंद्र, इसको पकड़ो। पकड़ो स्वामिघाती को। जाने न पावे। जिसके पास से छूटकर निकल जावेगा, उसको प्राण-दंड दूँगा।"

सहजेंद्र हक्का-बक्का-सा खड़ा रह गया। पुण्यपाल के आदमी उसी ओर थे। उन्होंने दिवाकर को आगे न बढ़ने दिया।

इतने में धीर निकट पहुँच गया। सहजेंद्र साथ था।

धीर बोला—"कुमार यह आपका साथी है, इसलिये इस क्षण साधारण अपराधियों की तरह साधारण सैनिकों से इसको नहीं बँधवाना चाहता हूँ। आप इसको पकड़कर राजा के सामने ले चलें।"

सहजेंद्र दिवाकर के पास जाकर उसकी ओर देखने लगा। दिवाकर आँखें नीची किए था।

सहजेंद्र ने शिष्टता और कोमलता के साथ कहा—"कोई साधारण-सी बात होगी। भाई साहब, चले चलिए।"

दिवाकर कुछ नहीं बोला।

धीर बोला—"कुमार आप राज्य का अपमान करते हैं। इसको तुरंत पकड़कर ले चलिए, नहीं तो अभी मेरे हाथ और हथियार में इतना बल बाकी है कि इस-सरीखे दस दुष्ट छोकरों पर शासन कर सकता हूँ।" धीर ने तलवार निकाल ली।

सहजेंद्र ने सोचा कि दिवाकर ने कोई भयानक अपराध किया है। उसका हाथ छूकर कहा—"भैया, दाऊजी के पास चले चलो।" दिवाकर सहजेंद्र के साथ हो लिया। धीर नंगी तलवार लिए पीछे-पीछे चला।

सैनिकों की भीड़ कौतूहल-वश आगे-पीछे हो गई! धीर ने सबको रोककर लौटा दिया।

थोड़ी देर में सोहनपाल के सामने दिवाकर पहुँचाया गया।

हल्ला सुनकर पुण्यपाल भी वहाँ आ गया। और लोग भी आना चाहते थे; परंतु धीर ने निषेध कर दिया। अग्निदत्त कहीं बाहर गया हुआ था। सहजेंद्र ड्योढ़ी पर पहरे के लिये खड़ा कर दिया गया।

आश्चर्यान्वित सोहनपाल से धीर ने कहा—"महाराज, यह स्वामि-द्रोही सामने खड़ा है।"

सोहनपाल—"बेटा दिवाकर, क्या बात है ?"

दिवाकर कुछ कहना चाहता था, परंतु कुछ न कह सका।

धीर बोला—"यह अभी-अभी कुंडार जाकर वहाँ यह समाचार फैलाना चाहता था कि बुंदेले खंगारों का विनाश करने के लिये आए हैं।"

सोहनपाल—"इसका क्या प्रमाण है कि दिवाकर ने यह बात कही है ?"

धीर—"स्वयं मुझसे अभी-अभी कहा है। बहाना यह किया कि कुछ

सोहनपाल—"मैंने तुमको क्षमा कर दिया। जाओ अपने डेरे पर।"

दिवाकर—"मेरा अब यहाँ कोई डेरा नहीं है।"

धीर—"महाराज, इसको छुट्टी देना संपूर्ण बुंदेलों का सर्वनाश कराना है। यह कुंडार अवश्य जायगा। कह चुका है।"

सोहनपाल—"क्यों दिवाकर ?"

दिवाकर—"अवश्य यहाँ से छूटते ही कुंडार जाऊँगा।"

सोहनपाल—"कुंडार में तेरा कौन है ?"

दिवाकर ने कोई उत्तर नहीं दिया। सोहनपाल बड़ी उलझन में पड़ा। बोला—"दिवाकर, कल बुंदेलों के जीवन-मरण का प्रश्न है। लाखों कठिनाइयों को पार करके यहाँ तक अपने रहस्य को छिपाए हुए आए हैं। तुम्हारी इस ज़रा-सी नादानी से सर्वनाश हो जायगा।"

दिवाकर—"कल यदि बुंदेले मर गए, तो जी जायँगे और जी गए, तो मर जायँगे।"

इस वाक्य को सुनकर सब सन्नाटे में आ गए।

पुण्यपाल—"यह बात मैं न समझा।"

सोहनपाल—"क्या तुमको बुंदेलों का अनिष्ट प्रिय है ? क्या तुम्हें उनकी अपकीर्ति अच्छी मालूम होगी ?"

दिवाकर—"बुंदेलों से बढ़कर मुझको उनकी कीर्ति प्यारी है। वह गई।"

पुण्यपाल—"क्या ? कहाँ गई ?"

दिवाकर—"ठीक कहता हूँ। जिस दिन आप लोगों ने षड्यंत्र को अपना विवेक समर्पित कर दिया, उसी दिन आपकी उज्ज्वलता अंधकारमय हो गई। जिस दिन आप लोगों ने खंगारों को धोका देकर मारने का निश्चय किया, उसी दिन धर्मराज की पुस्तक में आप लोग क्षत्रियों की नामावलि से काट दिए गए। दो हाथ भूमि के लिये आप लोग कितना भीषण उपद्रव करने को कटिबद्ध हुए हैं। वैर-शोध के लिये आपने

क्षत्रियोचित उपाय को कितना दूर छोड़ दिया है ! कल तो आपकी अपकीर्ति की अंतिम आहुति-मात्र है। क्या आप कल्पना करते हैं कि अधर्म-संचित राज्य बहुत दिनों तक चलेगा ?"

धीर ने टोककर, कड़ककर कहा—"अब बोला तो जीभ कटवा दूँगा ! कोई है, इसको यहाँ से इसी समय ले जाय, और तुरंत धड़ से सिर अलग कर दे ?"

सहजेंद्र थर्रा गया।

दिवाकर—"मैं कहूँगा और फिर कहूँगा। समय कहेगा और संसार कहेगा। इतिहास कहेगा और कहानियाँ कहेंगी। मुझे मार डालो, इससे आप लोगों की अपकीर्ति का प्रवाह रुकेगा नहीं। यदि कल सब बुंदेले मारे जायँ, तो पंचम की आत्मा सहस्रबाहु का रूप धारण करके क्षत्रियोचित उपायों से राज्य या साम्राज्य स्थापित करेगी, नहीं तो आपके कल के कुकृत्य को देखकर देवता का भी सिंहासन लौट जायगा।"

धीर—"सहजेंद्र, इसको पकड़कर ले जाओ और अभी इसका सिर कटवा दो। यह राजा के प्रधान की आज्ञा है। आज्ञा को तुरंत मानिए, अभी आप सैनिक हैं, राजा नहीं है, ले जाइए, तुरंत ले जाइए।"

सहजेंद्र—'मुझसे यह काम नहीं होगा।"

धीर—'चारों ओर स्वामिघात ! चारों ओर राजद्रोह ! राजा का पुत्र भी प्रधान की आज्ञा का उल्लंघन करना चाहता है !"

सहजेंद्र—"तब मुझे भी दिवाकर के साथ मरवा डालिये। मुझे संसार की हथेली-भर भी भूमि नहीं चाहिए।"

धीर—"महाराज, क्या प्रधान को न्यायाधीश, सैनिक और चांडाल, तीनो का काम एक साथ ही करना पड़ेगा ?"

दिवाकर—"न काकाजू, मुझे चांडाल का डेरा बतला दिया जाय, मैं स्वयं उसके पास जाकर सिर कटवाने की भीख माँग लूँगा। इस अंधकारा-

भूत, अधर्म-पूर्ण छावनी में एक क्षण के लिये भी जीवन रखना पाप है।"

धीर ने तलवार सँभाली। सोहनपाल ने देख लिया। बोला—"नहीं प्रधान, न राजा चांडाल है और न उसका प्रधान चांडाल है। इस मूर्ख बालक को मैं ठीक करूँगा।" धीर रुक गया।

सोहनपाल ने कहा—"इसी गढ़ी में एक बंदीगृह है। उसमें इस लड़के को बंद कर दो। परसों इस छोकरे के लिये दूसरी आज्ञा निकालूँगा। ले जाओ, यह पागल हो गया है, और कोई बात नहीं।"

सहजेंद्र बोला—"दिवाकर बंदीगृह में! देखूँ अब और क्या-क्या होनहार सामने आती है।"

इतने में दलपतिसिंह सामने दिखलाई पड़ा।

सोहनपाल ने उसको बुलाकर कहा—"दिवाकर पागल हो गया है। एकाएक इसका सिर फिर गया है। इसको गढ़ी के उस क़ैदख़ाने में बंद कर दो। पहरा ऐसा लगना चाहिए कि न तो वहाँ से बाहर आ सके और न किसी से किसी तरह की भी कोई बात कर सके। दलपतिसिंह ने "बहुत अच्छा" कहकर दिवाकर को साथ लेना चाहा। फिर बोला—"यह हथियारों के साथ उस तलघरे में रक्खे जायँगे?"

धीर ने कहा—"कदापि नहीं। सब हथियार उतार लो।"

दलपतिसिंह ने हथियार उतारने के लिये हाथ बढ़ाया। दिवाकर ज़रा पीछे हटा। सोहनपाल ने देख लिया। बोला—"सामंत का हथियार सिवा मेरे और कोई नहीं उतारेगा। मैंने ये हरबे दिए थे, मैं ही उनको उतारूँगा।" सोहनपाल ने अपने हाथ से दिवाकर के हथियार उतारकर कहा—"ये हथियार तुमको परसों फिर मिल जायँगे—अर्थात् जब तुम्हारा पागलपन दूर हो जायगा।"

दिवाकर बोला—"मैं इन हथियारों को अब कभी नहीं छुऊँगा।"

दलपतिसिंह तलघरे या बंदीगृह की ओर दिवाकर को ले चला।

दिवाकर बहुत थोड़ी दूर गया था कि उसने गले में हाथ डालकर देखा, तो माला गले में न थी। बहुत भयभीत हुआ। ठहरकर सहजेंद्र को बुलाया। दलपति रुकना नहीं चाहता था, परंतु सहजेंद्र को सवेग आते हुए देखकर थम गया।

दिवाकर सहजेंद्र से बोला—"क्या एक कृपा करोगे? अंतिम भिक्षा का अंतिम दान?"

सहजेंद्र का गला रुँधा हुआ था। संकेत में पूछा—"क्या?"

दिवाकर ने उत्तर दिया—"देवता के प्रसाद में एक बार कुछ फूल मिले थे। वे एक छोटे-से कपड़े में सिले हुए हैं। उसकी माला बनाकर मैं गले में डाले रहता था। शायद आपने कभी देखा होगा। वह मेरे डेरे में पड़ी होगी। उसे मुझे दे दीजिए।"

सहजेंद्र संकेत में "हाँ" कहकर चला गया। बंदीगृह में जाने के लिये केवल छत पर से द्वार था। उसकी क्रिया चमूसी से सीखकर दलपति ने रस्सा बाँधकर कुछ कपड़ों के साथ दिवाकर को भीतर पहुँचा दिया।

थोड़ी देर में चारों ओर ख़बर फैल गई कि धीर प्रधान का पुत्र दिवाकर पागल हो गया है और गढ़ी के बंदीगृह में बंद कर दिया गया है।

बंदीगृह पर दलपतिसिंह के साथियों का कठोर पहरा लगा दिया गया।

रात के समय अग्निदत्त ने कहीं बाहर से आकर दिवाकर के पागल हो जाने का और तलघरे में बंद कर दिए जाने का हाल सुना।

वह तुरंत उस ओर गया। उस समय दलपतिसिंह स्वयं वहाँ मौजूद था।

अग्निदत्त ने दिवाकर से बातचीत करने की इच्छा प्रकट की। दलपतिसिंह ने इनकार कर दिया।

अग्निदत्त ने क्षुब्ध होकर कहा—"मैं अग्निदत्त हूँ।"

"और मैं दलपति बुंदेला।"

अग्निदत्त—"इतना दर्प! जानते हो, मैं अपमान सहन नहीं करता।"

दलपति—"और मैं तो शायद रास्ते का राहगीर ही हूँ।"

अग्निदत्त ने नरम होकर कहा—"मैं बुंदेलों का शत्रु नहीं हूँ, मित्र हूँ, और दिवाकर मेरा परिचित है।"

दलपति—"मैं इस समय अपने बाप की भी नहीं सुनूँगा। सिधारिए।"

अग्निदत्त चला गया।

प्रस्थान

दूसरे दिन सबेरे बुंदेले तैयारी में लग गए। उनकी तैयारी को देखकर न तो चमूपी को कोई संदेह हुआ और न हरी को। दिवाकर के क़ैद किए जाने का भी असली कारण हरी को न मालूम हुआ। सबों ने उमंग और उत्साह के साथ देवरा की गढ़ी को छोड़ा। बहुत-सा सामान वहीं छोड़ दिया, जिसमें दूसरे लोगों को कोई और खयाल न हो।

चलने के समय सहजेंद्र दिवाकर के तलघरे की खिड़की के पास गया, दिवाकर एक कोने में बैठा था।

सहजेंद्र ने कहा—"भाई।"

दिवाकर—"सहजेंद्र ?"

सहजेंद्र—"मैं ही हूँ। भीतर क्या एक ही कोठरी है ?"

दिवाकर—"नहीं, कई कोठरियाँ हैं। समाधि लेने के लिये अच्छा स्थान है। माला मिल गई ?"

सहजेंद्र—"हाँ, मिल गई। देता हूँ।"

दिवाकर—"सब लोग जा रहे हो ?"

सहजेंद्र—"हाँ, सब जा रहे हैं।"

दिवाकर—"दलपतिसिंह बाहर हैं ?"

सहजेंद्र ने चारो ओर देखकर कहा—"नहीं हैं, परंतु प्रधानजी आ रहे हैं।"

दिवाकर—"दलपतिसिंह को देखे रहना। मुझे भय है कि योद्धा होते हुए भी कुंडार के लूटने की चेष्टा करेंगे। मेरी माला दे दो।"

सहजेंद्र ने अपने वस्त्र से माला निकालकर खिड़की में होकर दिवाकर

को देनी चाही कि धीर ने देख लिया। उसने कहा—"कुमार यह क्या है ?"

सहजेंद्र ने कहा—"दिवाकर की यह एक माला है, जो किसी देवता के प्रसाद में उसको मिली थी। बाहर रह गई थी, देने आया हूँ।"

"मुझे दिखलाइए।"प्रधान बोला।

धीर ने माला देखकर कहा—"देवता के प्रसाद की इसमें क्या चीज़ है ? क्या कोई विष है ? मैं इसको खोलकर देखूँगा।" सहजेंद्र देखता ही रह गया और धीर ने कपड़े के एक सिरे को फाड़कर फूलों का मोटा बुरादा अपने हाथ पर रखकर देखा। बोला—"यह क्या है और इतना सुरक्षित क्यों रक्खा गया ?"

सहजेंद्र ने कहा—"काकाजू, यह तो राजद्रोह नहीं है। कृपा करके दे दीजिए, मैं इसको दिवाकर के पास डाल दूँ।"

धीर ने उस बुरादे को सूँघकर कहा—"इसमें बेले के फूल की-सी महक आती है। कोई हानि नहीं, दे दो।—दिवाकर।"

दिवाकर ने अपने पिता का स्वर पहचानकर कहा—"हाँ देव।"

धीर—"महाराज को धन्यवाद दो कि तुमको प्राण-दंड नहीं मिला।"

दिवाकर बोला—"यदि प्राण-दंड मिलता, तो अवश्य कृतज्ञ होता।"

सहजेंद्र ने दिवाकर के पास माला डाल दी।

धीर ने कहा—"मैं जाता हूँ। यदि स्वामी की सेवा में मेरा प्राण गया, तो अपने को धन्य समझूँगा, यदि लौटकर आया, तो तुझको क्षमा कर दूँगा। कुछ कहना है दिवाकर ?"

दिवाकर—"कुछ नहीं देव। केवल यह कि अपशब्दों के लिये क्षमा कीजिएगा।"

धीर ने जल्दी से जाते हुए कहा—"क्षमा किया।"

आँख के एक कोने में एक छोटा-सा जल-कण धीर ने अपने काँपते हुए हाथ से पोंछ डाला; परंतु तलघरे की ओर फिरकर नहीं देखा।

सहजेंद्र दिवाकर से बोला—"मैं भी जाता हूँ। बहुत कम आशा है कि फिर कभी मिलूँ। तुमको दुःखो छोड़कर जाते हुए आज हृदय फटा जाता है।"

दिवाकर—"भवितव्य प्रबल मालूम होता है। नहीं तो क्या सहजेंद्र कभी इस काम में हाथ डालते? जाओ कुमार। यदि आप कुंडार के निरस्त्र निवासियों की धन-लोलुप सैनिकों से रक्षा कर सकेंगे, तो यह दुष्कृत्य कुछ हलका हो जायगा।"

सहजेंद्र—"दुष्कृत्य हो या सुकृत्य, अब तो जिस काम में पैर फँसा दिया है, करना ही पड़ेगा; परंतु जो कर्तव्य तुमने मुझको सौंपा है, उसको मैं करूँगा। एक बात पूछना चाहता हूँ, बतलाओगे?"

दिवाकर—"क्या?"

सहजेंद्र—"एक बार स्वामीजी से पलोथर की चोटी पर बकनवारे नाले होकर हम लोग मिलने जा रहे थे। तुमने एक बात बतलानी कही थी। उस बात से और इस माला के फूलों से कुछ संबंध है; क्योंकि देवता का प्रसाद मैंने और तुमने कई बार पाया है; परंतु ऐसी भक्ति के साथ उसको गले में बाँधकर तुमने कभी नहीं रक्खा।"

दिवाकर—"अब उसको जानकर क्या करोगे?"

सहजेंद्र—"मैं उस देवता का नाम जान सकता हूँ?"

दिवाकर—"कोई लाभ नहीं। देवता का सिंहासन मेरे हृदय में है। भक्ति के साथ उसका पूजन करता हूँ। दर्शन उसके कभी न होंगे। सहजेंद्र, जाओ, और लोग तुम्हारी बाट देखते होंगे।"

इतने में चमूमी और अग्निदत्त आए। अग्निदत्त आगे था।

अग्निदत्त ने कहा—"उस कठोर आदमी का पहरा उठ गया, अच्छा हुआ। मैं कल आया। न मिल पाया। दिवाकर, अंतिम मिलाप के लिये आया हूँ। तुम्हारी यह अवस्था क्यों हुई?"

चमूसी बोला—"अंतिम मिलाप कैसा ? कल सब लोग यहाँ आ जायँगे, इनको और कुछ नहीं हुआ है, किसी देवता की सवारी है।"

अग्निदत्त ज़रा चौंका, परंतु तुरंत बोला—"मेरे लिये जो आज्ञा है, सो आप लोग जानते हैं। उत्सव देखने की इच्छा संवरण नहीं कर सकता। राजा से क्षमा-प्रर्थना करूँगा। उत्सव के हर्ष में यदि मान जायँगे, तो कुंडार जाऊँगा। यदि न माने, तो लौटकर यहाँ न आऊँगा, कहीं और चला जाऊँगा।"

अग्निदत्त की बात में जितनी नम्रता थी, मुख पर उसकी अंश-मात्र न थी। दिवाकर ने कहा—"ईश्वर करे, तुम लौटकर आओ। इस समय और कुछ नहीं कह सकता।"

चमूसी बोला—"मुझे उत्सव-तमाशे अच्छे नहीं लगते। इसलिये यहाँ के पहरे की देख-भाल ही करूँगा। अब तो नौकरी नहीं होती। बुढ़ापे के मारे चला-फिरा नहीं जाता।"

सहजेंद्र ने कहा—"आप यहीं रहेंगे ?"

चमूसी—"हरी चले गए हैं, मैं गढ़ी में ही रहूँगा; परंतु पहरा मेरे आदमी लगावेंगे। मैं पहरा लगाने का काम नहीं करता। अब आप लोग जायँ। इनके साथ और कोई बातचीत नहीं की जा सकती। मैं भी दो आदमियों को पहरे पर छोड़कर गढ़ी में जाता हूँ।"

अग्निदत्त दिवाकर की वर्तमान अवस्था का वास्तविक तत्त्व जानना चाहता था। उसे विश्वास था कि दिवाकर पागल नहीं है। परंतु जिससे पूछा, उसने या तो पागलपन या प्रेत-बाधा को उसकी दशा का कारण बतलाया। उसने धीरे से पूछा, तो उसने कहा कि पागल नहीं है, परंतु कारण बड़ा गूढ़ है। दो-एक दिन में बतलाऊँगा। परंतु वह अवसर कभी न आया।

जब सब लोग गढ़ी से बाहर निकल आए, तो थोड़ी दूर पर पूर्व-परिचित शब्द सुनाई दिए—

"धन्न कुची तारी बिलैया ले गई पारी ।"

चमूसी थोड़ी दूर तक पहुँचाने के लिये साथ-साथ आया था । भक्ति-पूर्वक उसने स्वामीजी को प्रणाम किया । धीर और सोहनपाल सदा स्वामी अनंतानंद के मिलाप से प्रसन्न हुआ करते थे; परंतु आज वह अपशकुन के समान जान पड़े ।

स्वामी ने पास आकर कहा—"अरे नीचो, बाजे-गाजे के साथ खंगार को अपनी लड़की सौंपने जा रहे हो ? धिक्कार है तुमको !"

धीर ने कहा—"महाराज, तीर्थ-यात्रा से कब लौटे ?"

स्वामीजी—"अभी, और अब फिर जाता हूँ । कभी तुम लोगों का मुँह न देखूँगा । हेमवती बड़ी-बड़ी बातें करती थी, उससे भी न मिलूँगा । मैं तुम लोगों को शाप देने आया था । तुमने जुझौति को स्वतंत्र न किया और स्वयं परतंत्र हो गए ।"

सोहनपाल ने हाथ जोड़कर कहा—"महाराज शाप न दें । हम लोग जो कुछ कर रहे हैं, उसकी लंबी कहानी है और उसके लिये अत्यंत विवश हुए हैं । यदि आज्ञा हो, तो अकेले में सब कथा सुनाऊँ ।"

परंतु स्वामीजी का कोप प्रचंड था, उन्होंने कुछ न सुना और बकते-झकते दूसरी ओर चले गए, फिर कभी न दिखलाई पड़े ।

अग्निदत्त ने कहा—"यह कौन हैं और क्या कहते रहते हैं ?"

धीर ने उत्तर दिया—"यह कौन हैं, इसको कोई नहीं जानता और न उनसे पूछने का साहस कर सकता है । परंतु हम लोगों के शुभ-चिंतक हैं ।"

इसके बाद चमूसी सोहनपाल को जुहार करके लौट गया और बुंदेले आगे बढ़े । आगे जाकर कई दिशाओं में विभक्त हो गए । एक दल के साथ अश्वारूढ़ हेमवती और उसकी मा पीछे से आ गईं ।

सोहनपाल—"आज इनका भाव देखकर अचरज होता है और मेरा दिल टूटा-सा जाता है ।"

धीर—"कुछ अचरज मत करिए। यह सब उनके कहने का ढंग है। महात्मा लोग सीधी बातें उलट-पुलटकर कहते हैं।"

चमूसी—"बहुत बड़े महात्मा हैं। उनकी बात समझ में आ ही नहीं सकती।"

बुंदेलों को गढ़ी से बाहर थोड़ी दूर पहुँचा आने के बाद चमूसी दो आदमियों को तलघरे के पहरे पर छोड़कर अपने वास-स्थान को चला गया। ये दोनो पहरेदार शायद रात-भर जागने के कारण अथवा पेट को अधिक भोजन समर्पित करने के कारण एक जगह जाकर सो रहे। तल-घरे से बाहर कोई कैसे निकल भाग सकता है? और पागल से बातचीत करने की मनाही थी, सो उसका पालन क़ैदी से दूर रहकर कहीं अधिक अच्छा हो सकता था। इसके सिवा चमूसी का शासन कठोर न था। फिर पहरेवाले तलघरे की खिड़की के पास धूप में खड़े-खड़े यों ही अपने शरीर और प्राण को क्षीण क्यों करते?

दिवाकर ने खिड़की की राह आँख डाली भी होगी, तो कोई भी नहीं देख पड़ा होगा। गढ़ी में और गढ़ी के आस-पास बहुत कम आदमी थे। बड़ी चहल-पहल के बाद जब सन्नाटा हो जाता है, तो उस सन्नाटे में होनेवाले किसी छोटे-मोटे शब्द का पता भी नहीं लगता।

चमूसी संध्या से दो घड़ी पहले तलघरे पर आया। किसी को पास न देखकर झुँझलाया। खिड़की के पास सिर लगाकर देखा, तो क़ैदी को पड़े हुए पाया। वहाँ से बाहर आकर अपने पहरेदारों को कुछ घरू बातचीत करते हुए सुना।

एक से बोला—"मैंने सोचा था कि तुम लोग भी उत्सव देखने चले गए होगे। अच्छा किया, नहीं गए, उस पागल के पास न जाना।"

उसने कहा—मैं काए खों जान चलो दाउजू। ऊ पागल नो जैहों तो बौ गारी देहै। बौ तो उतै उरोउरो चिल्लात है।"

अंतिम बात उसने इसलिये कही थी कि चमूपी यह समझे कि सतर्कता के साथ पहरा लगाया है।

चमूपी—"अभी जब मैं आया, वह औंधा पड़ा हुआ था। देखो उसे कोई भूत लगा है। इसने किसी देवता का अनादर किया है, इसलिये उसकी यह दुर्गति हो रही है। तलघरे की ठंडक में देवता का कोप और उसके दिमाग़ की गरमी शांत हो जायगी।"

एक पहरेदार बोला—"देवता के सताए खों तौ गढ़ा में डारोई जात है। हम और तो ऊके पास न जैएँ।"

चमूपी—"हमारे कनैर के फूल जो कोई तोड़ ले जाता है, उसकी यही गति होती है, और मतवाला-सा तो यह लड़का वैसे भी फिरा करता था। अब मैं तो पलोथर जाता हूँ, तुम यहाँ देखे रहना।"

दूसरे पहरेदार ने कहा—"अपुन तौ काल भुंसरा लौं आहौ?"

चमूपी—"हाँ, कल सबेरे आऊँगा। दो घड़ी रात-बीते तो वहाँ पहुँचूँगा ही। वहाँ सैनिकों में कुछ गड़बड़ न हो उठे, इसलिये जाता हूँ।"

पहरेदार—"अपुन उच्छव में न जैहौ?"

चमूपी—"न जा सकूँगा। एक तो बहुत-से ठाकुर उसमें नहीं गए। दूसरे पलोथर में काम है। तुम लोग यहाँ बने रहना, मैं जाता हूँ।"

चमूपी चला गया।

दोनों पहरेदार थोड़ी देर बाद अपने घर देवरा-गाँव में चले गए। और लोगों ने भी इस ख़याल से गढ़ी का पड़ोस छोड़ दिया कि भूत के सताए और पागल के पास रहने की कोई आवश्यकता नहीं। गढ़ी के फाटक की बाहर से साँकल बंद कर दी और सब-के-सब चल दिए—बुंदेलों ने अपना कोई आदमी वहाँ छोड़ा नहीं था।

महोत्सव

उस दिन दुपहरी के लगभग अधिकांश बुंदेले सज-धजकर शिकार खेलने के लिये कुंडार के बिलकुल पास के जंगलों में चले गए। यह तो मालूम नहीं कि उन्होंने शिकार खेला या नहीं, परंतु इसमें संदेह नहीं कि जानवर उन्होंने कोई नहीं मारा। सोहनपाल की रानी और हेमवती इन्हीं लोगों के साथ घोड़ों पर थीं।

हुरमतसिंह और नाग ने अपना मन भर लिया था कि सोहनपाल के साथ वास्तव में हेमवती आई है। खंगारों की उमंगों का ठिकाना न था। उस दिन राज्य के समस्त गण्य खंगार कुंडार में इकट्ठे हुए। वे लोग बहुत दिनों से अपने को क्षत्रिय कहते थे; परंतु जिनको संसार क्षत्रिय कहता था, उनके साथ अब तक इनका रोटी-बेटी का व्यवहार नहीं हुआ था, इसलिये आज बुंदेलों के साथ इस संबंध के स्थापित होने के हर्ष में वे उन्मत्त हो उठे। खंगारों के चारणों ने उस दिन विविध प्रकार के 'यश' बनाए।

कुंडार के पास ही तालाब के उत्तरीय सिरे पर एक ऊँची पहाड़ी है। उसके ठीक नीचे आजकल विंध्यवासिनी देवी का मंदिर है। इसी स्थान के पास मैदान में महोत्सव का विधान हुआ।

चंदोवे और वितान, बीथियाँ और लतिकाएँ, विलासागार और मंडपों की भरमार थी। रेशम और ज़रदोज़ी का जंगल-सा था। रंग-बिरंगेपन के मारे आँख थकने न पाती थी। जगह-जगह हरे-हरे बंदनवार भी लहरा रहे थे।

सूर्यास्त के पहले ही धीर, सोहनपाल और सहजेंद्र अनेक सरदारों और सैनिकों के साथ आ गए।

हुरमतसिंह, नाग, गोपीचंद, राजधर, किशुन इत्यादि खंगार-सरदार रंग-बिरंगे बहुमूल्य वस्त्रों और रत्नादि से ढके हुए आए। धीर ने सोहनपाल की ओर से अभिवादन किया।

गोपीचंद ने कहा—"आपके करेरावाले बाँके सरदार नहीं दिखलाई पड़ते?"

धीर ने नम्रता-पूर्वक कहा—"जी, वे लोग शिकार में गए हुए हैं, संध्या तक आ जायगे।"

किशुन बोला—"हम सब क्षत्रियों में यह नेग है कि ऐसे महोत्सव के पहले शिकार खेलने के लिये जाया करते हैं। कुछ अचरज नहीं, कुछ अचंभा नहीं।"

सोहनपाल ने पूछा—'और क्षत्रिय लोग नहीं आए?"

हुरमतसिंह ने उत्तर दिया—"नहीं रावजी, इस समय तो नहीं आए, परंतु पाणिग्रहण के पश्चात् जो भोज होगा, उसमें वे लोग आवेंगे।"

धीर बोला—'अपनी-अपनी प्रथा है, इसमें कोई दबाव नहीं डाला जा सकता।"

किशुन ने कहा—"दबाव तो ऐसा डाला जा सकता था कि वे दाँत-तले तृण दाबकर आते, परंतु हम लोगों ने ही इसको शिष्टाचार के विपरीत समझा।"

धीर ने चँदोवों की ओर दृष्टि पात करके कहा—"महाराज ने हम साधारण मनुष्यों के लिये बड़ी भारी तैयारी की है। ऋण-शोध कठिन होगा। आपके यहाँ जिस रीति का प्रचार है, उसकी सामग्री यहाँ नहीं दिखलाई पड़ती?"

गोपीचंद—"यहाँ पास ही एक बड़े चँदोवे में मटके-के-मटके भरे हुए रखा दिए गए हैं। मांसादि का भी पूरा प्रबंध है। ठंडा पानी भी एक जगह रक्खा है। बस, आप लोगों के इकट्ठे होने-भर का विलंब है।"

धीर ने नम्रता के साथ कहा—"हम लोग दरिद्र हैं, किंतु आपका

धान्य स्पर्श भी नहीं कर सकते। अब इस कठिनाई से पार पाने का एक उपाय हम लोगों ने यह सोचा है कि आपको दाम दे देंगे, तब आपक धान्य ग्रहण कर लेंगे। थोड़ी देर में और बुंदेले भी आए जाते हैं।"

इस नम्र-निवेदन में शीघ्र होनेवाले संबंध की निश्चित सूचना देखकर खंगार बड़े प्रसन्न हुए।

राजा ने कहा—"मुझे एक बात को आज सुनकर कुछ कष्ट हुआ। आपने दिवाकर को क़ैद में क्यों डाल दिया ? क्या सचमुच वह बहुत पागल हो गया है ? यदि वह आज यहाँ आता, तो मैं उसे क्षमा कर देता।"

धीर ने तीक्ष्ण दृष्टि के साथ राजा की ओर देखकर तुरंत सतर्कता के साथ कहा—"हाँ महाराज, न-जाने कुछ दिन से उसको क्या हो गया है। उसका यहाँ इस उत्सव के अवसर पर लाना उचित नहीं समझा गया। बहुत बेसिर-पैर की बका करता है।"

सोहनपाल दूसरी ओर मुँह फेरकर चँदोवों की गिनती गिनने लगा। राजा कुछ गंभीर होकर बोला—"अग्निदत्त तो आप ही लोगों के साथ है ?"

सोहनपाल ने उत्तर दिया—"हाँ, वह आज यहाँ तमाशा देखने आना चाहते हैं। यदि आज्ञा हो, तो चले आवें, नहीं तो उनको रोक दिया जाय ?"

राजा हुरमतसिंह ने कहा—"बड़ा गँवार और मूर्ख है ; परंतु इस हर्ष के मौक़े पर यहाँ तक आने में हम उसके विषय में आक्षेप नहीं करेंगे। किंतु वह बस्ती के भीतर नहीं जाने पावेगा।"

धीर बोला—"उनको इस बात का ध्यान है।"

सोहनपाल ने पूछा—"विष्णुदत्तजी तो यहाँ आवेंगे ?"

हुरमतसिंह ने उत्तर दिया—"आप जानते हैं कि ब्राह्मण हमारे मांस-

मदिरा-पान में सहयोग नहीं कर सकते। आपके यहाँ भी कुछ चलती है ?"

धीर बोला—"नहीं महाराज।"

किशुन ने ख़ूब हँसकर कहा—"यों ही थोड़ी-थोड़ी छिपे लुके। मैं ख़ूब जानता हूँ। परंतु यहाँ उसका सेवन करनेवाले तो सब क्षत्रिय ही होंगे। ब्राह्मण के सामने न पीना चाहिए।"

इस पर थोड़ी देर तक दिल्लगी-मज़ाक होता रहा। इतने में खंगार-सरदार और सैनिकों के दल-के-दल आ-आकर इकट्ठे होने लगे। सब हथियारबंद और सजे हुए थे। बाँके-तिरछे, चौड़े-चकले और जवानी की उमंगों में छितराते हुए।

पृथ्वीराज चौहान को अपने समय के इन्हीं खंगारों के पूर्वजों का गर्व था।

धीर सुसज्जित खंगारों को देखकर दंग रह गया और उसका कलेजा हाथ-भर नीचे धसक गया। सोहनपाल को अकेले में ले जाकर बोला—"खंगार बहुत संख्या में आए हैं और सब हथियारबंद हैं। कहीं दिवाकर तलघर में से छूटकर न निकल भागे और ख़बर फैलाकर हम सबका सर्वनाश कर दे।"

सोहनपाल ने दृढ़ता के साथ कहा—"प्रधानजी, आज हम केवल मारने के ही लिये थोड़े आए हैं, मरने के लिये भी आए हैं। विजय आसानी से प्राप्त न होगी, यह हम पहले ही से जानते हैं। अब तो विंध्यवासिनी का नाम लीजिए और जितनी सतर्कता से काम लेते बने, उतनी सतर्कता के साथ काम करिए।"

धीर ने कहा—"अग्निदत्त आ जाता, तो अच्छा होता। वह इनमें से अधिकांश की प्रकृति से परिचित है। इन सबको किसी उलझन में डालकर इनका ध्यान फेरने की आवश्यकता है।"

इतने में हरी चंदेल और इब्नकरीम सोहनपाल के पास आते दिख-

लाई पड़े। इब्नकरीम ने कहा—"आपको महाराज याद कर रहे हैं।"

इस पर सब-के-सब हुरमतसिंह के पास पहुँचे।

हुरमतसिंह ने मुस्किराकर कहा—"हमारे यहाँ महोत्सव करने के पहले दूल्हा का टीका करने और पान खिलाने की चाल है। हम सब बड़ी देर से प्यासे बैठे हैं। यह रीति पूरी हो ले, तो हम कटोरों का आवाहन करें, तब तक आपके बुंदेले आए जाते हैं।"

सोहनपाल की आँख में मानो यमराज आ बैठे। परंतु उसने कोप का कोई लक्षण प्रकट नहीं किया।

धीर तुरंत बोला—"हम लोगों को इसका स्मरण ही न रहा था। वह मैं अभी करता हूँ।"

किशुन बोला—"आप नहीं, सोहनपालजी करेंगे। लड़की का बाप यह रीति पूरी करता है।"

धीर ने हाथ जोड़कर कहा—"बुंदेलों में ऐसी चाल नहीं है। बुंदेलों की ओर से उनका पुरोहित या प्रधान इस रस्म को करता है। पुरोहितजी तो पेट के दर्द का बहाना लेकर पीठ दिखा गए हैं, मैं इस रस्म को पूरा करने के लिये उपस्थित हूँ।"

"ठीक है, ठीक है।" हुरमतसिंह ने कहा—"बुंदेले कुछ हमारी रीति बर्तेंगे और कुछ अपनी। इसमें हमारा कोई अपमान नहीं है किशुन भैया।"

किशुन भैया का अर्द्ध-जाग्रत् अभिमान फिर सो गया।

धीर ने रस्म पूरी की। सोहनपाल ने बड़ी कठिनाई से इस क्रिया को सहन किया, परंतु मन में कहा—"धीर ने बचा लिया, नहीं तो इसी समय शायद तलवार ठनक जाती।"

इसके बाद खंगारों ने मदिरा-पान आरंभ किया। पहले थोड़ा, फिर अधिक-अधिक। सोहनपाल की मंडली को भी निमंत्रित किया, परंतु उन

लोगों ने धान्य ग्रहण न करनेवाली उसी प्रथा की ओट में अपनी रक्षा करने की चेष्टा की। इस पर दबाव-पर-दबाव पड़ने लगा। "एक-एक कटोरा तो पीना ही पड़ेगा।" की पुकारें चारो ओर से आने लगीं।

सोहनपाल ने दृढ़ता के साथ उत्तर दिया—"जब हमारे सब बुंदेला भाई इकट्ठे हो जायँगे, तब जैसी कुछ बनेगी, आज्ञा पालन हो जायगी।"

पियक्कड़ों के लिये यह वचन काफ़ी था, क्योंकि जब कई कटोरों से अधिक उनके गले से नीचे उतर जाती है, तब उनको अपने सिवा संसार में और किसी की अपेक्षा नहीं रहती।

इतने में गायन-वादन का सामान इकट्ठा हुआ। वीणा, तंबूरा, मृदंग, झाँझ इत्यादि वाद्य आए और नर्तकियाँ तथा गायिकाएँ उपस्थित हुईं।

अभी सूर्यास्त नहीं हुआ था कि वीणाओं द्वारा विविध आलाप बजाया जाने लगा और मधुर कंठ वाद्यों की सहायता में तल्लीन होने लगे। उधर शिष्टाचार और शासन ने बिदा ले ली।

एक गवैए ने कहा—"अभी दीपक का समय नहीं आया है। गौरी बजाई जावे।"

किशुन झल्लाकर बोला—"तुम बेवक़ूफ़ हो। अभी दीपक का समय नहीं आया है, तो आया जाता है। बजने दो। हमारा कटोरा समय-कुसमय परखने लिये नहीं दौड़ रहा है।"

इस पर सब हँसने लगे।

सोहनपाल ने धीर से कहा—"शकुन अच्छा है। दीपक रण का राग है।

धीर कुछ नहीं बोला। वह किसी की प्रतीक्षा में इधर-उधर अपनी व्यग्र आँखों को दौड़ा रहा था। दोनो घूमते-घूमते दूसरी ओर चले गए।

सशस्त्र इब्नकरीम और हरी चंदेल कुछ दूरी पर खड़े गाना सुन रहे थे। अर्जुन छिपाकर कहीं से दो-चार कटोरे ढाल आया था।

बोला—"इन प तुरियन के पौंदन पै एक डंडा न मार आओ, दारी अच्छी तरा तें नईं नचती ऊपइं मटकती फिरतीं और जे मारे मिरदंगिया तो देखौ कैसी मुड़ो मचमचा रए हैं, जैसे इनके बाप मर गए होएँ ।"

हरी ने अर्जुन के कंधे को ज़ोर से हिलाकर कहा—"क्यों बे, यहाँ क्या मरने आया है ? उफ़्, मुँह से बू आ रही है ! तू भी सुरा-पान कर आया है । यदि एक बात भी मुँह से निकली, तो कलेजे में कटार भोंक दूँगा ।"

अर्जुन बोला—"दाउजू, मैं जो बैठा । रामदुहाई, जो मैं कछू कओं । मैं जो बैठो ।"

अर्जुन वहीं बैठ गया । परंतु जैसे-जैसे पखावजी अपना सिर हिलाता गया, अर्जुन का भी सिर हिलता गया ।

हरी चंदेल और इब्नकरीम दूसरी जगह तमाशा देखने के लिये चले गए । अर्जुन वहीं पर बैठा रहा ।

गाने-बजाने और नाच-तमाशों की भरमार का, कटोरों की खटाखट और कंठ के स्वरों का ऐसा शोर-गुल उठा कि दिशाएँ काँप उठीं ।

मतवाले खंगारों पर से सूर्य देवता ने अपनी किरणें हटाकर खींच लीं । अभी प्रकाश बाक़ी था, परंतु सहस्रों मशालें जलाकर खंभों में बाँध दी गईं, जो जुगनुओं की तरह सूर्य के अवशिष्ट उद्योत में चमकने लगीं । चंद्रमा भी निकल आया ।

इतने में अग्निदत्त छिपता हुआ-सा आया । कवच, झिलम, खड्ग इत्यादि से सुसज्जित । गले में रत्न-जटित स्वर्ण-हार । परंतु अब वह सौंदर्य मुख पर न था । चिंता की रेखाओं ने चिकने गालों पर लीकें कर दी थीं, और कमल-चक्षुओं के नीचे गड्ढे हो गए थे । जैसे किसी फटे चित्र पर नया रंग किया जावे, इस तरह से उसका वेश मालूम होता था। सूर्य गया, परंतु उसका प्रकाश अवशिष्ट था, उसी तरह अग्निदत्त के रूप की कुछ छाया बाक़ी थी ।

अग्निदत्त ने अर्जुन के पास आकर कहा—"इधर आओ, एक ज़रूरी काम है।"

अर्जुन इस समय राग-वाद्य में मस्त था और किसी की भी शायद न सुनता, परंतु अग्निदत्त के पूर्व-पुरुषार्थ और उसके चमत्कार-पूर्ण अपयश का आतंक उसके मन पर था, इसलिये सुनना पड़ा, और इसलिये भी कि अग्निदत्त ने उसके उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही हाथ पकड़कर उसको उठा लिया, और उठाकर एक ओर ले गया। उससे बोला—"इस उत्सव के बाद मैं ही यहाँ का प्रधान मंत्री होऊँगा। इस विवाह का आयोजन मैंने ही किया है।"

अर्जुन कुछ अकचकाकर बोला—"सो मैं का करौं?"

मैं एक पत्र देता हूँ। मेरे पिता को इसी समय दे आओ। यह पत्र किसी और के हाथ में न जाने पावे। मेरा घर मालूम है? न मालूम हो, तो पूछ लेना। शीघ्र मालूम हो जायगा।"

"जानत हौं, पै जो बता दो कैंका लिखोई पाती में?"

"तेरा सिर लिखा है। मैं समझता था कि तेरी खोपड़ी के भीतर कुछ बुद्धि है, परंतु बिलकुल शून्य जान पड़ती है। यह ले जीवन-भर के लिये निहाल करता हूँ।" गले से हार तोड़कर अग्निदत्त ने अर्जुन के ऊपर डाल दिया और एक चिट्ठी जेब से निकालकर उसके हाथ में दी।

उधर कटोरों की सार्वभौम खटखटाहट और बढ़ी।

अर्जुन ने चिट्ठी ले ली, और हार वहीं पर डाल दिया। बोला—"मोए ईको का करनैं। मैं चिट्ठी पांडेजू खों दएँ आउत। अपुन अपनो कंठा उठा लो।" और अर्जुन एक स्थानिक होली गाता हुआ वहाँ से चल दिया।

जब तक अर्जुन आँख की ओट नहीं हो गया, अग्निदत्त उसकी ओर देखता रहा।

अग्निदत्त ने हार वहीं पड़ा रहने दिया, और वहाँ से तुरंत दूसरी ओर चल दिया। जिन कुछ लोगों ने अग्निदत्त को पहचाना, उन्होंने उसको कटोरे की आरसी में देखा और पीते-पीते कुछ अट्ट-सट्ट बकने लगे। धीरे-धीरे अग्निदत्त का नाम उस उत्सव में फैल गया।

इतने में उत्तर-पूर्व की ओर से बुंदेलों के ठट्ठ-के-ठट्ठ क़तार बाँधे, सुसज्जित मानो अगणित हों, आए। और, उन्होंने मार्के के सब स्थानों से उस मतावली मंडली को घेर लिया। कोलाहल और भी बढ़ा।

नाग ने इतनी सुरा ढाली कि फिर और पीने के लिये जैसे ही कटोरा उठाया कि हाथ से छूट गया और उसका सिर तकिए के सहारे जा पड़ा।

एक कंठ से अग्निदत्त का नाम सुनकर अचेत अवस्था में बोला—"अग्निदत्त क्यों आया? मारो सुअर को।"

और भी अनेक कंठों से मारो-मारो की आवाज़ निकली। परंतु समझा कोई नहीं कि किसको। बुंदेलों तक यह मारो-मारो की आवाज़ पहुँची।

अग्निदत्त पुण्यपाल के पास पहुँचा।

अग्निदत्त ने कहा—"अभी नहीं। एक घड़ी ठहर जाओ। मैं रणचंडी को पहली भेंट चढ़ाऊँगा। ज़रा और धैर्य धारण करो। जिस समय पुकारूँ, चारो ओर से धर दबाना। एक भी न बचने पावे। आज खंगार का जाया पृथ्वी पर न बचे। अच्छा, अब बिदा माँगता हूँ। बहुत दिनों आपके सत्कार से उपकृत हुआ हूँ। आज अपने और बुंदेलों के बैर का प्रतीकार करता हूँ। प्रणाम।"

सोहनपाल, सहजेंद्र, धीर और दलपति भी पास थे। उन सबोंने धीरे से प्रणाम किया।

धीर ने सोहनपाल से कहा—"यह पुच्छल तारा है। खंगारों का सर्वनाश करके तिरोहित हो जायगा। देखो, कैसी उतावली के साथ उन लोगों में घुसा चला जा रहा है।"

सोहनपाल बोला—"अब हम सब लोग बिलकुल तैयार हैं। अग्निदत्त का संकेत पाते ही टूट पड़ेंगे।"

धीर ने कहा—"धीरे-धीरे बढ़ते चलिए।"

इनके ठीक पीछे संधि-प्रकाश के धुँधले उजेले में पहाड़ी के नीचे हेमवती और उसकी मा पाँच सौ बुंदेलों से आवृत घोड़ों पर सशस्त्र सवार थीं। मानो बुंदेलों की रणचंडी युद्ध-संचालित करने के लिये अवतरित हुई हो।

अग्निदत्त खंगारों के भीतर प्रवेश नहीं कर पाया था कि अर्द्ध-जाग्रत् हुरमतसिंह ने कहा—"कोलाहल बहुत हो रहा है, मालूम होता है, बुंदेले आ गए हैं।"

किशुन ने कहा—"तब बुलाओ सालों को यहाँ। दो-चार कटोरों में उनके पुरखों को तार दें।" एक खंगार, जो बहुत पी लेने पर भी अचेत नहीं हुआ था और पीता ही चला जाता था, बोला—"मै बुलाता हूँ।"

भर्राए हुए गले से लगा चिल्लाने—"सोहनपालजी होतू, सोहनपालजी होतू।"

कुछ क्षण बाद सामने अग्निदत्त दिखलाई पड़ा। अग्निदत्त को देखकर हरी चंदेल और इब्नकरीम भी शराब की बदबू से बचने के लिये नाक पर कपड़ा रक्खे हुए, जैसे धूल से बचने के लिये रक्खे हों, पास आ गए।

हुरमतसिंह अग्निदत्त को पहचानकर बोला—"तुम्हारा यहाँ क्या काम? क्या कटोरा चलने लगा है? यदि पियो, तो इस समय हम तुमको माफ़ रक्खेंगे।"

अग्निदत्त—"जिसके लिये प्राण-दंड की घोषणा हो चुकी है, वह कटोरे में डूबकर कैसे प्राण बचा सकता है?"

गोपीचंद—"फिर यहाँ काहे को आया?"

राजधर—"आज उत्सव है, नहीं तो कान पकड़कर सौ बार उठवाता-बैठवाता और फिर पाँच कोड़े लगवाता। नीच कहीं का।"

अग्निदत्त—"जी भरकर बक लो। क्योंकि यही तुम्हारी अंतिम जल्पना होगी।"

इतने में धीर आया।

बारीकी के साथ चारो ओर देखकर बोला—"क्या क्षत्रिय कभी ऐसा मदिरा-पान करते हैं?"

नाग ने तकिया के सहारे सिर रक्खे हुए कहा—"मारो, सुअर अग्नि-दत्तवा को।" अग्निदत्त ने यमदूत की-सी हँसी हँसकर कहा—"वह देखिए खंगारों का जौहर, खंगारों की भविष्य-आशा किस गौरव के साथ ताकिया पर औंधी पड़ी है!"

इस अवसर पर सोहनपाल और पुण्यपाल भी आ गए।

सोहनपाल ने कहा—"मुझे कौन पुकार रहा था?"

हुरमतसिंह ने उत्तर दिया—"अब तो आपके लेठैत यानी बुंदेले आ गए होंगे? थोड़ी-सी हम लोगों के साथ पी लीजिए, फिर जिसको जितनी भूख हो, भोजन करे।"

और नाग को हिलाकर बोला—"तुम्हारे संबंधी सोहनपाल खड़े हैं। ज़रा जागो भाई।"

धीर ने कहा—"कौन किसका संबंधी?"

हुरमतसिंह को कुछ चेत आया। बोला—"खंगारों के संबंधी बुंदेले। नाग का सोहनपाल।"

सोहनपाल ने बात काटकर कड़क के साथ कहा—"नीच खंगारों के साथ बुंदेलों का संबंध! मद्यपों के साथ क्षत्रियों का संयोग!"

नाग की कुछ आँखें खुलीं।

बोला—"बुंदेले कौन हैं? गहरवार और खंगार की........"

पुण्यपाल ने कहा—"जीभ के टुकड़े हो जायँगे, यदि अपवित्र मिथ्या से बुंदेलों को कलुषित किया। ख़बरदार!"

जो अचेत थे, वे कुछ सचेत हो गए। कटोरे हाथों से छूट गए और

खंगार गिरते-उठते आँखें मलते इकट्ठे होने लगे। नाग खड़ा हो गया। आँखें नशे में चूर थीं।

नाग बोला—"यहाँ अग्निदत्त क्यों आया?"

अग्निदत्त—"अग्निदत्त नहीं आया है, तुम्हारा यम आया है। ब्राह्मण के अपमान का जो फल होता है, वह तुमको अभी मिलता है।"

राजधर—"और पातकी ब्राह्मण के लिये जो कुछ होना चाहिए, वह भी अभी होता है।"

इब्नकरीम और हरी चंदेल कुछ क्षण तक इस गोलमाल को सुरा का जंजाल समझते रहे, और भी अनेक लोगों ने यही समझा था। परंतु अब उनकी समझ में कुछ और आया। तो भी उनको पूरा विश्वास न था कि कोई पूर्व-रचित दुर्घटना घटनेवाली है।"

अग्निदत्त बोला—"ब्राह्मण ने एक बार नहीं, कई बार वैरी का संहार किया है।"

फिर नाग को ऐसी ज़ोर की लात मारी कि वह गिर पड़ा। अग्निदत्त ने लात मारते हुए कहा—"यह हुआ अपमान का प्रायश्चित्त और यह है उसका प्रतिशोध।" तलवार उठाकर धराशायी नाग को मारना ही चाहता था कि इब्नकरीम समस्या समझकर फुर्ती के साथ बीच में आ कूदा। बोला—"आज खंगारों के नमक से बेबाक़ होऊँगा। कौन बुंदेला सामने आता है, आवे?" अग्निदत्त का वार रुक गया।"

"मैं" और "मैं" की पुकारें बुंदेला कंठों से निकल पड़ीं।"

पुण्यपाल गरजकर बोला—"है कोई खंगार, जो मेरा मुक़ाबला करे? है किसी की छाती में इतना लोहू?"

खंगार वीर थे। अर्द्ध-चेतन और मदांध होने पर भी चारो ओर से खंगार-कंठों ने इस चुनौती को स्वीकार किया। ऊँचे पूरे इब्नकरीम ने अपने से ठिगने अग्निदत्त पर खड्ग का भरपूर वार किया। छरेरा असि-विद्या-निपुण अग्निदत्त बिलकुल झुककर दाईं बग़ल कर गया। करीम का

खड्ग बिजली की तरह पास खड़े हुए धीर पर टूटा । वह मर्माहत होकर गिर पड़ा । सोहनपाल ने इब्नकरीम के सिर पर अपनी अचूक तलवार चलाई । करीम दो होकर हुरमतसिंह के पैरों के पास जा गिरा । इतने में सहजेंद्र आ गया । सीधा नाग पर जा लपका । नाग ने भी तलवार उठाई । उसकी रक्षा के लिये हरी चंदेल आ गया ।

सहजेंद्र ने कहा—"हट जाओ । चंदेल पर वार नहीं करूँगा ।"

"मैं खंगार-सेवक हूँ । चंदेले को भूल जाओ ।"

नाग ने सहजेंद्र पर वार किया । अग्निदत्त ने बचा लिया । राजधर ने अग्निदत्त पर वार किया । वे दोनो उलझ गए । पर राजधर के अंग शिथिल थे, इसलिये अग्निदत्त ने उसको काट दिया । अकेले सहजेंद्र पर हरी चंदेल के दृढ़ और नाग के कुछ ढीले वार होने लगे । इतने में अर्जुन हाफता हुआ आया । वह हक्का-बक्का होकर अपनी तलवार खींचना भूल गया । गायक, वादक और नर्तक सब भाग गए थे, परंतु अपने हथियार छोड़ गए थे । अर्जुन ने एक मृदंग वहीं पास से उठाकर सहजेंद्र के ऊपर फेका । वह चूककर सोहनपाल के सिर में लगा । सोहनपाल चोट खाकर गिरा था कि हुरमतसिंह उसको मारने के लिये दौड़ा । पुण्य-पाल ने उसको रोक लिया और दूसरे वार में उसको समाप्त कर दिया । पुण्यपाल सहजेंद्र की सहायता के लिये चंदेल पर दौड़ा ।

अर्जुन ने एक वीणा उठाकर बड़े ज़ोर से पुण्यपाल के सिर पर मारी । वीणा के मिले हुए तारों में से एक झनकार निकली और उसका तूँबा फटकर टुकड़े-टुकड़े हो गया । इधर पुण्यपाल के वार से चंदेल आहत होकर गिर पड़ा और वह स्वामि-भक्त आत्मा स्वर्ग चली गई । अर्जुन चंदेल के आहत शरीर से लिपट गया । सोहनपाल मृदंग की चोट खाकर धीर के पास गिरा था । धीर अभी मरा नहीं था । छटपटा रहा था ।

बोला—"महाराज ।"

सोहनपाल समझ गया कि मुझे बुला रहा है।

सोहनपाल ने कहा—"भैया धीर।"

धीर—"न, सेवक हूँ। अपने को बचाए रखिएगा। कुंडार की सदा रक्षा करिएगा। धर्म का पालन करिएगा। दिवाकर को आपकी गोद में छोड़ता हूँ। उसकी मूर्खता को क्षमा मिले।"

सोहनपाल के आँसू आ गए। बोला—"मेरे प्यारे धीर, और क्या कहना है? यदि जीवित रहा, तो पूरा करूँगा।"

धीर—"बुंदेलों का गौरव कभी कम न हो, और आज की-सी घटना की आवश्यकता कभी न पड़े। उसकी मा छुटपन में मर गई थी। बेटा, आशीर्वाद। मैं च...ला...राम...रा...म।"

थोड़ी ही देर में धीर का प्राण चला गया।

उधर सहजेंद्र ने जो एक भरपूर हाथ नाग के ऊपर छोड़ा, तो भर-भराकर गिर पड़ा। सहजेंद्र ने कहा—"अमावस्या की रात का प्रतीकार।"

इस समय चारो ओर खंगार और बुंदेले आपस में गुँथ गए थे। बुंदेलों के हाथ में बाज़ी थी, इसलिये खंगारों ने पार न पाया। अधिकांश वहीं पर मारे गए, भागते हुए पछियाकर मार डाले गए। एक भागती हुई छोटी टुकड़ी का अग्निदत्त ने पीछा किया। पुण्यपाल और सहजेंद्र भी कुछ के पीछे-पीछे लड़ते-भिड़ते गए। फिर ऐसा गड़बड़ हुआ कि विप्लव की आँधी में अंधकार-सा छा गया, इस अंधकार की छाया में अर्जुन देर तक चंदेल के आहत शरीर से लिपटकर रोता रहा, जब मैदान ख़ाली हुआ, तब उसकी लाश को उठाकर चल दिया। उसके अंतिम वाक्य ये थे—"अब कौन के लानें जोनें? जब मालिकाई न रए, तब खंगार होरी में जाएँ, चाए बुंदेला। मोरा का परी? अब मेंईं कोनउआ बावरी तक हो।"

उधर क़िले में भी बुंदेलों के एक दल का प्रवेश हो गया। जिसको

उन्होंने पीछे छिपाकर इसी प्रयोजन से रख छोड़ा था। उन्होंने पहुँचकर, ज़ोर से चिल्लाकर जय-जयकार की।

"जय विंध्यवासिनी देवी की।"

"जय पंचम बुंदेला की।"

"जय बुंदेलों की।" इत्यादि।

क़िले के बाहर जो बुंदेले थे, उन्होंने उत्तर दिया—"जय बुंदेलों की।"

पहाड़ी के पास खड़ी बुंदेला-सेना, जो हेमवती और उसकी मा की रक्षा कर रही थी, उसने भी पुकार लगाई, परंतु वह वहाँ से हटी नहीं।

सोहनपाल की चोट मामूली थी। वह खड़ा हो गया। इतने में कुछ बुंदेले सैनिक आ गए। उन्होंने कहा—

"सोहनपाल महाराज की जय।"

सोहनपाल ने उनको मुश्किल से चुप करके कहा—"यह मेरे श्रद्धास्पद प्रधान धीर का शव है। आदर के साथ इसको उठाओ। और सम्मान के साथ क़िले में ले चलो। धीर के बिना हम कहाँ होते, यह नहीं कहा जा सकता। इनकी अंत्येष्टि-क्रिया कल होगी। सब लोगों से कह दो कि मेरा आदेश है कि खंगार-शवों की अंत्येष्टि भी प्रतिष्ठा के साथ की जावे। हमारा वैर जीतों के साथ था, मरों के साथ नहीं, और देखो, कोई लूट-पाट न मचावे।"

यह कहकर सोहनपाल उस स्थान पर गया, जहाँ हेमवती और उसकी मा थीं।

संपत्ति की रक्षा

जब अर्जुन चिट्ठी लेकर गया, उसको विष्णुदत्त घर पर मिल गया था। बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए वह गाना-बजाना सुनने के लिये लौट पड़ा था। परंतु लौटकर उसने जो कुछ सुना और देखा, वह पहले ही कहा जा चुका है।

विष्णुदत्त ने चिट्ठी पढ़ी। उसमें लिखा था—

"पूज्य देव,

आज बड़ा भारी तूफ़ान उठनेवाला है। मैंने कुंडार से जाते समय श्रीचरणों में जो पत्र भेजा था, उसमें लिखी बात का स्मरण कराता हूँ। अपनी और तारा की रक्षा का तुरंत प्रबंध करिए। मा गईं। कल मालूम हुआ था। आज मैं भी चला। आपको विदित हो जायगा। अपराध क्षमा किए जायँ। तारा सुखी रहे।

अयोग्य अग्निदत्त।"

चिट्ठी पढ़कर विष्णुदत्त ने तारा को बुलाया और उससे कहा—"यह पत्र उसका अभी-अभी आया है। पत्रवाहक पत्र देकर ऐसा भागा कि यह भी न पूछ पाया कि वह इस समय कहाँ है। न-मालूम आज क्या होने-वाला है?"

पत्र पढ़कर तारा को सुनाया।

तारा बोली—"दो जनों के न आने का निषेध कुंडार में प्रवेश करने के विषय में है। एक का तो अभी-अभी सुना है कि देवरा में क़ैद कर दिया गया है और दूसरे भइया हैं, जिनकी चिट्ठी आपने सुनाई है। इसके साथ क्या होनेवाला है? यह क्या कुंडार आना चाहते हैं? यदि वह यहाँ आएँगे, तो खंगार उनको छोड़ेंगे नहीं। क्या किया जाय काकाजू?"

"विधाता ने जो भाग्य में लिखा है, सो होगा।" विष्णुदत्त ने आह खींचकर कहा—"कोई उपद्रव होनेवाला है। कोई विभीषिका खड़ी होनेवाली है। वह यहाँ आज आएगा। हठी और मानी है। अथवा उसके ऊपर कोई और बड़ा संकट आनेवाला है, जिसे वह जान गया है और जिसके सामने से वह हटेगा नहीं। उसको हानि पहुँचेगी और साथ ही हमारे ऊपर भी विपद् का कोई वज्र टूटेगा। मैं सोचता था कि वह बुंदेलों के साथ अपने अपराधों को क्षमा कराने कुंडार के इतने निकट तक आया है, बीती बातों को बिसार दिया होगा, परंतु इस पत्र से जान पड़ता है कि वह किसी से आज कहीं-न-कहीं लड़ पड़ेगा, दंडित होगा और राज-कोप में अपने कुटुंब को भी भस्म करा देगा।"

तारा ने घबराकर कहा—"वह कहाँ हैं? देवरा में होंगे?"

"कुछ ठीक नहीं।" विष्णुदत्त ने उत्तर दिया—"मैंने सुना है कि देवरा की गढ़ी ख़ाली हो गई, केवल दिवाकर किसी तलघरे में बंद है?"

तारा ने सहसा प्रश्न किया—"क्यों?"

विष्णुदत्त ने कहा—"कोई कुछ कहता है और कोई कुछ। अधिक लोग कहते हैं कि धीर प्रधान का लड़का पागल हो गया है, इसलिये उसको उत्सव में आने से रोकने के लिये बंद कर दिया है। धीर चालाक मनुष्य है। उसने सोचा होगा कि उत्सव में जायगा, तो राजा या मंत्री क्रुद्ध होकर कहीं पकड़ न लें, इसलिये वहीं रोक दिया है।"

तारा विस्मित होकर बोली—"परंतु तलघरे में क्यों बंद कर दिया? यहाँ आने की प्रबल इच्छा प्रकट की होगी, इसलिये धीर काका ने इस उपाय का अवलंबन किया होगा, और कदाचित् पागलपना सवार हो गया हो।"

विष्णुदत्त ने भयभीत होकर कहा—"हमको इन बातों से कुछ मतलब नहीं तारा। कहाँ का धीर और कहाँ का दिवाकर! कोई आफ़त आनेवाली है। यहाँ से चलो।" फिर सोचकर कहा—"नहीं, ज़रा ठहरो। रत्नादि

को सबसे नीचे के तलघरे में पहले रख दूँ। फिर बाहर कहीं चलें। यदि उपद्रव हुआ, तो शांत होने पर लौट आवेंगे। यदि न हुआ, तो कोई हानि नहीं।"

एक क्षण ठहरकर फिर बोला—"परंतु बाहर नहीं जाना चाहिए। कोई जाते हुए देख लेगा, तो घर-बार को सूना समझकर न-मालूम क्या सोचे और करे। तारा, आओ भीतर से किवाड़ बंद करके सबसे नीचे के तल-घरे में छिप जावें। आओ, देर मत करो।" तारा के सुंदर, सरल मुख पर एक तेजस्विता दिखलाई पड़ी, जो कभी-कभी बँधे पानी में विद्युत् के प्रतिबिंब पड़ने से दिखलाई पड़ती है। बोली—"मैं भीतर नहीं जाऊँगी। अभी देवरा जाती हूँ।"

विष्णुदत्त ने कुपित होकर कहा—"देवरा! क्यों?"

तारा ने उत्तर दिया—"आपके पास जो चिट्ठी आई है, उसके कारण।"

विष्णुदत्त ने अधिकार दिखलाते हुए कहा—"यह नहीं हो सकता। तू अबोध बालिका है। अकेली कहाँ जावेगी?"

तारा ने दृढ़ता के साथ कहा—"तीन महीने व्रत-साधन के लिये इतनी दूर शक्ति-भैरव जाया करती थी। भैया से घुड़सवारी और असि-विद्या सीखी है। वह सब किस दिन काम आवेगी? मैं जाती हूँ, आप अपनी संपत्ति की रक्षा करिए।"

उत्सव-भूमि से बढ़ते हुए कोलाहल का शब्द विष्णुदत्त ने सुना।

बोला—"भाई-बहन दोनो हठी। मेरे लिये दोनो अनंत दुःख समान। देख, किसी उपद्रव के होने का शब्द सुनाई पड़ रहा है। बाहर मत जा, मेरे साथ चल।"

तारा की आँखें चढ़ गईं। बोली—"मैं किसी को नहीं डरती। मैं जाऊँगी। मुझे यदि आप रोकेंगे, तो अभी प्राण दे दूँगी। घोड़े को ठीक करके अभी जाती हूँ।" तारा जल्दी से दूसरी ओर चली गई।

विष्णुदत्त ने अपने आप कहा—"लड़का विपद् में है और यह भी संकट के मुँह में जा रही है! क्या बुढ़ापे में यही बदा था?"

इतने में उत्सव-स्थान से और भी बढ़े हुए कोलाहल का शब्द सुनाई पड़ा।

विष्णुदत्त कुछ समय तक ज्ञान-शून्य हतचेष्ट होकर वहीं खड़ा रहा और कोलाहल का शब्द बढ़ता रहा।

विष्णुदत्त ने माथा ठोंककर कहा—"कहीं पुत्र-पुत्री दोनो से हाथ धोया, तो मेरा क्या होगा? भगवान् मैं क्या करूँ?"

थोड़ी ही देर में मकान के सामने से सरपट घोड़े की टापों का शब्द गुज़रता हुआ सुनाई पड़ा।

"तारा गई!" विष्णुदत्त ने कहा—"मैं बड़ा अभागा हूँ। अब मेरा यहाँ पर कोई नहीं है। मैं अकेला ही रह गया।"

उत्सव-स्थल से चीत्कारों के सुनने का भ्रम विष्णुदत्त को हुआ।

विष्णुदत्त ने अपने किवाड़ बंद कर लिए, और तलघरे में रत्नादि को सँभालने के लिये किसी के लिये कुछ बड़बड़ाता हुआ जा उतरा।

प्रतिहिंसा

गोपीचंद मंत्री और किशुन खंगार कुछ खंगारों के साथ भागे थे। सहजेंद्र और पुण्यपाल ने पीछा किया। एक जगह दोनो जमकर लड़े। परंतु पहली हार और पहली जीत के समान हराने-जितानेवाला और कुछ नहीं हो सकता। देर तक मुक़ाबला किया, परंतु मारे गए।

इसी बीच में अग्निदत्त पागल कुत्ते की तरह लड़ता-भिड़ता, काटता-चीरता हुआ, थोड़ा-सा घायल और बहुत लोहू-लुहान कुंडार के निकटवर्ती कुसुम के एक खेत के पास तक एक वैरी को खदेड़ता हुआ ले गया। वहाँ पर उसने उसको काट गिराया, और किसी को पास न देखकर शिकार की तलाश में आँखें दौड़ाने लगा कि खेत में से किसी की आह का शब्द कान में आकर पड़ा। वह इस समय आहत-अनाहत किसी भेद की शंका में न था, इसलिये किसी छिपे वैरी को पाने की आशा में खेत के उस स्थान पर गया, जहाँ से शब्द आया था।

खेत कुसुम के पौधों से आच्छादित था। चाँदनी छिटक आई थी। पास जाकर अग्निदत्त ने देखा कि एक स्त्री पड़ी हुई कराह रही है। आभूषणों से आच्छादित थी।

अग्निदत्त ने पूछा—"कौन हो?"

कराहते हुए बोली—"मुझे मारो मत, मेरे आभूषण ले लो। मैं गर्भवती हूँ, और मेरे स्वामी न-जाने कहाँ हैं।"

इतने में थोड़ी दूर पर कुछ योद्धाओं के लड़ने का शोर हुआ।

स्त्री बोली—"मुझे छोड़ दो, मैं बिनती करती हूँ।"

अग्निदत्त ने इस कंठ का स्वर पहले भी कभी सुना था। परंतु उसको विश्वास नहीं हुआ।

बोला—"मैं स्त्रियों को नहीं मारता, परंतु बतलाओ, तुम कौन हो ?"

ज़रा दूर लड़नेवाले योद्धा और पास आ गए। तीन खंगार थे और पाँच बुंदेले। एक उनमें से दलपतिसिंह था।

खंगारों ने दो बुंदेलों को समाप्त कर दिया, परंतु वे भी शीघ्र मारे गए—एक आहत होकर उस स्त्री के क़रीब आकर गिरा। तीन बुंदेले अपने मृत साथियों की लाशों को एक जगह उठाकर धरने लगे।

स्त्री ने कहा—"मैं विनय करती हूँ, मुझको बचा दो।"

अग्निदत्त ने झुककर स्त्री को देखा। चाँदनी थी। पहचानने में कोई संदेह न रहा।

शरीर में ऐसी सनसनी फैली, जैसे बिच्छुओं ने काट खाया हो।

बोला—"मानवती।" गला बिलकुल सूख गया था।

वह स्त्री बोली—"मैं मानवती नहीं हूँ अथवा हूँ, पर मुझको मारो मत, सब गहने ले लो। ओफ़् पेट दर्द कर रहा है। क्या करूँ ? हाय ! क्या करूँ ?"

अग्निदत्त शिथिल-कार्य होकर बैठ गया। खड्ग हाथ से छूटकर वहीं गिर गया।

क़िले से आवाज़ आई—"बुंदेलों की जय।"

अग्निदत्त ने कहा—"मानवती, मैं अग्निदत्त हूँ। पापी अग्निदत्त, तुमको इस दुर्दशा को पहुँचानेवाला अग्निदत्त। हाँ ! मुझे कोई मार डालनेवाला भी नहीं मिलता !"

वह स्त्री मानवती थी। कराहकर बोली—"पाँडे, तुम पाँडे हो ?"

अग्निदत्त मूर्च्छित-सा हो गया था, परंतु अचेत न था। बिलकुल फटे हुए गले से बोला—"हाँ पाँडे, जो था। अग्निदत्त राक्षस, जो है। मानवती, मुझे इस खड्ग से मार डालो। मैं खंगार के हाथ से मरना

चाहता हूँ। मारो। यह खड्ग है और यह। गर्दन। चाहे तुरंत मार डालो, चाहे टुकड़े करके, परंतु मारो।"

मानवती और ज़ोर से कराही। बोली—"तुम पाँडे नहीं हो। पाँडे ऐसा नहीं कर सकते थे।"

अग्निदत्त ऐसे स्वर में बोला, जैसा फूटे घड़े से निकलता है—"मैं वही पापी राक्षस हूँ—सर्वद्रोही, सर्वहंता। मुझे मारो। भिक्षा माँगता हूँ। मेरे हृदय में इतनी शक्ति नहीं है कि आत्मघात कर सकूँ।"

मानवती ने कहा—"तुमने ऐसा क्यों किया पाँडे?" और बड़े वेग से कराही।

एक क्षण में उसके पेट की पीड़ा बहुत बढ़ गई। अग्निदत्त को मालूम हो गया कि मानवती बच्चा जननेवाली है।

उसने अपना कवच और कपड़े उतारकर बिछा दिए। केवल धोती पहने रहा। रोना चाहता था, परंतु हृदय में आँसू की एक बूँद भी न थी। उसी समय मानवती ने एक बच्चा जना, जिसको अग्निदत्त ने अपने पहले से बिछाए हुए कवच और कपड़ों पर लिटा दिया। मानवती अचेत हो गई, बच्चा रोने लगा।

इसी समय दलपतिसिंह और उसके दो साथी अपने मृत सहवर्गियों को एक ओर रखकर बच्चे के रोने की आवाज़ सुनकर वहाँ आ गए। आहत खंगार सैनिक, जो मानवती के पास पड़ा था, कुछ चेत में आकर बोला—"पानी—मुझे मारो मत।"

दलपति ने छिटकी चाँदनी में मानवती के चमकते हुए आभूषणों को देखा, और देखा कि अपने साथियों में से दो को कम कर देने में सहायक होनेवाला एक परपक्ष का अर्द्ध-सचेत सैनिक भी पड़ा हुआ है। अग्निदत्त उघारा बैठा था, इसलिये उसको न पहचाना।

दलपति बोला—"मारो इस खंगार को। उतार लो सब आभूषण इस स्त्री के।"

अग्निदत्त के शरीर में बिजली-सी दौड़ गई और हृदय में बाघ का-सा बल मालूम पड़ा। खड्ग हाथ में लेकर तुरंत खड़ा हो गया। बोला—"घायल को मत मारना और स्त्री को मत छूना। दूसरी जगह जाओ।"

गोरे-साँवले शरीर पर एकाध घाव से रक्त रेखाओं में बहकर फैल गया था। छिटकी हुई चाँदनी में उसका चमकता हुआ खड्ग और दमकता हुआ लोहू-लुहान नंगा शरीर ऐसे मालूम पड़ा, जैसे कोई तारा पृथिवी पर टूटकर गिरा हो।

दलपति ने उसको खड़े होने पर पहचान लिया। बोला—"पाँडे ?"

अग्निदत्त—"मैं ही हूँ। यहाँ से जाओ।"

दलपति—"तुम्हारे कपड़े किसने उतार लिए ?"

अग्निदत्त—"यहाँ से जाओ या निकालूँ ?"

दलपति—"अरे, यह ऐंठ ! किसी ने चपत लगाकर कपड़े छीन लिए हैं और हम पर यह अकड़ ! मैं तो बचूँ, इस जनी के गहने और इस बेईमान सिपाही का प्राण लेकर ही यहाँ से जाऊँगा।" यह कहकर दलपति ज़रा आगे बढ़ा।

अग्निदत्त ने कहा—"ख़बरदार, जो आगे बढ़ा। अभी दो टूक कर दूँगा।" बच्चा रो रहा था।

दलपति ने कहा—"अबे छोकरे, तू किसी का मीत नहीं मालूम होता। अभी-अभी बुंदेलों का था, अब इन गहनों के लिये हमारा शत्रु हो गया। यहाँ से हट जा, नहीं तो एक थप्पड़ में जान ले लूँगा।"

अग्निदत्त ने मानवती से ज़रा हटकर दलपति के दल को लड़ाई के लिये ललकारा। बुंदेले पीछे हटनेवाले न थे। गुँथ गए। परंतु वे बचकर लड़ रहे थे और अग्निदत्त मरने के लिये। वह ऐसे बेतरह लड़ा कि दलपति के दोनो बुंदेले साथी घायल होकर गिर पड़े और दलपति बचा-बचाकर लड़ने लगा। आहत खंगार भी चेतन होकर खड़ा हो गया, और लड़ने लगा।

इतने में इस जगह के शोर को सुनकर और गोपीचंद तथा किशुन का अंत करके आगे-आगे पुण्यपाल और पीछे-पीछे सहजेंद्र आ पहुँचे।

पुण्यपाल ने ललकार कर कहा—"कौन किससे लड़ रहा है ?"

दलपति ने पुण्यपाल को पहचानकर कहा—"दलपतिसिंह, अग्निदत्त और खंगार से।"

पुण्यपाल ने कहा—"अग्निदत्त से ! क्यों ? लड़ाई रोको। अग्निदत्त और खंगार एक साथ। एक तरफ़ !"

"नहीं रोकूँगा।" दलपति बोला—"इसने दो बुंदेलों को मारा है।" सुनते ही पुण्यपाल के सहसाप्रवर्ती रक्त में आग-सी लग गई।" पहले खंगारों के साथ विश्वासघात, अब हमारे साथ।" पुण्यपाल ने कहा—"आप कदाचित् यहाँ के राजा बनना चाहते हैं।"

इतने में अग्निदत्त के भरपूर वार से दलपति का सिर धड़ से अलग होकर पृथिवी पर जा पड़ा।

पुण्यपाल ने कहा—"नीच, पापी, विश्वासघाती, सँभल।"

अग्निदत्त बोला—"मैं मृत्यु का आवाहन कर रहा हूँ। आओ। जब मरना है, तब किसी के हाथों सही।"

सहजेंद्र ने आकर कहा—"क्या हो रहा है, कुछ समझ में नहीं आता। अग्निदत्त, तुम क्या कर रहे हो ? क्यों कर रहे हो ?"

"मैं सब जानता हूँ।" पुण्यपाल ने लपककर कहा—"सँभल पापी।" अग्निदत्त—"आओ।"

सहजेंद्र बोला—"कवच नहीं पहने है। ब्राह्मण है। पुण्यपाल, जाने दो।"

पुण्यपाल ने कहा—"नहीं छोड़ूँगा।"

सहजेंद्र बीच में पड़नेवाला ही था कि उस घायल खंगार ने, जो बैठ गया था, खड़े होकर उस पर वार किया।

सहजेंद्र ने वार रोक लिया।

पुण्यपाल बोला—"देखते नहीं हो इस नारकी के कपट को।" और वह अग्निदत्त पर पिल पड़ा। सहजेंद्र ने थोड़ी ही देर में लड़कर उस खंगार सैनिक को मार दिया।

उसके पश्चात् ही अग्निदत्त के नग्न शरीर से पुण्यपाल की तलवार चमककर निकल गई। अग्निदत्त चक्कर खाकर गिर पड़ा, और छटपटाने लगा।

नवजात शिशु रोया।

बुंदेलों ने क़िले में से जय-घोष किया—"बुंदेलों की जय।"

अग्निदत्त ने सिसकते हुए कहा—"अच्छा...हुआ...पा...नी...हुआ...कि...ये...का...पा...या...हाँ...मा...ता...रा...कुं...डा...र...मा—"

अग्निदत्त का अंत हो गया।

सहजेंद्र ने घुटने टेककर अग्निदत्त के सिर पर हाथ रखकर कहा—"कितना कोमल और कितना कठोर! ऐसा मनुष्य और कैसा कर्म! परंतु पुण्यपाल, इसको देखकर मेरा कलेजा उमड़ा पड़ता है।"

पुण्यपाल ने कुछ क्षण ठहरकर कहा—"मुझे खेद है कि यह मेरे हाथ से मारा गया। परंतु मैं विवश हो गया था।"

की छिन्न-भिन्न अवस्था में नगर में लुटेरों के साथ जा कूदेगा और फिर—और फिर ?"

दिवाकर घबराकर खड़ा हो गया और खिड़की की ओर देखने लगा, जैसे किसी को ढूँढ़ता हो। उस ओर किसी की भी आहट न मालूम हुई। नीचा सिर किए टहलने लगा। सोचा—"जिस समय इस षड्यंत्र की रचना हुई, मैंने उसी समय क्यों न ज़ोर के साथ प्रतिवाद किया ? बुंदेलों को मैंने उसी समय क्यों न समझाया ? उस समय उन्हें भी सोचने-विचारने का अवकाश था। यदि न मानते, तो मुझे देश-निकाला दे देते, और मैं इस समय इस तरह जकड़ा हुआ न होता। देव, देव, तुमने क्या किया ? स्वामि-धर्म के लिये आत्मा का इतना हनन ! हाँ, सहजेंद्र और सोहनपाल को आप किस मार्ग पर ले गए !" इतने में दिवाकर को प्यास लगी। पानी पीकर वह फिर टहलने लगा। स्वयं कहने लगा—"कुंडार, सुंदर नगरी, खंगारों ने तेरा मान न रख पाया और अब तेरी संपत्ति बुंदेलों को बदनाम करेगी। दलपति, पशु दलपति, तू उसको लूटेगा ! मैं वहाँ होता, तो तुझको बतलाता कि इस अपौरुषेय-कुत्सित अधर्म का क्या फल होता है। किसानों के खेतों को कोई नहीं छूता, जड़, नहरों और कुओं के पास कोई सेना वैर चुकाने नहीं जाती, निश्शस्त्रों की ओर कोई नहीं हेरता, परंतु दुष्ट दलपति तू वास्तव में बुंदेलों की श्रीहत करने का कारण होगा। ब्राह्मण विष्णुदत्त की संपत्ति लूटने का विचार ! हा! मेरे पास अब कोई हथियार भी नहीं है ! तारा ! तेरे मंदिर में आज अपवित्रता का प्रवेश होगा ! हा ! आज चंद्रमा को राहु ग्रसेगा !" उद्विग्नता बहुत बढ़ गई। उसने फिर पानी पिया। प्यास शांत न हुई, तो उसने मुँह और सिर को अच्छी तरह धोया। खिड़की में होकर हवा का झोंका आता था और कोठरी में फैलकर मंद-मंद बहने लगता था। दिवाकर बैठ गया। रात-भर आँख ने पलक न मारी थी, इसलिये लेटकर आँख मीच ली। दिन ढलने को आ गया था।

नींद आने लगी। इसी अवसर पर चमूसी ने उसको खिड़की के पास आकर देखा था।

थोड़े समय तक निद्रा-देवी उस बंदी या पागल को अपनी गोद में लिए रही।

दिवाकर ने स्वप्न देखा कि वह भोजन कर रहा है। तारा लंबा कछोटा मारे परोसने को आई। एक बार परोसा, और फिर परोसने लगी। कहा, अब बस करो। न मानी। हँसकर कहा, तारा, तंग मत करो। चली गई। देर तक न आई। भोजन-सामग्री समाप्त हो गई, और माँगी। कोई न आया। चिल्लाकर माँगी। तब आई तारा। उदास थी। बोली, तुम तो रुष्ट हो गए! तारा से रुष्ट! असंभव। किसने तुमसे कहा? तारा मुस्किराई। कहा, तुम रुष्ट हो गई थीं या मैं? अच्छा, अब भूख नहीं है, पास बैठ जाओ। तुमको देखता रहूँगा। आजन्म, जन्म-जन्मांतर। अनंत काल तक। उसकी आँखों में कृतज्ञता की तरलता लक्ष हुई। कृतज्ञ नेत्र। सुंदर, मनोहर और हृदयहारी। किसने बनाए? क्यों बनाए? आत्मा के गवाक्ष। पवित्रता के आकाश। प्रकाश के पुंज। फिर उसके चारो ओर आभा का एक मंडल-सा खिंच गया। जैसे गढ़ के चारो ओर दीवार खिंच गई हो। दिवाकर ने प्रभामंडलावृत्त तारा की ओर अपने हाथ फैलाए। फैलाता गया। तारा मुस्किराती रही। पृथिवी ने क्षितिज की सहायता से नभ का स्पर्श किया। मेघ आया। बूँद गिरी। भूमि का छोटा-सा पर्वत बूँद के सहारे आकाश-गंगा की निर्मल धारा को छू गया। प्रकृति और पुरुष, पुष्प और सुगंध, वर्ण और सुवर्ण, नेत्र और ज्योति, आशा और पुरुषार्थ, स्नेह और मृदुलता, मोह और प्रीति, देह नाशवान् है, रूपांतरमयी, परंतु आत्मा अमर। प्रकाश-वृत्त बढ़ा, और बढ़ा। ज्योतिर्मयी तारा और अंधकाराच्छादित दिवाकर। परंतु प्रकाश-मंडल और बढ़ा। अंधकार कम हुआ, उसका अंत हुआ। तारा की ज्योति में दिवाकर तारामय हो गया। जैसे भास्कर और ऊषा, रवि और रश्मि,

दोनो एक। एक आत्मा का दूसरे में समावेश। आत्मा का लयकार। अच्छिन्न, अभिन्न, अखंड। इतना प्रकाश, इतनी दीप्ति! दिवाकर ने देखा, प्रकाश तापमय है। प्रकाश के साथ ताप बढ़ा। बढ़ता चला गया। शीतल तारा और उत्तप्त प्रकाश! प्रचंड प्रकाश और प्रचंड ताप! दिवाकर की देह जलने लगी। आँख खुल गई। माथे पर और गले पर बहुत पसीना आ गया था। गला बिलकुल सूख गया था। तीव्र प्यास लग रही थी। घड़े के पास गया, तो देखा कि उसमें एक चुल्लू भी नहीं। पसीने को पोंछकर कपड़े से हवा की। कुछ ठंडक मालूम पड़ी। हवा करना बंद किया, तो फिर पसीना और फिर प्यास। कोठरी की हवा गरम मालूम पड़ने लगी, और भारी।

चिल्लाकर चमूसी और उसके सैनिकों को बुलाया। किसी ने उत्तर न दिया। कौन सुनता था? कुएँ से निकली आह किसके कान में पड़ सकती थी?

चिल्लाने से गला और सूख गया। और पसीना आया। और प्यास लगी। उसने सोचा कि बेचैन होने से बेचैनी बढ़ती है। शांत होकर संयम करूँ, तो प्यास न मालूम पड़ेगी। पानी पीने की इच्छा का शमन किया। कुछ शांति मिली। फिर किसी स्थल पर उसी घड़ी होनेवाले उत्सव की ओर ध्यान गया। अग्निदत्त, धीर, सहजेंद्र, दलपति बुंदेला, नागदेव। और अपनी बेबसी। व्यग्र हो उठा और अब की बार कलेजे से भभक-सी निकली। फिर प्यास। ज़ोर की प्यास। परंतु पानी पास नहीं था, कोई पानी का देनेवाला भी नहीं था।

फिर पानी पीने की इच्छा को शमन करने की चेष्टा की। विफल हुआ। उसने सोचा—"गढ़ी के सब लोग उत्सव में खपने के लिये चले गए। दंडित दोषी के पास कोई क्यों रहता? बहिष्कृत तिरस्कृत तो पहले है। पवन भी अपराधी के चीत्कार का संवाद-वाहक नहीं होगा। एक बार फिर चिल्लाऊँ, शायद अब कोई आ गया हो।"

फिर चिल्लाया। कोई न बोला। कंठ क्षीण हो रहा था। कोई पास भी होता, तो शायद न सुनता। कलेजा ऐंठने लगा और मूर्च्छा-सी आने लगी। लेट गया। बोला—"पापी के लिये यही दंड उपयुक्त है। बुंदेलों के लिये कुछ न कर पाया। तारा के लिये कुछ न किया! वर्णाश्रम-धर्म के विरुद्ध लालसा का मन में वास दिया! परंतु क्या वास्तव में मैंने तारा के विषय में किसी कुरूप कल्पना को कभी स्थान दिया? यह पाप मैंने कभी नहीं किया।" फिर कुछ अचेत-सा हुआ। बोला—"तारा, तारा, मेरी ज्योति। मैं—"

इसके बाद कुछ बोल न सका। बढ़ती हुई मूर्च्छा में देखा कि एक सिंहासन पर कोई देवी बैठी हुई है। आँखों के मृदुल, कोमल तेज से मुख-श्री उज्ज्वल। मुख के चारो ओर छवि-छटा का मंडल। सिर पर मुकुट और गले में बड़े-बड़े कनेर के फूलों की माला। दिवाकर ने नमस्कार किया। देवी मुस्किराई। बोली—"तेरी तपस्या से संतुष्ट हुई। माँग, क्या चाहता है?"

भक्त ने कहा—"और कुछ नहीं, चरणों का आश्रय।" और पैरों पर गिरने को हुआ कि देवी ने थाम लिया, और अपने गले की पुष्प-माला दिवाकर के सिर पर बाँध दी। माला टूटकर गले में आ गई। फिर देखा, देवी सिंहासन-समेत कहीं उड़ी जा रही हैं और वह साथ है। अनंत स्थान अनंत समय!

दिवाकर अचेत हो गया। परंतु प्राण आसानी से नहीं निकलते। देर तक कभी रुक-रुककर साँस लेता रहा, कभी कराह-कराहकर। निस्सहाय दुःखी के लिये मूर्च्छा वरदान है।

उधर घर से घोड़े पर सवार होकर तारा ने देवरा का मार्ग लिया। सिर पर एक साड़ी का मुड़ासा जल्दी-जल्दी में बाँध लिया और मर्दानी अँगरखी पहन ली। उत्सव-क्षेत्र दूसरी ओर पड़ता था, वह वहाँ नहीं गई। इस समय वहाँ घमासान हो रहा था और मारो-मारो की पुकारें

दिशाओं में व्याप्त हो रही थीं। तारा घोड़े को सरपट भगाए लिए चली जा रही थी। कुंडार के चीत्कार को उसने पीछे छोड़ा और सुनसान जंगल और मैदान में आ गई। वन, पर्वत, मैदान और भरके उसके लिये कोई भय नहीं रखते थे।

वह देवरा के उद्यान के पास उतरकर पैदल हो गई और उसने बगीचे में से कनेर के कुछ फूल तोड़कर रख लिए।

गढ़ी के पास पहुँचकर देखा, तो वहाँ किसी को न पाया। फाटक पर साँकल चढ़ी हुई थी। उसको विश्वास था कि अग्निदत्त गढ़ी में न होगा, क्योंकि उसकी चिट्ठी अव्यक्त होने पर भी संकेतमय थी, और तारा को उसके जीवन के रहस्यों की कुछ बातें मालूम हो चुकी थीं।

घोड़े को बाहर बाँधकर गढ़ी का फाटक खोला। बेधड़क भीतर चली गई। वहाँ पुकार लगाई, कोई न बोला। तलघरे की खिड़की के पास गई। बुलाया। कोई उत्तर न मिला। वहीं खड़े होकर सोचा कि शायद दिवाकर भी कहीं चला गया हो, परंतु इस बात पर विश्वास नहीं टिका। इतने में तलघरे में से कराहकर श्वास लेने का शब्द सुनाई पड़ा

दिवाकर के क़ैद होने का हाल तारा को मालूम हो चुका था—"पागल हों या अपराधी हों, तारा के लिये दिवाकर हैं।" तारा ने सोचा था।

उसने मृदुल कोमल कंठ से बुलाया—"क्या सो रहे हैं ?"

कोई उत्तर न मिला। तारा ने कनैर के फूल खिड़की में होकर तलघरे में डाले।

ज़रा ज़ोर से बोली—"उत्तर नहीं देते ?' ऊपर चाँदनी छिटकी हुई थी। भीतर अंधकार था। अंधकार में से कोई स्वर बाहर न आया।

तारा और ज़ोर से चिल्लाई, परंतु भीतर से किसी ने कुछ न कहा।

तब तारा कुछ क्षण खिड़की की छड़ों से कान लगाकर सुनती रही। कभी तो श्वास बिलकुल नहीं सुनाई पड़ती थी। और कभी कराह के साथ अस्पष्ट सुनाई पड़ती थी।

एक क्षण के लिये तारा के पैरों-तले की भूमि निकल गई—"यदि पागल हैं, तो भीतर पड़े-पड़े अवस्था और बिगड़ जायगी, यदि कोई और रोग है, तो भी एक क्षण भी भीतर नहीं पड़े रहने देना चाहिए।"

तारा ने सोचा और पुकारकर कहा—"मैं आती हूँ।"

तुरंत तारा सीढ़ियों से चढ़कर छत पर पहुँची। ऊपर के पटियों के हटाने की क्रिया उसको मालूम थी। पटिए हटाए, परंतु भीतर कैसे पहुँचे?

धुनवाली स्त्री को उपाय ढूँढ़ने में विलंब नहीं होता।

सिर का मुबासा उतारकर निकले हुए पटिए से मज़बूती के साथ बाँध दिया और उसके दूसरे छोर को तलघरे में लटका दिया। हिलाकर देखा तो छोर बीच ही में ठहरा रहा, इतना लंबा न था कि भूमि को छू लेता। तारा एक क्षण के लिये निराशा के कारण विह्वल हो गई, परंतु दूसरे क्षण तुरंत उसको एक उपाय सूझा।

अँगरखे को उतारकर दूसरी ओर डाल दिया। साड़ी उतारने को हुई कि शरीर की लज्जा का ख़याल आ गया। एक हाथ से साड़ी का छोर पकड़े, मुक्त-केश, सिर पर दूसरा हाथ रक्खे, चंद्रमा की ओर देखने लगी। उन बड़े-बड़े नेत्रों में से आभा झर रही थी, जिसको मंद-मंद पवन छिटकी हुई चाँदनी में उसी छत पर छितरा-सा रहा था। चंद्रमा की कोमल किरणें उस मृदुल आभा में मानो स्नान करने लगीं। छत के ऊपरवाले छिद्र में होकर कराहने का शब्द फिर सुनाई पड़ा।

तारा ने मन में कहा—"यह देह किसी दिन भस्म हो जायगी। अब और किस काम में आना है?"

और वे आँखें ऐसी उद्धत हुईं, जैसे होम-कुंड में प्रवेश करने के पहले आहुति। यज्ञ की लौ के समान तारा के नेत्र उस चाँदनी में जगमगा उठे, और उसने साड़ी को कमर तक पहने रहकर बीच से साड़ी फाड़ लिया और कमर में घुटने से ऊपर कछोटा कस लिया। फाड़े हुए कपड़े को मुड़ासे से बाँधकर तलघरे में छोड़ दिया। छोर भूमि पर छहराने लगा।

तारा फ़ुर्ती के साथ इस रस्सी के सहारे नीचे उतर गई। दिवाकर को शीघ्र ढूँढ़ लिया। माथे पर हाथ रक्खा, पसीने से तर था। पास रक्खे हुए एक कपड़े से पसीने को पोंछकर नाड़ी पर हाथ रक्खा। गति मंद थी, और कोई उपाय न सूझा, ज़ोर से हवा करने लगी। ऊपर के दोनो छिद्रों में होकर चंद्रमा का प्रकाश आ रहा था। वह पड़ता छोटी ही परिधि में था, परंतु उसके आसपास धुँधले प्रकाश में थोड़ा-थोड़ा वस्तु-परिचय हो सकता था।

ठंडी हवा लगने के कारण दिवाकर को कुछ शांति मिली। मुँह से धीरे से निकला—"जल।"

"क्या सो रहे हो?" तारा ने पूछा।

कोई उत्तर न मिला।

तारा को तुरंत ध्यान में आया, निद्रा में हो या किसी और अवस्था में, जल की आवश्यकता है। पास में घड़े का आकार दिखाई पड़ा। टटोल-कर उठाया। खाली था। लोटा भी पास रक्खा था। उसे देखा, तो वह भी सूखा।

तारा को विश्वास हो गया कि जल न मिलने के कारण दिवाकर की यह अवस्था हुई है। तुरंत घड़ा उठाकर बाहर जाने को हुई। न जा सकी। तब मुँह में लोटा दबाकर ऊपर को चढ़ी और उसी अर्द्धनग्न अवस्था में, पागलों की तरह दौड़कर नदी से लोटे में पानी भर लाई। पटिए से बँधे कपड़े को ऊपर खींचकर लोटे को सिरे से बाँधा और धीरे से नीचे उतार दिया। उसके बाद स्वयं सँभलकर नीचे उतर गई।

दिवाकर के सिर पर हाथ फेरा। पसीने से फिर तर हो गया था। पोंछ-कर ज़ोर से हवा की। दिवाकर बोला नहीं।

तारा ने थोड़े-से पानी से दिवाकर के होंठ तर किए। उसने ज़रा मुँह चलाया। तब तारा ने एक चुल्लू मुँह में डाल दिया। कुछ कंठ के नीचे चला गया और कुछ बाहर रह गया। तारा कभी हवा करती और कभी चार-चार, छः-छः बूँदें उसके गले में चुआती। इस तरह एक घड़ी समय निकल गया। दिवाकर जाग्रत् नहीं हुआ।

तारा ने छिद्र में से दिखलाई देनेवाले चंद्रमा की ओर हाथ जोड़कर कहा—"भगवन्, मेरा प्राण चाहे इसी समय चला जाय, इनको तुरंत सुदशा में कर दो। भिखारिणी एक प्राण की भीख चाहती है। यदि तपस्या का कोई फल मिलता है, तो इसके सिवा और कुछ नहीं चाहती।" तारा की आँखों से आँसू निकल आए—जैसे पवित्र मंदाकिनी के गर्भ से उत्पन्न हुए हों। सती की प्रार्थना व्यर्थ नहीं गई।

शरीर में कुछ पानी पहुँच जाने के कारण दिवाकर ने कुछ चेतनता अनुभव की और अधिक स्पष्ट स्वर में जल माँगा। तारा ने लोटे से कई चुल्लू पानी दिवाकर के कंठ में धीरे-धीरे डाला, और फिर हवा की। दिवाकर ने करवट बदली और धीरे से गला साफ़ किया। तारा हवा करती रही। दिवाकर ने फिर पानी माँगा। तारा ने दिया। अब वह अधिक चेतन हुआ। परंतु इसमें एक घड़ी और लग गई। तारा ने नाड़ी देखी।

दिवाकर ने क्षीण स्वर में कहा—"कौन है?"

वीणा-विनिंदित स्वर में तारा बोली—"तारा।"

दिवाकर ने आँख खोलने की चेष्टा की। टूटते हुए स्वर में बोला—"नहीं। देवी हो। अभी-अभी सिंहासन पर बैठी थीं। मैं चरणों में था।"

तारा का गला भर आया।

दिवाकर के सिर पर हाथ फेरकर बोली—"मैं ही हूँ। देवी मंदिर में है।"

दिवाकर ने जल माँगा। तारा ने अब की बार कुछ अधिक पीने को दिया।

दिवाकर के शरीर में तरावट पहुँची, और उसने अधिक चेतनता लाभ की। आँख खुली। देखने की चेष्टा की। तारा स्पष्ट न दिखलाई दी, परंतु एक आकार-सा दिखलाई दिया और उस अँधेरी काल-कोठरी में उसकी आँख ने शुभ्र ज्योत्स्ना की एक राशि-सी देखी।

सिर पर हाथ रखकर बोला—"देवी, आपने पुनर्जीवित किया। क्यों किया? अधम हूँ। पापी हूँ।" फिर धीरे से बोला। स्वर आह में डूबा हुआ था—"हा, तारा! तारा!"

"मैं हूँ। क्या कहते हो?" तारा गद्गद होकर बोली।

दिवाकर ने ज़रा ज़्यादा स्पष्ट स्वर में कहा—"तारा! असंभव है! तारा? यहाँ तारा!" तारा का गला काँप रहा था और आँखों से आँसू निकल रहे थे। बोली—"अब जी कैसा है?"

और उसने दिवाकर के सिर पर हाथ फेरा। मानो साक्षात् शांति का स्पर्श हुआ हो।

दिवाकर को शरीर में स्फूर्ति मालूम हुई। बोला—"आप देवी हैं। ऐसे अधम के लिये देवी का अवतार हुआ! देवी, कुंडार में क्या हो रहा होगा? मेरे प्राण चाहे चले जायँ, तारा की रक्षा कीजिए।"

तारा ने कहा—"तारा यहीं तो अभी-अभी आई है। और जल पीजिएगा?"

"हाँ देवी।" दिवाकर ने उत्तर दिया। तारा ने और जल पिलाया। लोटे में अब थोड़ा-सा रह गया था।

तारा ने हवा की।

दिवाकर सचेत हुआ और बैठ गया। बोला—"क्या स्वप्न देख रहा था? नहीं। चंद्रमा आकाश में है। ये कठोर दीवारें चारो ओर हैं। खिड़की की छड़ें जहाँ-की-तहाँ अब तक लगी हुई हैं। पत्तों की खरखराहट सुनाई पड़ती है। मैं मरा नहीं हूँ। अचेत भी नहीं हूँ। देवी, आप कौन हैं?"

तारा ने करुण स्वर में कहा—"हाँ, आपको क्या अब भी भ्रम है?"

"तारा! संसार की गरिमा, स्वर्ग की पवित्रता, क्या तारा! तारा यहाँ। क्या तुम सचमुच तारा हो! क्या ऐसा संभव है?"

दिवाकर ने अचरज के साथ पूछा और उसके नेत्रों के सामने एक ज्योति का चमत्कार-सा फिर गया।

तारा बोली—"यदि शरीर में शक्ति हो, तो यहाँ से बाहर चलिए। और जल पीजिएगा?"

"हाँ।" दिवाकर ने कहा—"परंतु जल तो यहाँ है ही नहीं। उसी के अभाव के कारण तो प्राण निकलने को था। परंतु अभी-अभी मैंने पिया भी है। कहाँ से आया? कहाँ है? कुछ समझ में नहीं आता।" और वह लोटे को टटोलने के लिये हाथ बढ़ाने लगा। पास पड़े हुए कनेर के फूल हाथ में आए। तारा ने एक हाथ उसके कंधे पर रखकर दूसरे हाथ से लोटे का बाक़ी पानी हिला दिया।

दिवाकर को शरीर में बल प्रतीत हुआ। बोला—"आप तारा नहीं हैं। ईश्वर ने इस कारागार के कष्टों का निवारण करने के लिये आपको स्वर्ग से भेजा है। अभी-अभी आपने मुझको कनेर के फूलों की माला प्रसाद में दी थी। उसके कुछ फूल मेरे हाथ में हैं। मैंने ऐसा क्या तप किया था, जिसका यह वरदान है? तारा ने जो माला दी थी, वह मेरे गले में है।"

तारा ने व्याकुल होकर कहा—"आपका जी अच्छा है?"

दिवाकर—"सर्वतः। मैं अब अमर हूँ। देवी का वर-प्राप्त चिर-सुख प्राप्त करता है।"

तारा ने अनुरोध-पूर्वक कंपित स्वर में कहा—"यहाँ से चलिए। यहाँ पड़े-पड़े आपकी अवस्था कहीं फिर बुरी न हो जाय। जब तक आप बाहर न हो जायँगे, आपको विश्वास नहीं होगा कि मैं तारा हूँ। घोड़े पर चढ़कर कुंडार से आई। दूर से युद्ध-कांड देखा। खिड़की की राह यहाँ कनैर के फूल डाले। ऊपर के छिद्र से कपड़े का रस्सा बनाकर नीचे उतरी। आपसे बातचीत कर रही हूँ। फिर भी देवी हूँ! तारा नहीं हूँ! और किस तरह विश्वास दिलाऊँ?"

दिवाकर का सिर घूमने लगा। एक क्षण में अपने को सँभालकर बोला—"तारा, तारा! तुमने यह क्या किया? इस क्षुद्र शरीर के लिये इतना मोह! ओह! कितना कष्ट, कितना साहस! कितनी वीरता! मैं कदापि इसके योग्य नहीं हूँ।"

"आप बहुत बातूनी हैं।" तारा ने कहा—"यहाँ से तुरंत उठिए। ऊपर जाने के लिये रस्सी लटक रही है। आप ऊपर चढ़ सकेंगे? अब प्यास तो नहीं है?"

दिवाकर ने उत्तर दिया—"प्यास है, परंतु थोड़ी-सी। मैं रस्सी के सहारे ऊपर चढ़ सकूँगा। भीतर अनंत, अपरिमित बल का अनुभव कर रहा हूँ। तारा, तुम देवी नहीं हो, तो देवी का अवतार हो।"

तारा बोली—"चुप न रहोगे, क्यों? लो यह है रस्सी, पकड़कर ऊपर चढ़ो। देखूँ तुम्हारा बल।"

दिवाकर के हृदय में हर्ष का विद्युत्-प्रवाह चल रहा था। स्फूर्ति-संचार के मारे रोम-रोम फड़क रहा था।

बोला—"पहले मैं नहीं, पहले तुम।"

"अच्छा मैं हो सही" तारा ने कहा—"परंतु यह रस्सी मेरी साड़ी की है। मैं पहले जाऊँगी, तो लाज टूटेगी।"

दिवाकर धक से रह गया। रोकर बोला—"इस पामर के लिये यह त्याग तारा ! तुमने क्या सोचकर, क्या देखकर किया ?"

तारा ने कहा—"फिर वही प्रवाह ? आपकी ये बातें मुझको अच्छी नहीं मालूम होतीं। संसार क्या कहेगा ? मेरे लिये तो एक संसार है और कहीं कुछ नहीं।"

दिवाकर बोला—"यहाँ एक रस्सी पड़ी है, जिससे बाँधकर मैं यहाँ डाला गया था। तुम उसको साथ लेती जाओ। ऊपर पहुँचकर साड़ी निकाल लेना और रस्सी लटका देना। उसके सहारे चढ़ आऊँगा।"

तारा ने ऐसा ही किया। ऊपर जाकर मुवासे की साड़ी पहन ली। रस्सी के सहारे दिवाकर ऊपर चढ़ आया। सीढ़ियों के सहारे नीचे उतरकर दोनो गढ़ी के बाहर हो गए। रात बहुत जा चुकी थी।

घोड़ा बाहर लगाम से बँधा था।

तारा ने खोलकर घोड़े की लगाम दिवाकर के हाथ में दी। सिर नीचा कर लिया।

दिवाकर ने कहा—"अब इन प्राणों पर तुम्हारा अधिकार है। तारा, क्या आज्ञा है ?"

तारा ने धीरे से कहा—"आप यह क्या कह रहे हैं ? प्राण आपने मेरे बचाए थे। उस दिन आप न होते, तो मैं क्या आज जीवित होती ? आज्ञा मैं दूँगी या आप देंगे ?"

दिवाकर बोला—"तारा, तुमने मेरे प्राण बचा लिए और उद्धार कर दिया। घोड़े पर बैठकर घर जाओ। जो माला मैं गले में डाले हूँ, मेरे लिये वही बहुत है।"

तारा रोने लगी। दिवाकर ने उसका एक हाथ अपने हाथ में लिया और दूसरा उसके सिर पर रखकर बोला—"तारा, तुम मुझको न भूल सकीं। घर के सुखों को छोड़कर संसार के कष्टों को कैसे सहन करोगी ?"

तारा और रोई। रोते-रोते बोली—"आप भूल जाइए। दूसरों से आपको क्या? मुझे यहाँ छोड़कर जहाँ आपको जाना हो, चले जाइए। आपके तो इस निस्सीम संसार में अनेक मित्र होंगे।"

दिवाकर का सारा शरीर शिथिल हो गया। कलेजे को बहुत थामकर उसने कहा—"तारा, तुम बहुत कोमल हो। संसार बहुत कठोर है। उसके असंख्य कष्ट कैसे सहन करोगी?"

तारा ने आँख उठाकर दिवाकर की ओर देखा। दो बड़े-बड़े आँसू अब भी आँखों में थे। चाँदनी दमक रही थी। शीतल पवन मंद-मंद बह रहा था। सुनसान पेड़ कभी-कभी खरभरा उठते थे! नदी कलकल शब्द करती हुई बहती चली जा रही थी। उसकी विशाल धारा पर चाँदनी की चादरें लहरा रही थीं। पलोथर पर्वत अपना सिर ऊँचा किए हुए खड़ा था।

तारा बोली—"संसार के कष्ट तो पुरुष ही सहन करना जानते हैं। मेरे साथ रहने से आपको कष्ट होगा; स्वतंत्रता में जो बाधा पड़ेगी, वास्तव में आप उससे घबराते हैं।"

दिवाकर ने सहसा अपने दोनो हाथों में तारा का सिर लेकर अपने कंधे पर रख लिया। कुछ क्षण इस तरह तारा के सिर को कंधे पर रक्खे रहा। बोला—"तारा, हमारा संयोग अखंड और अनंत है। वर्णाश्रम-धर्म हमारी देहों के संयोग का निषेध कर सकता है। परंतु आत्माओं के संयोग का निषेध नहीं कर सकता। यही हमारा संयोग है। तारा, हम लोग योग-साधन करेंगे।"

तारा ने बाहु-पाश में से धीरे से अपना सिर निकालकर दृढ़ता-पूर्वक दिवाकर की ओर देखकर कहा—"मैं तो कुटी की संभाल करूँगी।"

इसके अनंतर घोड़े को लेकर दोनो नदी की ओर चले गए।

चंद्रमा मुस्किरा रहा था। दिशाएँ प्रफुल्ल थीं।

सबेरे सबसे पहले सहजेंद्र अपने सैनिक लेकर देवरागढ़ी पर आया।

तलघरे के पटियों को खुला पाया। रस्सी लटकी हुई थी। भीतर कनैर के मुर्झाए हुए फूल पड़े थे।

निःश्वास परित्याग कर बोला—"पुष्प-वृष्टि करके मनुष्य को कोई देवता अपने साथ ले गया!"

"बिन्दुदो दुर्गमेशः"

कुंडार पर अधिकार करने के उपरांत बुंदेलों ने बड़े वेग के साथ चारो ओर के गढ़-गढ़ियों पर धावा करके उन्हें सहज ही अपने वश में कर लिया। क्षत्रिय- सरदारों पर शीघ्र बुंदेलों का प्रभाव जम गया और वे उनके शासन को खंगारों की अपेक्षा अधिक मानने लगे, परंतु बुंदेलों को अपने शासन की सोलह आना धाक जमाने में समय लगा।

कुंडार के अधिकृत होने के कुछ समय उपरांत सोहनपाल का राज्याभिषेक धूमधाम के साथ हुआ, और शीघ्र ही हेमवती का विवाह पुण्यपाल के साथ हो गया।

धीर मारा जा चुका था और दिवाकर का कुछ पता नहीं चला, इसलिये पुण्यपाल और उसका भाई, जिसका संबंध हमारी कहानी से नहीं है, राज्य के मंत्री नियुक्त किए गए।

स्वामी अनंतानंद का फिर कोई पता नहीं लगा।

विष्णुदत्त कुछ दिनों अपनी संपत्ति की रक्षा करके परलोक-वासी हुए। अग्निदत्त की मृत्यु का हाल उनको शीघ्र मालूम हो गया था। उसकी मृत्यु का वास्तविक कारण बहुत दिनों लोगों की भिन्न-भिन्न चर्चाओं का विषय रहा। तारा के संबंध में लोगों का विश्वास रहा कि कहीं युद्ध में काम आई। इन दोनो के विछोह का दुःख विष्णुदत्त को खटकता रहा, परंतु संसार के प्रवाह में वह कम होता चला गया।

मरने के पहले विष्णुदत्त ने एक सजातीय को गोद ले लिया था, इसलिये उनका वंश नष्ट नहीं हुआ। मरने के पहले उनको राज्य से सम्मान भी प्राप्त हुआ। सोहनपाल ने उनको अपना कोषाध्यक्ष बना लिया था। टूटी-फूटी अवस्था में आज भी पांडे की हवेली कुंडार के खँडहरों में खड़ी हुई है।

कुसुम के खेत में पड़े हुए बालक और मानवती की सहजेंद्र ने रक्षा की और उसको प्रतिष्ठा के साथ जहाँ मानवती ने जाना चाहा, कालांतर में पहुँचा दिया। कहते हैं, अनेक खंगार उसी बालक की संतान हैं, जो राजधर का पुत्र था।

जो खंगार बुंदेलों की विनाशकारी तलवार से बचे, उनमें से अधिकांश इधर-उधर जा छिपे। उनको विश्वास था कि बुंदेलों को यदि हमारे अस्तित्व की सूचना मिल गई, तो तुरंत मार डालेंगे। मालूम नहीं, कितने वर्षों तक इस छिन्नावशिष्ट जाति ने अपने कलेवर को छिपाया।

जो खंगार कहीं न जा सके, उन्होंने बुंदेलों की हर तरह की नौकरी-चाकरी स्वीकार कर ली। शासकों का बर्ताव उनके साथ ऐसा हलका रहा और उन लोगों ने भी अपने को इतना आत्मविस्मृत किया कि खंगार-राज्य-काल में उनका जो सामाजिक स्थान था, उससे वे बहुत दूर जा पड़े।

बुंदेलों ने उस पहाड़ी के नीचे विंध्यवासिनी देवी का मंदिर बनवाया, जहाँ से खड़े होकर हेमवती ने बुंदेला-खंगार-संग्राम चिंतित हृदय से देखा था। कोई-कोई खंगार कहते हैं कि यह मंदिर खंगारों की 'गिरिवासिनी देवी' का है और बुंदेलों ने केवल दूसरा नाम धर लिया है।

कुंडार को अधिकार में कर लेने के बाद से बुंदेलों की कुल-पाटी पर ये शब्द लिखे जाने लगे—

"बिन्दुदो दुर्गमेशः"

अर्थात् देवी को अपनी बूँद, तप करते हुए चढ़ानेवाला बुंदेला, दुर्ग 'गढ़-कुंडार' का स्वामी हुआ।

इति